3 1761 08433016 6

Toronto University Library
Presented by
The Secretary of State for India
through the Committee formed in
The Old Country
to aid in replacing the loss caused by
The disastrous Fire of February the 14th 1890

Digitized by the Internet Archive
in 2010 with funding from
University of Toronto

http://www.archive.org/details/premsgarorocea00chat

प्रेम सागर

THE

PREM SÁGAR;

OR, THE OCEAN OF LOVE,

BEING A

HISTORY OF KṚIṢHṆ,

ACCORDING TO THE TENTH CHAPTER OF THE BHAGAVAT OF VYASADEV.

TRANSLATED INTO HINDI FROM THE BRAJ BHAKHA OF CHATURBHUJ MISR,

BY LALLU LAL,

LATE BHAKHA MUNSHI OF THE COLLEGE OF FORT WILLIAM.

A NEW EDITION, WITH A VOCABULARY.

BY EDWARD B. EASTWICK, M.R.A.S.,

MEMBER OF THE ASIATIC SOCIETIES OF PARIS AND BOMBAY, AND PROFESSOR OF URDÚ, AND LIBRARIAN IN THE EAST-INDIA COLLEGE, HAILEYBURY.

HERTFORD:

PRINTED (FOR THE HON. EAST-INDIA COMPANY) BY STEPHEN AUSTIN,

BOOKSELLER, ETC., TO THE EAST INDIA COLLEGE.

MDCCCLI.

7052
25/11/90

STEPHEN AUSTIN, PRINTER, HERTFORD.

PREFACE.

The present edition of the *Prem Ságar* is a careful reprint of the earliest and best edition, that of 1810. Headings to the chapters, in English, have been introduced, which, it is hoped, will form a valuable aid to the Student. A copious Vocabulary follows the Text, which will render a Hindí Dictionary unnecessary, and contains many words not to be found in the best Hindí Dictionary which has yet appeared—that by Mr. Thompson. It is also to be noted, that the punctuation of the Text has been greatly altered, and that marks of interrogation and exclamation have been introduced where necessary. It will be found, it is hoped, that typographical errors are, in a great measure, excluded; but, when it is considered that in the later editions, such as that of 1831, more than twelve hundred such errors exist, the Reader will, perhaps, pardon the mistakes that may meet his eye in the present pages.

When it is remembered that Hindí is the language of the largest part of India, being, in its various dialects, spoken by all the rustic and agricultural population throughout Bihár, Oude, Nepál, Bandalkand, a considerable portion of Rájputáná, Sind, and the Panjâb, it will not be thought that the importance of studying it can be exaggerated, The Bengal Government have, consequently, directed that all Civilians, proceeding to the N.W. Provinces, shall pass an examination in Hindí; and the like qualification is still more universally required of Military Officers. This being the case, an improved edition of the *Prem Ságar* was imperatively called for, as this book is, in Hindí, what the *Bágh o Bahár* is in Urdú, and has, consequently, been fixed upon as the Test in the Examinations, both Civil and Military. It is hoped that this desideratum, under the liberal patronage of the Honourable Court of Directors, has now been supplied.

प्रेम सागर।

PREM SÁGAR.

THE OCEAN OF LOVE.

THE PREFACE OF LALLÚJÍ LÁL, MUNSHÍ IN THE COLLEGE OF FORT WILLIAM, WHO TRANSLATED THE PREM SÁGAR FROM BRAJ BHÁKHÁ INTO HINDÍ DURING THE GOVERNOR-GENERALSHIP OF THE MARQUESS OF WELLESLEY.

श्री गणेशाय नमः।

बिघन बिदारण, बिरद बर, बारण बदन, बिकास,
बर दे, बऊ बाढ़ै, बिषद बानी, बुद्धि बिलास.
युगल चरण जोवत जगत जपत रैन दिन तोहि,
जगमाता सरस्वति! सुमिर युक्ति उक्ति दे मोहि.

एक समैं व्यासदेव कृत श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध की कथा को चतुर्भुज मिश्र ने, दोहे चौपाई में ब्रजभाषा किया, सो पाठशाला के लिये श्रीमहाराजाधिराज, सकल गुण निधान पुण्यवान, महाजान मारकुइस वलिजलि गवरनर जनरल प्रतापी के राज में;

कवि पंडित मंडित किये नग भूषण पहिराय,
गाहि गाहि विद्या सकल बस कीन्ही चित चाय.
दान रौर चऊं चक्र में चढ़े कविन के चित्त,
आवत पावत लाल मणि हय हाथी बऊ बित्त.

औ श्रीयुत गुणगाहक, गुणियन सुखदायक, जान गिलकिरिस्त महाशय की आज्ञा से संवत १८६० में श्री लल्लूजी लाल कवि ब्राह्मण गुजराती सहस्र अवदीच आगरेवालेने, विसका सार ले, यामनी भाषा छोड़, दिल्ली आगरे की खड़ी बोली में कह, नाम प्रेम सागर धरा; पर श्री युत जान गिलकिरिस्त महाशय के जाने से बना अधबना छपा अध छपा रह गया था, सो अब श्री महाराजेश्वर,

अति दयाल, कृपाल, यशस्वी, तेजस्वी, गिलबर्ट लार्ड मिंटो प्रतापवान के राज में; श्री श्री गुणखान, सुखदान, कृपानिधान, भाग्यवान, कपतान जान उलियम टेलर प्रतापी की आज्ञा से; और श्रीयुत परम सुजान, दयासागर, परोपकारी, डाकतर उलियम हंटर नचत्री की सहायता से; श्री श्री निपट प्रवीन दयायुत, लिपटन अवराहाम लाकिट रतीवंत के कहे से, उसी कवि ने संवत १८६६ में पूरा कर छपवाया पाठशाले के विद्यार्थियों के पढ़ने को।

CHAPTER I.

PARÍKSHIT, TO WHOM, AFTER THE DISAPPEARANCE OF KṚISHṆ, THE KINGDOM OF THE PÁṆDAVAS HAD BEEN CONSIGNED, ENCOUNTERS THE KALI YUG, OR IRON AGE, UNDER THE FORM OF A SHÚDRA STRIKING RELIGION AND THE EARTH, WHO APPEAR IN THE GUISE OF A BULLOCK AND A COW. HE RESCUES THEM AND ASSIGNS TO THE KALI YUG A DWELLING IN SINFUL PLACES AND IN GOLD. THE KALI YUG ENTERS THE GOLDEN DIADEM OF THE KING, AND, WATCHING ITS OPPORTUNITY, BY ITS DELUSIVE SPELL LEADS PARÍKSHIT TO INSULT THE HOLY ṚISHI LOMAS, WHOSE SON IN REVENGE DOOMS THE KING TO PERISH ON THE SEVENTH DAY BY THE BITE OF A SERPENT. LOMAS INFORMS THE MONARCH OF HIS APPROACHING FATE, FOR WHICH HE PREPARES, AND RESIGNING HIS KINGDOM TO JANAMEJAI HIS SON, GOES TO THE BANKS OF THE GANGES TO DIE. THERE HE IS VISITED BY THE SAGE SHUKADEV, WHO RECITES TO HIM NINE CHAPTERS OF THE BHÁGAVAT PURÁṆÁ, THE HEARING OF WHICH CONFERS ON THE RÁJÁ BEATIFICATION AND IMMUNITY FROM FURTHER TRANSMIGRATIONS. IN THE TENTH CHAPTER OF THE PURÁṆÁ THE SAGE RELATES HOW KANS, RÁJÁ OF MATHURÁ, WAS BORN, AND THE CRUELTIES HE PRACTISED; AND, AFTER HE HAD OBTAINED UNIVERSAL DOMINION, HIS EFFORTS TO ABOLISH THE WORSHIP OF VISHNU. TO DESTROY THIS TYRANT, VISHNU BECOMES INCARNATE UNDER THE NAME OF KṚISHṆ, BEING BORN AS THE SON OF DEVAKÍ, THE SISTER OF KANS, WHO HAD BEEN GIVEN IN MARRIAGE TO VASADEV, THE SON OF SÚRSEN, A PRINCE OF THE FAMILY OF YADU.

अथ कथा आरंभ। महाभारत के अंत में जब श्री कृष्ण अंतरधान हुए, तब पांडव तो महादुखी हो, हस्तिनापुर का राज परीछित को दे, हिमालय गलने गये; और राजा परीछित सब देश जीत, धर्म राज करने लगे. कितने एक दिन पीछे एक दिन राजा परीछित आखेट को गये, तो वहां देखा कि एक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिनके पीछे मूसल हाथ लिये एक शूद्र मारता आता है; जब वे पास पहुंचे तब राजा ने शूद्र को बुलाय दुख पाय झुंझलाय कर कहा, अरे तू कौन है? अपना बखान कर जो मारता है गाय औ बैल को जान कर, क्या अर्जुन को तैं ने दूर गया जाना, तिससे उसका धर्म नहीं पहिचाना? सुन, पंडु के कुल में ऐसे किसी को न पावेगा, कि जिसके सोंहीं कोई दीन को सतावेगा. इतना कह राजा ने खड़्ग हाथ में लिया; वह देख डरकर खड़ा हुआ, फिर नरपति ने गाय और बैल को भी निकट बुलाके पूछा, कि तुम कौन हो? मुझे बुझाकर कहो, देवता हो कै ब्राह्मण? और किस लिये भागे जाते हो, यह निधड़क कहो, मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हें दुख दे।

इतनी बात सुनी, तब तो बैल सिर झुका बोला, महाराज! यह पाप रूप काले बरण डरावनी मूरत जो आप के सन्मुख खड़ा है सो कलियुग है, इसी के आने से मैं भागा जाता हूं; यह गाय स्वरूप

पिरथी है, सो भी इसी के डर से भाग चली है; मेरा नाम है धर्म, चार पांव रखता हूं, तप, सत, दया और सोच; सतयुग में मेरे चरण बीस बिस्वे थे, त्रेता में सोलह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार बिस्वे रहे, इस लिये कलि के बीच मैं चल नहीं सकता. धरणी बोली धर्मावतार! मुझ से भी इस युग में रहा नहीं जाता, क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे पर करेंगे, तिनका बोझ मैं न सह सकूंगी, इस भय से मैं भी भागती हूं. यह सुनतेही राजा ने क्रोधकर कलियुग से कहा, मैं तुझे अभी मारता हूं. वह घबरा राजा के चरणों पै गिर गिड़गिड़ाकर कहने लगा, पृथीनाथ! अब तो मैं तुम्हारी सरण आया मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये, क्योंकि तीन काल और चारों युग जो ब्रह्मा ने बनाये हैं सो किसी भांति मेटे ने मिटेंगे. इतना वचन सुनते ही राजा परीचित ने कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो, जूए झूठ मद की हाट, बेश्या के घर, हत्या, चोरी और सोने में. यह सुन कलि ने तो अपने स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म को मन में रख लिया, पिरथी अपने रूप में मिलगई, राजा फिर नगर में आये और धर्म राज करने लगे।

कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समैं आखेट को गये और खेलते खेलते प्यासे भये, सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था विसने, अपना औसर पा, राजा को अज्ञान किया; राजा प्यास के मारे कहां आते हैं कि जहां लोमस ऋषि आसन मारे नैन मूंदे, हरि का ध्यान लगाये, तप कर रहे थे. विन्हें देख परीचित मन में कहने लगा, कि यह अपने तप के घमंड से मुझे देख आंख मूंद रहा है. ऐसी कुमति ठानि एक मरा सांप वहां पड़ा था सो धनुष से उठा ऋषि के गले में डाल अपने घर आया, मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा, कि कंचन में कलियुग का वास है, यह मेरे शीश पर था, इसी से मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ले ऋषि के गले में डाल दिया, सो मैं अब समझा कि कलियुग ने मुझ से अपना पलटा लिया, इस महा पाप से मैं कैसे छूटूंगा. बरन धन जन स्त्री और राज मेरा क्यों न गया सब आज? न जानूं किस जन्म में यह अधर्म जायगा जो मैं ने ब्राह्मण को सताया है।

राजा परीचित तो यहां इस अथाह सोच सागर में डूब रहे थे, और जहां लोमस ऋषि थे तहां कितने एक लड़के खेलते हुए जा निकले, मरा सांप उनके गले में देख अचंभे रहे, और घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाई, कोई इन के पुत्र से जाके कह दे जो उपबन में कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है, एक सुनते ही दौड़ा वहीं गया जहां शृंगी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था; कहा-बंधु तुम यहां क्या खेलते हो! कोई दुष्ट मरा हुआ काला नाग तुम्हारे पिता के कंठ में डाल गया है. सुनतेही शृंगी ऋषि के नैन लाल हो आये, दांत पीस पीस लगा थर थर कांपने, और क्रोध कर कहने, कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अंधे हो भये हैं दुख दानी, अब मैं उस को दूहूं श्राप, वही मीच पावेगा आप, ऐसे कह शृंगी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले, राजा परीचित को श्राप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुझे डसेगा।

इस भांति राजा को श्राप, अपने बाप के पास आ गले से सांप निकाल कहने लगा, हे पिता! तुम अपनी देह संभालो, मैं ने उसे श्राप दिया है जिसने आप के गले में मरा सर्प डाला था. यह बचन सुनतेही लोमस ऋषि ने चैतन्य हो नैन उघाड़ अपने ज्ञान ध्यान से बिचार कर कहा, अरे पुत्र! तूने यह क्या किया, क्यों श्राप राजा को दिया? जिसके राज में थे हम सुखी, कोई पशु पंछी भी न था दुखी, ऐसा धर्म राज था कि जिसमें सिंह गाय एक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते; अरे पुत्र! जिनके देश में हम बसे क्या हुआ तिनके हंसे? मरा हुआ सांप डाला था उसे श्राप क्यों दिया? तनक दोष पर ऐसा श्राप, तैं ने किया बड़ा ही पाप, कुछ बिचार मन में नहीं किया, गुण छोड़ा औगुण ही लिया! साध को चाहिये शील सुभाव से रहे, आप कुछ न कहे, और की सुन ले, सब का गुण ले ले, औगुण तज दे।

इतना कह लोमस ऋषि ने एक चेले को बुलाके कहा तुम राजा परीक्षित को जाके जता दो जो तुम्हें शृंगी ऋषि ने श्राप दिया है; भला लोग तो दोष देहींगे, पर वह सुन सावधान तो हो. इतना बचन गुरु का मान चेला चला चला वहां आया जहां राजा बैठा सोच करता था. आते ही कहा महाराज! तुम्हें शृंगी ऋषि ने यह श्राप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा, अब तुम अपना कारज करो जिससे कर्म की फांसी से छूटो. सुनते ही राजा प्रसन्नता से खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा, कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो श्राप दिया, क्योंकि मैं माया मोह के अपार सोच सागर में पड़ा था, सो निकाल बाहर किया. जब मुनि का शिष बिदा हुआ, तब राजा ने आप तो बैराग लिया और जनमेजय को बुलाय राज पाट देकर कहा, बेटा, गौ ब्राह्मण की रक्षा कीजो और प्रजा को सुख दीजो. इतनी कह आये रणवास, देखी नारी सबी उदास; राजा को देखते ही रानियां पांओं पर गिर रो रो कहने लगीं, महाराज! तुम्हारा बियोग हम अबला न सह सकेंगी, इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला. राजा बोले सुनो, स्त्री को उचित है जिसमें अपने पति का धर्म रहे सो करे, उत्तम काज में बाधा न लगे।

इतना कह धन जन कुटुंब और राज की माया तज निरमोही हो अपना योग साधने को गंगा के तीर पर जा बैठा, इसको जिसने सुना वह हाय हाय कर पछताय पछताय बिन रोये न रहा. और यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगी ऋषि के श्राप से मरने को गंगा तीर पर आ बैठा है, तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, बिश्वामित्र, वामदेव, यमदग्नि आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि आये और आसन बिछाय पांत पांत बैठ गये, अपने अपने शास्त्र विचार विचार अनेक अनेक भांति के धर्म राजा को सुनाने लगे; कि इतने में राजा की श्रद्धा देख पोथी कांख में लिये दिगंबर भेष, श्री शुकदेव जी भी आन पहुंचे; उनको देखतेही जितने मुनि थे सब उठ खड़े हुए; और राजा परीक्षित भी हाथ बांध खड़ा हो बिनती कर कहने लगा कृपा निधान! मुझ पर बड़ी दया की जो इस समै आपने मेरी सुध ली. इतनी बात कही तद शुकदेव मुनि भी बैठे तो राजा ऋषियों से कहने लगे कि महाराजो! शुकदेव जी व्यास जी के तो बेटे, और पराशर जी के पोते, तिनको देख तुम बड़े बड़े मुनीश होके उठे, सो तो उचित नहीं इसका कारण कहो

जो मेरे मन का संदेह जाय. तब पराशर मुनि बोले राजा! जितने हम बड़े बड़े ऋषि हैं, पर ज्ञान में शुक से छोटे ही हैं, इस लिये सब ने शुक का आदर मान किया, किसी ने इस आस पर, कि ये तारण तरण है; क्योंकि जब से जन्म लिया है तबही से उदासी हो बनवास करते हैं; औ राजा तेरा भी कोई बड़ा पुन्य उदै ङआ जो शुकदेव जी आये, ये सब धर्मों से उत्तम धर्म कहेंगे जिस्से तू जन्म मरण से छूट भवसागर पार होगा. यह बचन सुन राजा परीचित ने श्री शुकदेव जी को दंडवत कर पूछा, महाराज! मुझे धर्म समझायके कहो, किस रीति से कर्म के फंदे से छूटूंगा, सात दिन में क्या करूंगा, अधर्म है अपार, कैसे भवसागर ङ्गंगा पार।

श्री शुकदेव जी बोले राजा, तू थोड़े दिन मत समझ, मुक्ति तो होती है एकही घड़ी के ध्यान में; जैसे षट्टांगुल राजा को नारद मुनि ने ज्ञान बताया था, और उसने दोही घड़ी में मुक्ति पाई थी; तुम्हें तो सात दिन बङत हैं, जो एक चित हो करो ध्यान, तो सब समझोगे अपने ही ज्ञान से, कि क्या है देह, किसका है बास, कौन करता है इसमें प्रकाश. यह सुन राजा ने हरष के पूछा महाराज! सब धर्मों से उत्तम धर्म कौन सा है, सो कृपा कर कहो. तब शुकदेव जी बोले, राजा! जैसे सब धर्मों में बैष्णब धर्म बड़ा है, तैसे पुरानों में श्री भागवत, जहां हरिभक्त यह कथा सुनावें हैं तहां हीं सब तीर्थ औ धर्म आवें हैं; जितने हैं पुरान, पर नहीं है कोई भागवत के समान, इस कारण मैं तुझे बारह स्कंध महा पुरान सुनाता ङ्गं, जो व्यास मुनि ने मुझे पढ़ाया है, तू श्रद्धा समेत आनंद से चित दे सुन. तब तो राजा परीचित सप्रेम सुनने लगे, और शुकदेव जी नेम से सुनाने।

नौ स्कंध कथा जब मुनि ने सुनाई, तब राजा ने कहा दीन दयाल! अब दया कर श्री कृष्णावतार की कथा कहिये; क्योंकि हमारे सहायक औ कुल पूज वही है. शुकदेव जी बोले राजा! तुम ने मुझे बड़ा सुख दिया जो यह प्रसंग पूछा; सुनो, मैं प्रसन्न हो कहता ङ्गं. यदुकुल में पहले भजमान नाम राजा थे, तिनके पुत्र पृथिकु, पृथिकु के बिदूरथ, बिनके सूरसेन, जिन्होंने नौखंड पृथ्वी जीतके जस पाया. उन की स्त्री का नाम मरिषा, बिसके दस लड़के और पांच लड़कियां तिनमें बड़े पुत्र बसुदेव, जिनकी स्त्री के आठवें गर्भ में श्री कृष्णचंद्र जी ने जन्म लिया. जब बसुदेव जी उपजे थे, तब देवताओं ने सुरपुर में आनंद के बाजन बजाये थे; और सूरसेन की पांच पुत्रियों में सब से बड़ी कुंती थी, जो पंडु को ब्याही थी, जिसकी कथा महाभारत में गाई है; और बसुदेव जी पहले तो रोहन नरेश की बेटी रोहनी को ब्याह लाये, तिस पीछे सत्रह. जब अठारह पटरानी ङई, तब मथुरा में कंस की बहन देवकी को ब्याहा, तहां आकाश बानी भई कि इस लड़की के आठवें गर्भ में कंस का काल उपजेगा. यह सुन कंस ने बहन बहनेऊ को एक घर में मूंद दिया, और श्री कृष्ण ने वहांहीं जन्म लिया. इतनी कथा सुनते ही राजा परीचित बोले, महाराज! कैसे

जन्म कंस ने लिया, किसने विसे महा बर दिया, और कौन रीति से कृष्ण उपजे आय, फिर किस बिधि से गोकुल पहुंचे जाय, यह तुम मुझे कहो समझाय।

श्री शुकदेव जी बोले मथुरा पुरी का आहुक नाम राजा, तिनके दो बेटे, एक का नाम देवक, दूसरा उग्रसेन. कितने एक दिन पीछे उग्रसेन ही वहां का राजा हुआ, जिसकी एकही रानी, विसका नाम पवनरेखा, सो अति सुन्दरी और पतिव्रता थी, आठों पहर स्वामी की आज्ञा ही में रहे. एक दिन कपड़ों से भई, तो पति की आज्ञा ले सखी सहेली को साथ कर रथ में चढ़ वन में खेलने को गई; वहां घने घने वृक्षों में भांति भांति के फूल फूले हुए; सुगंध सनी मंद मंद ठंढी ठंढी पवन बह रही; कोकिल, कपोत, कीर, मोर मीठी मीठी मनभावन बोलियां बोल रहे; और एक ओर पर्वत के नीचे यमुना न्यारी ही लहरें ले रही थी, कि रानी इस समैं को देख रथ से उतरकर चली तो अचानक एक ओर अकेली भूलके जा निकली; वहां द्रुमलिक नाम राक्षस भी संयोग से आ पहुंचा, वह इसके जोवन औ रूप की छबि को देख छक रहा, और मन में कहने लगा कि इस्से भोग किया चाहिये. यह ठान तुरत राजा उग्रसेन का स्वरूप बन, रानी के सोंहीं जा बोला, तू मुझ से मिल. रानी बोली, महाराज! दिन को काम केलि करनी जोग नहीं, क्योंकि इसमें सील और धर्म जाता है, क्या तुम नहीं जानते जो ऐसी कुमति बिचारी है।

जद पवनरेखा ने इस भांति कहा, तद तो द्रुमलिक ने रानी को हाथ पकड़ खेंच लिया और जो मन माना सो किया, इस छल से भोग करके जैसा था तैसा ही बन गया; तब तो रानी अति दुख पाय पछतायकर बोली, अरे अधर्मी, पापी चंडाल! तू ने यह क्या अंधेर किया जो मेरा सत खो दिया; धिक्कार है तेरे माता पिता औ गुरु को, जिसने तुझे ऐसी बुद्धि दी, तुझ सा पूत जन्ने से तेरी मा बांझ क्यों न हुई? अरे दुष्ट! जो नर देह पाकर किसी का सत भंग करते हैं, सो जन्म जन्म नरक में पड़ते हैं. द्रुमलिक बोला रानी! तू श्राप मत दे मुझे, मैं ने अपने धर्म का फल दिया है तुझे; तेरी कोख बंध देख मेरे मन में बड़ी चिंता थी सो गई; आज से हुई गर्भ की आस लड़का होगा दसवें मास; और मेरी देह के सुभाव से तेरा पुत्र नौ खंड पृथ्वी को जीत करेगा, औ कृष्ण से लड़ेगा; मेरा नाम प्रथम कालनेम था, तब बिष्णुसे युद्ध किया था; अब जन्म ले आया तो द्रुमलिक नाम कहाया, तुझ को पुत्र दे चला, तू अपने मन में किसी बात की चिंता मत करे. इतनी बात कह जब कालनेम चला गया, तब रानी को भी कुछ सोच समझ कर धीरज भया।

जैसी हो होतव्यता, तैसी उपजे बुद्धि;
होनहार हिरदे बसे, बिसर जाय सब सुद्धि.

इतने में सब सखी सहेली आन मिलीं, रानी का सिंगार बिगड़ा देख एक सहेली बोल उठी

इतनी बेर तुम्हें कहां लगी और यह क्या गति ऊई? पवनरेखा ने कहा, सुनो सहेली! तुम ने इस बन में तजी अकेली; एक बंदर आया तिसने मुझे अधिक सताया, तिसके डर से मैं अबतक थरथर कांपती हूं. यह बात सुनकर तो सबकी सब घबराई, औ रानी को झट रथ पर चढ़ा घर लाई. जब दस महीने पूजे, तब पूरे दिनों लड़का ऊआ; तिस समैं एक बड़ी आंधी चली कि जिसके मारे लगी धरती डोलने; अंधेरा ऐसा ऊआ जो दिन की रात हो गई, और लगे तारे टूट टूट गिरने, बादल गरजने, औ बिजली कड़कने।

ऐसे माघ सुदी तेरस बृहस्पति बार को कंस ने जन्म लिया, तब राजा उग्रसेन ने प्रसन्न हो सारे नगर की मंगलामुखियों को बुलाय मंगलाचार करवाये, और सब ब्राह्मण, पंडित, जोतषियों को भी अति मान सन्मान से बुलवा भेजा; वे आये, राजा ने बड़ी आवभक्ति से आसन दे दे बैठाये; तब जोतिषियों ने लग्न साध मुहूर्त्त विचारकर कहा, पृथीनाथ! यह लड़का कंस नाम तुम्हारे बंस में उपजा, सो अति बलवंत हो राक्षसों को ले राज करेगा, और देवता और हरि भक्तों को दुख दे आप का राज ले निदान हरि के हाथ मरेगा।

इतनी कथा कह शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा, राजा! अब मैं उग्रसेन के भाई देवक की कथा कहता हूं, कि उसके चार बेटे थे और छः बेटियां, सो छओं बसुदेव को ब्याह दीं; सातवीं देवकी ऊई, जिसके होने से देवताओं को प्रसन्नता भई, और उग्रसेन के भी दस पुत्र, पर सब से कंस ही बड़ा था; जब से जन्मा, तब से यह उपाध करने लगा कि नगर में जाय छोटे लड़कों को पकड़ पकड़ लावे, औ पहाड़ की खोह में मूंद मूंद मार मार डाले; जो बड़े होंय तिनकी छाती पै चढ़ गला घोंट जी निकाले; इस दुख से कोई कहीं न निकलने पावे, सब कोई अपने अपने लड़के को छिपावे; प्रजा कहे-दुष्ट यह कंस, उग्रसेन का नहीं है बंस; कोई महा पापी जन्म ले आया है जिसने सारे नगर को सताया है. यह बात सुन उग्रसेन ने तिसे बुलाकर बऊत सा समझाया, पर इसका कहना तिस के जी में कुछ भी न आया; तब दुख पाय पछताय के कहने लगा कि ऐसे पूत होने से मैं अपूत क्यों न ऊआ।

कहते हैं, जिस समैं घर में कपूत आता है, तिसी समैं जस और धर्म जाता है. जब कंस आठ बर्ष का भया तब मगध देश पर चढ़ गया. वहां का राजा जरासिंधु बड़ा जोधा था, तिस्से मिल इसने मल्लयुद्ध किया तो उन्ने कंस का बल लख लिया, तब हार मान अपनी दो बेटियां ब्याह दीं; यह ले मथुरा में आया और उग्रसेन से बैर बढ़ाया. एक दिन कोपकर अपने पिता से बोला कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो औ महादेव का जप करो. तिसने कहा मेरे तो करता दुख हरता वेई हैं जो तिनको ही न भजूंगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूंगा. यह सुन कंस ने खुनसा बाप को पकड़कर सारा राज ले लिया, और नगर में यों डोंडी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, धर्म, तप औ राम का नाम करने न पावे. ऐसा अधर्म बढ़ा कि गौ, ब्राह्मण, हरि के भक्त, दुख पाने लगे,

और धरणी अति बोझों मरने. जब कंस सब राजाओं का राज ले चुका, तब एक दिन अपना दल ले राजा इंद्र पर चढ़ चला, तहां मंत्री ने कहा महाराज! इंद्रासन बिन तप किये नहीं मिलता, आप बल का गर्ब न करियें, देखो गर्ब ने रावन कुंभकरण को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा।

इतनी कथा कह शुकदेव जी राजा परीचित से कहने लगे, कि राजा! जद पृथ्वी पर अति अधर्म होने लगा, तद दुखपाय घबराय गाय का रूप बन रांभती देव लोक में गई, और इंद्र की सभा में जा सिर झुकाय, उसने अपनी सब पीर कही, कि महाराज! संसार में असुर अति पाप करने लगे, तिनके डर से धर्म तो उठ गया, औ मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातल को जाऊं. इंद्र सुन सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये; ब्रह्मा सुन सब को महादेव के निकट ले गये; महादेव भी सुन सब को साथ ले वहां गये जहां चीर समुद्र में नारायण सो रहे थे. विनको सोता जान, ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र सब देवताओं को साथ ले खड़े हो, हाथ जोड़, विनती कर, देवस्तुति करने लगे; महाराजाधिराज! आप की महिमा कौन कह सके, मछ रूप हो वेद डूबते निकाले; कछ स्वरूप बन पीठ पर गिरि धारण किया; बराह बन भूमि को दांत पै रख लिया; बावन हो राजा बलि को छला; परसराम औतार ले चत्रियों को मार पृथ्वी कश्यप मुनि को दी; रामावतार लिया तब महादुष्ट रावन को बध किया; और जब जब दैत्य तुम्हारे भक्तों को दुख देते हैं; तब तब आप विनकी रचा करते हैं; नाथ! अब कंस के सताने से पृथ्वी अति व्याकुल हो पुकार करती है, विसकी बेग सुध लीजे, असुरों को मार साधों को सुख दीजे।

ऐसे गुण गाय देवताओं ने कहा, तब आकाश बानी ऊई, सो ब्रह्मा देवताओं को समझाने लगे, यह जो बानी भई सो तुम्हें आज्ञा दी हैं कि तुम सब देवी देवता ब्रजमंडल जाय मथुरा नगरी में जन्म लो, पीछे चार स्वरूप धर हरि भी औतार लेंगे बसुदेव के घर देवकी की कोख में, और बाल लीला कर नंद जसोदा को सुख देंगे; इस रीति से ब्रह्मा ने जब बुझाके कहा, तब तो सुर, मुनि, किन्नर, और गंधर्व सब अपनी अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले ले ब्रज मंडल में आये, यदुवंशी औ गोप कहाये; और जो चारों वेद की ऋचायें थीं, सो ब्रह्मा से कहने गईं कि हम भी गोपी हो ब्रज में औतार ले बासुदव की सेवा करें. इतनी कह वे भी ब्रज में आईं, औ गोपी कहलाई. जब देवता मथुरा पुरी में आ चुके, तब चीरसमुद्र में हरि बिचार करने लगे, कि पहले तो लच्मण होंय बलराम, पीछे बासुदेव हो मेरा नाम; भरत, प्रद्युम्न; सत्रुघ्न, अनिरुद्ध; और सीता रुक्मिनी का औतार लें. इति।

CHAPTER II.

THE MARRIAGE OF DEVAKÍ, SISTER OF KANS, TO VASADEV, SON OF SÚRSEN. AT THE MARRIAGE PROCESSION A VOICE FROM HEAVEN ANNOUNCES THE DESTRUCTION OF KANS BY THE EIGHTH SON OF THE BRIDE. HEREUPON KANS IS ABOUT TO SLAY HIS SISTER, BUT FOREGOES HIS PURPOSE ON VASADEV'S PROMISING TO GIVE INTO HIS HANDS EVERY SON THAT IS BORN TO HIM. IN THIS MANNER KANS DESTROYS SIX OF DEVAKÍ'S SONS, WHEN THE THOUSAND-HEADED SERPENT, SUPPORTER OF VISHNU BECOMES INCARNATE IN THE SEVENTH CHILD.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, हे महाराज! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज करने लगा, औ उग्रसेन दुख भरने. देवक जो कंस का चाचा था, तिसकी कन्या देवकी जब व्याहन जोग ऊई, तब तिन्ने जा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें; वह बोला, सूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये. इतनी बात सुनतेही देवकने एक ब्राह्मण को बुलाय, शुभ लग्न ठहराय, सूरसेन के घर टीका भेज दिया; तब तो सूरसेन भी बड़ी धूमधाम से बरात बनाय, सब देश देश के नरेश साथ ले मथुरा में बसुदेव को व्याहन आये।

बरात नगर के निकट आई सुन उग्रसेन देवक और कंस अपना दल साथ ले, आगे बढ़, नगर में लेगये; अति आदर मान से अगौनी कर जनवासा दिया, खिलाय पिलाय सब बरातियों को मढे के नीचे लेजा बैठाया, और बेद की बिध से कंस ने बसुदेव को कन्या दान दिया. तिसके यौतुक में पंद्रह सहस्र घोड़े, चार सहस्र हाथी, अठारह सै रथ, दास दासी अनेक दे, कंचन के थाल वस्त्र आभूषण रतन जटित से भर भर अनगिनत दिये, और सब बरातियों को भी अलंकार समेत बागे पहराय, सब मिल पऊंचावन चले. तहां आकाश बानी ऊई कि अरे कंस! जिसे तू पऊंचावने चला है, तिसका आठवां लड़का तेरा काल उपजेगा, तिसके हाथ तेरी मीच है।

यह सुनते ही कंस डरकर कांप उठा, औ क्रोध कर देवकी को झोंटे पकड़ रथ से नीचे खेंच लाया; खड़ग हाथ में ले दांत पीस पीस लगा कहने, जिस पेड़ को जड़ ही से उखाड़िये, तिसमें फूल फल काहे को लगेगा, अब इसी को मारूं तो निर्भय राज करूं. यह देख सुन बसुदेव मन में कहने लगे, इस मूरख ने दिया संताप, जानता नहीं है पुन्य औ पाप, जो मैं अब क्रोध करता हूं तो काज बिगड़ेगा, तिस्से इस समैं क्षमा करनी योग है. कहा है।

जो बैरी खेंचे तरवार, करे साध तिसकी मनुहार.
समझ मूढ़ सोई पछताय, जैसे पानी आग बुझाय.

यह सोच समझ बसुदेव कंस के सोहीं जा हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगे, कि सुनो पृथीनाथ! तुम सा बली संसार में कोई नहीं, और सब तुम्हारी छांह तले बसते हैं: ऐसे सूर हो स्त्री पर शस्त्र करो, यह अति अनुचित है, औ बहन के मारने से महा पाप होता है, तिस पर भी मनुष अधर्म तो करे जो जाने कि मैं कभी न मरूंगा. इस संसार की तो यही रीति है, इधर जन्मा

उधर मरा; करोड़ जतन से पाप पुन्य कर कोई इस देह को पोखे, पर यह कभी अपनी न होयगी; और धन, योवन, राज भी न आवेगा काज; इस्से मेरा कहा मान लीजे, औ अपनी अबला अधीन बहन को छोड़ दीजे· इतना सुन वह अपना काल जान घबराकर और भी झुंझलाया, तब वसुदेव सोचने लगे, कि यह पापी तो असुर बुद्धि लिये अपने हठ की टेक पर है, जिसमें इसके हाथ से यह बचे सो उपाय किया चाहिये· ऐसे विचार मन में कहने लगे, अब तो इस्से यों कह देवकी को बचाऊं कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हें दूंगा; पीछे किसने देखी है, लड़काई न होय, कै यही दुष्ट मरे, यह औसर तो टले, फेर समझी जायगी· इस भांति मन में ठान, वसुदेव ने कंस से कहा-महाराज! तुम्हारी मृत्यु इस के पुत्र के हाथ न होयगी, क्योंकि मैं ने एक बात ठहराई है कि देवकी के जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूंगा, यह बचन मैं ने तुम को दिया· ऐसी बात जब वसुदेव ने कही, तब समझ के कंस ने मान ली, औ देवकी को छोड़ कहने लगा, हे वसुदेव! तुम ने अच्छा विचार किया जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया· इतना कह विदा दी, वे अपने घर गये।

कितने एक दिन मथुरा में रहते भये जब पहला पुत्र देवकी के हुआ, तब वसुदेव ले कंस पै गये और रोता हुआ लड़का आगे धर दिया; देखते ही कंस ने कहा वसुदेव! तुम बड़े सत वादी हो, मैं ने सो आज जाना, क्योंकि तुम ने मुझ से कपट न किया, निरमोही हो अपना पुत्र ला दिया; इस्से डर नहीं है कुछ मुझे, यह बालक मैं ने दिया तुझे· इतना सुन बालक ले दंडवत कर वसुदेव जी तो अपने घर आये, और विसी समैं नारद मुनि जी ने जाय कंस से कहा राजा! तुम ने यह क्या किया जो बालक उलटा फेर दिया! क्या तुम नहीं जानते कि बासुदेव की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है और देवकी के आठवें गर्भ में श्री कृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे, इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीर खेंच गिनवाई; जब आठही आठ गिनती में आई, तब डरकर कंस ने लड़के समेत वसुदेव जी को बुला भेजा· नारद मुनि तो यों समझाय बुझाय चले गये, और कंस ने वसुदेव से बालक ले मार डाला· ऐसे जब पुत्र होय तब वसुदेव ले आवे, औ कंस मार डाले· इसी रीति से छः बालक मारे, तब सातवें गर्भ में शेष रूप जो श्री भगवान, तिन्होंने आ बास लिया· यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा, महाराज! नारद मुनि जी ने जो अधिक पाप करवाया, तिसका ब्योरा समझाकर कहो, जिस्से मेरे मन का संदेह जाय· श्री शुकदेव जी बोले राजा! नारद जी ने तो अच्छा विचारा कि यह अधिक अधिक पाप करे तो श्री भगवान तुरंतही प्रगट होवे· इति।

CHAPTER III.

KANS COMMENCES A CRUEL SLAUGHTER OF THE FAMILY OF YADU. VISHNU CREATES AN ILLUSIVE FORM, WHO TRANSPORTS THE SEVENTH CHILD OF DEVAKÍ FROM HER WOMB TO THAT OF ROHANÍ, THE FIRST OF VASADEV'S EIGHTEEN WIVES, WHO GIVES BIRTH IN THIS MANNER TO BALADEVA. DEVAKÍ IS AGAIN PREGNANT WITH KRISHN, AND KANS PLACES A GUARD OF ELEPHANTS, LIONS, DOGS, AND WARRIORS AROUND HER, IN ORDER THAT, AS SOON AS THE CHILD IS BORN, HE MAY DESTROY IT.

फेर शुकदेव जी राजा परीचित से कहने लगे कि राजा! जैसे गर्भ में आये हरी, और ब्रह्मादिक ने गर्भ स्तुति करी, औ देवी जिस भांति बलदेव जी को गोकुल लेगई, तिसी रीति से कथा कहता हूं. एक दिन राजा कंस अपनी सभा में आय बैठा, और जितने दैत्य उसके थे विनको बुलाकर कहा, सुनो-सब देवता पृथी में जन्म ले आये हैं, तिन्हों में कृष्ण भी औतार लेगा; यह भेद मुझ से नारद मुनि समझायके कह गये हैं, इस्से अब उचित यही है कि तुम जाकर सब यदुबंसियों का ऐसा नास करो जो एक भी जीता न बचे।

यह आज्ञा पा सबके सब दंडवत कर चले. नगर में आ ढूंढ़ ढूंढ़ पकड़ पकड़ लगे बांधने. खाते, पीते, खड़े, बैठे, सोते, जागते, चलते, फिरते, जिसे पाया तिसे न छोड़ा, घेरके एक ठौर लाये, और जला जला, डबो डबो, पटक पटक, दुख दे दे, सब को मार डाला. इसी रीति से छोटे बड़े भयावने भांति भांति के भेष बनाये नगर नगर गांव गांव गली गली घर घर खोज खोज लगे मारने, और यदुवंसी दुख पाय पाय देस छोड़ छोड़ जी ले ले भागने।

विसी समैं बसुदेव की जो और स्त्रियां थीं, सो भी रोहनी समेत मथुरा से गोकुल में आईं, जहां बसुदेव जी के परम मित्र नंद जी रहते थे; विन्होंने अति हित से आसा भरोसा दे रक्खा; वे आनंद से रहने लगीं. जब कंस देवताओं को यों सताने, औ अति पाप करने लगा, तब विष्णु ने अपनी आंखों से एक माया उपजाई, सो हाथ बांध सन्मुख आई. विस्से कहा, तू अभी संसार में जा औतार ले मथुरा पुरी के बीच, जहां दुष्ट कंस मेरे भक्तों को दुख देता है, और कश्यप अदिति जो बसुदेव देवकी हो ब्रज में गये हैं, तिनको मूंद रक्खा है. छः बालक तो विनके कंस ने मार डाले, अब सातवें गर्भ में लक्ष्मण जी हैं, उनको देवकी की कोख से निकाल, गोकुल में ले जाकर, इस रीति से रोहनी के पेट में रख दीजो कि कोई दुष्ट न जाने, और सब वहां के लोग तेरा जस बखाने।

इस भांति माया को समझा, श्री नारायण बोले, कि तू तो पहले जाकर यह काज करके नंद के घर में जन्म ले, पीछे बसुदेव के यहां औतार ले, मैं भी नंद के घर आता हूं. इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई और मोहनी का रूप बन बसुदेव के गेह में बठ गई।

जो छिपाय गर्भ हर लिया, जाय रोहनी को सो दिया.
जाने सब पहला आधान, भये रोहनी के भगवान.

इस रीति से सावन सुदी चौदस बुधवार को बलदेव जी ने गोकुल में जन्म लिया, और

माया ने बसुदेव देवकी को जा सपना दिया,कि मैं ने तुम्हारा पुत्र गर्भ से लेजाय रोहनी को दिया है, सो किसी बात की चिंता मत कीजो. सुनते ही बसुदेव देवकी जाग पड़े, और आपस में कहने लगे, कि यह तो भगवान ने भला किया, पर कंस को इसी समैं जताया चाहिये, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुख दे. यों सोच समझ रखवालों से बुझाकर कहा, विन्होंने कंस को जा सुनाया कि महाराज! देवकी का गर्भ अधूरा गया, बालक कुछी न पुरा भया. सुनतेही कंस घबराकर बोला कि तुम अब की बेर चौकसी करियो; क्योंकि मुझे आठवेंई गर्भ का डर है जो आकाश बानी कहगई है।

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! बलदेव जी तो यों प्रगटे, और जब श्री कृष्ण देवकी के गर्भ में आये, तभी माया ने जा नंद की नारी जसोदा के पेट में बास लिया; दोनों आधान से थीं कि एक पर्व में देवकी यमुना न्हाने गई, वहां संयोग से जसोदा भी आन मिली तो आपस में दुख की चरचा चली; निदान जसोदा ने देवकी को बचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रक्खूंगी, अपना तुझे दूंगी. ऐसे वचन दे, यह अपने घर आई, औ वह अपने; आगे जद कंस ने जाना कि देवकी का आटवां गर्भ रहा, तद जा वसुदेव का घर घेरा; चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी, और वसुदेव को बुलाकर कहा कि अब तुम मुझ से कपट मत कीजो, अपना लड़का ला दीजो. तब मैं ने तुम्हारा ही कहना मान लिया था।

ऐसे कह, वसुदेव दवकी को बेड़ी औ हथकड़ी पहिराय, एक कोठे में मूंदकर, ताले पर ताले दे, निज मंदिर में आ, मारे डरके उपास कर सो रहा, फिर भोर होते ही वहीं गया जहां बसुदेव देवकी थे, गर्भ का प्रकाश देख कहने जगा, कि इसी यम गुफा में मेरा काल है. मार तो डालूं, पर अपजस से डरता हूं, क्योंकि अति बलवान हो स्त्री को हनना योग नहीं, भला इसके पुत्र ही को मारूंगा. यों कह, बाहर आ, गज, सिंह, स्वान, औ अपने बड़े बड़े जोधा वहां चौकी को रक्खे, और आप भी नित चौकसी कर आवें, पर एक पल भी कल न पावें; जहां देखे तहां आठ पहर चौंसठ घड़ी कृष्ण रूप काल ही दृष्टि आवें; तिसके भय से भावित हो रात दिन चिंता में गंवावे।

इधर कंस की तो यह दसा थी, उधर वसुदेव औ देवकी पूरे दिनों महा कष्ट में श्री कृष्ण ही को मनाते थे, कि इस बीच भगवान ने आ विन्हें स्वप्न दिया, और इतना कह विनके मन का सोच दूर किया, जो हम बेग ही जन्म ले तुम्हारी चिंता मेटते हैं, तुम अब मत पछिताओ. यह सुन वसुदेव देवकी जाग पड़े, तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादि सब देवता अपने बिमान अधर में छोड़, अलख रूप बन, बसुदेव के गेह में आये, औ हाथ जोड़ जोड़ बेद गाय गाय गर्भस्तुति करने लगे. तिस समैं विनको तो किसी ने न देखा, पर वेद की धुनि सब ने सुनी. यह अचरज देख सब रखवाले अचंभे रहे, और वसुदेव देवकी को निहचै हुआ कि भगवान बेगही हमारी पीर हरेंगे. इति।

CHAPTER IV.

THE BIRTH OF KRISHN AT MIDNIGHT, ON WEDNESDAY, THE EIGHTH OF THE DARK HALF OF THE MONTH BHÁDON. ALL NATURE REJOICES. VASADEV TRANSPORTS THE INFANT KRISHN ACROSS THE YAMUNÁ TO GOKUL TO THE HOUSE OF HIS FRIEND NAND, IN THE WOMB OF WHOSE WIFE JASODÁ, THE ILLUSIVE FORM HAS BECOME INCARNATE AS A DAUGHTER. THIS DAUGHTER VASADEV CARRIES HOME INTENDING TO GIVE IT TO KANS AS THE CHILD OF DEVAKÍ.

श्री शुकदेव जी बोले, राजा! जिस समैं श्री कृष्णचंद जन्म लेने लगे, तिस काल सबही के जी में ऐसा आनंद उपजा कि दुख नाम को भी न रहा, हरष से लगे बन उपबन हरे हो हो फूलने फलने; नदी नाले सरोवर भरने; तिन पर भांति भांति के पंछी कलोलें करने; और नगर नगर गांव गांव घर घर मंगलाचार होने; ब्राह्मण यज्ञ रचने; दसोंदिसा के दिगपाल हरषने; बादल ब्रजमंडल पर फिरने; देवता अपने अपने बिमानों में बैठे आकाश से फूल बरसावने; बिद्याधर, गंधर्व, चारण, ढोल, दमामे, भेर बजाय गुण गाने. और एक ओर उर्वसी आदि सब अपसरा नाच रही थीं, कि ऐसे समैं भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहनी नक्षत्र में आधी रात श्री कृष्ण ने जन्म लिया, और मेघवरण, चंदमुख, कंवलनैन हो पीतांबर काछे, मुकुट धरे, बैजंती माल औ रतन जटित आभूषण पहरे, चतुर्भुज रूप किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये, बसुदेव देवकी को दरशन दिया; देखतेही अचंभे हो बिन दोनों ने ज्ञान से बिचारा तो आदि पुरुष को जाना, तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा-हमारे बड़े भाग जो आपने दरशन दिया और जन्म मरन का निवेड़ा किया।

इतना कह पहली कथा सब सुनाई, जैसे जैसे कंस ने दुख दिया था; तहां श्री कृष्णचंद बोले तुम अब किसी बात की चिंता मन में मत करो, क्योंकि मैं ने तुम्हारे दुख के दूर करने ही को औतार लिया है; पर इस समैं मुझे गोकुल पहुंचा दो और इसी बिरियां जसोदा के लड़की हुई है सो कंस को ला दो, अपने जाने का कारण कहता हूं सो सुनो।

नंद जसोदा तप कर्यो, मोही सों मन लाय,
देख्यौ चाहत बाल सुख, रहौं कछू दिन जाय.

फिर कंस को मार आन मिलूंगा, तुम अपने मन में धीर धरो. ऐसे बसुदेव देवकी को समझाय, श्री कृष्ण बालक बन रोने लगे, और अपनी माया फैला दी, तब तो बसुदेव देवकी का ज्ञान गया औ जाना कि हमारे पुत्र भया; यह समझ दस सहस्र गाय मन में संकल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया; उसका मुंह देख देख दोनों लंबी सांसें भर भर आपस में लगे कहने, जो किसी रीत से इस लड़के को भगा दीजे तो कंस पापी के हाथ से बचे. बसुदेव बोले।

विधना बिन राखे नहीं कोई, कर्मलिखा सोई फल होई.
तब कर जोर देवकी कहै, नंद मित्र गोकुल में रहै,
पीर जसोदा हरै हमारी, नारि रोहनी तहां तिहारी.

इस बालक को वहां ले जाओ; यों सुन बसुदेव अकुलाकर कहने लगे, कि इस कठिन बंधन से छूट कैसे लेजाऊं. जों इतनी बात कही तों सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ी; चारों ओर के किवाड़ उघड़ गये; पहरुए अचेत नींद बस भयें; तब तो बसुदेव जी ने श्री कृष्ण को सूप में रख सिर पर धर लिया, और झट पट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गुंजरै,
सोचत है बसुदेव, यमुना देखि प्रबाह अति.

नदी के तीर खड़े हो बसुदेव बिचारने लगे, कि पीछे तो सिंघ बोलता है, औ आगे अथाह यमुना बह रही है, अब क्या करूं. ऐसे कह भगवान का ध्यान धर यमुना में पैठे; जों जों आगे जाते थे तों तों नदी बढ़ती थी, जब नाक तक पानी आया तब तो ये निपट घबराये. इनको व्याकुल जान, श्री कृष्ण ने अपना पांव बढ़ाय हुंकार दिया, चरण छूतेही यमुना थाह हुई, बसुदेव पार हो नंद की पौर पर जा पहुंचे, वहां किवाड़ खुले पाये. भीतर धसके देखें तो सब सोए पड़े हैं. देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि जसोदा को लड़की के होने की भी सुध न थी बसुदेव जी ने कृष्ण को तो जसोदा के ढिग सुला दिया, और कन्या को ले चट अपना पंथ लिया. नदी उतर फिर आये तहां बैठी सोचती थी देवकी जहां, कन्या दे वहां की कुशल कही सुनतेही देवकी प्रसन्न हो बोली, हे स्वामी! हमें कंस अब मार डाले तो भी कुछ चिंता नहीं, क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी राजा परीछित से कहने लगे, कि जब बसुदेव लड़की को ले आये, तब किवाड़ जों के तों भिड़ गये, औ दोनों ने हथकड़ियां बेड़ियां पहरलीं. कन्या रो उठी, रोने की धुन सुन पहरुए जागे तो अपने अपने शस्त्र ले ले सावधान हो लगे तुपक छोड़ने. तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह दहाड़ने, औ कुत्ते भोंकने. तिसी समैं अंधेरी रात के बीच बरसे में एक रखवाले ने आ हाथ जोड़ कंस से कहा, महाराज! तुम्हारा बैरी उपजा, यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा, इति।

CHAPTER V.

KANS, ON HEARING OF THE BIRTH OF ANOTHER CHILD TO DEVAKÍ, HASTENS TO THE HOUSE WHERE SHE IS CONFINED, AND IS ABOUT TO DASH THE INFANT IN PIECES, WHEN IT MIRACULOUSLY ESCAPES FROM HIS HANDS AND ASCENDS TO HEAVEN, EXCLAIMING THAT THE ENEMY OF KANS IS BORN, AND WILL PUT HIM TO DEATH. KANS RELEASES HIS BROTHER-IN-LAW AND DEVAKÍ, AND IS ENCOURAGED BY HIS MINISTER TO PERSIST IN HIS PERSECUTIONS OF THE FOLLOWERS OF NÁRÁYAN.

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता कांपता उठ खड़ा हुआ, और खड़ग हाथ में ले गिरता पड़ता, छूटे बालों, पसीने में डूबा, धुकुड़ पुकुड़ करता, जा बहन के पास पहुंचा. जब

विसके हाथ से लड़की छीन ली, तब वह हाथ जोड़ बोली, ए भैया! यह कन्या है भानजी तेरी, इसे मत मार, यह पेट पोंछन है मेरी. मारे हैं बालक, तिनका दुख मुझे अति सताता है, बिन काज कन्या को मार क्यों पाप बढ़ाता है! कंस बोला, जीती लड़की न दूंगा तुझे, जो ब्याहेगा इसे सो मारेगा मुझे. इतना कह बाहर आ ज्योंहीं चाहे कि फिराय कर पत्थर पर पटके, त्योंही हाथ से छूट कन्या आकाश को गई, और पुकारके यह कह गई, अरे कंस! मेरे पटकने से क्या हुआ, तेरा बैरी कहीं जन्म ले चुका, अब तू जीता न बचेगा।

यह सुन कंस अछता पछता वहां आया जाहां बसुदेव देवकी थे, आते ही विनके हाथ पांव की हथकड़ी बेड़ी काट दीं और बिनती कर कहने लगा कि मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे, यह कलंक कैसे छूटेगा, किस जन्म में मेरी गति होगी, तुम्हारे देवता झूठे हुए, जिन्होंने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ में लड़का होगा, सो नहो लड़की हुई, वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई, अब दयाकर मेरा दोष जी में मत रक्खो; क्योंकि कर्म का लिखा कोई मेट नहीं सकता, इस संसार में आये से जीना, मरना, संयोग, बियोग मनुष का नहीं छुटता; जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समान ही जानते हैं, और अभिमानी मित्र शत्रु कर मानते हैं; तुम तो बड़े साध सतवादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये।

ऐसे कह जब कंस बार बार हाथ जोड़ने लगा, तब बसुदेव जी बोले, महाराज! तुम सच कहते हो, इस में तुम्हारा कुछ दोष नहीं, बिधना ने यही हमारे कर्म में लिखा था. यों सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से बसुदेव देवकी को अपने घर ले आया, भोजन करवाय, बागे पहराय, बड़े आदर भाव से दोनों को फेर वहीं पहुंचाय दिया; और मंत्री को बुलाके कहा, कि देवी कह गई है, तेरा बैरी जग में जन्मा, इस्से अब देवताओं को जहां पावो तहां मारो, क्योंकि विन्होंई ने मुझ से झुठी बात कही थीं कि आठवें गर्भ में तेरा शत्रु होगा. मंत्री बोला महाराज! विनका मारना क्या बड़ी बात है, वे तो जन्म के भिखारी हैं, जद आप कोपियेगा तधी वे भाग जायंगे; विनके क्या सामर्थ है जो तुम्हारे सन्मुख हों. ब्रह्मा तो आठ पहर ज्ञान ध्यान में रहता है; महादेव भांग धतूरा खाय; इंद्र का कुछ तुम पर न बसाय; रहा नारायण सो संग्राम नहीं जाने, लक्ष्मी के साथ रहता है सुख माने।

कंस बोला, नारायण को कहां पावें औ किस बिधि जीतें सो कहो. मंत्री ने कहा, महाराज! जो नारायण को जीता चाहते हो तो जिनके घर में आठ पहर है विनका बास, तिनही का अब करो बिनास. ब्राह्मण, वैष्णव, जोगी, जती, तपसी, सन्यासी, बैरागी, आदि जितने हरि के भक्त हैं, तिनमें लड़के से ले बूढ़े तक एक भी जीता न रहे; यह सुन कंस ने प्रधान से कहा, तुम सब को जा मारो; आज्ञा पाकर मंत्री अनेक राचस साथ ले बिदा हो नगर में जा लगा गौ, ब्राह्मण, बालक, औ हरिभक्तों को छल बल कर ढूंढ ढूंढ मारने. इति।

CHAPTER VI.

REJOICINGS IN THE HOUSE OF NAND ON THE BIRTH OF KRISHN. THE COWHERDS IN ORDER TO PROPITIATE KANS, WHO IS ENGAGED IN THE SLAUGHTER OF INFANTS, PRESENT OFFERINGS TO HIM. VASADEV HAS AN INTERVIEW WITH THEM ON THE BANKS OF THE YAMUNÁ AND WARNS THEM OF THEIR DANGER FROM THE TYRANT.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, राजा, एक समैं नंद जसोदा ने पुत्र के लिये बड़ा तप किया, तहां श्री नारायण ने आप वर दिया कि हम तुम्हारे यहां जन्म ले जायंगे. जब भादों बदी अष्टमी बुधवार को आधी रात के समैं श्री कृष्ण आये, तब जसोदा ने जागते ही पुत्र का मुख देख, नंद को बुला, अति आनंद माना, औ अपना जीतब सुफल जाना. भोर होतेही उठके नंद जी ने पंडित औ जोतषियों को बुला भेजा; वे अपनी अपनी पोथीं पत्रे ले ले आये, तिन को आसन दे दे आदर मान से बैठाये. विन्होंने शास्त्र की विधि से संवत्, महीना, तिथ, दिन, नक्षत्र, जोग, करन ठहराय, लगन विचार, महूर्त्त साधके कहा, महाराज! हमारे शास्त्र के विचार में तो ऐसा आता है कि यह लड़का दूसरा बिधाता हो, सब असुरों को मार, व्रज का भार उतार, गोपीनाथ कहावेगा, सारा संसार इसी का जस गावेगा।

यह सुन नंद जी ने कंचन के सींग, रूपे के खुर, तांबे की पीठ समेत दो लाख गौ पाटंबर उढ़ाय संकल्प कीं, और अनेक दान कर ब्राह्मणों को दक्षणा दे दे असीस ले ले बिदा किया. तब नगर के सब मंगलामुखियों को बुलाया; वे आय आय अपना अपना गुण प्रकाश करने लगे, बजंत्री बजाने, नर्त्तक नाचने, गायक गाने, ढाढ़ी ढाढ़िन जस बखानने; और जितने गोकुल के गोप ग्वाल थे वे भी अपनी नारियों के सिर पर दहेंड़ियां लिवाये, भांति भांति के भेष बनाये, नाचते गाते नंद को बधाई देन आए; आतेही ऐसा दधिकादौं किया कि सारे गोकुल में दही दही कर दिया; जब दधिकादौं खेल चुके, तब नंद जी ने सब को खिलाय, पिलाय, बागे पहराय, तिलक कर, पान दे, बिदा किया।

इसी रीति से कई दिन तक बधाई रही; इस बीच नंद जी से जिस जिस ने जो जो आय आय मांगा सो सो पाया. बधाई से निचिंत हो नंद जी ने सब ग्वालों को बुलायके कहा, भाइयो! हम ने सुना है कि कंस बालक पकड़ मंगवाता है, न जानिये कोई दुष्ट कुछ बात लगा दे, इस्से उचित है कि सब मिल भेट ले चलें औ बरसौड़ी दे आवें. यह बचन मान सब अपने अपने घर से दूध, दही, माखन, औ रूपए लाए, गाड़ों में लाद लाद नंद के साथ हो गोकुल से चल मथुरा आए, कंस से भेटकर भेट दी, कौड़ी कौड़ी चुकाय बिदा हो जुहार कर अपनी बाट ली।

जोंहीं यमुना तीर पै आए. तोंहीं समाचार सुन बसुदेव जी आ पहुंचे, नंद जी से मिल कुशल क्षेम पूछ कहने लगे तुमसा सगा औ मित्र हमारा संसार में कोई नहीं, क्योंकि जब हमें भारी बिपत भई, तब गर्भवती रोहनी तुम्हारे यहां भेज दी; तिसके लड़का हुआ, सो तुमने पाल

बड़ा किया; हम तुम्हारा गुण कहां तक बखानें; इतना कह फेर पूछा, कहो राम कृष्ण औ जसोदा रानी आनंद से हैं? नंद जी बोले, आपकी कृपा से सब भले हैं, और हमारे जीवन मूल तुम्हारे बलदेव जी भी कुशल से हैं, कि जिन के होते तुम्हारे पुन्य प्रताप से हमारे पुत्र ऊआ, पर एक तुम्हारेई दुख से हम दुखी हैं. बसुदेव कहने लगे, मित्र! बिधाता से कुछ न बसाय, कर्म की रेख किसी से मेटी न जाय, इस से संसार में आय दुख पीर पाय, कौन पछताय; ऐसा ज्ञान जनायके कहा।

तुम घर जाऊ बेग आपने, कीने कंस उपद्रव घने,
बालक ढूंढ मंगावे नीच, ऊई साध परजा की मीच.

तुम तो सब यहां चले आए हो, और राक्षस ढूंढते फिरते हैं, न जानिये कोई दुष्ट जाय गोकुल में उपाध मचावे. यह सुनते ही नंद जी अकुलाकर सब को साथ लिये सोचते मथुरा से गोकुल को चले, इति।

CHAPTER VII.

PÚTANÁ, A SHE-DÆMON SENT BY KANS, GOES TO GOKUL TO DESTROY KRISHN. SHE ASSUMES THE GUISE OF A BEAUTIFUL WOMAN, AND GIVES SUCK TO KRISHN, WHO DRAWS OUT HER LIFE WITH THE MILK. SHE FALLS DEAD AND HER BODY COVERS FOUR MILES OF GROUND. THE COWHERDS HEW THE CARCASE IN PIECES AND BURN IT, ON WHICH A GRATEFUL ODOUR IS DIFFUSED. REASON THEREOF.

श्री शुकदेव जी बोले हे राजा! कंस का मंत्री तो अनेक राक्षस साथ लिये मारता फिरता ही था, कि कंसने पूतना नाम राक्षसी को बुलाकर कहा, तू जा यदुबंसियों के जितने बालक पावे तितने मार. यह सुन वह प्रसन्न हो दंडवत कर चली, तो अपने जी में कहने लगी।

भये पूत हैं नंद कै, सूनों गोकुल गांउं,
छलकर अबही आनिहों, गोपी ह्वेके जांउं.

यह कह सोलह सिंगार, बारह आभरण कर; कुच में बिष लगाय, मोहनी रूप बन, कपट किये, कंवल का फूल हाथ में लिये, बन ठनके ऐसे चली कि जैसे सिंगार किये लक्ष्मी अपने कंत पै जाती हो, गोकुल में पऊंच हंसती नंद के मंदिर बीच गई. इसे देख सब की सब मोहित हो भूली सी रहीं. यह जा जसोदा के पास बैठी और कुशल पूछ असीस दी, कि बीर तेरा कान्ह जीओ कोट बरस, ऐसे प्रीत बढ़ाय लड़के को जसोदा के हाथ से ले, गोद में रख, जों दूध पिलावने लगी, तों श्री कृष्ण दोनों हाथों से चूंची पकड़ मुंह लगाय, लगे प्राण समेत पै पीने; तब तो अति व्याकुल हो पूतना पुकारी, कैसा जसोदा तेरा पूत, मानुष नहीं यह है यमदूत; जेवरी जान मैं ने सांप पकड़ा, जो इसके हाथ से बच जीती जाऊंगी तो फेर गोकुल में कभी न आऊंगी. यों

कह भाग गांव के बाहर आई, पर कृष्ण ने न छोड़ा, निदान तिसका जी लिया. वह पछाड़ खाय ऐसे गिरा जैसे आकाश से बज्र गिरे. अति शब्द सुन रोहनी औ जसोदा रोती पीटती वहीं आईं जहां पूतना दो कोस में मरी पड़ी थी; और तिनके पीछे सब गांव उठ धाया, देखें तो कृष्ण तिसकी छाती पर चढ़े दूध पी रहे हैं; झट उठाय, मुख चूंब, हृदे से लगाय, घर ले आईं; गुणियों को बुलाय झाड़ फूंक करने लगीं; और पूतना के पास गोपी ग्वाल खड़े आपस में कह रहे थे, कि भाई! इसके गिरने का धमका सुन हम ऐसे डरे हैं जो छाती अबतक धड़कती है, न जानिये बालक की क्या गति ऊई होगी।

इतने में मथुरा से नंद जी आये तो देखते क्या हैं कि एक राचसी मरी पड़ी है, औ ब्रजबासियों की भीड़ घेरे खड़ी है; पूछा यह उपाध कैसे ऊई? वे कहने लगे, महाराज! पहले तो यह अति सुंदरी हो तुम्हारे घर असीस देती गई, इसे देख सब ब्रज नारी भूल रहीं, यह कृष्ण को ले दूध पिलाने लगी, पीछे हम नहीं जानते क्या गति ऊई. इतना सुन नंद जी बोले, बड़ी कुशल भई जो बालक बचा, औ यह गोकुल पर न गिरी, नहीं तो एक भी जीता न रहता, सब इसके नीचे दब मरते. यों कह नंद जी तो घर आय दान पुन्य करने लगे, और ग्वालों ने फरसे, फावड़े, कुदाल, कुल्हाड़ों से काट काट पूतना के हाड़ गोड़ तो गढ़े खोद खोद गाड़ दिये, और मास चाम इकठा कर फूंक दिया. तिसके जलने से एक ऐसी सुगंध फैली कि जिसने सारे संसार को सुगंध से भर दिया।

इतनी कथा सुन राजा परीचित ने शुकदेव जी से पूछा, महाराज! वह राचसी महा मलीन मद मास खानेवाली, तिसके शरीर से सुगंध कैसे निकली, सो कृपाकर कहो. मुनि बोले राजा! श्री कृष्णचंद ने दूध पी तिसे मुक्ति दी, इस कारण सुगंध निकली. इति।

CHAPTER VIII.

FESTIVITIES IN THE HOUSE OF NAND WHEN KRISHN IS TWENTY-SEVEN DAYS OLD. WHILE KRISHN IS LYING IN HIS CRADLE UNDER A CART, SAKATÁSUR, *i.e.* THE DÆMON OF THE CART, ATTEMPTS TO DESTROY HIM AND IS SLAIN BY THE INFANT. WHEN KRISHN IS FIVE MONTHS OLD, HE IS ATTACKED BY ANOTHER DÆMON NAMED TRINÁWART, IN THE FORM OF A WHIRLWIND, WHO IS DASHED BY KRISHN TO THE GROUND AND SLAIN.

श्री शुकदेव मुनि बोले

जिहि नचत्र मोहन भये सो नचत्र पर्यौ आइ,

चारु बधाए रीति सब करत जसोदा माइ.

जब सत्ताईस दिन के हरि ऊए, तब नंद जी ने सब ब्राह्मण औ ब्रज बासियों को नोता भेज दिया. वे आए, तिन्हें आदर मान कर बैठाया. आगे ब्राह्मणों को तो बऊत सा दान दे बिदा

किया और भाईयों को बागे पहराय, षट रस भोजन कराने लगे. तिस समें जसोदा रानी परोसती थी; रोहनी टहल करती थी; ब्रजबासी हंस हंस खा रहे थे; गोपियां गीत गा रही थीं; सब आनंद में ऐसे मगन थे कि कृष्ण की सुरत किसू को भी न थी. और कृष्ण एक भारी छकड़े के नीचे पालने में अचेत सोते थे, कि इस में भूखे हो जगे, पांव के अंगूठे मुह में दे रोवन लगे, औ हिलक हिलक चारों ओर देखने, विसी औसर उड़ता हुआ, एक राक्षस आ निकला; कृष्ण को अकेला देख अपने मन में कहने लगा, कि यह तो कोई बड़ा बली उपजा है, पर आज मैं इस से पूतना का बैर लूंगा. यों ठान सकट में आन बैठा, तिसी से उसका नाम सकटासुर हुआ, जब गाड़ा चड़चड़ाय कर हिला, तब श्री कृष्ण ने बिलकते बिलकते एक ऐसी लात मारी कि वह मर गया, और छकड़ा टूक टूक हो गिरा, तो जितने बासन दूध दही के थे सब फूट चूर हुए, औ गोरस की नदी सी बह निकली. गाड़े के टुटने, औ भांड़ों के फटने का शब्द सुन सब गोपी ग्वाल दौड़ आए; आतेही जसोदा ने कृष्ण को उठाय मुंह चूंब छाती से लगा लिया. यह अचरज देख सब आपस में कहने लगे, आज विधना ने बड़ी कुशल की जो बालक बच रहा, औ सकट ही टूट गया।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव बोले, हे राजा! जब हरि पांच महीने के हुए, तब कंसने तृनावर्त को पठाया, वह बगूला हो गोकुल में आया. नंदरानी कृष्ण को गोद में लिये आंगन के बीच बैठी थी, कि एका एकी कान्ह ऐसे भारी हुए जो जसोदा ने मारे बोझ के गोद से नीचे उतारे. इतने में एक ऐसी आंधी आई, कि दिन की रात हो गई, औ लगे पेड़ उखड़ उखड़ गिरने, छप्पर उड़ने. तब व्याकुल हो जसोदा जी श्री कृष्ण को उठाने लगीं, पर वे न उठे, जोहीं विन के शरीर से इनका हाथ अलगा हुआ, तोंही तृनावर्त आकाश को ले उड़ा, और मन में कहने लगा, कि आज इसे बिन मारे न रहूंगा।

वह तो कृष्ण को लिये वहां यह विचार करता था; यहां जसोदा जी ने जब आगे न पाया, तब रो रो कृष्ण कृष्ण कर पुकारने लगीं. विनका शब्द सुन सब गोपी ग्वाल आए, साथ हो ढूंढने को धाये; अंधेरे में अटकल से टटोल टटोल चलते थे, तिस पर भी ठोकरें खाय गिर गिर पड़ते थे।

ब्रज बन गोपी ढूंढत डोलैं, इत रोहनी जसोदा बोलैं,
नंद मेघ धुनि करें पुकार, टेरें गोपी गोप अपार.

जद श्री कृष्ण ने नंद जसोदा समेत सब ब्रजबासी अति दुखित देखे, तद तृनावर्त को फिराय आंगन में ला, सिला पर पटका, कि विसका जी देह से निकल सटका. आंधी थंभ गई, उजाला हुआ, सब भूले भटके घर आये; देखें तो राक्षस आंगन में मरा पड़ा है, श्री कृष्ण छाती पर खेल रहे हैं, आते ही जसोदा ने उठाय, कंठ से लगा लिया, और बहुत सा दान ब्राह्मणों को दिया. इति।

CHAPTER IX.

VASADEV SENDS GARG, HIS FAMILY PRIEST, TO GOKUL TO NAME BALARÁM AND KṚIṢHṆ. GARG RECITES THEIR VARIOUS APPELLATIONS. THE TRICKS OF THE INFANT KṚIṢHṆ. HE STEALS THE BUTTER OF THE COWHERDESSES, AND ON THEIR SEIZING HIM ESCAPES FROM THEIR HANDS AND CAUSES THEM TO CARRY THEIR OWN SONS TO JASODÁ AND ACCUSE THEM OF THE THEFT, UNDER THE IMPRESSION THAT THEY HAVE KṚIṢHṆ IN THEIR GRASP. JASODÁ ABOUT TO PUNISH HIM FOR EATING DIRT, BEHOLDS THE THREE WORLDS IN HIS MOUTH.

श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! एक दिन बसुदेव जी ने गर्ग मुनिको, जो बड़े जोतषी औ यदुबंसियों के परोहित थे बुला कर कहा, कि तुम गोकुल जा लड़के का नाम रख आओ।

गई रोहनी गर्भ सों भयौ पूत है ताहि,
किती आयु कैसो वली कहा नाम ता आहि.

और नंद जी के पूत्र हुआ है, सो भी तुम्हें बुलाय गये हैं. सुनते ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले औ गोकुल के निकट जा पहुंचे, तिसी समैं किसी ने नंद जी से आ कहा कि यदुबंसियों के परोहित गर्ग मुनि जी आते हैं. यह सुन नंद जी आनंद से ग्वाल बाल संग कर भेट ले उठ धाए, और पाटंबर के पांवड़े डालते बाजे गाजे से ले आए पूजा कर, आसन पर बैठाय, चरनामृत ले, स्त्री पुरुष हाथ जोड़ कहने लगे, महाराज! बड़े भाग हमारे जो आपने दया कर दरशन दे घर पवित्र किया; तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं, एक रोहिणी के एक हमारे, कृपा कर तिनका नाम धरिये. गर्ग मुनि बोले, ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्योंकि जो यह बात फैले कि गर्ग मुनि गोकुल में लड़कों के नाम धरने गये हैं, औ कंस सुन पावे तो वह यही जानेगा कि देवकी के पुत्र को वसुदेव के मित्र के यहां कोई पहुंचाय आया है, इसी लिये गर्ग परोहित गया है, यह समझ मुझ को पकड़ मंगावेगा और न जानिये तुम पर भी क्या उपांध लावे, इस्से तुम फैलाव कुछ मत करो, चुपचाप घर में नाम धरवा लो।

नंद बोले गर्ग जी! तुम ने सच कहा. इतना कह घर के भीतर ले जाय बैठाय; तब गर्ग मुनि ने नंद जी से दोनों की जन्म तिथि औ समैं पूछ, लग्न साध, नाम ठहराय कहा, सुनो नंद जी! वसुदेव की नारी रोहनी के पुत्र के तो इतने नाम होयंगे, संकर्षन, रेवतीरमन, बलदाऊ, बलराम, कालिंदीभेदन, हलधर, औ बलबीर. और कृष्णरूप जो तुम्हारा लड़का है, तिसके नाम तो अनगिनत हैं, पर किसी समैं वसुदेव के यहां जन्मा, इस्से बासुदेव नाम हुआ, औ मेरे बिचार में आता है कि ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युग में जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं।

नंद जी बोले, इनके गुण कहो. गर्ग मुनि ने उत्तर दिया, ये दूसरे विधाता हैं, इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती, पर मैं यह जानता हूं कि कंस को मार भूमि का भार उतारेंगे. ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचुपाते चले गये, औ वसुदेव को जा सब समाचार कहे।

आगे दोनों बालक गोकुल में दिन दिन बढ़ने लगे, और बाल लीला कर नंद जसोदा को सुख देने; नीले पीले झगुले पहने, माथे पर छोटी छोटी लटुरियां बिखरी ऊई, ताइत गंडे बांधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथों में लिये खेलते; आंगन के बीच घुटनों चल चल गिर गिर पड़ें, और तोतली तोतली बातें करें; रोहनी औ जसोदा पीछे लगी फिरें, इस लिये कि मत कहीं लड़के किसी से डर ठोकर खा गिरें. जब छोटे छोटे बछड़ों औ बछियाओं की पूंछ पकड़ पकड़ उठें, और गिर गिर पड़ें, तब जसोदा औ रोहनी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय दूध पिलाय भांति भांति के लाड़ लड़ावें।

जद श्री कृष्ण बड़े भये, तो एक दिन ग्वाल बाल साथ ले ब्रज में दधि माखन की चोरी को गये।

सूने घर में ढूंढें जाय, जो पावें सो देंय लुटाय,

जिन्हें घर में सोते पावें, तिनकी धरी ढकी दहेंड़ी उठा लावें; जहां छींके पर रक्खा देखें, तहां पीढ़ी पर पटड़ा, पटड़े पे उखल धर, साथी को खड़ा कर, उसके ऊपर चढ़ उतार लें, कुछ खावें, लुटावें, औ लुढ़ाय दें. ऐसे गोपियों के घर घर नित चोरी कर आवें।

एक दिन सब ने मता किया, और गेह में मोहन को आने दिया; ज्यों, घर भीतर पैठ, चाहें कि माखन दही चुरावें, त्यों जाय पकड़कर कहा, दिन दिन आते थे निस भोर, अब कहां जाओगे माखन चोर. यों कह जब सब गोपी मिल कन्हैया को लिए जसोदा के पास उलाहना देने चलीं, तब श्री कृष्ण ने ऐसा छल किया कि जिसीके लड़के का हाथ तिसे पकड़ा दिया, और आप दौड़के अपने ग्वाल बालों का संग लिया. वे चली चली नंदरानी के निकट आय, पाओं पड़ बोलीं, जो तुम बिलग न मानो तो हम कहैं, जैसी कुछ उपाध कृष्ण ने ठानी है।

दूध दह्यो माखन मह्यो, बचे नहीं ब्रज मांझ.

ऐसी चोरी करतु है, फिरतु भोर अरु सांझ.

जहां कहीं धरा ढका पाते हैं, तहां से निधड़क उठा लाते हैं, कुछ खाते हैं औ लुटाते हैं; जो कोई इनके मुख में दही लगा बतावे तिसे उलट कर कहते हैं, तूनेई तो लगाया है! इस भांति नित चोरी कर आते थे, आज हमने पकड़ पाया सो तुम्हें दिखाने लाई हैं. जसोदा बोलीं, बीर! तुम किस का लड़का पकड़ लाईं? कल से तो घरके बाहेर भी नहीं निकला मेरा कुंवर कन्हाइ, ऐसाही सच बोलती हो! यह सुन औ अपना हीं बालक हाथ में देख, वे हंसकर लजाय रहीं. तहां जसोदा जी ने कृष्ण को बुलायके कहा पुत्र तुम किसू के यहां मत जाओ, जो चाहिये सो घर में ले खाओ।

सुनके कान्ह कहत तुतराय, मत मैया तू इन्हें पतियाय,

ये झूठी गोपी झूठौं बोलें, मेरे पीछे लागी डोलें,

कहीं दोहनी बछड़ा पकड़ाती हैं, कभी घर की टहल कराती हैं, मुझे द्वारे रखवाली बैठाय

अपने काज को जाती हैं, फिर झूठ मूठ आय तुम से बातें लगाती हैं. यों सुन गोपी हरी मुख देख देख मुसकुराकर चली गईं।

आगे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के संग बाखल में खेलते थे, कि जों कान्ह ने मट्टी खाई, तों एक सखा ने जसोदा से जा लगाई, वह क्रोध कर हाथ में छड़ी ले उठा धाई. मा को रिस भरी आती देख, मुंह पोंछ, डरकर खड़े हो रहे. इन्हों ने जातेही कहा, क्योंरे तू ने माटी क्यों खाई: कृष्ण डरते कांपते बोले, मा! तुजसे किस ने कहा? ये बोलीं, तेरे सखा ने. तब मोहन ने कोप कर सखा से पूछा, क्योंरे मैं ने मट्टी कब खाई है? वह भयकर बोला, भैया! मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता, क्या कहूंगा? जों कान्ह सखा से बतराने लगे, तों जसोदा ने उन्हें जा पकड़ा, तहां कृष्ण कहने लगे, मैया! तू मत रिसाय, कहीं मनुष भी मट्टी खाते हैं? वह बोली, मैं तेरी अटपटी बात नहीं सुनती, जो तू सच्चा है तो अपना मुख दिखा. जो श्री कृष्ण ने मुख खोला, तो उस में तीन लोक दृष्ट आया, तद जसोदा को ज्ञान हुआ तो मन में कहने लगी, कि मैं बड़ी मूरख हूं, जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूं।

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव राजा परीचित से बोले, हे राजा! जब नंदरानी ने ऐसा जाना तब हरि ने अपनी माया फैलाई, इतने में मोहन को जसोदा प्यार कर कंठ लगाय घर ले आई। इति

CHAPTER X.

DESCRIPTION OF CHURNING IN THE HOUSE OF NAND. KṚISHṈ DESTROYS THE CHURNING-STAVES AND UPSETS THE BUTTER-MILK AND CURDS. JASODÁ TIES HIM TO A MORTAR.

एक दिन दही मथने की बिरियां जान, भोर ही नंदरानी उठी, और सब गोपियों को जगाय बुलाया. वे आय घर झाड़, बुहार, लीप, पोत, अपनी अपनी मथनियां ले ले दही मथने लगीं. तहां नंद महरि भी एक बड़ा सा कोरा चरूआ ले, ईंढुए पर रख, चौकी बिछा, नेती और रई मंगाय टटकी दहेंडियां बाछ बाछ राम कृष्ण के लिये बिलोवन बैठी. तिस्से समें नंद के घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था, कि जैसे मेघ गरजता हो. इतने में कृष्ण जागे, तो रो रो मा मा कर पुकारन लागे; जब बिनका पुकारना किसू ने न सुना, तब आप ही जसोदा के निकट आए, औ आंखें डबडबाय, अनमने हो, ठुसक ठुसक तुतलाय तुतलाय कहने लगे, कि मा! तुझे कै बेर बुलाया, पर मुझे कलेऊ देने न आई, तेरा काज अबतक नहीं निबड़ा? इतना कह मचल पड़े, रई चरुए से निकाल दोनों हाथ डाल लगे माखन काढ़ काढ़ फेंकने, आंग लथेड़ने, और पांव पटक पटक आंचल खेंच रोने. तब नंदरानी घबराय झुंझलायके बोली, बेटा! यह क्या चाल निकाली!

चल उठ तुझे कलेऊ दूं, कृष्ण कहे अब मैं नहि लूं,
पहिले क्यों नहिं दीना मा? अब तो मेरी लेहै बला.

निदान जसोदा ने फुसलाय प्यार से मुंह चूंब,गोद में उठा लिया, और दधि माखन रोटी खाने को दिया. हरि हंस हंस खाते थे नंदमहरि आंचल की ओट किये खिला रही थी, इस लिये कि मत किसी की दीठ लगे।

इस बीच एक गोपी ने आ कहा. कि तुम तो यहां बैठी हो, वहां चूल्हे पर से सब दूध उफन गया. यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ धाई, औ जाके दूध बचाया. यहां कान्ह दही मही के भाजन फोड़, रई तोड़, माखन भरी कमोरी ले, ग्वाल बालों में दौड़ आए. एक उखल औंधा धरा पाया तिस पर जा बैठे, औ चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हंस हंस बांट बांट माखन खाने।

इस में जसोदा दूध उतार आय देखे तो आंगन औ तिबारे में दही मही की कीच हो रही है. तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकली, और ढूंढती ढूंढती वहां आई जहां श्री कृष्ण मंडली बनाए माखन खाय खिलाय रहे थे. जाते ही पीछे से जों कर धरा, तों हरि मा को देखते ही रोकर हाहा खाय लगे कहने, कि मा गोरस किस ने लुढ़ाया, मैं नहीं जानूं, मुझे छोड़ दे. ऐसे दीन बचन सुन जसोदा हंसकर हाथ से छड़ी डाल, और आनंद में मगन हो रिसके मिस कंठ लगाय, घर लाय, कृष्ण को उखल से बांधने लगी, तब श्री कृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बांधे, वही छोटी होय. जसोदा ने सारे घर की रस्सियां मंगाईं तौभी बांधे न गये. निदान मा को दुखित जान आप ही बंधाई दिये. नंदरानी बांध, गोपियों को खोलने की सोंह दे फिर घर का टहल करने लगी. इति।

CHAPTER XI.

KṚISHṈ WHILE TIED TO THE MORTAR RECOLLECTS THAT NAL AND KÚVER, ATTENDANTS OF SHIVA, HAD BEEN CHANGED INTO TREES BY THE SAGE NÁRAD, WHO HAD PROMISED THAT WHEN KṚISHṈ WAS BORN THEY SHOULD REGAIN THEIR FORMER SHAPE. KṚISHṈ OVERTHROWS THE TREES AND RESTORES THE CELESTIAL YOUTHS TO THEIR ORIGINAL FORM.

श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! श्री कृष्ण चंद को बंधे बंधे पूर्व जन्म की सुधि आई, कि कुवेर के बेटों को नारद ने श्राप दिया है, तिन का उद्धार किया चाहिये. यह सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूछा, महाराज! कुवेर के पुत्रों को नारद मुनि ने कैसे श्राप दिया था? सो समझाय कर कहो. शुकदेव मुनि बोले, कि नल कूवेर नाम कुवेर के दो लड़के कैलास में रहें, सो शिव की सेवा कर कर अति धनवान हुए. एक दिन स्त्रियां साथ ले वे बन बिहार को गये, वहां जाय मद पी मदमाते भये. तब नारियों समेत नंगे हो गंगा में न्हाने लगे, और गलबहियां डाल डाल

अनेक अनेक भांति की कलोलें करने, कि इतने में तहां नारद मुनि आ निकले. विन्हें देखते ही रंड़ियों ने तो निकल कपड़े पहने, औ वे मतवारे वहीं खड़े रहे. विन की दशा देख नारद जी मन में कहने लगे, कि इनको धनका गर्व्व ऊआ है, इसी से मदमाते हो काम क्रोध को सुख कर मानते हैं. निरधन मनुष को अहंकार नहीं होता, धन वान को धर्म अधर्म का बिचार कहां है? मूरख झूठी देह से नेह कर भूलें; संपत कुटुंब देखके फूलें; और साध न धन मद मन में आनें; संपत विपत एक सम मानें. इतना कह नारद मुनि ने विन्हें श्राप दिया, कि इस पाप से तुम गोकुल में जा वृच हो, जब श्री कृष्ण अवतार लेंगे, तब तुम्हें मुक्ति देंगे. ऐसे नारद मुनि ने विन्हें श्रापा था, तिसी से वे गोकुल में आ रूख ऊए, तब विनका नाम यमलार्जुन ऊआ।

इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले, महाराज! इसी बात की सुरत कर श्री कृष्ण ओखली को घसीटे घसीटे वहां ले गये, जहां यमलार्जुन पेड़ थे. जाते ही विन दोनों तरवर के बीच उखल को आड़ा डाल एक ऐसा झटका मारा कि वे दोनों जड़ से उखड़ पड़े औ विन में से दो पुरुष अति सुंदर निकल हाथ जोड़ स्तुति कर कहने लगे, हे नाथ! तुम बिन हम से महा पापियों की सुध कौन ले? श्री कृष्ण बोले, सुनो! नारद मुनि ने तुम पर बड़ी दया की जो गोकुल में मुक्ति दी, विन्हीं की कृपा से तुम ने मुझे पाया, अब बर मांगो जो तुम्हारे मन में हो।

यमलार्जुन बोले, दीनानाथ! यह नारद जी की ही कृपा है जो आप के चरण परसे और दरसन किया, अब हमें किसी वस्तु की इच्छा नहीं; पर इतना हीं दीजे जो सदा तुम्हारी भक्ति हृदे में रहे. यह सुन बर दे हंसकर श्री कृष्णचंद ने तिन्हें बिदा किया. इति।

CHAPTER XII.

SURPRISE OF THE COWHERDS AT THE FALL OF THE TWO TREES. DEPARTURE OF NAND AND HIS FOLLOWERS FROM GOKUL TO BRINDÁBAN. KṚISHṆ WHEN FIVE YEARS OLD SLAYS BACHCHHÁSUR, A DÆMON IN THE FORM OF A CALF, AND BAKÁSUR, A DÆMON IN THE FORM OF A CRANE.

श्री शुकदेव मुनि बोले, राजा! जब वे दोनों तरु गिरे तब तिनका शब्द सुन नंदरानी घबराकर दौड़ी वहां आई जहां कृष्ण को उखल से बांध गई थी और विनके पीछे सब गोपी ग्वाल भी आए. जद कृष्ण को वहां न पाया, तद व्याकुल हो जसोदा मोहन मोहन पकारती औ कहती चली; कहां गया बांधा था माई, कहीं किसी ने देखा मेरा कुंवर कन्हाई? इतने में सोहीं से आ एक बोली, व्रजनारी! कि दो पेड़ गिरे तहां बचे मुरारी. यह सुन सब आगे जाय देखें तो सच ही वृच उखड़े पड़े हैं, औ कृष्ण तिनके बीच ओखली से बंधे सुकड़े बैठे हैं. जाते ही नंदमहरि ने उखल से खोल कान्ह को रोकर गले लगा लिया और सब गोपियां डरा जान लगीं चुटकी ताली दे दे हंसाने. तहां नंद उपनंद आपस में कहने लगे, कि ये जुगान जुग के रूख जमे ऊए कैसे उखड़

पड़े, यह अचंभा जी में आता है, कुछ भेद इनका समझा नहीं जाता. इतना सुनके एक लड़के ने पेड़ गिरने का ब्योरा जों का तों कहा पर किसी के जी में न आया. एक बोला, ये बालक इस भेद को क्या समझें; दूसरे ने कहा, कदाचित यही हो, हरि की गति कौन जाने. ऐसे अनेक अनेक भांति की बातें कर श्री कृष्ण को लिये सब आनंद से गोकुल में आये, तब नंद जी ने बड़त सा दान पुन्य किया।

कितने एक दिन बीते,कृष्ण का जन्म दिन आया, तो जसोदा रानी ने सब कुटुंब को नोत बुलाया, और मंगलाचार कर बरस गांठ बांधी. जद सब मिलि जेंवन बैठे, तद नंदराय बोले, सुनो भायो! अब इस गोकुल में रहना कैसे बने, दिन दिन होने लगे उपद्रव घने; चलो कहीं ऐसी ठौर जावें, जहां तृण जल का सुख पावें. उपनंद बोले, वृंदाबन जाय बसिये जो आनंद से रहिये. यह बचन सुन नंद जी ने सब को खिलाय पिलाय, पान दे, बैठाय, त्योंहीं एक जोतषी को बुलाय, यात्रा का महूर्त पूछा. तिस ने बिचार के कहा, इस दिसा की यात्रा को कल का दिन अति उत्तम है; बांए योगिनी, पीछे दिशाशुल, औ सनमुख चंद्रमा है, आप निस्संदेह भोर ही प्रस्थान कीजे।

यह सुन तिस समैं तो सब गोपी ग्वाल अपने अपने घर गये, पर सबेरे ही अपनी अपनी वस्तु भाव गाड़ों पे लाद लाद आ इकठे भये; तब कुटुंब समेत नंद जी साथ हो लिये, और चले चले नदी उतर सांझ समैं जा पड़ंचे; वृंदादेवी को मनाय वृंदावन बसाया, तहां सब सुख चैन से रहने लगे।

जद श्री कृष्ण पांच बरस के ऊए, तद मा से कहने लगे कि मैं बछड़े चरावने जाऊंगा, तू बलदाऊ से कह दे जो मुझे बन में अकेला न छोड़े. वह बोली, पूत! बछड़े चरावने वाले बड़त हैं दास तुम्हारे, तुम मत पल ओट हो मेरे नैन आगे से प्यारे. कान्ह बोले, जो मैं बन में खेलने जाऊंगा, तो खाने को खाऊंगा, नहीं तो नहीं. यह सुन जसोदा ने ग्वाल बालों को बुलाय कृष्ण बलराम को सोंपकर कहा कि तुम बछड़े चरावने दूर मत जाइयो, और सांझ न होते दोनों को संग ले घर आइयो, बन में इन्हें अकेले मत छोड़ियो, साथ ही साथ रहियो, तुम इनके रखवाले हो. ऐसे कह कलेऊ दे राम कृष्ण को तिसके संग कर दिया।

वे जाय यमुना के तीर बछड़े चराने लगे, और ग्वाल बालों में खेलने; कि इतने में कंस का पठाया कपट रूप किये बच्छासुर आया. तिसे देखते ही सब बछड़े डर जिधर तिधर भागे, तब श्री कृष्ण ने बलदेव जी को सैन से जताया, कि भाई! यह कोई राक्षस आया. आगे जो वह चरता चरता घात करने को निकट पड़ंचा, तो श्री कृष्ण ने पिछले पांव पकड़ फिरायकर ऐसा पटका कि तिसका जी घट से निकल सटका।

बच्छासुर का मरना सुन कंस ने बकासुर को भेजा. वह वृंदावन में आय अपना घात लगाय, यमुना के तीर पर्वत सम जा बैठा. तिसे देख मारे भय के ग्वाल बाल कृष्ण से कहने लगे, कि भैया! यह तो कोई राक्षस बगुला बन आया है, इसके हाथ से कैसे बचेंगे?। II

ये तो इधर कृष्ण से यों कहते थे, औ उधर वह भी जी में यह बिचारता था, कि आज इसे बिन मारे न जाऊंगा. इतने में जो श्री कृष्ण उसके निकट गये, तो विसने इन्हें चोंच में उठाय मुंह मूंद लिया. ग्वाल बाल व्याकुल हो चारों ओर देख देख रो रो पुकार पुकार लगे कहने, हाय हाय! यहां तो हलधर भी नहीं हैं, हम जसोदा से क्या जाय कहेंगे. इनको अति दुखित देख श्री कृष्ण ऐसे तत्ते हुए कि वह मुख में रख न सका. जो विसने इन्हें उगला, तो इन्हों ने उसे चोंच पकड़ ठोंठ पांव तले दबाय चीर डाला, और बछड़े घेर सखाओं को साथ ले हंसते खेलते घर आए. इति।

CHAPTER XIII.

A SERPENT-SHAPED DÆMON NAMED AGHÁSUR DRAWS ALL THE COWHERDS WITH THEIR HERDS INTO HIS MOUTH. KṚISHṆ, WHO IS ALSO DRAWN IN, SWELLS TO SUCH A DEGREE AS TO BURST THE BELLY OF THE SERPENT, WHO FALLS DOWN.

श्री शुकदेव बोले, सुनो महाराज! प्रात होते ही एक दिन श्री कृष्ण बछड़े चरावन बन को चले, तिनके साथ सब ग्वाल बाल भी अपने अपने घर से छाक ले ले हो लिये, और हार में जाय छाक धर बछरू चरने को छोड़, लगे खड़ी गेरू से तन चीत चीत, बनके फल फूलों के गहने बनाय बनाय पहन पहन खेलने, औ पशु पंछियों की बोली बोल बोल भांति भांति के कुतूहल करकर नाचने गाने।

इतने में कंस का पठाया अघासुर नाम राचस आया, सो अति बड़ा अजगर हो मुंह पसार बैठा; और सब सखा समेत श्री कृष्ण भी खेलते खलते वहीं जा निकले, जहां वह घात लगाये मुंह बाये बैठा था. दूर से विसे देख ग्वाल बाल आपस में लगे कहने, कि भाई यह तो कोई बड़ा पहाड़ है कि जिस की कंदरा इतनी बड़ी है. ऐसे कहते औ बछड़े चराते उसके पास पहुंचे तब एक लड़का विस का मुख खुला देख बोला, भाई! यह तो कोई अति भयावनी गुफा है, इस के भीतर न जावेंगे, हमें देखते ही भय लगता है. फिर तोख नाम सखा बोला, चलो इस में धस चलें, कृष्ण साथ रहते हम क्या डरें? जो कोई असुर होगा तो बकासुर की रीत से मारा जायगा।

यों सब सखा खड़े बातें करते ही थे कि विसने एक ऐसी लंबी सांस खैंची जो बछड़ों समेत सब ग्वाल बाल उड़के विसके मुख में जा पड़े. बिष भरी तत्ती भाफ जों लगी तो लगे व्याकुल हो बछड़े रांभने, औ सखा पुकारने कि हे कृष्ण प्यारे बेग सुध ले, नहीं तो सब जले मरते हैं. विनकी पुकार सुनते ही आतुर हो श्री कृष्ण भी उसके मुख में बड़ गये, विनने प्रसन्न हो मुंह मूंद लिया, तहां श्री कृष्ण ने अपना शरीर इतना बढ़ाया, कि विस का पेट फट गया, सब बछरू औ ग्वाल बाल निकल पड़े, तिस समय आनंद कर देवताओं ने फूल औ अमृत बरसाय सबकी तपत हर ली; तब ग्वाल बाल श्री कृष्ण से कहने लगे, कि भैया इस असुर को मार आज तो तूने भले बचायो, नहीं सब मर चुके थे. इति।

CHAPTER XIV.

BRAHMA STEALS AWAY THE COWHERD'S CHILDREN AND THEIR HERDS, AND LEAVES THEM FOR A YEAR IN A CAVE. KRISHN CAUSES THEM TO APPEAR AS THOUGH BRAHMA HAD NOT REMOVED THEM, AND BEFORE EACH IS SEEN A SEMBLANCE OF BRAHMA, RUDR, AND INDRA WITH HANDS JOINED. BRAHMA IS AFFRIGHTED AT THIS VISION.

श्री शुकदेव बोले! हे राजा, ऐसे अघासुर को मार श्री कृष्ण चंद बछड़े घेर, सखाओं को साथ ले आगे चले. कितनी एक दूर जाय कदम की छांह में खड़े हो वंशी बजाय सब ग्वाल बालों को बुलाय कहा, भैया यह भली ठौर है, इसे छोड़ आगे कहां जांय? बैठो यहीं छाकें खांय. सुनते ही तिन्हों ने बछड़े तो चरने को हांक दिये, और आक, ढाक, बड़, कदम, कंवल के पात लाय, पत्तल, दोने बनाय, झाड़, बुहार, श्री कृष्ण के चारों ओर पांति की पांति बैठ गये, औ अपनी अपनी छाकें खोल खोल लगे आपस में परोसने।

जब परोस चुके, तब श्री कृष्ण चंद ने सब के बीच खड़े हो पहले आप कौर उठाय खाने की आज्ञा दी. वे खाने लगे, तिन में मोरमुकुट धरे, बनमाल गरे, लकुट लिये, त्रिभंगीछब किये, पीतांबर पहने, पीत पट ओढ़े, हंस हंस श्री कृष्ण भी अपनी छाक से सब को खिलाते थे, और एक एक के पनवारे से उठाय उठाय चाख चाख खट्टे मीठे तीते चरपरे का स्वाद कहते जाते थे, औ तिस मंडली में ऐसे सुहावने लगते थे, कि जैसे तारों में चंद्रमा. तिस समैं ब्रह्मा आदि सब देवता अपने अपने विमानों में बैठे, आकाश से ग्वाल मंडली का सुख देख रहे थे, कि तिन में से आय ब्रह्मा सब बछड़े चुराय ले गया; और यहां ग्वाल बालों ने खाते चिंता कर श्री कृष्ण से कहा, भैआ! हम तो निचिंताई से बैठे खाय रहे हैं, न जानिंये बछड़े कहां निकल गये होंयगे।

तब ग्वालन सों कहत कन्हाई, तुम सब जेंवत रहियो भाई।
जिन कोऊ उठै करै औसेर, सब के बछरा ल्याऊं घेर।

ऐसे कह कितनी एक दूर बन में जाय जब जाना, कि यहां से बछड़े ब्रह्मा हर ले गया, तब श्री कृष्ण वैसे ही और बनाय लाये. यहां आय देखें तो ग्वाल बालों को भी उठाय ले गया है; फिर इन्हों ने वे भी जैसे थे तैसे ही बनाये, और सांझ हुई जान सब को साथ ले वृंदाबन आये; ग्वाल बाल अपने अपने घर गये, पर किसी ने यह भेद न जाना कि ये हमारे बालक औ बछड़े नहीं, बरन और भी दिन दिन माया बढ़ती चली।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव बोले, महाराज! वहां ब्रह्मा ग्वाल बाल बछड़ों को ले जाय एक पर्बत की कंदरा में भर, तिसके मुंह पर पत्थर की शिला धर भुल गया; और यहां श्री कृष्ण चंद नित नई नई लीला करते थे. इस में एक बरष बीत गया तद ब्रह्मा को सुध हुई तो मन में कहने लगा कि मेरा तो एक पल भी नहीं हुआ, पर नर का बरष हो गया, इस से अब चल देखा चाहिये कि ब्रज में ग्वाल बाल बछड़ों बिन क्या गति भई।

यह बिचार उठकर वहां आया, जहां कंदरा में सब को मूंद गया था. शिला उठाय देखे तो लड़के औ बछड़े घोर निद्रा में सोये पड़े हैं. वहां से चल वृन्दाबन में आय बालक औ बछरू सब जों के तों देख अचंभे हो कहने लगा, कैसे ग्वाल बच्छ यहां आये, कै ये कृष्ण नये उपजाये? इतना कह फिर कंदरा को देखने गया; जितने में वह वहां से देख कर आवे, तितने बीच यहां श्री कृष्ण चंद ने ऐसी माया करी कि जित्ते ग्वाल बाल औ बछड़े थे सब चतुर्भुज हो गये, औ एक एक के आगे ब्रह्मा रुद्र, इंद्र, हाथ जोड़े खड़े हैं।

देख बिरंच चित्र सो भयौ भूल्यौ, ज्ञान ध्यान सब गयौ,
जनो पषान देवी चौमुखी, भई भक्ति पूजा बिन दुखी।

औ डरकर नैन मूंद लगा थरथर कांपने, जब अंतरजामी श्री कृष्णचंद ने जाना कि ब्रह्मा अति व्याकुल है, तब सब का अंस हर लिया, और आप अकेलेई रह गये, ऐसे कि जैसे भिन्न भिन्न बादल एक हो जाय. इति।

CHAPTER XV.

BRAHMA IMPLORES PARDON OF KṚISHṆ FOR HIS FAULT.

श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! जद श्री कृष्ण ने अपनी माया उठा ली, तद ब्रह्मा को अपने शरीर का ज्ञान हुआ तो ध्यान कर भगवान के पास आ अति गिड़गिड़ाय, पाओं पड़, बिनती कर, हाथ बांध, खड़ा हो, कहने लगा, कि हे नाथ! तुम ने बड़ी कृपा करी, जो मेरा गर्व दूर किया, इसी से अंधा हो रहा था, ऐसी बुद्धि किस की है जो बिन दया तुम्हारी तुम्हारे चरित्रों को जाने? माया तुम्हारी ने सब को मोहा है; ऐसा कौन है जो तुम्हें मोहे? तुम सब के करता हो; तुम्हारे रोम रोम में मुझसे ब्रह्मा अनेक पड़े हैं, मैं किस गिनती में हूं? दीन दयाल! अब दया कर अपराध क्षमा कीजे, मेरा दोष चित्त में न लीजे।

इतना सुन श्री कृष्ण चंद मुसकुराये, तद ब्रह्मा ने सब ग्वाल बाल औ बछड़े सोते के सोते ला दिये, और लज्जित हो स्तुति कर अपने स्थान को गया. जैसी मंडली आगे थी तैसी ही बन गई; बरस दिन बीता सो किसीने न जाना. जों ग्वाल बालकों की नींद गई तो कृष्ण बछरू घेर लाये, तब तिन में से लड़के बोले, भैया तू तो बछड़े बेग ले आया, हम भोजन करने भी न पाये।

सुनत बचन हंस कहत बिहारी, मोकों चिंता भई तिहारी.
निकट चरत इकटौरे पाए, अब घर चलौ भोर के आए.

ऐसे आपस में बतराय बछरू ले सब हंसते खेलते अपने घर आये इति।

CHAPTER XVI.

BALARÁM SLAYS DHENUK, A DÆMON IN THE FORM OF AN ASS.

श्री शुकदेव बोले, महाराज! जब श्री कृष्ण आठ बरस के ऊए, तब एक दिन विन्होंने जसोदा से कहा कि, मा! मैं गाय चरावन जाऊंगा, तु बाबा से समझायकर कहो जो मुझे ग्वालों के साथ पठाय दे. सुनते ही जसोदा ने नंद जी से कहा, विन्होंने शुभ महूर्त्त ठहराय ग्वाल बालों को बुलाय, कातिक सुदी आठें को राम कृष्ण से खरक पुजवाय विनती कर ग्वालों से कहा, भाइयो! आज से गौ चरावन अपने साथ राम कृष्ण को भी ले जाया करो; पर इनके पास ही रहियो, वन में अकेले न छोड़ियो. ऐसे कह छाक दे, कृष्ण बलराम को दही का तिलक कर सब के संग विदा किया. वे मगन हो ग्वाल बालों समेत गायें लिये बन में पऊंचे, तहां बन की छबि देख श्री कृष्ण बलदेव जी से कहने लगे, दाऊ! यह तो अति मनभावनी सुहावनी ठौर है, देखो कैसे वृक्ष झुक झुक रहे हैं, औ भांति भांति के पशु पंछी कलोलें करते हैं. ऐसे कह एक ऊंचे टीले पर जा चढ़े, और लगे दुपट्टा फिराय फिराय, कारी, गोरी, धौरी, धूमरी, भूरी, नीली कह कह पुकारने. सुनतेही सब गायें रांभती हांकारती दौड़ आईं. तिस समें ऐसी सोभा हो रही थी, कि जैसे चारों ओर से बरन बरन की घटा घिर आई होंय।

फिर श्री कृष्णचंद गौ चरने को हांक, भाई के साथ छाक खाय कदम की छांह में एक सखा की जांघ पै शिर धर सोये, कितनी एक बेर में जो जागे तो बलराम जी से कहा दाऊ सुनो! खेल यह करें, न्यारी कटक बांधकै लरें. इतना कह आधी आधी गायें औ ग्वाल बाल बांट लिये. तब बन के फल फूल तोड़, झोलियों में भर भर लगे तुरही, भेर, भोंपू, डफ, ढोल, दमामे मुखही से बजाय बजाय लड़ने, औ मार मार पुकारने. ऐसे कितनी एक बेर तक लड़े फिर अपनी अपनी टोली निराली ले गयें चराने लगे।

इस बीच बलदेव जी से सखा ने कहा, महाराज! यहां से थोड़ी सी दूर पर एक ताल बन है, तिस में अमृत समान फल लगे हैं, तहां गधे के रूप एक राक्षस रखवाली करता है. इतनी बात सुनते ही बलराम जी ग्वाल बालों समेत विस बन में गये, और लगे ईंट, पत्थर, डेले, लाठियां मार मार फल झाड़ने. शब्द सुनकर धेनुक नाम खर रेंकता आया औ विसने आतेही फिरकर बलदेव जी को छाती में एक दुलत्ती मारी, तब इन्हों ने विसे उठायकर दे पटका, फिर वह लोटपोटके उठा और धरती खूंद खूंद, कान दबाय दबाय, हट हट दुलत्तियां झाड़ने लगा. ऐसे बड़ी बेर लग लड़ता रहा निदान बलराम जी ने विसकी दोनों पिछली टांगें पकड़ फिरायकर एक ऊंचे पेड़ पर फेंका, सो गिरते ही मर गया, औ साथ उसके वह रूख भी टूट पड़ा; दोनों के गिरने से अति शब्द ऊआ और सारे बन के वृक्ष हाल उठे।

देखि दूर सों कहत मुरारी, हाले रूख शब्द भयो भारी।
तब हि सखा हलधर के आये, चलऊ कृष्ण तुम बेग बुलाये।

एक असुर मारा है सो पड़ा है. इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्ण भी बलराम जी के पास जा पऊंचे; तब धेनुक के साथी जितने राचस थे सो सब चढ़ आए. तिन्हें श्री कृष्णचंद जी ने सहज ही मार गिराया; तब तो सब ग्वाल बालों ने प्रसन्न हो निधड़क फल तोड़ मन मानती झोलियां भर लीं; और गायें घेर लाय श्री कृष्ण बलदेव जी से कहा, महाराज! बड़ी बेर से आये हैं, अब घर को चलिये. इतना बचन सुनते ही दोनों भाई गायें लिये ग्वाल बालों समेत हंसते खेलते सांझ को घर आये, और जो फल लाये थे सो सारे वृंदाबन में बंटवाए. सब को बिदा दे आप सोये, फिर भोर के तड़के उठते ही श्री कृष्ण ग्वाल बालों को बुलाय, कलेऊ कर, गायें ले, बन को गये, और गौ चराते चराते कालीदह जा पऊंचे. वहां ग्वालों ने गायों को यमुना में पानी पिलाया औ आप भी पिया, जों जल पी ऊपर उठे तों गायों समेत मारे बिष के सब लोट गये. तब श्री कृष्ण जी ने अमृत की दृष्ठ से देख सबों को जिवाया. इति।

CHAPTER XVII.

KṚISHṆ OVERCOMES THE GREAT SERPENT KÁLÍ, WHO DWELT IN THE YAMUNÁ.

श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! ऐसे सब रचा कर श्री कृष्ण ग्वाल बालों के साथ गेंदतड़ी खेलने लगे; और जहां काली था तहां चार कोस तक यमुना का जल बिसके बिष से खौलता था, कोई पशु पंछी वहां न जा सकता; जो भूलकर जाता सो लपट से झुलस दह में गिर परता, औ तीर मे कोई रूख भी न उपजता. एक अबिनासी कदम तट पर था सोई था. राजा ने पूछा, महाराज! वह कदम कैसे बचा? मुनि बोले, किसी समैं अमृत चोंच में लिये गरुड़ बिस पेड़ पर आ बैठा था तिसके मुंह से एक बूंद गिरा था, इस लिये वह रूख बचा।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा, महाराज! श्री कृष्णचंद जी काली का मारना जी में ठान, गेंद खेलते खेलते कदम पर जा चढ़े औ जों नीचे से सखा ने गेंद चलाया तों जमुना में गिरा, बिसके साथ श्री कृष्ण भी कूदे. इनके कूदने का शब्द कान से सुनकर वह लगा बिष उगलने, औ अग्नि सम फुंकारें मार मार कहने, कि यह ऐसा कौन है जो अब लग दह में जीता है! कहीं अखैब्रच तो मेरा तेज न सहके टूट पड़ा कै कोई बड़ा पशु पंछी आया है जो अबतक जल में आहट होता है!।

यों कह वह एक सौ इसों फनों से बिष उगलता था, औ श्री कृष्ण पैरते फिरते थे. तिस समैं सखा रो रो हाथ पसार पसार पुकारते थे; गायें मुंह बायें चारों ओर रांभती ऊंकती

फिरती थीं; ग्वाल न्यारेही कहते थे, श्याम! वेग निकल आइये, नहीं तुम बिन घर जाय हम क्या उत्तर देंगे? ये तो यहां दुखित हो यों कह रहे थे, इस में किसीने वृंदावन में जा सुनाया कि श्री कृष्ण कालीदह में कूद पड़े. यह सुन रोहनी जसोदा औ नंद गोपी गोप समेत रोते पीटते उठ धाये, और सब के सब गिरते पड़ते कालीदह आये. तहां श्री कृष्ण को न देख व्याकुल हो नंदरानी दर्रानी गिरन चली पानी में, तब गोपियों ने बीच ही जा पकड़ा औ ग्वाल बाल नंद जी को थांभे ऐसे कह रहे थे, ।

छांड महा बन या बन आए, तौह्र दैत्यनि अधिक सताए ।

बहुत कुशल असुरन तें परी, अब क्यों दह तें निकलसें हरि ।

कि इतने में पीछे से बलदेव जी भी वहां आए औ सब व्रजबासियों को समझाकर बोले, अभी आवेंगे कृष्ण अविनासी, तुम काहे को होत उदासी ।

आज साथ आयौ मैं नाहीं, मो बिन हरि पैठे दह मांहि ।

इतनी कथा कथ श्री शुकदेव जी राजा परीचित से कहने लगे, कि महाराज! इधर तो बलराम जी सब को यों आसा भरोसा देते थे, औ उधर श्री कृष्ण जों पैरकर उसके पास गये, तों वह आ इनके सारे शरीर से लिपट गया. तब श्री कृष्ण ऐसे मोटे हुए कि जिसे छोड़तेही बन आया. फिर जों जों वह फुंकारें मार मार इन पर फन चलाता था, तों तों ये अपने को बचाते थे, निदान व्रजबासियों को अति दुखित जान श्री कृष्ण एकाएकी उचक उसके शिर पर जा चढ़े ।

तीन लोक कौ बोझ ले, भारी भये मुरारी ।

फन फन पर नाचत फिरें, बाजे पग पट तारि ।

तब तो मारे बोझ के काली मरने लगा, औ फन पटक पटक उसने जीभें निकाल दीं, तिस से लोह्र की धारें बह चलीं, जद विष औ बल का गर्व गया, तद उन्ने मन में जाना कि आदि पुरुष ने औतार लिया, नहीं इतनी किस में सामर्थ है जो मेरे विष से बचे? यह समझ जीव की आस तज सिथल हो रहा, तद नाग पत्नी ने आय हाथ जोड़ शिर निवाय बिनती कर श्री कृष्णचंद से कहा, महाराज! आपने भला किया जो इस दुख दाई अति अभिमानी का गर्व दूर किया, अब इसके भाग जागे, जो तुम्हारा दरसन पाया; जिन चरनों को ब्रह्मा आदि सब देवता जप तप कर ध्यावते हैं, सोई पद काली के सीस पर बिराजते हैं ।

इतना कह फिर बोली, महाराज! मुज पर दया कर इसे छोड़ दीजे, नहीं तो इसके साथ मुझे भी वध कीजे; क्योंकि स्वामी बिन स्त्री को मरणा हीं भला है, औ जो बिचारिये तो इसका भी कुछ दोष नहीं, यह जाति स्वभाव है, कि दूध पिलाये विष बढ़े ।

इतनी बात नाग पत्नी से सुन, श्री कृष्णचंद उस पर से उतर पड़े तब प्रनाम कर हाथ जोड़ काली बोला, नाथ! मेरा अपराध चमा कीजे मैं ने अनजाने आप पर फन चलाये; हम अधम

जाति सर्प, हमें इतना ज्ञान कहां जो तुम्हें पहचानें? श्री कृष्ण बोले, भला जो ऊआ सो ऊआ पर अब तुम यहां न रहो, कुंटुब समेत रौनक दीप में जा बसो।

यह सुन काली ने डरते कांपते कहा, कृपा नाथ! वहां जाऊं तो गरूड़ मुझे खाजायगा, जिसी के भय से मैं यहां भाग आया हूं. श्री कृष्ण बोले, अब तू निरभय चला जा, हमारे पद के चिन्ह तेरे शिर पर देख तुम से कोई न बोलेगा. ऐसे कह श्री कृष्णचंद ने तिसी समैं गरूड़ को बुलाय, काली के मन का भय मिटा दिया, तब काली ने धूप, दीप, नैवेद्य समेत बिधि से पूजा कर बऊत सी भेट श्री कृष्ण के आगे धर, हाथ जोड़, बिनती कर बिदा होय कहा।

चार घरी नाचे मो माथा, यह मन प्रीति राखियो नाथा।

यों कह दंडवत कर काली तो कुटुंब समेत रौनक दीप को गया, औ श्री कृष्णचंद जल से बाहर आये. इति।

CHAPTER XVIII.

A CONFLAGRATION THREATENS TO DESTROY THE COWHERDS WITH THEIR HERDS. KRISHN DRINKS IT UP.

इतनी कथा सुन, राजा परीचित ने श्री शुकदेव जी से पूछा, महाराज! रौनक दीप तो भली ठौर थी, काली वहां से क्यों आया औ किस लिये यमुना में रहा? यह मुझे समझा कर कहो जो मेरे मनका संदेह जाय. श्री शुकदेव बोले, राजा! रौनक दीप में हरि का बाहन गरूड़ रहता है, सो अति बलवंत है, तिस से वहां के बड़े बड़े सरपों ने हार मान जिसे एक सांप नित देना किया. एक रूख पर धर आवें, वह आवे औ खाजाय. एक दिन कद्रू नागनी का पुत्र काली अपने बिष का घमंड कर गरूड़ का भच खाने गया; इतने में वहां गरूड़ आया औ दोनों में अति युद्ध ऊआ; निदान हार मान काली अपने मन में कहने लगा कि अब इसके हाथ से कैसे बचूं, और कहां जाऊं? इतना कह सोचा कि दृंदाबन में यमुना के तीर जा रहूं तो बचूं; क्योंकि यह वहां नहीं जा सकता, ऐसे बिचार काली वहीं गया. फिर राजा परीचित ने शुकदेव जी से पूछा कि महाराज! वह वहां क्यों नहीं जा सकता था सो भेद कहो? शुकदेव जी बोले, राजा! किसी समय यमुना के तट सौभरि ऋषि बैठे तप करते थे, तहां गरूड़ ने जाय एक मछली मार खाई, तब ऋषि ने क्रोधकर उसे यह श्राप दिया कि तू इस ठौर फिर आवेगा तो जीता न रहेगा. इस कारण वह वहां न जा सकता था, और जब से काली वहां गया, तभी से तिस स्थान का नाम कालीदह ऊआ।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! जब श्री कृष्णचंद निकले, तब नंद जसोदा ने आनंद कर बऊत सा दान पुन्य किया; पुत्र का मुख देख नैनों को सुख दिया;

औ सब व्रजबासियों के भी जी में जी आया. इस बीच सांझ हुई तो आपस में कहने लगे, कि अब दिन भर के हारे, थके, भूखे, प्यासे, घर कहां जांयगे, रात की रात यहीं काटें, भोर हुए वृंदावन चलेंगे: यह कह सब सोय रहे।

आधी रात बीत जब गई, भारी कारी आंधी भई।
दावा अग्नि लगी चहुं ओर, अति झर बरैं वृक्ष बन ढोर।

आग लगते ही सब चौंक पड़े, और घबरायकर, चारों ओर देख देख, हाथ पसार पसार लगे पुकारने, कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! इस आग से बेग बचाओ नहीं तो यह छन भर में सब को जलाय भस्म करती है. जब नंद जसोदा समेत व्रजबासियों ने ऐसे पुकार की, तब श्री कृष्णचंद जी ने उठते ही, वह आग पल में पी, सब के मन की चिंता दूर की. भोर होते ही सब वृंदाबन आए घर घर आनंद मंगल हुए बधाये. इति।

CHAPTER XIX.

BALARÁM SLAYS THE DÆMON PRALAMB WITH BLOWS OF HIS FIST.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव बोले महाराज! अब मैं ऋतु बरनन करता हूं, कि जैसे जैसे श्री कृष्णचंद ने तिनमें लीला करी, सो चित दे सुनो. प्रथम ग्रीषम ऋतु आई, तिसने आते ही सब संसार का सुख ले लिया और धरती आकाश को तपाय अग्नि सम किया, पर श्री कृष्ण के प्रताप से वृंदाबन में सदा बसंत ही रहै. जहां घनी घनी कुंजों के वृक्षों पर बेलें लहलहा रहीं, बरन बरन के फूल फूले हुए. तिन पर भौरों के झुंड के झुंड गूंज रहे. आंबों की डालियों पै कोयल कुहुक रहीं; ठंढी ठंढी छाहों में मोर नाच रहे; सुगंध लिये मीठी मीठी पवन बह रही; और एक ओर बन के, यमुना न्यारी ही सोभा दे रही थी. तहां कृष्ण बलराम गायें छोड़ सब सखा समेत आपस में अनूठे अनूठे खेल खेल रहे थे, कि इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बनाय. प्रलंब नाम राक्षस आया तिसे देखते ही श्री कृष्णचंद ने बलदेव जी को सैन से कहा।

अपनो सखा नहीं बलबीर, कपट रूप यह असुर शरीर।
याके बध को करो उपाय, ग्वाल रूप मार्यो नहि जाय।
जब यह रूप धारिहै आपनो, तब तुम याहि ततछन हनो।

इतनी बात बलदेव जी को जताय, श्री कृष्ण जी ने प्रलंब को हंस कर पास बुलाय, हाथ पकड़के कहा।

सबतें नीको भेष तिहारो, भलो कपट बिन मित्र हमारो।

यों कह तिसे साथ ले आधे ग्वाल बाल बांट लिये और आधे बलराम जी को दे, दो

लड़कों को बैठाय, लगे फल फूलों का नाम पूछने, औ बताने. इसमें बताते बताते श्री कृष्ण हारे, बलदेव जीते, तब श्री कृष्ण की ओर वाले बलदेव के साथियों को कांधों पर चढ़ाय ले चले; तहां प्रलंब बलराम जी को सब से आगे ले भागा, औ बन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई. तिस समैं तिस काले काले पहाड़ से पर बलदेव जी ऐसे सोभायमान थे, जैसे स्याम घटा पै चांद; औ कुंडल की दमक बिजली सी चमकती थी; पसीना मेह सा बरसता था. इतनी कथा कथ श्री शुकदेव जी ने राजा परीछित से कहा, महाराज कि जों अकेला पाय वह बलराम जी को मारने को हुआ, तोंही उन्होंने मारे घूंसों के विसे मार गिराया. इति।

CHAPTER XX.

KRISHN EXTINGUISHES A SECOND CONFLAGRATION.

श्री शुकदेव जी बोले, हे राजा! जब प्रलंब को मारके चले बलराम तभी सोंही से सखाओं समेत आन मिले घन स्याम; और जो ग्वाल बाल बन में गायें चराते थे, वे भी असुर मारा सुन गायें छोड़ उधर देखने को गये, तोलों इधर गायें चरती चरती डाभ कांस से निकल, मुंज बन बड़ गईं, वहां से आय दोनों भाई, यहां देखें तो एक भी गाय नहीं।

बिछुरी गैयां बिछुरे ग्वाल, भूले फिरें मूंज बन ताल।
रूखनि चढ़े परस्पर टेरें, लै लै नाम पिछौरी फेरें।

इस में किसी सखा ने आय हाथ जोड़ श्री कृष्ण से कहा, कि महाराज! गायें सब मूंज बन में पैठ गईं, तिन के पीछे ग्वाल बाल न्यारे ढूंढते भटकते फिरते हैं. इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्ण ने कदम पर चढ़, ऊंचे सुर से जों बंसी बजाई तों सुन ग्वाल बाल औ सब गायें मूंज बन को फाड़कर ऐसे आन मिलीं, जैसे सावन भादों की नदी तुंग तरंग को चीर समुद्र में जा मिले, इस बीच देखते क्या हैं, कि चारों ओर से दहड़ दहड़ जलता चला आता है. यह देख ग्वाल बाल औ सखा अति घबराय भय खायकर पुकारे हे कृष्ण! हे कृष्ण! इस आग से बेग बचाओ, नहीं तो अभी छन एक में सब जल मरते हैं. कृष्ण बोले तुम सब अपनी आंखें मूंदो. जद विन्हों ने नैन मूंदे तद श्री कृष्ण जी ने पल भर में आग बुझाय एक और माया करी, कि गायों समेत सब ग्वाल बालों को भांडीर बन में ले आय कहा कि अब आंखें खोल दो।

ग्वाल खोल दृग कहत निहारि, कहां गई वह अग्नि मुरारि।
कब फिर आये बन भंडीर, होत अचंभो यह बलबीर।

ऐसे कह गायें ले सब मिल कृष्ण बलराम के साथ वृंदावन आए, औ सबों ने अपने अपने

घर जाय कहा कि, आज बन में बलराम जी ने प्रलंब नाम राचस को मारा, और मूंज बन में आग लगी थी सो भी हरी के प्रताप से बुझ गई।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने कहा, हे राजा! ग्वाल बालों के मुख से यह बात सुन सब ब्रजबासी देखने को तो गये, पर तिन्होंने कृष्ण चरित्र का कुछ भेद न पाया. इति।

CHAPTER XXI.

A POETICAL DESCRIPTION OF THE APPROACH OF THE RAINY SEASON.

श्री शुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! ग्रीषम की अति अनीति देख, नृप पावस प्रचंड पृथ्वी के पशु पची जीव जंतु की दया बिचार, चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आया; तिस समैं घन जो गरजता था, सोई तो धौंसा बाजता था; और बरन बरन की घटा जो घिर आई थीं, सोई सूर, बीर, रावते थे; तिनके बीच बीच बिजली की दमक, शस्त्र की सी चमक थी; बग पांत ठौर ठौर सेत ध्वजा सी फहराय रही थीं, दादुर मोर कड़खैतों की सी भांति जस बखानते थे, औ बड़ी बड़ी बूंदों की झड़ी बानों की सी झड़ी लगी थी. इस धूम धाम से पावस को आते देख, ग्रीषम खेत छोड़ अपना जीव ले भागा, तब मेघ पिया ने बरस पृथ्वी को सुख दिया. उसने जो आठ महीने पति के बियोग में योग किया था, तिसका भोग भर लिया; कुच गिर शीतल हुए औ गर्भ रहा, तिस में से अठारह भार पुत्र उपजे, सो भी फल फूल भेंट ले ले पिता को प्रनाम करने लगे. उस काल बृंदाबन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी, कि जैसे सिंगार किये कामिनी, और जहां तहां नदी नाले सरोवर भरे हुए, तिन पर हंस सारस सोभा दे रहे; ऊंचे ऊंचे रूखों की डालियां झूम रहीं, उन में पिक, चातक, कपोत, कीर, बैठे कोलाहल कर रहे थे, औ ठांव ठांव सूहे कुसुंभे जोड़े पहरे, गोपी ग्वाल झूलों पै झूल झूल ऊंचे ऊंचे सुरों से मलारें गाते थे; तिनके निकट जाय जाय श्री कृष्ण बलराम भी बाल लीला कर कर अधिक सुख दिखाते थे. इस आनंद से बरषा ऋतु बीती, तब श्री कृष्ण ग्वाल बालों से कहने लगे कि भैया! अब तो सुखदाई सरद ऋतु आई।

सबको सुख भारी अब जान्यों, खाद सुगंध रूप पहिचान्यों।
निशि नचत्र उज्जल आकाश, मानहु निर्गुण ब्रह्म प्रकाश।
चार मास जो बिरमे गेह, भये सरद तिन तजे सनेह।
अपने अपने काजनि धाये, भूप चढ़े तकि देश पराये।

CHAPTER XXII.

IN PRAISE OF THE FLUTE OF KṚISHṆ.

श्री शुकदेव जी बोले कि हे महाराज! इतनी बात कह श्री कृष्णचंद फिर ग्वालबाल साथ ले लीला करने लगे और जब लग कृष्ण बन में धेनु चरावें तब लग सब गोपी घर में बैठीं हरि का जस गावें. एक दिन श्री कृष्ण ने बन में बेनु बजाई, तो बंसी की धुन सुन सारी ब्रज युवती हड़बड़ाय उठ धाईं, औ एक ठौर मिलकर बाट में आ बैठीं; तहां आपस में कहने लगीं, कि हमारे लोचन सुफल तब होंगे, जब कृष्ण के दरशन पावेंगे; अभी तो कान्ह गायों के साथ बन में नाचते गाते फिरते हैं, सांझ समय इधर आवेंगे, तब हमें दरशन मिलेंगे. यों सुन एक गोपी बोली।

सुनो सखी! वह बेनु बजाई, बांस बंश देखो अधिकाई।

इस में इतना क्या गुण है जो दिन भर श्री कृष्ण के मुंह लगी रहती है, और अधरामृत पी आनंद बरस घन सी गाजती है? क्या हम से भी यह प्यारी, जो निस दिन लिये रहते हैं बिहारी!।

मेरे आगे की यह गढ़ी, अब भई सौत बदन पर चढ़ी!

जब श्री कृष्ण इसे पीतांबर से पोंछ बजाते हैं, तब सुर, मुनि, किन्नर, औ गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियों को साथ ले बिमानों पर बैठ बैठ हौंस कर सुन्ने को आते हैं, औ सुनकर मोहित हो जहां के तहां चित्र से रह जाते हैं; ऐसा इसने क्या तप किया है जो सब इसके आधीन होते हैं!।

इतनी बात सुन एक गोपी ने उत्तर दिया, कि पहले तो इसने बांस के बंस में उपज हरि का सुमरण किया, पीछे घाम, सीत, जल ऊपर लिया; निदान टूक टूक हो जलाय धुंआं पिया।

इसे तप करते हैं कैसा, सिद्ध हुई पाया फल ऐसा।

यह सुन कोई ब्रज नारि बोली, कि हम को बेनु क्यों न रची ब्रजनाथ, जो निशि दिन हरि के रहतीं साथ. इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि महाराज! जबतक श्री कृष्ण धेनु चराय बन से न आवें, तबतक नित्त गोपी हरि के गुण गावें. इति।

CHAPTER XXIII.

KṚISHṆ STEALS THE CLOTHES OF THE COWHERDESSES WHILE THEY ARE BATHING, AND COMPELS THEM TO COME NUDE BEFORE HIM TO RECEIVE THEM BACK.

श्री शुकदेव मुनि बोले, कि सरद ऋतु के जाते ही हेमंत ऋतु आई, औ अति जाड़, पाला, पड़ने लगा; तिस काल ब्रज बाला आपस में कहने लगीं, कि सुनो सहेली अगहन के न्हाने से जन्म

जन्म के पातक जाते हैं, और मन की आस पूजती है, यों हमने प्राचीन लोगों के मुख से सुना है. यह बात सुन सब के मन में आई, कि अगहन न्हाइये, निस्संदेह श्री कृष्ण वर पाइये।

ऐसे बिचार, भोर होते ही उठ, वस्त्र आभूषन पहर, सब व्रजबाला मिल, यमुना न्हान आईं: स्नान कर, सूरज को अरघ दे, जल से बाहर आय, माटी की गौर बनाय, चंदन, अक्षत, फूल, फल चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद्य आगे धर, पूजाकर, हाथ जोड़, शिर नाय, गौर को मनायके बोलीं, हे देवी! हम तुम से बार बार यही बर मांगती हैं, कि श्री कृष्ण हमारे पति होय. इस विधि से गोपी नित न्हावें, दिन भर व्रत कर सांझ को दही भात खा भूमि पर सोवें, इस लिये कि हमारे व्रत का फल शीघ्र मिले।

एक दिन सब व्रज बाला मिल स्नान को औघट घाट गईं, औ वहां जाय चीर उतार, तीर पर धर, नग्न हो, नीर में पैठ, लगीं हरि के गुण गाय गाय जल क्रीड़ा करने; तिसी समैं श्री कृष्ण भी बंशी बट की छांह में बैठे धेनु चरावते थे. दैवी इनके गाने का शब्द सुन, वेभी चुपचाप चले आये, और लगे छिपकर देखने. निदान देखते देखते जो कुछ उनके जी में आई, तो सब वस्त्र चुराय कदम पर जा चढ़े, औ गठड़ी बांध आगे धर ली. इतने में गोपी जो देखें तो तीर पै चीर नहीं, तब घबराकर चारों ओर उठ उठ लगीं देखने औ आपस में कहने, कि अभी तो यहां एक चिड़िया भी नहीं आई, बसन कौन हर लेगया माई. इस बीच एक गोपी ने देखा, कि शिर पर मुकुट, हाथ में लकुट, केशर तिलक दिये, बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, कपड़ों की गठड़ी बांधे, मौन साधे, श्री कृष्ण कदंब पै चढे छिपे हुए बैठे हैं. वह देखते ही पुकारी, सखी! वे देखो हमारे चित चोर चीर चोर कदंब पर पोट लिये बिराजते हैं. यह बचन सुन औ सब युवती कृष्ण को देख लजाय, पानी में पैठ, हाथ जोड़, शिर नाय, बिनती कर, हाहा खाय बोलीं।

दीन दयाल, हरण दुख प्यारे, दीजे मोहन चीर हमारे।
ऐसे सुनके कहें कन्हाई, यों नहीं दूंगा नंद दुहाई।
एक एक कर बाहर आओ, तो तुम अपने कपड़े पाओ।

व्रजबाला रिसायके बोलीं, यह तुम भली सीख सीखे हो, जो हम से कहते हो नंगी बाहर आओ: अभी अपने पिता बंधु से जाय कहें, तो वे तुम्हे चोर चोर कर आय गहें: औ नंद जसोदा को जा सुनावें, तो वे भी तुम को सीख भली भांति से सिखावें: हम करती हैं किसी की कान तुम ने मेटी सब पहचान।

इतनी बात के सुनते ही, क्रोध कर, श्री कृष्ण जी ने कहा, कि अब चीर तधी पाओगी जब विन को लिवा लाओगी, नहीं तो नहीं. यह सुन डर कर गोपी बोलीं, दीन दयाल! हमारी सुध के लिवैया, पति के रखैया तो आप हैं, हम किसे लावेंगी? तुम्हारे ही हेतु नेम कर मगशिर मास न्हाती हैं. श्री कृष्ण बोले, जो तुम मन लगाय मेरे लिये अगहन न्हाती हो तो लाज औ कपट

तज आय अपने चीर लो. जद श्री कृष्णचंद ने ऐसे कहा तद गोपी आपस में सोच विचारकर कहने लगीं, कि चलो सखी जो मोहन कहते हैं सोई मानें, क्योंकि ये हमारे तन मन की सब जानते हैं, इनसे लाज क्या? यों आपस में ठान, श्री कृष्ण की बात मान, हाथ से कुच देह दुराय, सब युवती नीर से निकल, शिर नौढ़ाय, जब सनमुख तीर पर जा खड़ी हुईं, तब श्री कृष्ण हंसके बोले, अब तुम हाथ जोड़ आगे आओ तो मैं वस्त्र दूं. गोपी बोलीं।

काहे कपट करत नंदलाल, हम सूधी भोरी ब्रज बाल।
परी ठगोरी सुधि बुधि गई, ऐसी तुम हरि लीला ठई।
मन संभारिके करि हैं लाज, अब तुम कछू करो ब्रजराज।

इतनी बात कह, जद गोपियों ने हाथ जोडे, तो श्री कृष्णचंद जी ने बस्त्र दे उनके पास आय कहा. कि तुम अपने मन में कुछ इस बात का बिलग मत मानो, यह मैं ने तुम्हें सीख दी है; क्योंकि जल में बरुण देवता का बास है, इस्से जो कोई नग्न हो जल में न्हाता है, तिसका सब धर्म बह जाता है; तुम्हारे मन की लगन देख मगन हो मैं ने यह भेद तुम से कहा, अब अपने घर जाओ, फिर कातिक महीने में आय मेरे साथ रास कीजियो।

श्री शुकदेव मुनि बोले कि महाराज! इतना बचन सुन प्रसन्न हो, संतोष कर, गोपी तो अपने घरों को गईं; औ श्री कृष्ण बंसीवट में आय, गोप गाय ग्वाल बाल सखाओं को संग ले आगे चले, तिस समैं चारों ओर सघन बन देख देख वृक्षों की बड़ाई कहने लगे, कि देखो ये संसार में आ अपने पर कितना दुख सह लोगों को सुख देते हैं! जगत में ऐसेही परकाजियों का आना सुफल है. यों कह आगे बढ़ यमुना के निकट जा पहुंचे. इति।

CHAPTER XXIV.

KRIṢHṆ SENDS TO ASK FOOD OF SOME BRÁHMINS WHO ARE IN THE ACT OF SACRIFICING. THEY RUDELY REFUSE THE REQUEST. THEIR WIVES, HOWEVER, COME AND SUPPLY KRIṢHṆ AND HIS FOLLOWERS WITH WHAT THEY REQUIRE.

श्री शुकदेव जी बोले, कि जब श्री कृष्ण यमुना के पास पहुंच रूख तले लाठी टेक खड़े हुए, तब सब ग्वाल बाल औ सखाओं ने आय, कर जोड़ कहा, कि महाराज! हमें इस समैं बड़ी भूख लगी है; जो कुछ छाक लाये थे सो खाई, पर भूख न गई. कृष्ण बोले, देखो! वह जो धुआं दिखाई देता है, मथुरिये कंस के डर से छिपके यज्ञ करते हैं, उनके पास जा हमारा नाम ले दंडवत कर हाथ बांध खड़े हो, दूर से भोजन ऐसे दीन हो मांगियो, जैसे भिखारी आधीन हो मांगता है।

यह बात सुन ग्वाल चले चले वहां गये, जहां माथुर बैठे यज्ञ कर रहे थे. जातेही उन्हों ने प्रनाम कर निपट आधीनता से कर जोड़के कहा, महाराज! आप को दंडवत कर हमारे हाथ श्री कृष्णचंद जी ने यह कहला भेजा है, कि हम को अति भूख लगी है, कुछ कृपा कर भोजन भेज दीजे. इतनी बात ग्वालों के मुख से सुन मथुरिये क्रोधकर बोले तुम तो बड़े मूर्ख हो जो हम से अभी यह बात कहते हो; बिन होम होचुके किसी को कुछ न देंगे; सुनो जब यज्ञ कर लेंगे, और कुछ बचेगा सो बांट देंगे. फिर ग्वालों ने उनसे गिड़गिड़ाके बहुतेरा कहा कि महाराज! घर आये भूखे को भोजन करवाने से बड़ा पुन्य होता है. पर वे इनके कहने को कुछ ध्यान में न लाये, बरन इनकी ओर से मुंह फेर आपस में कहने लगे।

बड़े मूढ़ पशुपालक नीच, मांगत भात होम के बीच.

तब ये वहां से निरास हो, अछताय पछताय श्री कृष्ण के पास आय बोले, महाराज! भीख मांग मान महत गंवाया, तौभी खाने को कुछ हाथ न आया, अब क्या करें. श्री कृष्ण जी ने कहा, कि अब तुम तिनकी स्त्रियों से जा मांगो, वे बड़ी दयावंत धरमात्मा हैं, उनकी भक्ति देखियो, वे तुम्हें देखते ही आदर मान से भोजन देंगीं. यों सुन ये फिर वहां गये, जहां वे बैठीं रसोई करती थीं. जाते ही उन से कहा, कि बन में श्री कृष्ण को धेनु चराते क्षुधा भई है, सो हमें तुम्हारे पास पठाया है, कुछ खाने को होय तो दो. इतना बचन ग्वालों के मुख से सुनते ही वे सब प्रसन्न हो कंचन के थालों में षट रस भोजन भर ले ले उठ धाईं औ किसी की रोकी न रुकीं।

एक मथुरनी के पति ने जो न जाने दिया, तो वह ध्यान कर देह छोड़ सब से पहले ऐसे जा मिली कि जैसे जल जल में जा मिले; औ पीछे से सब चली चली वहां आईं, जहां श्री कृष्णचंद ग्वाल बाल समेत वृक्ष की छांह में सखा के कांधे पर हाथ दिये, त्रिभंगी छवि किये, कंवल का फूल कर लिये खड़े थे; आतेही थाल आगे धर, दंडवत कर, हरि मुख देख देख, आपस में कहनें लगीं, कि सखी! येई है नंदकिशोर, जिन का नाम सुन सुन ध्यान धरती थीं, अब चंदमुख देख लोचन सुफल कीजे, औ जीतब का फल लीजे. ऐसे बतराय, हाथ जोड़, बिनती कर, श्री कृष्ण से कहने लगीं, कि कृपानाथ! आप की कृपा बिन तुम्हारा दरशन कब किसी को होता है, आज धन्य भाग हमारे जो दरशन पाया, औ जन्म जन्म का पाप गंवाया।

मूरख विप्र कृपन अभिमानी, श्री मद लोभ मति मानी.
ईश्वर को मानुष कर माने, माया अंध कहा पहिचाने!
जप तप यज्ञ जासु हित कीजे, ताकों कहा न भोजन दीजे!

महाराज! वही धन्य है धन जन लाज, जो आवे तुम्हारे काज, औ सोई है तप जप ज्ञान, जिस में आवे तुम्हारा नाम. इतनी बात सुन श्री कृष्णचंद उनकी क्षेम कुशल पूछ कहने लगे कि।

मत तुम मुजको करो प्रनाम, मैं हूं नंद महर का स्याम.

जो ब्राह्मण की स्त्री से आप को पुजवाते हैं, सो क्या संसार में कुछ बड़ाई पाते हैं? तुम ने हमें भूखे जान दया कर बन में आन सुध ली, अब हम यहां तुम्हारी क्या पऊनई करें।

वृंदावन घर दूर हमारा, किस विधि आदर करें तुम्हारा?

जो वहां होते तो कुछ फूल फल ला आगे धरते, तुम हमारे कारण दुख पाय जंगल में आईं, औ यहां हम से तुम्हारी टहल कुछ न बन आई, इस बात का पछतावाही रहा. ऐसे शिष्टाचार कर फिर बोले तुम्हें आये बड़ी बेर भई, अब घर को सिधारिये; क्योंकि ब्राह्मण तुम्हारे तुम्हारी बाट देखते होंगे. इस लिये कि स्त्री बिन यज्ञ सुफल नहीं. यह बचन श्री कृष्ण से सुन, वे हाथ जोड़ बोलीं, महाराज! हमने आप के चरन कंवल से स्नेह कर कुटुंब की माया सब छोड़ी क्योंकि जिनका कहा न मान हम उठ धाईं, तिनके यहां अब कैसे जांय? जो वे घर में न आने दें तो फिर कहां बसें. इस्से आप की सरन में रहें सो भला; और नाथ! एक नारि हमारे साथ तुम्हारे दरशन की अभिलाषा किये आवती थी, विसके पति ने रोक रक्खा, तब उस स्त्री ने अकुलाकर अपना जीव दिया. इस बात के सुनते ही हंसकर श्री कृष्णचंद ने विसे दिखाया जो देह छोड़ आई थी. कहा कि, सुनो! जो हरि से हित करता है, तिसका बिनास कभी नहीं होता, यह तुम से पहले आ मिली है।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! विसको देखते ही तो एक बार सब अचंभे रहीं, पीछे ज्ञान हुआ, तद हरि गुण गाने लगीं. इस बीच श्री कृष्णचंद ने भोजन कर उनसे कहा, कि अब स्थान को प्रस्थान कीजे, तुम्हारे पति कुछ न कहेंगे. जब श्री कृष्ण ने विन्हें ऐसे समझाय बुझायके कहा, तब वे बिदा हो, दंडवत कर, अपने घर गईं; औ विनके स्वामी सोच विचारके पछताय पछताय कह रहे थे. कि हमने कथा पुरान में सुना है, जो किसी समैं नंद जसोदा ने पुत्र के निमित्त बड़ा तप किया था, तहां भगवान ने आ उन्हें यह बर दिया, कि हम यदुकुल में औतार ले तुम्हारे यहां जांयगे. वेई जन्म ले आये हैं. जिन्हों ने ग्वाल बालों के हाथ भोजन मंगवाय भेजा था, हमने यह क्या किया जो आदि पुरुषने मांगा औ भोजन न दिया।

यज्ञ धर्म जा कारण ठये, तिनके सनमुख आज न भये.
आदि पुरुष हम मानुष जान्यौ, नहीं बचन ग्वालन को मान्यौ.
हम मूरख पापी अभिमानी, कीनी दया न हरि गति जानी.

धिक्कार है हमारी मति को, औ इस यज्ञ करने को, जो भगवान को पहचान सेवा न करी: हम से नारी ही भलीं, कि जिन्हों ने जप, तप, यज्ञ बिन किये, साहस कर, जा श्री कृष्ण के दरशन किये, औ अपने हाथों विन्हें भोजन दिया. ऐसे पछताय, मथुरियों ने अपनी स्त्रीयों के सनमुख हाथ जोड़ कहा, कि धन्य भाग तुम्हारे. जो हरि का दरशन कर आईं, तुम्हारा ही जीवन सुफल है. इति।

CHAPTER XXV.

KRISHN CAUSES THE COWHERDS TO ABANDON THE WORSHIP OF INDRA AND PAY THEIR DEVOTIONS TO THE MOUNTAIN GOBARDHAN. HE HIMSELF PERSONIFIES THE SPIRIT OF THE MOUNTAIN.

श्री शुकदेव जी बोले, कि महाराज! जैसे श्री कृष्णचंद ने गिर गोबर्धन उठाया, औ इंद्र का गर्व हरा, अब सोई कथा कहता हूं तुम चित दे सुनो; कि सब ब्रजवासी बरसवें दिन, कातिक बदी चौदस को न्हाय धोय, केसर चंदन से चौक पुराय, भांति भांति की मिठाई औ पकवान धर, धुप दीप कर, इंद्र की पुजा किया करें. यह रीति उनके यहां परंपरा से चली आती थी. एक दिन वही दिवस आया, तब नंद जी ने बहुत सी खाने की सामा बनवाई. औ सब ब्रजवासियों के भी घर घर सामग्री भोजन की हो रही थी. तहां श्री कृष्ण ने आ मा से पूछा, कि मा जी! आज घर घर में पकवान मिठाई जो हो रही है, सो क्या है? इसका भेद मुझे समझाकर कहो, जो मेरे मन की दुवधा जाय. जसोदा बोली कि, बेटा! इस समें मुझे बात कहने का अवकाश नहीं, तुम अपने पिता से जा पूछो, वे बुझाय कर कहेंगे. यह सुन नंद उपनंद के पास आय, श्री कृष्ण ने कहा कि, पिता! आज किस देवता के पूजने की ऐसी धुम धाम है, कि जिनके लिये पकवान मिठाई हो रही है? वे कैसे भक्ति मुक्ति बर के दाता हैं? विनका नाम औ गुण कहो जो मेरे मन का संदेह जाय।

नंदमहर बोले, कि यह भेद तू ने अबतक नहीं समझा? कि मेघों के पति जो हैं सुरपति, तिन की पूजा है, जिन की कृपा से संसार में रिद्धि सिद्धि मिलती है, औ तृण, जल, अन्न, होता है; बन उपवन फुलते फलते हैं; विन से सब जीव, जंतु, पशु, पक्षी, आनंद में रहते हैं. यह इंद्र पूजा की रीति हमारे यहां पुरुषाओं के आगे से चली आती है, कुछ आज ही नई नहीं निकाली. नंद जी से इतनी बात सुन श्री कृष्णचंद बोले, हे पिता! जो हमारे बड़ों ने जाने अनजाने इंद्र की पूजा की तो की, पर अब तुम जान बुझकर धर्म का पंथ छोड़ ऊबट बाट क्यों चलते हो? इंद्र के मान्ने से कुछ नहीं होता, क्योंकि वह भक्ति मुक्ति का दाता नहीं, औ विस्से रिद्धि सिद्धि किसने पाई है, यह तुम हीं कहो विन ने किसे बर दिया है?।

हां एक बात यह है, कि तप यज्ञ करने से देवताओं ने अपना राजा बनाय, इंद्रासन दे रक्खा है, इस्से कुछ परमेश्वर नहीं हो सकता. सुनो, जब असुरों से बारबार हारता है, तब भागके कहीं जा छिपकर अपने दिन काटता है; ऐसे कायर को क्यों मानो, अपना धर्म किस लिये नहीं पहचानो? इंद्र का किया कुछ नहीं हो सकता; जो कर्म में लिखा है सोई होता है; सुख, संपत, दारा, भाई, बंधु, ये भी सब अपने धर्म कर्म से मिलते हैं, औ आठ मास जो सूरज जल सोखता है सोई चार महीने बरसाता है, तिसी से पृथ्वी में तृण, जल, अन्न होता है, और

ब्रह्मा ने जो चारों बरण बनाये हैं, ब्राह्मण, छत्री, वैश्य, सूद्र, तिनके पीछे भी एक एक कर्म लगा दिया है, कि ब्राह्मण तो बेद बिद्या पढ़े; छत्री सब की रछा करें; वैश्य खेती बनज; औ सूद्र इन तीनों की सेवा में रहै।

पिता ! हम वैश्य हैं, गायें बढ़ीं, इस्से गोकुल हुआ, तिसी से नाम गोप पड़ गया. हमारा यही कर्म है कि खेती बनज करैं, औ गौ ब्राह्मण की सेवा में रहैं; वेद की आज्ञा है कि अपनी कुल रीति न छोड़िये; जो लोग अपना धर्म तज और का धर्म पालते हैं सो ऐसे हैं, जैसे कुल वधू हो पर पुरुष से प्रीति करै, इस्से अब इंद्र की पूजा छोड़ दीजै, औ बन पर्वत की पूजा कीजै; क्योंकि हम बनवासी हैं, हमारे राजा वेई हैं, जिनके राज में हम सुख से रहते हैं, तिन्हें छोड़ और को पूजना हमें उचित नहीं, इस्से अब सब पकवान मिठाई अन्न ले चलो, और गोवर्धन की पूजा करो।

इतनी बात के सुनते ही नंद उपनंद उठकर वहां गये, जहां बड़े बड़े गोप अथाईं पर बैठे थे. इन्होंने जाते ही सब श्री कृष्ण की कही बातें विन्हें सुनाईं. वे सुनते ही बोले, कि कृष्ण सच कहता है, तुम बालक जान उसकी बात मत टालो; भला तुमहीं बिचारो कि इंद्र कौन है, और हम किस लिये विसे मानते हैं, जो पालता है उसकी तो पूजा ही भुलाई।

हमें कहा सुरपति सों काज, पूजैं बन सरिता गिरि राज.

ऐसे कह फिर सब गोपों ने कहा।

भलो मतो कान्हर कियौ, तजिये सिगरे देव,
गोवर्धन पर्वत बड़ो, ता की कीजै सेव.

यह बचन सुनते ही नंद जी ने प्रसन्न हो गांव में ढंढोरा फिरवाय दिया, कि कल हम सारे ब्रजवासी चलकर गोवर्धन की पूजा करेंगे; जिस जिस के घर में इंद्र पूजा के लिये पकवान मिठाई बनी है, सो सब ले ले भोर ही गोवर्धन पै जाइयो. इतनी बात सुन सकल ब्रजवासी दूसरे दिन भोर के तड़के ही उठ, स्नान ध्यान कर, सब सामग्री झालों, परातों, थालों, डलों, हंडों, चरूओं में भर, गाड़ों, बहंगियों पर रखवाय, गोवर्धन को चले; तिसी समैं नंद उपनंद भी कुटुंब समेत सामा ले सब के साथ हो लिये, और बाजे गाजे से चले चले सब मिल गोवर्धन पहुंचे।

वहां जाय पर्वत के चारों ओर झाड़ बुहार जल छिड़क, घेवर, बाबर, जलेबी, लड्डू, खुरमे, इमरती, फेनी, पेड़े, बरफी, खाजे, गूंझे, मठड़ी, सीरा, पूरी, कचौरी, सेव, पापड़, पकौड़ी आदि पकवान और भांति भांति के भोजन, विंजन, चुन चुन रख दिये, इतने कि जिनसे पर्वत छिप गया, औ ऊपर फूलों की माला पहराय, बरण बरण के पाटंबर तान दिये।

तिस समैं की शोभा बरनी नहीं जाती; गिरि ऐसा सुहावना लगता था, जैसे किसी ने गहने कपड़े पहराय, नख सिख से सिंगारा होय; और नंद जी ने पुरोहित बुलाय, सब ग्वाल बालों को साथ ले, रोली, अछत, पुष्प चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद्य कर, पान, सुपारी, दछिना धर, वेद

की विधि से पूजा की. तब श्री कृष्ण ने कहा, कि अब तुम शुद्ध मन से गिरिराज का ध्यान करो तो वे आय दरशन दे भोजन करें।

श्री कृष्ण से यों सुनते ही नंद जसोदा समेत सब गोपी गोप कर जोड़, नैन मूंद, ध्यान लगाय, खड़े हुए; तिस काल नंदलाल उधर तो अति मोटी भारी दूसरी देह धर, बड़े बड़े हाथ पांव कर, कंवल नैन, चंदमुख हो, मुकुट धरे, बनमाल गरे, पीत बसन औ रतन जटित आभूषण पहरे, मुंह पसारे, चुपचाप परवत के बीच से निकले; और इधर आप ही अपने दूसरे रूप को देख सब से पुकारके कहा, देखो! गिरिराज ने प्रगट होय दरसन दिया, जिनकी पूजा तुमने जी लगाय करी है. इतना बचन सुनाय, श्री कृष्णचंद जी ने गिरिराज को दंडवत की; उन की देखा देखी सब गोपी गोप प्रणाम कर आपस में कहने लगे, कि इस भांति इंद्र ने कब दरशन दिया था? हम वृथा उसकी पूजा किया किये, और क्या जानिये पुरुषाओं ने ऐसे प्रत्यक्ष देव को छोड़ क्यों इंद्र को माना था, यह बात समझी नहीं जाती।

यों सब बतराय रहे थे, कि श्री कृष्ण बोले, अब देखते क्या हो, जो भोजन लाये हो सो खिलाओ. इतना बचन सुनते ही, गोपी गोप षटरस भोजन थाल परातों में भर भर उठाय उठाय लगे देने, औ गोवर्धन नाथ हाथ बढ़ाय बढ़ाय ले ले भोजन करने; निदान जितनी सामग्री नंद समेत सब ब्रजवासी लेगये थे, सो खाई, तब वह मूरत पर्वत में समाई. इस भांति अद्भुत लीला कर श्री कृष्णचंद सब को साथ ले, पर्वत की परिक्रमा दे, दूसरे दिन गोवर्धन से चल, हंसते खेलते वृंदावन आए; तिस काल घर घर आनंद मंगल बधाए होने लगे, औ ग्वाल बाल सब गाय बछड़ों को रंग रंग उनके गले में गंडे घंटालियां घूंघरू बांध बांध न्यारेही कुतूहल कर रहे थे. इति।

CHAPTER XXVI.

INDRA ENDEAVOURS TO DESTROY THE COWHERDS WITH A DELUGE OF RAIN. KRISHN SUPPORTS THE MOUNTAIN GOBARDHAN ON HIS FINGER AND SHELTERS THE COWHERDS.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले।

सुरपति की पूजा तजी, करि पर्वत की सेव.
तबहि इंद्र मन कोपिकै, सबै बुलाए देव.

जब सारे देवता इंद्र के पास गये, तब वह उनसे पूछने लगा, कि तुम मुझे समझाकर कहो, कल ब्रज में पूजा किस की थी? इस बीच नारद जी आय पहुंचे तो इंद्र से कहने लगे, कि सुनो महाराज! तुम्हें सब कोई मानता है, पर एक ब्रजबासी नहीं मानते, क्योंकि नंद के एक बेटा

ङुश्रा है, तिसी का कहा सब करते है, विन्होंने तुम्हारी पूजा मेट कल सब मे पर्वत पुजवाया. इतनी बात के सुनते ही इंद्र क्रोधकर बोला, कि ब्रजबासियों के धन बढ़ा है, इसी से विन्हें अति गर्व ङुश्रा है।

जप तप यज्ञ तज्यौ ब्रत मेरौ, काल दरिद्र बुलायौ नेरौ.
मानुष कृष्ण देव कै मानै, ताकी बातें सांची जानै.
वह बालक मूरख अज्ञान, बङ्ग बादी राखै अभिमान.
अब हौं उनको गर्व परिहरौं, पशु खोऊं लक्ष्मी बिन करौं.

ऐसे बकझक खिजलायकर सुरपति ने मेघपति को बुलाय भेजा; वह सुनते ही डरता कांपता हाथ जोड़ सनमुख आ खड़ा ङुश्रा; विसे देखते ही इंद्र तेह कर बोला कि तुम अभी अपना सब दल साथ ले जाओ, औ गोवर्द्धन पर्वत समेत ब्रज मंडल को बरस बहाओ, ऐसा कि कहीं गिरि का चिन्ह औ ब्रजवासियों का नाम न रहे।

इतनी आज्ञा पाय, मेघपति दंडवत कर, राजा इंद्र सें बिदा ङुश्रा, और उसने अपने स्थान पर आय बड़े बड़े मेघों को बुलायके कहा, सुनो, महाराज की आज्ञा है, कि तुम अभी जाय ब्रज मंडल को बरसके बहा दो. यह बचन सुन, सब मेघ अपने दल बादल ले ले मेघपति के साथ हो लिये. विसने आतेही ब्रजमंडल को घेर लिया औ गरज गरज बड़ी बड़ी बूंदों से लगा मूसलाधार जल बरसावने, औ उंगली से गिरि को बतावने।

इतनी कथा कथ, श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, कि महाराज! जब ऐसे चङुंओर से घनघोर घटा अखंड जल बरसाने लगा, तब नंद जसोदा समेत सब गोपी ग्वाल बाल भय खाय, भींगते, थरथर कांपते, श्री कृष्ण के पास जाय पुकारे, कि हे कृष्ण! इस महा प्रलय के जल से कैसे बचेंगे? तब तो तुमने इंद्र की पूजा मेट पर्वत पुजवाया, अब बेग उस को बुलाइये जो आय रक्षा करे, नहीं तो क्षण भर में नगर समेत सब डूब मरते हैं. इतनी बात सुन, और सब को भयातुर देख, श्री कृष्णचंद्र बोले, कि तुम अपने जी में किसी बात की चिंता मत करो गिरिराज अभी आय तुम्हारी रक्षा करते हैं. यों कह गोवर्द्धन को तेज से तपाय अग्नि सम किया, औ बायें हाथ की छिंगुली पर उठाय लिया. तिस काल सब ब्रजबासी अपने ढोरों समेत आ उसके नीचे खड़े ङुए, औ श्री कृष्णचंद्र को देख देख अचरज कर आपस में कहने लगे।

है कोऊ आदि पुरुष औतारी, देवन ह्न कौ देव मुरारी.
मोहन मानुष कैसो भाई, अंगुरी पर क्यों गिरि ठहराई!

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव मुनि राजा परीक्षित से कहने लगे, कि उधर तो मेघपति अपना दल लिये क्रोध करकर मूसलाधार जल बरसाता था, औ इधर पर्वत पै गिर छनाक तवे की बूंद हो जाता था. यह समाचार सुन, इंद्र भी कोप कर आप चढ़ आया, और लगातार

उसी भांति सात दिन बरसा, पर ब्रज में हरि प्रताप से एक बूंद भी न पड़ी. जब सब जल निबड़ा, तब मेघों ने आ हाथ जोड़ कहा, कि हे नाथ! जितना महाप्रलय का जल था सबका सब हो चुका, अब क्या करें? यों सुन इंद्र ने अपनें ज्ञान ध्यान से बिचारा, कि आदि पुरुष ने औतार लिया, नहीं तो किस में इतनी सामर्थ थी जो गिरि धारण कर ब्रज की रक्षा करता? ऐसे सोच समझ अछता पछता मेघों समेत इंद्र अपने स्थान को गया, और बादल उघड़ प्रकाश हुआ; तब सब ब्रजबासियों ने प्रसन्न हो श्री कृष्ण से कहा, महाराज! अब गिरि उतार धरिये, मेघ जाता रहा. यह बचन सुनते ही, श्री कृष्णचंद ने पर्वत जहां का तहां रख दिया. इति।

CHAPTER XXVII.

ASTONISHMENT OF THE COWHERDS AT THIS LAST EXPLOIT OF KRISHN.

श्री शुकदेव बोले कि, जद हरि ने गिरि कर से उतार धरा, तिस समें सब बड़े बड़े गोप तो इस अद्भुत चरित्र को देख यों कह रहे थे, कि जिस की शक्ति ने इस महाप्रलय से आज ब्रजमंडल बचाया तिसे हम नंद सुत कैसे कहेंगे? हां किसी समय नंद जसोदा ने महा तप किया था, इसी से भगवान ने आ इनके घर जन्म लिया है; औ ग्वाल बाल आय आय श्री कृष्ण के गले मिल मिल पूछने लगे, कि भैया! तू ने इस कोमल कमल से हाथ पर कैसे ऐसे भारी पर्वत का बोझ संभाला? औ नंद जसोदा करुना कर पुत्र को हृदय लगाय, हाथ दाब उंगली चटकाय, कहने लगे, कि सात दिन गिरि कर पर रक्खा हाथ दुखता होयगा; और गोपी जसोदा के पास आय पिछली सब कृष्ण की लीला गाय कहने लगीं।

यह जो बालक पूत तिहारो, चिर जीवो ब्रज को रखवारो.
दानव दैयत असुर संहारे, कहां कहां ब्रज जन न उबारे!
जैसी कही गर्ग ऋषि राई, सोइ सोइ बात होति है आई. इति।

CHAPTER XXVIII.

INDRA MAKES HIS SUBMISSION TO KRISHN.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! भोर होते ही सब गायें औ ग्वाल बालों को संग कर, अपनी अपनी छाक ले कृष्ण बलराम बेनु बजाते औ मधुर मधुर सुर से गाते जों धेनु चरावन बन को चले, तों राजा इंद्र सकल देवताओं को साथ लिये, कामधेनु को आगे किये, ऐरावत हाथी पर चढ़ा, सुरलोक से चला चला वृंदावन में आय, बन की बाट रोक खड़ा हुआ; जद श्री कृष्णचंद उसे दूर से दिखाई दिये, तद गज से उतर, नंगे पाओं, गले में कपड़ा डाले, थरथर

कांपता आ श्री कृष्ण के चरनों पर गिरा, और पछताय पछताय रो रो कहने लगा, कि हे ब्रजनाथ! मुज पर दया करो।

मैं अभिमान गर्व अति किया, राजस तामस में मन दिया.
धन मद कर संपति सुख माना, भेद न कछू तुम्हारा जाना.
तुम परमेश्वर सब के ईस, और दूसरो को जगदीस.
ब्रह्मा रुद्र आदि बर दाई, तुम्हरी दई संपदा पाई.
जगत पिता तुम निगम निबासी, सेवत नित कमला भई दासी.
जन के हेत लेत औतार, तब तब हरत भूमि को भार.
दूर करो सब चूक हमारी, अभिमानी मूरख हों भारी.

जब ऐसे दीन हो इंद्र ने स्तुति करी, तब श्री कृष्णचंद दयाल हो बोले, कि अब तो तू कामधेनु के साथ आया, इस से तेरा अपराध क्षमा किया, पर फिर गर्व मत कीजो, क्योंकि गर्व करने से ज्ञान जाता है, औ कुमति बढ़ती है, उसी से अपमान होता है।

इतनी बात श्री कृष्ण के मुख से सुनते ही, इंद्र ने उठकर वेद की बिधि से पूजा की, और गोविन्द नाम धर चरनामृत ले परिक्रमा करी. तिस समय गंधर्व भांति भांति के बाजे बजा बजा श्री कृष्ण का जस गाने लगे, औ देवता अपने बिमानों में बैठे आकाश से फूल बरसावने; उस काल ऐसा समां ऊआ कि मानो फेरकर श्री कृष्ण ने जन्म लिया. जब पूजा से निचिंत हो इंद्र हाथ जोड़ सनमुख खड़ा ऊआ, तब श्री कृष्ण ने आज्ञा दी, कि अब तुम कामधेनु समेत अपने पुर जाओ, आज्ञा पाते ही कामधेनु औ इंद्र बिदा होय, दंडवत कर, इंद्रलोक को गये; और श्री कृष्णचंद गौ चराय सांझ ऊए सब ग्वाल बालों को लिये बृंदावन आए; उन्होंने अपने अपने घर जाय जाय कहा, आज हमने हरि प्रताप से इंद्र का दरशन बन में किया।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, राजा! यह जो श्री गोविंद कथा मैं ने तुम्हें सुनाई, इसके सुन्ने से संसार में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थ मिलते हैं. इति।

CHAPTER XXIX.

NAND WHILE BATHING IS SEIZED BY THE MYRMIDONS OF VARUNA, THE GOD OF WATER, AND IS RELEASED BY KRISHN.

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! एक दिन नंद जी ने संयम कर एकादशी ब्रत किया; दिन तो स्नान ध्यान भजन जप पूजा में काटा, औ रात्रि जागरण में बिताई; जब छः घड़ी रैन रही, औ द्वादशी भई, तब उठके देह शुद्ध कर, भोर ऊआ जान, धोती अंगोछा झारी ले, यमुना न्हान चले, तिनके पीछे कई एक ग्वाल भी हो लिये, तीर पर जाय, प्रनाम कर, कपड़े उतार, नंद जी जों नीर में पैठे, तों बरुन के सेवक जो जल की चौकी देते थे, कि कोई रात को

न्हाने न पावे, तिन्होंने जा बरुन से कहा, कि महाराज! कोई इस समैं यमुना में न्हाय रहा है, हमें क्या आज्ञा होती है? बरुन बोला, तिसे अभी पकड़ लाओ. आज्ञा पाते ही सेवक फिर वहां आए, जहां नंद जी स्नान कर जल में खड़े जप करते थे. आते ही अचानक नागफांस डाल नंद जी को बरुन के पास ले गये; तब नंद जी के साथ जो ग्वाल गये थे, तिन्होंने आय, श्री कृष्ण से कहा कि, महाराज! नंदराय जी को बरुन के गन यमुना तीर से पकड़, बरुन लोक को ले गये. इतनी बात के सुनते ही, श्री गोबिंद क्रोध कर उठ धाये, औ पल भर में बरुन के पास जा पहुंचे. इन्हें देखते ही वह उठ खड़ा हुआ, और हाथ जोड़ बिनती कर बोला।

सुफल जन्म है आज हमारौ, पायौ यदुपति दरस तुम्हारौ.
कीजे दोष दूर सब मेरे, नंद पिता इस कारण घेरे.
तुम कौ सब के पिता बखाने, तुम्हरे पिता नहीं हम जाने.

रात को न्हाते देख, अनजाने गन पकड़ लाये; भला इसी मिस मैंने दरसन आप के पाये, अब दया कीजे, मेरा दोष चित्त में न लीजे. ऐसे अति दीनता कर, बहुत सी भेट लाय, नंद औ श्री कृष्ण के आगे धर, जद बरुन हाथ जोड़, सिर नाय सनमुख खड़ा हुआ, तद श्री कृष्ण भेट ले पिता को साथ कर वहां से चल वृंदाबन आए. इनको देखते ही सब ब्रजबासी आय मिले. तिस समैं बड़े बड़े गोपों ने नंदराय से पूछा, कि तुम्हें बरुन के सेवक कहां ले गये थे? नंद जी बोले, सुनो! जो वे यहां से पकड़ मुझे बरुन के पास ले गये, तोंहीं पीछे से श्री कृष्ण पहुंचे; इन्हें देखते ही वह सिंहासन से उतर, पाओं पर गिर, अति बिनती कर कहने लगा, नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजे, मुज से अनजाने यह दोष हुआ सो चित्त में न लीजे. इतनी बात नंद जी के मुख से सुनते ही गोप आपस में कहने लगे कि भाई! हमने तो यह तभी जाना था जब श्री कृष्णचंद ने गोबर्धन धारण कर ब्रज की रक्षा करी, कि नंद महर के घर में आदि पुरुष ने आय औतार लिया है।

ऐसे आपस में बतराय, फिर सब गोपों ने हाथ जोड़ श्री कृष्ण से कहा कि, महाराज! आपने हमें बहुत दिन भरमाया, पर अब सब भेद तुम्हारा पाया, तुम्हीं जगत के करता, दुख हरता हो, त्रिलोकी नाथ! दया कर अब हमें बैकुंठ दिखाइये. इतना बचन सुन श्री कृष्ण जी ने छिन भर में बैकुंठ रच तिन्हें ब्रज ही में दिखाया. देखते ही ब्रजबासियों को ज्ञान हुआ, तो कर जोड़ सिर झुकाय बोले, हे नाथ! तुम्हारी महिमा अपरंपार है, हम कुछ कह नहीं सकते; पर आप की कृपा से आज हमने यह जाना कि तुम नारायण हो, भूमि का भार उतारने को संसार में जन्म ले आए हो।

श्री शुकदेव जी बोले कि महाराज! जब ब्रजबासियों ने इतनी बात कही, तभी श्री कृष्णचंद ने सब को मोहित कर, जो बैकुंठ की रचना रची थी सो उठाय ली, औ अपनी माया फैलाय दी, तो सब गोपों ने सपना सा जाना, और नंद जी ने भी माया के बस हो श्री कृष्ण को अपना पुत्र ही कर माना. इति।

CHAPTER XXX.

KRISHṆ SPORTS WITH THE COWHERDESSES. HE TAKES THEM TO THE LAKE MÁNASAROVAR.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले।

जैसे हरि गोपिन सहित कीनौ रास बिलास,
सो पंचाध्याई कहौं जैसी बुद्धि प्रकास.

जब श्री कृष्ण जी ने चीर हरे थे, तब गोपियों को यह वचन दिया था कि हम कार्त्तिक महीने में तुम्हारे साथ रास करेंगे, तभी से गोपी रास की आस किये मन में उदास रहें, औ नित्त उठ कात्तिक मास ही को मनाया करें; दैवो उनके मनाते मनाते सुखदाई सरद ऋतु आई।

लाग्यौ जब तें कातिक मास, घाम सीत बरषा कौ नास.
निर्मल जल सरवर भर रहे, फूले कंवल होय डहडहे.
कुमद चकोर कंत कामिनी, फूलहिं देख चंद्र जामिनी.
चकई मिलन कंवल कुम्हिलाने, जे निज मित्र भानु कौं माने.

ऐसे कह, श्री शुकदेव मुनि फिर बोले कि, पृथ्वीनाथ! एक दिन श्री कृष्णचंद कार्त्तिकी पून्यो की रात्रि को घर से निकल बाहर आय, देखें तो निर्मल आकाश में तारे छिटक रहे हैं; चांदनी दसों दिसा में फैल रही है; सीतल सुगंध सहित मंद गति पौन बह रही है; औ एक ओर सघन बन की छबि अधिक ही सोभा दे रही है. ऐसा समा देखते ही उनके मन में आया, कि हम ने गोपियों को यह वचन दिया है जो सरद ऋतु में तुम्हारे साथ रास करेंगे, सो पूरा किया चाहिये. यह बिचार कर, बन में जाय, श्री कृष्ण ने बांसुरी बजाई; बंसी की धुनि सुनि सब ब्रज युवती बिरह की मारी कामातुर हो अति घबराईं; निदान कुटुंब की माया छोड़, कुल कान पटक, गृहकाज तज, हड़बड़ाय, उलटा पुलटा सिंगार कर उठ धाईं. एक गोपी जो अपने पति के पास से जों उठ चली, तों उसके पति ने बाट में जा रोका, औ फेरकर घर ले आया, जाने न दिया, तब तो वह हरि का ध्यान कर देह छोड़ सब से पहले जा मिली, बिसके चित्त की प्रीति देख श्री कृष्णचंद ने तुरंत मुक्ति गति दी।

इतनी कथा सुन, राजा परीछित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि, कृपा नाथ! गोपी ने श्री कृष्ण जी को ईश्वर जानके तो नहीं माना, केवल बिषय की बासना कर भजा, वह मुक्त कैसे ऊई, सो मुझे समझाके कहो जो मेरे मन का संदेह जाय. श्री शुकदेव मुनि बोले, धर्मावतार! जो जन श्री कृष्णचंद की महिमा अनजाने भी गुण गाते हैं, सो भी निःसंदेह भक्ति मुक्ति पाते हैं; जैसे कोई बिन जाने अमृत पियेगा, वह भी अमर हो जियेगा, औ जानके पियेगा तिसे भी गुण होगा.

यह सब जानते हैं कि पदारथ का गुण औ फल बिन ऊए रहता नहीं; ऐसे ही हरि भजन का प्रताप है, कोई किसी भाव से भजो मुक्त होयगा. कहा है।

जप माला छापा तिलक, सरै नए कौ काम,
मन काचे नाचै वृथा, सांचे राचे राम.

औ सुनो, जिन जिनने जैसे जैसे भाव से श्री कृष्ण को मानके मुक्ति पाई सो कहता हूं, कि नंद जसोदादि ने तो पुत्र कर बूझा; गोपियों ने यार कर समझा; कंस ने भय कर भजा; ग्वाल बालों ने मित्र कर जपा; पांडवों ने प्रीतम कर जाना; सिसुपाल ने शत्रुकर माना; यदुबंसियों ने अपना कर ठाना; औ जोगी जती मुनियों ने ईश्वर कर ध्याया; पर अंत में मुक्ति पदारथ सबही ने पाया; जो एक गोपी प्रभु का ध्यान कर तरी तो क्या अचरज ऊआ ?।

यह सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव मुनि से कहा, कि कृपानाथ! मेरे मन का संदेह गया, अब कृपा कर आगे कथा कहिये. श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जिस काल सब गोपियां अपने अपने झुंड लिये, श्री कृष्णचंद, जगत उजागर, रूप सागर से धायकर जाय मिलीं, कि जैसे चौमासे की नदियां बल कर समुद्र को जाय मिलें, उस समैं के बनाव की सोभा बिहारी लाल की कुछ बरनी नहीं जाती, कि सब सिंगार करे, नटवर भेष धरे, ऐसे मन भावने सुन्दर सुहावने लगते थे, कि ब्रज युवती हरि छबि देखते ही छक रहीं. तब मोहन विनकी चेम कुशल पूछ, रूखे हो बोले, कहो रात समैं भूत प्रेत की बिरियां भयावनी बाट काट, उलटे पुलटे वस्त्र आभूषन पहने, अति घबराई, कुटुंब की माया तज इस महा बन में तुम कैसे आईं? ऐसा साहस करना नारी को उचित नहीं, स्त्री को कहा है कि कायर, कुमत, कूढ़, कपटी, कुरूप, कोढी, काना, अंधा, लुला, लंगड़ा, दरिद्री, कैसाही पति हो, पर इसे उसकी सेवा करनी जोग है, इसी में उसका कल्यान है, औ जगत में बड़ाई. कुलवंती पतिव्रता का धर्म है कि पति को छन भर न छोड़े और जो स्त्री अपने पुरुष को छोड़ पर पुरुष के पास जाती है, सो जन्म जन्म नर्क बास पाती है. ऐसे कह फिर बोले कि, सुनो! तुम ने आय सघन बन, निर्मल चांदनी, औ यमुना तीर की सोभा देखी अब घर जाय मन लगाय कंत की सेवा करो, इसी में तुम्हारा सब भांति भला है. इतना वचन श्री कृष्ण के मुख से सुनते ही, सब गोपी एक बार तो अचेत हो अपार सोच सागर में पड़ीं, पीछे।

नीचे चितै उसासें लई, पद नख तें भू खोदत भई.
यों दृग सों छुटी जल धारा, मानऊं टूटे मोती हारा.

निदान दुख से अति घबराय रो रो कहने लगीं, कि अहो कृष्ण तुम बड़े ठग हो, पहले तो बंसी बजाय अचानक हमारा ज्ञान ध्यान मन धन हरलिया, अब निर्दई होय कपट कर कर्कस वचन कह, प्रान लिया चाहते हो. यों सुनाय पुनि बोलीं।

लोग कुटुंब घर पति तजे, तजी लोग की लाज,
हैं अनाथ, कोऊ नहीं, राखि सरन ब्रजराज!

और जो जन तुम्हारे चरनों में रहते हैं, सो तन धन लाज बड़ाई नहीं चाहते, तिनके तो तुम्हीं हो जन्म जन्म के कंत, हे प्रान रूप भगवंत।

करि हैं कहा जाय हम गेह? अरझे प्रान तुम्हारे नेह.

इतनी बात के सुनते ही, श्री कृष्णचंद ने मुसकुराय, सब गोपियों को निकट बुलायके कहा, जो तुम राची हो इस रंग, तो खेलो रास हमारे संग. यह बचन सुन दुःख तज, गोपी प्रसन्नता से चारों ओर घिर आईं, औ हरि मुख निरख निरख लोचन सुफल करने लगीं।

ठाढ़े बीच जु श्याम घन, इहिं छबि कामिनि केलि,
मनहुं नीलगिरि तरे तें, उलही कंचन बेलि.

आगे श्री कृष्ण जी ने अपनी माया को आज्ञा की, कि हम रास करेंगे, उसके लिये तू एक अच्छा स्थान रच, औ यहां खड़ी रह, जो जो जिस जिस वस्तु की इच्छा करे, सो सो ला दीजो. महाराज! तिसने सुनते ही यमुना के तीर जाय, एक कंचन का मंडलाकार बड़ा चौंतरा बनाय, मोती हीरे जड़, उसके चारों ओर सपल्लव केले के खंभ लगाय, तिन में बंदनवार औ भांति भांति के फूलों की माला बांध, श्री कृष्णचंद से कहा. ये सुनते ही प्रसन्न हो सब ब्रज युवतियों को साथ ले, यमुना तीर को चले. वहां जाय देखें तो चंद्र मंडल से रास मंडल के चौंतरे की चमक चौगुनी सोभा दे रही है; उसके चारों ओर रेती चांदनी सी फैल रही है; सुगंध समेत सीतल मीठी मीठी पौन चल रही है; औ एक ओर सघन बन की हरियाली उजाली रात में अधिक छबि ले रही है।

इस समैं को देखते ही सब गोपी मगन हो उसी स्थान के निकट मानसरोवर नाम एक सरोवर था, तिसके तीर जाय, मन मानते सुथरे बस्त्र आभूषन पहन, नख सिख से सिंगार कर, अच्छे बाजे बीन पखावज आदि सुर बांध बांध ले आईं, औ लगी प्रेम मद माती हो, सोच संकोच तज, श्री कृष्ण के साथ मिल बजाने, गाने, नाचने. उस समैं श्री गोबिंद गोपियों की मंडली के मध्य ऐसे सुहावने लगते थे जैसे तारा मंडल में चंद।

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव जी बोले, सुनो महाराज! जब गोपियों ने ज्ञान बिबेक छोड़ रास में हरि को मन से बिषई पति कर माना, औ अपने आधीन जाना, तब श्री कृष्णचंद ने मन में बिचारा कि।

अब मोहि इन अपने बस जान्यौ, पति बिषई सम मन में आन्यौ,
भई अज्ञान लाज तजि देह, लपटहिं पकरहिं कंत सनेह.
ज्ञान ध्यान मिलकै बिसरायौ, छांड़ि जाऊं इनि गर्ब बढ़ायौ.

देखूं मुज बिन पीछे बन में क्या करती हैं, और कैसे रहती हैं. ऐसे बिचार, श्री राधिका को साथ ले, श्री कृष्णचंद अंतरध्यान ऊए. इति।

CHAPTER XXXI.

KṚISHṆ WANDERS ALONE WITH RÁDHIKÁ, BUT, ON HER BECOMING TOO MUCH ELATED BY THIS PREFERENCE, DESERTS HER.

श्री शुकदेव मुनि बोले, कि महाराज! एकाएकी श्री कृष्णचंद को न देखते ही, गोपियों की आंख आगे अंधेरा हो गया, औ अति दुख पाय ऐसे अकुलाईं, जैसे मनि खोय सर्प घबराता है. इस में एक गोपी कहने लगी।

कहो सखी मोहन कहां, गये हमें छिटकाय?
मेरे गरे भुजा धरे, रहे ऊते उर लाय.

अभी तो हमारे संग हिले मिले रास बिलास कर रहे थे, इतने ही में कहां गये, तुम में से किसीने भी जाते न देखा? यह बचन सुन, सब गोपी बिरह की मारी निपट उदास हो, हाय मार बोलीं।

कहां जांय कैसी करें, कासों कहें पुकारि?
है कित कछू न जानिये, क्यों कर मिले मुरारि.

ऐसे कह हरि मद माती होय, सब गोपी लगीं चारों ओर ढूंढ ढूंढ, गुन गाय गाय, रो रो यों पुकारने।

हम को क्यों छोड़ी ब्रजनाथ! सरबस दिया तुम्हारे साथ.

जब वहां न पाया, तब आगे जाय आपस में बोलीं, सखी! यहां तो हम किसी को नहीं देखतीं, किस से पूछें कि हरि किधर गये? यों सुन एक गोपी ने कहा, सुनौ आली! एक बात मेरे जी में आई है, कि ये जितने इस बन में पशु पक्षी औ वृक्ष हैं सो सब ऋषि मुनि हैं, ये कृष्ण लीला देखने को औतार ले आये हैं, इन्हीं से पूछो, ये यहां खड़े देखते हैं, जिधर हरि गय होंगे तिधर बता देंगे. इतना बचन सुनते ही सब गोपी बिरह से व्याकुल हो क्या जड़ क्या चैतन्य लगीं एक एक से पूछने।

हे बड़, पीपल, पाकड़, बीर! लहा पुन्य कर उच्च शरीर.
पर उपकारी तुमहीं भये, वृक्ष रूप पृथ्वी पर लये.
घाम सीत बरषा दुख सहो, काज पराये ठाढ़े रहो.
बकला, फूल, मूल, फल, डार! तिन सों करत पराई सार,

सब का मन धन हर नंदलाल, गये इधर को कहो दयाल?
हे कदंब, अंब, कचनारि! तुम कहुं देखे जात मुरारि?
हे असोक, चंपा, करवीर! जात लखे तुम ने बलबीर?
हे तुलसी अति हरि की प्यारी! तन तें कहूं न राखत न्यारी,
फूली, आज मिले हरि आय? हम हूं को किन देत बताय?
जाती, जुही, मालती माई! इत ह्वै निकसे कुंवर कन्हाई?
मृगणि पुकारि कहैं ब्रज नारी, इत तुम जात लखे बनवारी?

इतना कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इसी रीत से सब गोपी पशु पक्षी द्रुम बेलि से पूछती पूछती, श्री कृष्णमय हो, लगीं पूतना बध आदि सब श्री कृष्ण ही करी हुई बाल लीला करने, औ ढूंढने. निदान ढूंढते ढूंढते कितनी एक दूर जाय देखैं तो श्री कृष्णचंद के चरन चिन्ह, कंवल, जव, ध्वजा, अंकुस समेत, रेत पर जगमगाय रहे हैं. देखते ही ब्रज युवती, जिस रज को सुर नर मुनि खोजते है, तिस रज को दंडवत कर, सिर चढ़ाय, हरि के मिलने की आस धर, वहां से बढ़ीं तो देखा, जो उन चरण चिन्हों के पास पास एक नारी के भी पांव उपड़े हुए हैं. उन्हें देख अचरज कर, आगे जाय, देखैं तो एक ठौर कोमल पातों के बिछौने पर सुंदर जड़ाऊ दरपन पड़ा है; लगीं उस्से पूछने; जब बिरह भरा वह भी न बोला, तब तिन्होंने आपस में पूछा, कहो आली! यह क्यों कर लिया? किसी समैं जो पिय प्यारी के मन की जानती थी, उसने उत्तर दिया, कि सखी! जद प्रीतम प्यारी की चोटी गूंथने बैठे, औ सुंदर बदन बिलोकने में अंतर हुआ, तिस बिरियां प्यारी ने दरपन हाथ में ले पिय को दिखाया; तद श्री मुख का प्रतिबिंब सनमुख आया. यह बात सुन गोपियां कुछ न कोपियां; बरन कहने लगीं, कि उसने शिव पार्वती को अच्छी रीति से पुजा है, औ बड़ा तप किया है, जो प्राण पति के साथ एकांत में निधड़क बिहार करती है. महाराज! सब गोपी तो इधर बिरह मद माती बकबक झकझक ढुंढती फिरती ही थीं, कि उधर श्री राधिका जी हरि के साथ अधिक सुख मान, प्रीतम को अपने बस जान, आप को सब से बड़ा ठान, मन में अभिमान आन बोलीं, प्यारे! अब मुज से चला नहीं जाता, कांधे चढ़ाय ले चलिये. इतनी बात के सुनते ही, गर्व प्रहारी, अंतरजामी, श्री कृष्णचंद ने मुसकुराय, बैठकर कहा कि, आइये, हमारे कांधे चढ़ लीजिये. जद वह हाथ बढ़ाय चढ़ने को हुई, तद श्री कृष्ण अंतर ध्यान हुए; जों हाथ बढ़ाये थे, तों हाथ पसारे खड़ी रह गई, ऐसे कि जैसे घन से मान कर दामिनी बिछड़ रही हो; कै चंद्र से चंद्रिका रूस पीछे रह गई हो; औ गोरे तन की जोति छूटि छिति पर छाय यों छवि दे रही थी, कि मानों सुंदर कंचन की भूमि पै खड़ी है. नैनों से जल की धार बह रही थी; औ सुबास के बस जो मुख पास भंवर आय आय बैठते थे, तिन्हें भी उड़ाय न सकती थी; औ हाय हाय कर बन में बिरह की मारी इस भांति रो रही थी

अकेली, कि जिसके रोने की धुन सुन सब रोते थे पशु पंछी औ द्रुम बेली, और यों कह रही थी।

हाहा नाथ! परम हितकारी, कहां गये स्वछंद बिहारी!

चरन सरन दासी मैं तेरी, कृपा सिंधु लीजे सुध मेरी.

कि इतने में सब गोपी भी ढूंढती ढूंढती उसके पास जा पहुंचीं, औ तिसके गले लग लग सबों ने मिल मिल ऐसा सुख माना कि जैसे कोई महा धन खोय मध्य आधा धन पाय सुख माने; निदान सब गोपी भी तिसे अति दुखित जान, साथ ले महा बन में पैठीं, औ जहां लग चांदना देखा, तहां लग गोपियों ने बन में श्री कृष्णचंद को ढूंढा; जब सघन बन के अंधेरे में बाट न पाई, तब वे सब वहां से फिर, धीरज धर, मिलन की आस कर, यमुना के उसी तीर पर आय बैठीं, जहां श्री कृष्णचंद ने अधिक सुख दिया था. इति।

CHAPTER XXXII.

THE COWHERDESSES DESERTED BY KRISHN ABANDON THEMSELVES TO DESPAIR.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! सब गोपी यमुना तीर पर बैठ, प्रेम मद माती हो हरि के चरित्र और गुन गाने लगीं, कि प्रीतम! जब से तुम ब्रज में आये, तब से नये नये सुख यहां आनकर छाए. लक्ष्मी ने तुम्हारे चरन की आस, किया है अचल आयके वास. हम गोपी हैं दासी तुम्हारी. बेग सुध लीजे दयाकर हमारी. जद से सुंदर सांवली सलोनी मुरति है हेरी, तद से ऊई हैं बिन मोल की चेरी. तुम्हारे नैन बानों ने हने हैं हिय हमारे, सो प्यारे! किस लिये लेखे नहीं है तुम्हारे? जीव जाते हैं हमारे अब करुणा कीजे, तज कर कठोरता बेग दरसन दीजे. जो तुम्हें मारना हीं था तो हम को विषधर आग औ जल से किस लिये बचाया, तभी मरने क्यों न दिया? तुम केवल जसोदा सुत नहीं हो, तुम्हें तो ब्रह्मा रुद्र, इंद्रादि सब देवता बिनती कर लाये हैं संसार की रक्षा के लिये।

हे प्राणनाथ! हमें एक अचरज बड़ा है, कि जो अपनों हीं को मारोगे, तो करोगे किस की रखवाली? प्रीतम! तुम अंतरजामी होय, हमारे दुख हर, मन की आस क्यों नहीं पूरी करते? क्या अबलाओं पर ही क्रूरता धारी है! हे प्यारे! जब तुम्हारी मंद मुसक्यान युत प्यार भरी चितवन, औ भृकुटी की मरोर, नैनों की मटक, ग्रीवा की लटक, औ बातों की चटक, हमारे जिय में आती है, तब क्या क्या न दुख पाती हैं? और जिस समें तुम गौ चरावन जाते थे बन में, तिस समें तुम्हारे कोमल चरन का ध्यान करने से बन के कंकर कांटे आ कसकते थे हमारे मन में. भोर के गये सांज को फिर आते थे, तिस पर भी हमें चार पहर चार युग से जनाते थे. जद

सनमुख बैठ सुंदर बदन निहारती थीं, तद अपने जी में बिचारती थीं कि ब्रह्मा कोई बड़ा मूरख है जो पलक बनाई है, हमारे इकटक देखने में बाधा डालने को।

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इसी रीत से सब गोपी बिरह की मारीं श्री कृष्णचंद के गुन औ चरित्र अनेक अनेक प्रकार से गाय गाय हारीं, तिस पर भी न आए बिहारी: तब तो निपट निरास हो, मिलने की आस कर, जीने का भरोसा छोड़, अति अधीरता से अचेत हो, गिरकर ऐसे रोय पुकारीं कि सुनकर चर अचर भी दुखित भये भारी. इति।

CHAPTER XXXIII.

KRISHN REJOINS THE COWHERDESSES.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जद श्री कृष्णचंद अंतरजामी ने जाना जो अब ये गोपियां मुज बिन जीती न बचेंगीं।

तब तिनहीं में प्रगट भये नंद नंदन यों,
दृष्ट बंध कर छिपे फेर प्रगटे नटबर ज्यों.
आए हरि देखे जबै, उठी सबै यों चेत,
प्रान परे ज्यों मृतक में, इंद्री जगें अचेत.
बिन देखे सब को मन व्याकुल हो भयो,
मानो मनमथ भुवंग सबनि डसिकै गयो,
पीर खरी पिय जान पहुंचे आइकै,
अमृत बेलनि सींच लई सब ज्याइकै.
मनहुं कमल निसि मलिन हैं, ऐसें ही ब्रज बाल,
कुंडल रबि छबि देखिकै, फूले नैन बिसाल.

इतनी कथा कथ श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! श्री कृष्णचंद आनंद कंद को देखते ही सब गोपियां एकाएकी बिरह सागर से निकल, उनके पास जाय, ऐसे प्रसन्न हुईं, कि जैसे कोई अथाह समुद्र में डूब थाह पाय प्रसन्न होय, और चारों ओर से घेरकर खड़ी भईं, तब श्री कृष्ण उन्हें साथ लिये वहां आए जहां पहले रास बिलास किया था. जाते ही एक गोपी ने अपनी ओढ़नी उतारके श्री कृष्ण के बैठने को बिछा दी; जों वे उस पर बैठे, तों कई एक गोपी क्रोध कर बोलीं कि, महाराज! तुम बड़े कपटी बिराना मन धन लेने जानते हो, पर किसी का कुछ गुन नहीं मानते. इतना कह आपस में कहने लगीं।

गुन छांडै औगुन गहै, रहै कपट मन भाय,
देखो सखी बिचारिकै, तासों कहा बसाय?

यह सुन एक तिनमें से बोली कि, सखी! तुम अलगी रहो, अपने कहे कुछ सोभा नहीं पातीं देखो मैं कृष्ण ही से कहाती हूं. यों कह तिसने मुसकुरायके श्री कृष्ण से पूछा कि, महाराज! एक तिन गुन किये गुन मान ले; दूसरा किये गुन का पलटा दे; तीसरा गुन के पलटे औगुन करै: चौथा किसी के किये गुन को भी मन में न धरै; इन चारों में कौन भला है औ कौन बुरा, यह तुम हमें समझाके कहो? श्री कृष्ण चंद बोले कि तुम सब मन दे सुनो, भला औ बुरा मैं बुझाकर कहता हूं. उत्तम तो वह है जो बिन किये करे, जैसे पिता पुत्र को चाहता है; और किये पर करने से कुछ पुन्य नहीं, सो ऐसे है जैसे बांट के हेत गौ दूध देती है; गुन को औगुन माने, तिसे शत्रु जानिये; सब से बुरा कृतघ्नी जो किये को मेटे।

इतना वचन सुनते ही जब गोपियां आपस में एक एक का मुंह देख हंसने लगीं, तब तो श्री कृष्णचंद घबराकर बोले कि, सुनो! मैं इन चारों की गिनती में नहीं, जो तुम जानके हंसती हो. वरन मेरी तो यह रीति है, कि जो मुज से जिस बात की इच्छा रखता है, तिसके मन की बांछा पूरी करता हूं, कदाचित तुम कहो कि जो तुम्हारी यह चाल है, तो हमें ऐसे क्यों छोड़ गये, इसका कारन यह है कि मैंने तुम्हारी प्रीति की परिछा ली. इस बात का बुरा मत मानो, मेरा कहा सच्चा ही जानो. यों कह फिर बोले।

अब हम परचौ लियो तिहारौ, कीनो सुमिरन ध्यान हमारौ.
मोहीं सों तुम प्रीत बढ़ाई, निर्धन मनो संपदा पाई.
ऐसें आई मेरे काज, छांडी लोक बेद की लाज.
जों बैरागी छांडे गेह, मन दे हरि सों करे सनेह.
कहा तिहारी करें बड़ाई, हम पै पलटौ दियो न जाई.
जो ब्रह्मा के सौ बरस जियें तौभी हम तुम्हारे ऋण से उतरन न होंय. इति।

CHAPTER XXXIV.

HE DANCES WITH THEM THE CIRCULAR DANCE.

श्री शुकदेव मुनि बोले, राजा! जब श्री कृष्णचंद ने इस ढब से रस के वचन कहे, तब तो सब गोपियां रिस छोड़ प्रसन्न हो उठ, हरि से मिल, भांति भांति के सुख मान, आनंद मगन हो. कुतूहल करने लगीं, तिस समैं।

कृष्ण जोगमाया ठई, भये अंस बऊ देह,
सब कों सुख चाहत दियौ, लीला परम सनेह.

जितनी गोपियां थीं तितनी हीं शरीर श्री कृष्णचंद ने धर, उसी रास मंडल के चौंतरे पर सब को साथ ले, फिर रास बिलास का आरंभ किया।

द्वै द्वै गोपी जोरे हाथा, तिनके बीच बीच हरि साथा.
अपनी अपनी ढिग सब जाने, नहीं दूसरे कों पहिचाने.
अंगुरिन में अंगुरी कर दिये, प्रफुलित फिरें संग हरि लिये.
बिच गोपी बिच नंदकिशोर, सघन घटा दामिनि चऊं ओर.
श्याम कृष्ण गोरी व्रजबाला, मानऊं कनक नीलमनि माला.

महाराज! इसी रीति से खड़े होय, गोपी और कृष्ण लगे अनेक अनेक प्रकार के यंत्रों के सुर मिलाय मिलाय, कठिन कठिन राग अलाप अलाप, बजाय बजाय गाने, औ तीखी, चोखी, आड़ी, डौढ़ी, दुगन, तिगन की तानें, उपजें, ले ले, बोल बताय बताय नाचने; औ आनंद में ऐसे मगन ऊईं कि उनको तन मन की भी सुध न थी. कहीं इनका अंचल उघड़ जाता था; कहीं उनका मुकुट खिसल; इधर मोतियों के हार टूट टूट गिरते थे, उधर बनमाल. पसीने की बूंदे माथों पर मोतियों की लड़ी सी चमकती थी; औ गोपियों के गोरे गोरे मुखड़ों पर अलकें यों बिखर रही थीं, कि जैसे अमृत के लोभ से संपोलिये उड़कर चांद को जा लगे होंय. कभी कोई गोपी श्री कृष्ण की मुरली के साथ मिलकर जील में गाती थी; कभी कोई अपनी तान अलग ही ले जाती थी; औ जब कोई बंसी को छंक उस की तान समुची ज्यों की त्यों गले से निकालती थी, तब हरि ऐसे भूल रहते थे कि ज्यों बालक दरपन में अपना प्रतिबिंब देख भूल रहै।

इसी ढब से गाय गाय, नाच नाच, अनेक अनेक प्रकार के हाव भाव कटाच करकर, सुख लेते देते थे, औ परस्पर रीझ रीझ, हंस हंस, कंठ लगाय लगाय, बस्त्र आभूषन निछावर कर रहे थे. उस काल ब्रह्मा रूद्र इंद्र आदि सब देवता औ गंधर्व अपनी अपनी स्त्रियों समेत बिमानों में बैठे रास मंडली का सुख देख देख आनंद से फूल बरसावते थे; औ उन की स्त्रियां वह सुख लख होंस कर मन में कहती थीं कि जो जन्म ले व्रज में जातीं, तो हम भी हरि के साथ रास बिलास करतीं; औ राग रागनियों का ऐसा समां बंधा ऊआ था कि जिसे सुनके पौन पानी भी न बहता था; औ तारा मंडल समेत चंद्रमा थकित हो किरनों से अमृत बरसाता था. इसमें रात बढ़ी तो छः महीने बीत गये, औ किसी ने न जाना, तभी से उस रैन का नाम ब्रह्म रात्रि ऊआ।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी बोले, पृथी नाथ! रास लीला करते करते जो कुछ श्री कृष्णचंद के मन में तरंग आई तो गोपियों को लिये यमुना तीर पै जाय, नीर में पैंठ, जल क्रीड़ा कर, श्रम मिटाय, बाहर आय, सब के मनोरथ पूर कर बोले, कि अब चार घड़ी रात

रही है, तुम सब अपने घर जाओ. इतना वचन सुन, उदास हो गोपियों ने कहा, नाथ! आपके चरन कंवल छोड़के घर कैसे जांय, हमारा लालची मन तो कहा मानता ही नहीं. श्री कृष्ण बोले कि सुनो, जैसे जोगी जन मेरा ध्यान धरते हैं, तैसे तुम भी ध्यान कीजियो, मैं तुम्हारे पास जहां रहोगी तहां रहूंगा. इतनी बात के सुनते ही संतोष कर, सब बिदा हो अपने अपने घर गईं, औ यह भेद उनके घरवालों में से किसीने न जाना कि ये यहां न थीं।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव मुनि से पूछा, कि दीन दयाल! यह तुम मुझे समझाकर कहो जो श्री कृष्णचंद तो असुरों को मार पृथ्वी का भार उतारने, औ साध संत को सुख दे धर्म का पंथ चलाने के लिये औतार ले आये थे, तिन्होंने पराई स्त्रियों के साथ रास बिलास क्यों किया? यह तो कछलंपट का कर्म है, जो बिरानी नारी से भोग करै. शुकदेव जी बोले।

सुन राजा यह भेद न जान्यौ, मानुष सम परमेश्वर मान्यौ.
जिन के सुमिरे पातक जात, तेजवंत पावन हैं गात.
जैसें अग्नि मांझ कछु परै, सोऊ अग्नि होयकै जरै.

सामर्थी क्या नहीं करते क्योंकि वे तो करके कर्म की हानि करते हैं, जैसे शिव जी ने विष लिया औ खा के कंठ को भूषन दिया, औ काले सांप का किया हार, कौन जाने उनका व्यौहार? वे तो अपने लिये कुछ भी नहीं करते, जो तिनका भजन सुमिरन कर कोई वर मांगता है तैसा ही तिस को देते हैं।

उन की तो यह रीति है, कि सब से मिले दृष्ट आते हैं, औ ध्यान कर देखिये तो सब ही से ऐसे अलग जनाते हैं, जैसे जल में कंवल का पात. और गोपियों की उतपत्ति तो मैं तुम्हें पहले ही सुना चुका हूं कि देवी औ बेद की ऋचाएं हरि का दरस परस करने को ब्रज में जन्म ले आई हैं, औ इसी भांति श्री राधिका भी ब्रह्मा से वर पाय श्री कृष्णचंद की सेवा करने को जन्म ले आई, औ प्रभु की सेवा में रही।

इतना कह श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! कहा है, कि हरि के चरित्र मान लीजे, पर उनके करने में मन न दीजे. जो कोई गोपीनाथ का जस गाता है, सो निर्भय अटल परम पद पाता है; औ जैसा फल होता है अठसठ तीरथ के न्हाने में, तैसा ही फल मिलता है श्री कृष्ण जस गाने में. इति।

CHAPTER XXXV.

KRISHN RESTORES TO HIS ORIGINAL SHAPE A DEMIGOD WHO HAD BEEN TRANSFORMED INTO A SERPENT. HE DESTROYS A YAKSH NAMED SHANKHCHÚR, AND ON CUTTING OFF HIS HEAD DISCOVERS IN IT A JEWEL, WHICH HE GIVES TO BALARÁM.

श्री शुकदेव मुनि कहने लगे कि, राजा! जैसे श्री कृष्ण जी ने विद्याधर को तारा, औ शंखचूड़ को मारा, सो प्रसंग कहता हूं, तुम जी लगाय सुनो. एक दिन नंद जी ने सब गोप

ग्वालों को बुलायके कहा कि भाईयो! जब कृष्ण का जन्म हुआ था, तब मैं ने कुल देवी अंबिका की यह मानता करी थी, कि जिस दिन कृष्ण बारह बरस का होगा, तिस दिन नगर समेत बाजे गाजे से जाकर पूजा करूंगा, सो दिन उसकी कृपा से आज देखा अब चलकर पूजा किया चाहिये।

इतना बचन नंद जी के मुख से सुनते ही सब गोप ग्वाल उठ धाए, औ झटपट ही अपने अपने घरों से पूजा की सामग्री ले आए. तद तो नंदराय भी पुजापा औ दूध दही मांखन सगड़ों बहंगियों में रखवाय, कुटुंब समेत उनके साथ हो लिये औ चले चले अंबिका के स्थान पर पहुंचे. वहां जाय सरस्वती नदी में न्हाय, नंद जी ने पुरोहित बुलाय, सब को साथ ले, देवी के मंदिर में जाय, शास्त्र की रीति से पूजा की, औ जो पदारथ चढ़ाने को ले गये थे, सो आगे धर, परिक्रमा दे, हाथ जोड़, बिनती कर कहा कि, मा! आपकी कृपा से कान्ह बारह बरस का हुआ।

ऐसे कह, दंडवत कर, मंदिर के बाहर आय, सहस्र ब्राह्मण जिमाए. इस में अबेर जो हुई, तो सब ब्रजबासियों समेत, नंद जी तीरथ ब्रत कर, वहां ही रहे. रात को सोते थे, कि एक अजगर ने आय नंदराय का पांव पकड़ा, औ लगा निगलने; तब तो वे देखते ही भय खाय, घबरायके लगे पुकारने, हे कृष्ण! बेग सुध ले नहीं तो यह मुझे निगले जाता है. उसका शब्द सुनते ही सारे ब्रजबासी स्त्री क्या पुरुष नींद से चौंक, नंद जी के निकट जाय, उजाला कर, देखें तो एक अजगर उनका पांव पकड़े पड़ा है. इतने में श्री कृष्णचंद जी ने पहुंच, सब के देखते ही जों उस की पीठ में चरन लगाया, तों हीं वह अपनी देह छोड़, सुंदर पुरुष हो, प्रनाम कर सनमुख हाथ जोड़ खड़ा हुआ. तब श्री कृष्ण ने उस से पूछा कि तैं कौन है, औ किस पाप से अजगर हुआ था सो कह? वह सिर झुकाय, बिनती कर बोला, अंतरजामी! तुम सब जानते हो मेरी उतपत्ति, कि मैं सुदरसन नाम बिद्याधर हूं, सुरपुर में रहता था औ अपने रूप गुन के आगे गर्व से किसी को कुछ न गिनता था।

एक दिन बिमान में बैठ फिरने को निकला तो जहां अंगिरा ऋषि बैठे तप करते थे, तिनके ऊपर हो सौ बेर आया गया; ऐक बेर जों उन्हों ने बिमान की परछांईं देखी, तों ऊपर देख क्रोध कर मुझे श्राप दिया, कि रे अभिमानी! तू अजगर सांप हो।

इतना बचन उनके मुख से निकला कि मैं अजगर हो नीचे गिरा. तिस समैं ऋषि ने कहा था कि तेरी मुक्ति श्री कृष्णचंद के हाथ होगी, इसी लिये मैं ने नंदराय जी के चरन आन पकड़े थे जो आप आयके मुझे मुक्ति करें, सो कृपानाथ! आपने आय कृपा कर मुझे मुक्ति दी. ऐसे कह, बिद्याधर तो परिक्रमा दे, हरि से आज्ञा ले, दंडवत कर, बिदा हो, बिमान पर चढ़ सुर लोक को गया, औ यह चरित्र देख सब ब्रजबासियों को अचरज हुआ. निदान भोर होते ही देवी का दरसन कर सब मिल वृंदाबन आए।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ! एक दिन हलधर औ गोबिंद

गोपियों समेत चांदनी रात को आनंद से वन में गाय रहे थे, कि इस बीच कुबेर का सेवक शंखचूड़ नाम यक्ष, जिस के सीस में मनि औ अति बलवान था, सो आ निकला. देखे तो एक ओर सब गोपियां कुतूहल कर रही हैं, औ एक ओर कृष्ण बलदेव मगन हो मत्तवत गाय रहे हैं. कुछ इसके जी में जो आई तो सब व्रज युवतियों को घेर आगे धर ले चला, तिस समैं भय खाय पुकारीं व्रजबाम, रक्षा करो कृष्ण बलराम!।

इतना बचन गोपियों के मुख से निकलते ही सुनकर, दोनों भाई रूख उखाड़ हाथों में ले यों दौड़ आए, कि मानो गज माते सिंह पर उठ धाए; औ वहां जाय, गोपियों से कहा, कि तुम किसी से मत डरो, हम आन पहुंचे. इनको काल समान देखते ही, यक्ष भयमान हो, गोपियों को छोड़, अपना प्रान ले भागा. उस काल नंदलाल ने बलदेव जी को तो गोपियों के पास छोड़ा, औ आप जाय उसके झोंटे पकड़ पछाड़ा, निदान तिरछा हाथ कर उसका सिर काट, मनि ले, आन बलराम जी को दिया. इति।

CHAPTER XXXVI.

THE COWHERDESSES CHAUNT THE PRAISES OF KRIṢHṆ.

श्री शुकदेव मुनि बोले, राजा! जबतक हरि बन में धेनु चरावें, तबतक सब व्रज युवतियां नंदरानी के पास आय बैठकर प्रभु का जस गावें; जो लीला श्री कृष्ण बन में करें, सो गोपियां घर बैठी उच्चरें।

सुनौ सखी बाजति है बैन, पशु पंछी पावत हैं चैन.
पति संग देवी थकी बिमान, मगन भई हैं धुनि सुन कान.
कर तें परहिं चुरी मूंदरी, बिह्वल मन तन की सुधि हरी.
तब हीं एक कहै व्रज नारि, गरजनि मेघ तजी अति हारि.
गावत हरि आनंद अडोल, भौंह नचावत पानि कपोल.
पिय संग मृगी थकी सुनि बेनु, यमुना फिरी घिरी तहां धेनु.
मोहे बादर छैयां करें, मानौ छत्र कृष्ण पर धरें.
अब हरि सघन कुंज कौं धाए, पुनि सब बंसीबट तर आए.
गायन पाछें डोलत भये घेर लई जल प्यावन गये.
सांझ भई अब उलटे हरी, रांभति गाय बेनु धुनि करी.

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इसी रीति से नित गोपियां दिन भर हरि के गुन गावें, औ सांझ समय आगे जाय श्री कृष्णचंद आनंद कंद

से मिल सुख मान ले आवें; औ तिस समैं जसोदा रानी भी रज मंडित पुत्र का मुख प्यार से पोंछ कंठ लगाय सुख माने. इति।

CHAPTER XXXVII.

KRISHN SLAYS A DÆMON IN THE SHAPE OF A BULL. HE CAUSES ALL THE PLACES OF PILGRIMAGE TO APPEAR IN A BODILY SHAPE AND THROW WATER INTO TWO DEEP PITS, IN WHICH HE BATHES TO EXPIATE THE CRIME OF SLAYING THE BULL. KANS SENDS A DÆMON NAMED KESÍ TO DESTROY KRISHN, AND PREPARES A GRAND SPECTACLE AND ENTERTAINMENT, IN THE HOPE THAT BALARÁM AND KRISHN MAY COME TO SEE IT AND BE DESTROYED BY THE FURIOUS ELEPHANT KUBALIYÁ, OR THE GIGANTIC WRESTLER CHÁNÚR. HE DESPATCHES AKRÚR TO INVITE KRISHN TO THE GAMES.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक दिन श्री कृष्ण बलराम सांझ समैं धेनु चरायके बन से घर को आते थे, इस बीच एक असुर अति बड़ा बैल बन आय गायों में मिला।

आकाश लौं देह तिनि धरी,　　पीठ कड़ी पाथर सी करी.
बड़े सींग तीछन दोउ खरे,　　रक्त नैन अति ही रिस भरे.
पूंछ उठाय डकारतु फिरै,　　रहि रहि मूतत गोबर करै.
फड़कै कंध हिलावे कान,　　भजे देव सब छोड़ बिमान.
खुर सों खोदे नदी करारे,　　पर्वत उथल पीठ सों डारे
सब कौ त्रास भयो तिहि काल,　कंपहि लोकपाल दिगपाल.
पृथ्वी हलै शेष थरहरै,　　तिय औ धेनु गर्व भू परै.

उसे देखते ही सब गायें तो जिधर तिधर फैल गईं, औ ब्रजवासी दौड़ वहां आए, जहां सब के पीछे कृष्ण बलराम चले आते थे. प्रनाम कर कहा, महाराज! आगे एक अति बड़ा बैल खड़ा है, उस से हमें बचाओ. इतनी बात के सुनते ही अंतरजामी श्री कृष्णचंद बोले कि तुम कुछ मत डरो उस से, वह वृषभ का रूप बनकर आया है नीच, हम से चाहता है अपनी मीच. इतना कह, आगे जाय, उसे देख बोले बनवारी कि, आव हमारे पास कपट तन धारी, तू और किसू को क्यों डराता है, मेरे निकट किस लिये नहीं आता? जो बैरी सिंह का कहावता है, सो मृग पर नहीं धावता; देख मैं हीं हूं काल रूप गोबिंद, मैं ने तुज से बहुतों को मारके किया है निकंद।

यों कह फिर ताल ठोक ललकारे, आ मुज से संग्राम कर. यह बचन सुनते ही असुर ऐसे क्रोध कर धाया, कि मानो इंद्र का वज्र आया. जों जों हरि उसे हटाते थे, त्यों त्यों वह संभल संभल बढ़ा आता था. एक बार जो उन्हों ने विसे दे पटका, तोंहीं खिजलाकर उठा, औ दोनों सींगों में उसने हरि को दबाया. तब तो श्री कृष्ण जी ने भी फुरती से निकल, झट पांव पर पांव दे, उसके सींग पकड़ यों मड़ोड़ा, कि जैसे कोई भींगे चीर को निचोड़े. निदान वह पछाड़ खाय गिरा, औ उसका जी निकल गया. तिस समैं सब देवता अपने अपने बिमानों में बैठ आनंद

से फूल बरसावने लगे, औ गोपी गोप कृष्ण जस गाने. इस बीच श्री राधिका जी ने आ हरि से कहा, कि महाराज! वृषभ रूप जो तुम ने मारा इस का पाप ऊआ, इससे अब तुम तीरथ न्हाय आओ, तब किसी को हाथ लगाओ. इतनी बात के सुनते ही प्रभु बोले कि, सब तीरथों को मैं ब्रजही में बुला लेता हूं. यों कह, गोवर्धन के निकट जाय, दो औंडे कुंड खुदवाए, तहीं सब तीरथ देह धर आए, औ अपना अपना नाम कह कह उन में जल डाल डाल चले गये, तब श्री कृष्णचंद उन में स्नान कर, बाहर आय, अनेक गौ दान दे, बऊत से ब्राह्मन जिमाय शुद्ध ऊए, औ तिसी दिन से कृष्ण कुंड राधा कुंड करके वे प्रसिद्ध ऊए।

यह प्रसंग सुनाय, श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! एक दिन नारद मुनि जी कंस के पास आए, औ उसका कोप बाढ़ाने को जब उन्हों ने बलराम औ श्याम के होने, औ माया के आने, औ कृष्ण के जाने का भेद समझाकर कहा, तब कंस क्रोध कर बोला, नारद जी! तुम सच कहते हो।

प्रथम दियो सुत आनिकै, मन परतीत बढ़ाय,
ज्यों ठग कछू दिखाइकै, सर्बसु ले भजि जाय.

इतना कह बसुदेव को बुलाय पकड़ बांधा, औ खांड़े पर हाथ रख अकुलाकर बोला,

मिला रहा कपटी तू मुझे, भला साध जाना मैं तुझे.
दिया नंद के कृष्ण पठाय, देवी हमें दिखाई आय.
मन में कुछी कही मुख और, आज अवश्य मारूं इहिं ठौर.
मित्र सगा सेवक हित कारी, करै कपट सो पापी भारी,
मुख मीठा मन विष भरा, रहै कपट के हेत,
आप काज पर द्रोहिया, उस से भला जु प्रेत.

ऐसे बकझक, फिर कंस नारद जी से कहने लगा कि, महाराज! हमने कुछ इसके मन का भेद न पाया, ऊआ लड़का औ कन्या को ला दिखाया: जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया. इतना कह, क्रोध कर, होंठ चबाय, खड्ग उठाय जों चाहा कि बसुदेव को मारूं, तों नारद मुनि ने हाथ पकड़कर कहा, राजा! बसुदेव को तो तू रख आज, औ जिस में कृष्ण बलदेव आवें सो कर काज. ऐसे समझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये, तब कंस ने बसुदेव देवकी को तो एक कोठरी में मूंद दिया, औ आप भयातुर हो केसी नाम राक्षस को बुलाके बोला।

महाबली तू साथी मेरा, बड़ा भरोसा मुज को तेरा.
एक बार तू ब्रज में जा, राम कृष्ण हनि मुझे दिखा.

इतना बचन सुनते ही केसी तो आज्ञा पा, बिदा हो, दंडवत कर, वृंदाबन को गया; औ कंस ने साल, तुसाल, चानूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मंत्री थे सब को बुला भेजा. वे आए, तिन्हें समझाकर कहने लगा कि, मेरा बैरी पास आय बसा है, तुम अपने जी में सोच

विचार करके मेरे मन का सूल जो खटकता है निकालो. मंत्री बोले, पृथ्वीनाथ! आप महाबली हो, किस्से डरते हो? राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है? कुछ चिंता मत करो, जिस छल बल से वे यहां आवें, सोई हम मता बतावें।

पहले तो यहां भली भांति से एक ऐसी सुंदर रंगभूमि बनवावें, कि जिस की सोभा सुनते ही देखने को नगर नगर गांव गांव के लोग उठ धावें, पीछे महादेव का यज्ञ करवाओ, औ होम के लिये बकरे भैंसे मंगवाओ, यह समाचार सुन सब ब्रज बासी भेट लावेंगे, तिनके साथ राम कृष्ण भी आवेंगे; उन्हें तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा, कै कोई और ही बली पौर पै मार डालेगा. इतनी बात के सुनते ही।

कहै कंस मन लाय, भलो मतो मंत्री कियो,
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दए.

फिर सभा कर अपने बड़े बड़े राक्षसों से कहने लगा, कि जब हमारे भानजे राम कृष्ण यहां आवें, तब तुम में से कोई उन्हें मार डालियो, जो मेरे जी का खटका जाय. तिन्हें यों समझाय, पुनि महावत को बुलाके बोला कि, तेरे बस में मतवाला हाथी है, तू द्वार पर लिये खड़ा रहियो, जब वे दोनों आवें औ द्वार में पांव दें, तब तू हाथी से चिरवा डालियो, किसी भांति भागने न पावें; जो तिन दोनों को मारेगा, सो मुंह मांगा धन पावेगा।

ऐसे सब को सुनाय समझाय बुझाय, कार्त्तिक बदी चौदस को शिव का यज्ञ ठहराय, कंस ने सांझ समैं अक्रूर को बुलाय, अति आवभगति कर, घर भीतर ले जाय, एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़, अति प्यार से कहा कि, तुम यदुकुल में सब से बड़े, ज्ञानी, धरमात्मा, धीर हो, इस लिये तुम्हें सब जानते मानते हैं, ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय, इस्से जैसे इंद्र का काज बावन ने जा किया, जो छलकर बलि का सारा राज ले दिया, औ राजा बलि को पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो तो एक बेर बृंदाबन जाओ, और देवकी के दोनों लड़कों को जों बने तों छल बलकर यहां ले आओ. कहा है, जो बड़े हैं सो आप दुख सह करते हैं पराया काज, तिस में तुम्हें तो है हमारी सब बात की लाज. अधिक क्या कहेंगे, जैसे बने तैसे उन्हें ले आओ, तो यहां सहज ही में मारे जांयगे. कै तो देखते ही चानूर पछाड़ेगा, कै गज कुवलिया पकड़ चीर डालेगा; नहीं तो मैं हीं उठ मारूंगा, अपना काज अपने हाथ संवारूंगा; औ उन दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूंगा; क्योंकि वह बड़ा कपटी है, मेरा मरना चाहता है. फिर देवकी के पिता देवक को आग से जलाय पानी में डबोऊंगा, साथ ही उसके बसुदेव को मार, हरि भक्तों को जड़ से खोऊंगा, तब निकंटक राज कर, जुरासिंधु जो मेरा मित्र है प्रचंड, उसके त्रास से कांपते हैं नौ खंड, औ नरकासुर, बानासुर, आदि बड़े बड़े महाबली राक्षस जिसके सेवक हैं, तिस्से जा मिलूंगा, जो तुम राम कृष्ण को ले आओ।

इतनी बातें कहकर कंस अक्रूर को समझाने लगा कि, तुम वृंदावन में जाय नंद के यहां कहियो जो शिव का यज्ञ है, धनुष धरा है, औ अनेक अनेक प्रकार के कुतूहल वहां होंयगे. यह सुन नंद उपनंद गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेट देने लावेंगे, तिनके साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे. यह तो मैं ने तुम्हें उनके लावने का उपाय बताय दिया, आगे तुम सज्ञान हो, जो और उकत बनि आवे सो करि कहियो. अधिक तुम से क्या कहें. कहा है।

होय विचित्र बसीठ, जाहि बुद्धि बल आपनौ,
पर कारज पर ढीठ, करहि भरोसौ ता तनौ.

इतनी बात के सुनते ही, पहले तो अक्रूर ने अपने जी में बिचारा, कि जो मैं अब इसे कुछ भली बात कहूंगा तो यह न मानेगा, इस्से उत्तम यही है कि इस समैं इसके मन भाती सुहाती बात कहूं. ऐसे और भी ठौर कहा है, कि वही कहिये जो जिसे सुहाय. यों सोच विचार अक्रूर हाथ जोड़ सिर झुकाय बोला, महाराज! तुमने भला मता किया, यह वचन हम ने भी सिर चढ़ाय मान लिया, होनहार पर कुछ वस नहीं चलता; मनुष अनेक मनोरथ कर धावता है, पर करम का लिखा ही फल पावता है; साचते हैं और, होता हैं और. किसीके मन का चीता होता नहीं; आगम बांध तुमने यह बात बिचारी है, न जानिये कैसी होय. मैं ने तुम्हारी बात मान ली, कल भोर को जाऊंगा, औ राम कृष्ण को ले आऊंगा. ऐसे कह, कंस से बिदा हो, अक्रूर अपने घर आया. इति।

CHAPTER XXXVIII.

KRISHN SLAYS THE DÆMON KEŚÍ IN THE FORM OF AN IMMENSE HORSE, AND A FIEND CALLED BYOMÁSUR, IN THE SHAPE OF A WOLF.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! ज्यों श्री कृष्णचंद ने केसी को मारा औ नारद ने जाय स्तुति करी पुनि हरि ने ब्योमासुर को हना, त्यों सब चरित्र कहता हूं, तुम चित दे सुनो. कि भोर होते ही केसी अति ऊंचा भयावना घोड़ा बन वृंदाबन में आया, और लगा लाल लाल आंखें कर नथने चढ़ाय, कान पूंछ उठाय, टाप टाप, भूं खोदने, औ हींस हींस कांधा कंपाय कंपाय लातें चलाने।

उसे देखते ही ग्वाल बालों ने भय खाय भाग श्री कृष्ण से जा कहा. वे सुनके वहां आए, जहां वह था, औ तिसे देख लड़ने को फेंट बांध, ताल ठोक, सिंह की भांति गरजकर बोले, अरे! जो तू कंस का बड़ा प्रीतम है, औ घोड़ा बन आया है तो और के पीछे क्यों फिरता है, आ मुझ से लड़ जो तेरा बल देखूं. दीप पतंग की भांति कब तक फिरेगा? तेरी मृत्यु तो निकट आन पहुंची है. यह बचन सुन, केसी कोपकर अपने मन में कहने लगा, कि आज इसका बल देखूंगा औ पकड़ ईख की भांति चबाय कंस का कारज कर जाऊंगा।

इतना कह, मुंह बायके ऐसे दौड़ा, कि मानो सारे संसार को खा जायगा. आते ही पहले जों उन्ने श्री कृष्ण पर मुंह चलाया, तों उन्होंने एक बेर तो धकेल कर पीछे को हटाया, जब दूसरी बेर वह फिर संभलके मुख फैलाय धाया तब श्री कृष्ण ने अपना हाथ उसके मुंह में डाल, लोह लाठ सा कर ऐसा बढ़ाया कि जिस ने विस के दसों द्वार जा रोके, तब तो केसी घबराकर जी में कहने लगा, कि अब देह फटती है, यह कैसी भई, अपनी मृत्यु आप मुंह में ली; जैसे मछली बंसी को निगल प्रान देती है, तैसे मैं ने भी अपना जीव खोया।

इतना कह उसने बज़तेरे उपाय हाथ निकालने को किये, पर एक भी काम न आया, निदान सांस रुककर पेट फट गया, तो पछाड़ खायके गिरा, तब उसके शरीर से लोहू नदी की भांति वह निकला. तिस समैं ग्वाल बाल आय आय देखने लगे, औ श्री कृष्णचंद आगे जाय वन में एक कदम की छांह तले खड़े ज़ए।

इस बीच बीन हाथ में लिये नारद मुनि जी आन पज़ंचे. प्रनाम कर, खड़े होय, बीन बजाय, श्री कृष्णचंद की भूत भविष्य की सब लीला औ चरित्र गायके बोले कि, कृपा नाथ! तुम्हारी लीला अपरंपार है, इतनी किस में सामर्थ है जो आप के चरित्रों को बखाने? पर तुम्हारी दया से मैं इतना जानता हूं, कि आप भक्तों को सुख देने के अर्थ, औ साधों की रक्षा के निमित्त, औ दुष्ट असुरों के नाश करने के हेतु, बार बार औतार ले संसार में प्रगट हो, भूमि का भार उतारते हो।

इतना बचन सुनते ही प्रभू ने नारद मुनि को तो बिदा दी, वे दंडवत कर सिधारे; औ आप सब ग्वाल बाल सखाओं को साथ लिये, एक बड़ के तले बैठ, पहले तो किसी को मंत्री, किसी को प्रधान, किसी को सेनापति बनाय, आप राजा हो राज रीति से खेल खेलने लगे, औ पीछे आंख मिचौली. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ!।

मार्‍यौ केसी भोर ही, सुनी कंस यह बात,
ब्योमासुर सों कहतु है, झंखत कंपत गात.
अरि कंदन ब्योमासुर बली, तेरी जग में कीरति भली.
ज्यों राम के पवन को पूत, त्यों हीं तू मेरे यम दूत.
बसुदेव के पूत हनि ल्याव, आज काज मेरौ करि आव.

यह सुन, कर जोड़ ब्योमासुर बोला, महाराज! जो बसायगी सो करूंगा आज, मेरी देह है आपही के काज. जो जी के लोभी हैं तिन्हें स्वामी के अर्थ जी देते आती है लाज. सेवक औ स्त्री को तो इसी में जस धरम है जो स्वामी के निमित्त प्रान दे. ऐसे कह कृष्ण बलदेव पर बीड़ा उठाय, कंस को प्रनाम कर, ब्योमासुर वृंदावन को चला. बाट में जाय ग्वाल का भेष बनाय चला चला वहां पज़ंचा जहां हरि ग्वाल बाल सखाओं के साथ आंख मिचौली खेल रहे थे.

जाते ही दूर से जब उसने हाथ जोड़ श्री कृष्णचंद से कहा, महाराज! मुझे भी अपने साथ खिलाओ, तब हरि ने उसे पास बुलाकर कहा, तू अपने जी में किसी बात की हांस मत रख, जो तेरा मन माने सो खेल हमारे संग खेल. यों सुन वह प्रसन्न हो बोला, कि इक मेंढे का खेल भला है. श्री कृष्णचंद ने मुसकुरायके कहा बहुत अच्छा तू बन भेड़िया, औ सब ग्वाल बाल होवें मेंढे, सुनते ही फूलकर व्योमासुर तो त्यारी हुआ, औ ग्वाल बाल बने मेंढे मिलकर खेलने लगे।

तिस समैं वह असुर एक एक को उठा ले जाय औ पर्वत की गुफा में रख, उसके मुंह पर आड़ी सिला धर मूंदके चला आवे. ऐसे जब सब को वहां रख आया, औ अकेले श्री कृष्ण रहे, तब ललकार कर बोला कि आज कंस का काज सारूंगा, औ सब यदुबंसियों को मारूंगा. यों कह ग्वाल का भेष छोड़ सचमुच भेड़िया बन ज्यों हरि पर झपटा, त्यों उन्होंने उसको पकड़ गला घोंट मारे घूंसों के यों मार पटका कि, जैसे यज्ञ के बकरे को मार डालते हैं. इति।

CHAPTER XXXIX.

AKRÚR COMES TO BṚINDÁBAN.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! कार्त्तिक बदी द्वादशी को तो केसी औ व्योमासुर मारा गया; और त्रयोदशी को भोर के तड़के ही, अक्रूर कंस के पास आय बिदा हो रथ पर चढ़ अपने मन में यों बिचारता वृंदावन को चला कि, ऐसा मैं ने क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीरथ, व्रत, किया है जिस के पुन्य से यह फल पाऊंगा? अपने जाने तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कंस की संगति में रहा, भजन का भेद कहां पाऊं? हां अगले जन्म कोई बड़ा पुन्य किया हो, उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो, जो कंस ने मुझे श्री कृष्णचंद आनंद कंद के लेने को भेजा है अब जाय उनका दरसन पाय जन्म सुफल करूंगा।

हाथ जोरिकै पायन परि हौं, पुनि पग रेनु सीस पर धरि हौं.
पाप हरन जेई पग आहि, सेवत श्री ब्रह्मादिक ताहि,
जे पग काली के सिर परे, जे पग कुच चंदन सों भरे,
नाचे रास मंडली आछै, जे पग डोलें गायन पाछै,
जा पग रेनु अहिल्या तरी, जा पग तें गंगा नीसरी,
बलि छलि कियो इंद्र को काज, ते पग हों देखोंगो आज.
मो कों सगुन होत हैं भले. मृग के झुंड दाहने चले.

महाराज! ऐसे बिचार, फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा कि, कहां मुझे वे कंस का दूत

तो न समझें? फिर आपही सोचा कि जिनका नाम अंतरजामी है, वे तो मन की प्रीति मानते हैं, औ सब मित्र शत्रु को पहचानते हैं, ऐसा कभी न समझेंगे; बरन मुझे देखते ही गले लगाय दया कर अपना कोमल कंवल सा कर मेरे सीस पर धरेंगे, तब मैं उस चंद्र बदन की सोभा इकटक निरख अपने नैन चकोरों को सुख दूंगा कि, जिस का ध्यान ब्रह्मा रुद्र इंद्र आदि सब देवता सदा करते हैं।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इसी भांति सोच बिचार करते, रथ हांके, इधर से तो अक्रूर जी गये, औ उधर बन से गौ चराय, ग्वाल बाल समेत कृष्ण बलदेव भी आए; तो इनसे उनसे वृंदाबन के बाहर ही भेट भई. हरि छवि दूर से देखते ही अक्रूर रथ से उतर, अति अकुलाय दौड़ उनके पाओं पर जा गिरा, औ ऐसा मगन हुआ कि मुंह से बोल न आया, महा आनंद कर नैनों से जल बरसावने लगा; तब श्री कृष्ण जी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड़ घर लिवाय ले गये. वहां नंदराय अक्रूर जी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले, औ बहुत सा आदर मान किया, पांव धुलवाय आसन दिया।

लिये तेल मरदनियां आए, उबटि सुगंध चुपरि अन्हवाए.
चौका पटा जसोदा दियौ, षट रस रुचि सों भोजन कियौ.

जब अचायके पान खाने बैठे, तब नंद जी उनसे कुशल क्षेम पूछ बोले कि, तुम तो यदुबंसियों में बड़े साध हो, सदा अपनी बड़ाई से रहे हो, कहो अब कंस दुष्ट के पास कैसे रहते हो, औ वहां के लोगों की क्या गति है, सो सब भेद कहो? अक्रूर जी बोले।

जब तें कंस मधुपुरी भयौ, तब तें सबही कौं दुख दयौ.
पूछौ कहा नगर कुसरात, परजा दुखी होत है गात.
जौलों है मथुरा में कंस, तौलौं कहां बचै यदुबंस?
पशु मैंढे छेरीन कौ, ज्यौं खटीक रिपु होइ,
त्यौं परजा कौ कंस है, दुख पावें सब कोइ.

इतना कह फिर बोले कि, तुम तो कंस का ब्योहार जानते हो, हम अधिक क्या कहेंगे? इति।

CHAPTER XL.

NAND AND THE COWHERDS WITH KṚISHṆ SET OUT FOR MATHURÁ, THE CAPITAL OF KANS. LAMENTATIONS OF THE COWHERDESSES. AKRÚR BATHES ON THE ROAD AND SEES A VISION OF KṚISHṆ IN HIS CELESTIAL FORM.

श्री शुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब नंद जी बातें कर चुके, तब अक्रूर को कृष्ण बलराम सैन से बुलाय अलग ले गये।

आदर कर पूछी कुशलात, कहौ कका मथुरा की बात.
हैं बसुदेव देवकी नीके? राजा बैर पर्यौ तिनहीं के?
अति पापी है मामा कंस, जिन खोयौ सिगरौ यदुवंस.

कोई यदुकुल का महा रोग जन्म ले आया है, तिसी ने सब यदुवंसियों को सताया है. औ सच पूछो तो बसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुख पाते हैं, जो हमें न छिपाते तो वे इतना दुख न पाते. यों कह कृष्ण फिर बोले।

तुम सों कहा चलत उनि कह्यौ? तिनकौ सदा ऋनी हौं रह्यौ.
करतु हौंयगे सुरत हमारी, संकट में पावत दुख भारी.

यह सुन अक्रूर जी बोले कि, कृपानाथ! तुम सब जानते हो, क्या कहूंगा कंस की अनीति. बिस की किसी से नहीं है प्रीति. बसुदेव औ उग्रसेन को नित मारने का बिचार किया करता है. पर वे आज तक अपनी प्रारब्ध से बच रहे हैं; और जद से नारद मुनि आय आप के होने का सब समाचार बुझायके कह गये हैं, तद से बसुदेव जी को बेड़ी हथकड़ी दे महा दुख में रक्खा है; औ कल उसके यहां महादेव का यज्ञ है, औ धनुष धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे. सो तुम्हें बुलाने को मुझे भेजा है. यह कहकर कि, तुम जाय राम कृष्ण समेत नंदराय को यज्ञ की भेट सुद्धां लिवाय लाओ सो मैं तुम्हें लेने को आया हूं. इतनी बात अक्रूर जी से सुन, राम कृष्ण ने आ नंदराय से कहा।

कंस बुलाये हैं सुनौ तात, कही अक्रूर कका यह बात.
गोरस मेंढे छेरी लेउ, धनुष यज्ञ है ताकौं देउ.
सब मिल चलौ साथ आपने, राजा बोले रहत न बने.

जब ऐसे समझाय बुझायकर श्री कृष्णचंद जी ने नंद जी से कहा तब नंदराय जी ने उसी समें ढंढोरिये को बुलवाय, सारे नगर में यों कह डौंडी फिरवाय दी कि, कल सवेरे ही सब मिल मथुरा को जांयगे, राजा ने बुलाया है. इस बात के सुन्ने से भोर होते ही भेट ले ले सकल ब्रजवासी आन पहुंचे, औ नंद जी भी दूध, दही, माखन, मेंढे, बकरे, भैंसे ले, सगड़ जुतवाय उनके साथ हो लिये, और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वाल बाल सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

आगे भये नंद उपनंद, सब पाछें हलधर गोबिंद.

श्री शुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! एकाएकी श्री कृष्णचंद का चलना सुन, सब ब्रज की गोपियां अति घबराय, व्याकुल हो, घर छोड़, हड़बड़ाय उठ धाईं, और कुढ़ती झखती गिरती पड़ती वहां आईं, जहां श्री कृष्णचंद का रथ था. आते ही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगीं, हमें किस लिये छोड़ते हो ब्रजनाथ! सर्वस दिया है तुम्हारे हाथ. साध की तो प्रीति कभी घटती नहीं, कर की सी रेखा सदा रहती है, औ मूढ़ की प्रीति नहीं

ठहरती, जैसे बालू की भींति. ऐसा तुम्हारा क्या अपराध किया है, जो हमें पीठ दिये जाते हो? यों श्री कृष्णचंद को सुनाय फिर गोपियां अक्रूर की ओर देख बोलीं।

यह अक्रूर क्रूर है भारी, जानी कछू न पीर हमारी.
जा बिन छिन सब होति अनाथ, ताहि ले चल्यौ अपने साथ.
कपटी क्रूर कठिन मन भयौ, नाम अक्रूर वृथा किन दयौ?
हे अक्रूर कुटिल मति हीन! क्यौं दाहत अबला आधीन?

ऐसे कड़ी कड़ी बातें सुनाय, सोच संकोच छोड़, हरि का रथ पकड़, आपस में कहने लगीं, मथुरा की नारियां अति चंचल, चतुर, रूप गुन भरी हैं, उनसे प्रीति कर गुन औ रस के बस हो वहां हीं रहेंगे बिहारी, तब काहे को करेंगे सुरत हमारी? उन्हीं के बड़े भाग हैं, जो प्रतिम संग रहेंगीं. हमारे जप तप करने में ऐसी क्या चूक पड़ी थी, जिस से श्री कृष्णचंद बिछड़ते हैं? यों आपस में कह, फिर हरि से कहने लगीं कि, तुम्हारा तो नाम है गोपीनाथ, किस लिये नहीं ले चलते हमें अपने साथ?।

तुम बिन छिन छिन कैसें कटै, पलक ओट भये छाती फटै.
हित लगाय क्यों करत बिछोह, निठुर निर्दई धरत न मोह.
ऐसे तहां जपें सुंदरी, सोचें दुख समुद्र में परीं.
चाहि रहीं इकटक हरि ओर, ठगी मृगी सी चंद चकोर.
परहिं नैन तें आंसू टूट, रहीं बिथुरि लट मुख पर छूट.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, राजा! उस समैं गोपियों की तो यह दसा थी, जो मैं ने कही; औ जसोदा रानी ममता कर पुत्र को कंठ लगाय रो रो अति प्यार से कहती थीं कि, बेटा! जै दिन में तुम वहां से फिर आओ, तै दिन के लिये कलेऊ ले जाओ, तहां जाय किसी से प्रीति मत कीजो, बेग आय अपनी जननी को दरसन दीजो. इतनी बात सुन, श्री कृष्ण रथ से उतर, सब को समझाय बुझाय, मा से बिदा होय, दंडवत कर, असीस ले, फिर रथ पर चढ चले. तिस काल इधर से तो गोपियों समेत जसोदा जी अति अकुलाय रो रो कृष्ण कर पुकारती थीं, औ उधर से श्री कृष्ण रथ पर खड़े पुकार पुकार कहते जाते थे कि, तुम घर जाओ, किसी बात की चिंता मत करो, हम पांच चार दिन में हीं फिर कर आते हैं।

ऐसे कहते कहते, औ देखते देखते, जब रथ दूर निकल गया, औ धूली आकाश तक छाई, तिस में रथ की ध्वजा भी न दी दिखाई, तब निरास हो एक बेर तो सब की सब नीर बिन मीन की भांति तड़फड़ाय मूर्छा खाय गिरीं, पीछे कितनी एक बेर के चेत कर उठीं, औ अवध की आस मन में धर, धीरज कर, उधर जसोदा जी तो सब गोपियों को ले वृंदावन को गईं, औ इधर श्री कृष्णचंद सब समेत चले चले यमुना तीर पर आ पहुंचे; तहां ग्वाल बालों ने जल पिया, औ

हरि ने भी एक बड़ की छांह में रथ खड़ा किया. जब अक्रूर जी न्हाने का बिचार कर रथ से उतरे, तब श्री कृष्णचंद ने नंदराय से कहा कि, आप सब ग्वाल बालों को ले आगे चलिये चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आ मिलते हैं.

यह सुन, सब को ले नंद जी आगे बढ़े, औ अक्रूर जी कपड़े खोल, हाथ पांव धोय, आचमन कर, तीर पर जाय, नीर में पैठ, डुबकी ले, पूजा, तर्पन, जप, ध्यान कर, फिर चुभकी मार, आंख खोल, जल में देखें तो वहां रथ समेत श्री कृष्ण दृष्ट आए।

पुनि उन देख्यौ सीस उठाय, तिहिं ठां बैठें हैं यदुराय.
करै अचंभो हिये बिचारि, वे रथ ऊपर दूर मुरारि.
बैठे दोऊ बर की छांह, तिनहीं कौं देखौं जल मांह.
बाहर भीतर भेद न लहौं, सांचौ रूप कौन सौं कहौं.

महाराज! अक्रूर जी तो एकही मूरत बाहर भीतर देख देख सोचते ही थे कि, इस बीच पहले तो श्री कृष्णचंद जी ने चतुर्भुज हो, शंख चक्र गदा पद्म धारन कर, सुर, मुनि, किन्नर, गंधर्व, आदि सब भक्तों समेत जल में दरसन दिया, औ पीछे शेषशाई हो, तो अक्रूर देख और भी भूल रहा. इति।

CHAPTER XLI.

AKRÚR RECITES THE PRAISES OF KRISHṆ.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! पानी में खड़े खड़े अक्रूर को कितनी एक बेर में प्रभु का ध्यान करने से ज्ञान हुआ तो हाथ जोड़ प्रनाम कर कहने लगा कि, करता हरता तुम्हीं हो भगवंत, भक्तों के हेतु संसार में आय धरते हो भेष अनंत; और सुर नर मुनि तुम्हारे अंस हैं, तुम हीं से प्रगट हो, तुम्हीं में ऐसे समाते हैं, जैसे जल सागर से निकल सागर में समाता है; तुम्हारी महिमा है अनूप, कौन कह सके? सदा रहते हो बिराट सरूप: सिर स्वर्ग, पृथ्वी पांव, समुद्र पेट, नाभि आकाश, बादल केस, वृक्ष रोम, अग्नि मुख, दसों दिसा कान, नैन चंद्र औ भानु, इंद्र भुजा, बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गरजन बचन, प्रान पवन, जल वीर्य्य, पलक लगाना रात दिन. इस रूप से सदा बिराजते हो, तुम्हें कौन पहचान सके? इस भांति स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरन का ध्यान धर कहा, कृपानाथ! मुझे अपनी सरन में रक्खो. इति।

CHAPTER XLII.

THE COWHERDS ENTER MATHURÁ. DESCRIPTION OF THE CITY. KRISHN MEETING THE CHIEF WASHERMAN OF THE KING KANS, PLUNDERS HIM OF THE ROYAL APPAREL, AND SLAYS HIM WITH A BLOW OF HIS FIST.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जद श्री कृष्णचंद ने नटमाया की भांति जल में अनेक रूप दिखाय हर लिये, तद अक्रूर जी ने नीर से निकल तीर पर आ हरि को प्रनाम किया. तिस काल नंदलाल ने अक्रूर से पूछा कि, कका! सीत समें जल के बीच इतनी बेर क्यों लगी. हमें यह अति चिंता थी तुम्हारी कि, चचा ने किस लिये बाट चलने की सुधि बिसारी, क्या कुछ अचरज तो जा कर नहीं देखा? यह समझायके कहो, जो हमारे मन की दुबधा जाय!

सुनि अक्रूर कहै जोरे हाथ, तुम सब जानत हौ ब्रज नाथ!
भलो दरस दीनौं जल माहिं, कृष्ण चरित कौ अचरज नाहिं.
मोहि भरोसौ भयौ तिहारौ, बेग नाथ मथुरा पग धारौ.

अब यहां विलंब न करिये, शीघ्र चल कारज कीजे. इतनी बात के सुनते ही हरि झट रथ पर बैठ अक्रूर को साथ ले चल खड़े हुए, औ नंद आदि जो सब गोप ग्वाल आगे गये थे, उन्होंने जा मथुरा के बाहर डेरे किये, औ कृष्ण बलदेव की बाट देख देख अति चिंता कर आपस में कहने लगे, इतनी अबेर न्हाते क्यों लगी, और किस लिये अबतक नहीं आए हरी? कि इस बीच चले चले आनंद कंद श्री कृष्णचंद भी जाय मिले. उस समैं हाथ जोड़ सिर झुकाय बिनती कर अक्रूर जी बोले कि, ब्रज राज! अब चलके मेरा घर पवित्र कीजे, औ अपने भक्तों को दरस दिखाय सुख दीजे. इतनी बात सुनते ही हरि ने अक्रूर से कहा।

पहले सोध कंस कौं देऊ, तब अपनौ दिखरावौ गेऊ.
सब की बिनती कही जु जाय, सुनि अक्रूर चले सिर नाय.

चले चले कितनी एक बेर में रथ से उतरकर वहां पहुंचे, जहां कंस सभा किये बैठा था, इनको देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति हित कर मिला, औ बड़े आदर मान से हाथ पकड़ ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय, इनकी कुशल क्षेम पूछ बोला, जहां गये थे वहां की बात कहो।

सुनि अक्रूर कहै समझाय, ब्रज की महिमा कही न जाय.
कहा नंद की करों बड़ाई? बात तुम्हारी सीस चढ़ाई.
राम कृष्ण दोऊ हैं आए, भेट सबै ब्रजबासी लाए.
डेरा किये नदी के तीर, उतरे गाड़ा भारी भीर.

यह सुन कंस प्रसन्न हो बोले, अक्रूर जी! आज तुम ने हमारा बड़ा काम किया जो राम कृष्ण को ले आए, अब घर जाय बिश्राम करो।

इतनी कथा कथ श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! कंस की आज्ञा पाय, अक्रूर जी तो अपने घर गये. वह सोच बिचार करने लगा; और जहां नंद उपनंद बैठे थे, तहां उनसे हलधर औ गोबिंद ने पूछा, जो हम आप की आज्ञा पावें तो नगर देख आवें. यह सुन पहले तो नंदराय जी ने कुछ खाने को मिठाई निकाल दी, उन दोनों भाइयों ने मिलकर खाय ली, पीछे बोले, अच्छा जाओ देख आओ पर बिलंब मत कीजो।

इतना वचन नंद महर के मुख से निकलते ही, आनंद कर दोनों भाई अपने ग्वाल बाल सखाओं को साथ ले नगर देखने चले; आगे बढ़ देखे तो नगर के बाहर चारों ओर बन उपबन फूल फल रहे हैं; तिन पर पंछी बैठे अनेक अनेक भांति की मन भावन बोलियां बोलते हैं; औ बड़े बड़े सरोवर निर्मल जल से भरे हैं, उन में कंवल खिले हुए, जिन पर भौंरों के झुंड के झुंड गूंज रहे; औ तीर में हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे; सीतल सुगंध सनी मंद पौन बह रही; औ बड़ी बड़ी बाड़ियों की बाड़ों पर पनवाड़ियां लगी हुईं; बीच बीच बरन बरन के फूलों की क्यारियां कोसों तक फूली हुईं; ठौर ठौर इंदारों बावड़ियों पर रहट परोहे चल रहे; माली मीठे सुरों से गाय गाय जल सींज रहे।

यह सोभा बन उपबन की निरख, हरष, प्रभु सब समेत मथुरा पुरी में पैठे. वह पुरी कैसी है कि जिस के चहुं ओर तांबे का कोट, औ पक्की चुआन चौड़ी खाई; स्फटिक के चार फाटक, तिन में अष्ट धाती किवाड़ कंचन खचित लगे हुए; औ नगर में बरन बरन के राते पीले हरे धौले पंचखने सतखने मंदिर ऊंचे ऐसे कि घटा से बातें कर रहे; जिनके सोने के कलस कलसियों की जोति बिजली सी चमक रही; ध्वजा पताका फहराय रहीं; जाली झरोखों मोखों से धूप की सुगंध आय रही; द्वार द्वार पर केले के खंभ औ सुबरन कलस सपल्लव भरे धरे हुए; तोरन बंदनवार बंधी हुईं; घर घर बाजन बाज रहे; औ एक ओर भांति भांति के मनिमय कंचन के मंदिर राजा के न्यारेही जगमगाय रहे; तिनकी सोभा कुछ बरनी नहीं जाती. ऐसी जो सुंदर सुहावनी मथुरा पुरी, तिसे श्री कृष्ण बलदेव ग्वाल बालों को साथ लिये देखते चले।

परी धूम मथुरा नगर, आवत नंद कुमार,
सुनि धाए पुर लोग सब, गृह को काज बिसार.

और जो मथुरा की सुंदरी, सुनत कान अति आतुर खरी.
कहैं परस्पर वचन उचारि, आवत हैं बलभद्र मुरारि.
तिन्हें अक्रूर गये हे लैन, चलहु सखी अब देखहिं नैन.
कोऊ खात न्हात तें भजै, गुहत सीस कोऊ उठि तजै.

काम केलि पिय की बिसरावे, उलटे भूषन बसन बनावे.
जैसें ही तैसें उठि धाईं, कृष्ण दरस देखन कों आईं.
लाज कान डर डार, कोउ खिरकिन कोऊ अटन पर,
कोऊ खड़ी दुवार, कोऊ दौरी गलियन फिरत.
ऐसे जहां तहां खड़ी नारि, प्रभुहिं बतावें बांह पसारि.
नील बसन गोरे बलराम, पीतांबर ओढ़े घनस्याम.
ये भानजे कंस के दोऊ, इनतें असुर बचौ नहीं कोऊ.
सुनत हुती पुरुषारथ जिनकौ, देखहु रूप नैन भरि तिनकौ.
पूरव जन्म सुकृत कोऊ कीनौं, सो बिधि यह दरसन फल दीनौं.

इतनी कथा कह, श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! इसी रीत से सब पुरबासी क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह दरसन कर मगन होते थे, और जिस हाट बाट चौहटे में हो सब समेत कृष्ण बलराम निकलते थे, तहीं अपने अपने कोठों पर खड़े इन पर चोवा चंदन छिड़क छिड़क आनंद से वे फूल बरसावते थे; और ये नगर की सोभा देख देख ग्वाल बालों से यों कहते जाते थे, भैया! कोई भूलियो मत, औ जो कोई भूले तो पिछले डेरों पर जाइयो. इस में कितनी एक दूर जायके देखते क्या हैं कि, कंस के धोबी धोए कपड़ों की लादियां लादे, पोटें मोटें लिये, मद पिये, रंग राते, कंस जस गाते, नगर के बाहर से चले आते हैं. उन्हें देख श्री कृष्णचंद ने बलदेव जी से कहा कि, भैया! इनके सब चीर छीन लीजिये, औ आप पहर ग्वाल बालों को पहराय बचें सो लुटाय दीजिये. भाई को यों सुनाय सब समेत धोबियों के पास जाय हरि बोले।

हमकौं उज्जल कपरा देऊ, राजहि मिलि आवें फिर लेऊ.
जो पहिरावनि नृप सों पै हैं, ता में तें कछु तुम कौं दै हैं.

इतनी बात के सुनते ही तिनमें से जो बड़ा धोबी था सो हंसकर कहने लगा.

राखें घरी बनाय, ह्वै आवौ नृप द्वार लों,
तब लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजियो.
बन बन फिरत चरावत गैया, अहीर जाति कामरी उढ़ैया.
नट कौ भेष बनायके आए, नृप अंबर पहरन मन भाए.
जुरिकै चले नृपति के पास, पहिरावनि लैबे की आस.
नेक आस जीवन की जोऊ, खोवन चहत अबहि पुनि सोऊ.

यह बात धोबी की सुनकर हरि ने फिर मुसकुराय कहा कि, हम तो सूधी चाल में मांगते हैं, तुम उलटी क्यों समझते हो, कपड़े देने से कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा, बरन जस लाभ होगा.

यह वचन सुन रजक झुंझलाकर बोला, राजा के बागे पहरने का मुंह तो देखो; मेरे आगे से जा, नहीं अभी मार डालता हूं. इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्री कृष्णचंद ने तिरछा कर एक हाथ मारा कि, तिस का सिर भुट्टा सा उड़ गया. तब जितने उसके साथी औ टहलुए थे सब के सब पोटें मोटें लादियां छोड़ अपना जीव ले भागे, औ कंस के पास जा पुकारे, यहां श्री कृष्ण जी ने सब कपड़े ले लिये, औ आप पहन, भाई को पहराय, ग्वाल बालों को बांट, रहे सो लुटाय दिये. तिस समैं ग्वाल बाल अति प्रसन्न हो हो लगे उलटे पुलटे वस्त्र पहनने।

कटि कस पग पहरें झंगा, सूथन मेलें बांह,
बसन भेद जाने नहीं, हंसत कृष्ण मन मांह.

जों वहां से आगे बढ़े तों एक सूजी ने आय दंडवत कर, खड़े होय, कर जोड़के कहा, महाराज! मैं कहने को तो कंस का सेवक कहलाता हूं, पर मन से सदा आप ही का गुन गाता हूं, दया कर कहिये तो बागे पहराऊं, जिस से तुम्हारा दास कहाऊं।

इतनी बात उसके मुख से निकलते ही, अंतरजामी श्री कृष्णचंद ने तिसे अपना भक्त जान निकट बुलायके कहा, तू भले समैं आया, अच्छा पहराय दे. तब तो उसने झट पट ही खोल उधेड़, कतर, छांट, सीकर ठीक ठाक बनाय, चुन चुन राम कृष्ण समेत सब को बागे पहराय दिये; उस काल नंदलाल तिसे भक्ति दे साथ ले आगे चले।

तहां सुदामा माली आयौ, आदर कर अपने घर लायौ.
सबही कों माला पहराई, माली के घर भई बधाई. इति।

CHAPTER XLIII.

KUBJÁ, OR THE "HUMPBACK," A DEFORMED WOMAN, ANOINTS KRISHN AND RECEIVES A PROMISE FROM HIM THAT HE WILL VISIT HER. COMING TO WHERE THE BOW OF MAHÁDEV IS HUNG UP, KRISHN BREAKS IT AND MAKES A SLAUGHTER OF THE ROYAL GUARDS. KANS IS TORMENTED WITH HORRIBLE DREAMS.

श्री शुकदेव जी बोले कि, पृथीनाथ! माली की लगन देख, मगन हो, श्री कृष्णचंद उसे भक्ति पदारथ दे, वहां से आगे जाय देखें तो सांहीं गली में एक कुबड़ी केसर चंदन से कटोरियां भरे थाली के बीच धरे, लिये हाथ में खड़ी है. उस्से हरि ने पूछा, तू कौन है, औ यह कहां ले चली है? वह बोली, दीन दयाल! मैं कंस की दासी हूं, मेरा नाम है कुबजा, नित्त चंदन घिस कंस को लगाती हूं; औ मन से तुम्हारे गुन गाती हूं; तिसी के प्रताप से आज आपका दरसन पाय जन्म स्वार्थिक किया, औ नैनों का फल लिया; अब दासी का मनोरथ यह है जो प्रभु की आज्ञा पाऊं तो चंदन अपने हाथों चढ़ाऊं।

उस की अति भक्ति देख हरि ने कहा, जो तेरी इसी में प्रसन्नता है तो लगाव. इतना बचन सुनते ही, कुबजा ने बड़े रावचाव से चित लगाय, जब राम कृष्ण को चंदन चरचा, तब श्री कृष्णचंद ने उसके मन की लाग देख दयाकर पांव पर पांव धर, दो उंगली ठोढ़ी के तले लगाय उचकाय विसे सीधा किया. हरि का हाथ लगते ही वह महा सुंदरी ऊई, औ निपट बिनती कर प्रभु से कहने लगी कि, कृपा नाथ! जों आप ने कृपा कर इस दासी की देह सूधी की, तोंहीं दयाकर अब चलके घर पवित्र कीजे, औ बिश्राम ले दासी को सुख दीजे. यह सुन, हरि उसका हाथ पकड़ मुसकुरायके कहने लगे।

तैं श्रम दूर हमारौ कियौ, मिलकै सीतल चंदन दियौ.
रूप सील गुन सुंदरि नीकी, तो सों प्रीति निरंतर जी की.
आय मिलोंगौ कंसहि मारि, यों कह आगे चले मुरारि.

औ कुबजा अपने घर जाय, केसर चंदन से चौक पुराय, हरि के मिलने की आस मन में रख, मंगलाचार करने लगी।

आवें तहां मथुरा की नारि, करैं अचंभौ कहैं निहारि,
धनि धनि कुबजा तेरौ भाग, जाकों बिधना दियौ सुहाग.
ऐसौ कहा कठिन तप कियौ, गोपी नाथ भेट भुज लियौ.
हम नीके नहिं देखे हरी, तो कों मिले प्रीति अति करी.
ऐसें तहां कहत सब नारि, मथुरा देखत फिरत मुरारि.

इस बीच नगर देखते देखते सब समेत प्रभु धनुष पौर पर जा पऊंचे इन्हें अपने रंग राते माते आते देखते ही पौरिये रिसायके बोले, इधर किधर चले आते हो गंवार! दूर खड़े रहो, यह है राजद्वार. द्वारपालों की बात सुनी अन सुनी कर हरि सब समेत दर्राने वहां चले गये जहां तीन ताड़ लंबा अति मोटा भारी महादेव का धनुष धरा था. जाते ही झट उठाय चढ़ाय सहज सुभाव ही खैंच यों तोड़ डाला कि जों हाथी गांडा तोड़ता है।

इस में सब रखवाले जो कंस के बिठाये धनुष की चौकी देते थे, सो चढ़ आए, प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया. तिस समैं पुरवासी तो यह चरित्र देख विचारकर निसंक हो आपस में यों कहने लगे कि, देखो राजा ने घर बैठे अपनी मृत्यु आप बुलाई है, इन दोनों के हाथ से अब जीता न बचेगा. और धनुष टूटने का अति शब्द सुन कंस भय खाय अपने लोग से पूछने लगा कि यह महा शब्द काहे का ऊआ. इस बीच कितने एक लोग राजा के जो दूर खड़े देखते थे, वे मूंड फिकार यों जा पुकारे कि महाराज की दुहाई! राम कृष्ण ने आय नगर में बड़ी धूम मचाई; शिव का धनुष तोड़ सब रखवालों को मार डाला।

इतनी बात के सुनते ही कंस ने बऊत से जोधाओं को बुलाके कहा, तुम इनके साथ जाओ,

औ कृष्ण बलदेव को छल बल कर अभी मार आओ. इतना बचन कंस के मुख से निकलते ही, ये अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले वहां गये, जहां वे दोनों भाई खड़े थे. इन्होंने विन्हें ज्यों ललकारा, त्यों विन्होंने इन सब को भी आय मार डाला. जद हरि ने देखा कि यहां कंस का सेवक अब कोई नहीं रहा, तद बलराम जी से कहा कि भाई! हमें आए बड़ी बेर ऊई, डेरों पर चला चाहिये, क्योंकि बाबा नंद हमारी बाट देख देख भावना करते होंयगे. यों कह सब ग्वाल बालों को साथ ले प्रभु बलराम समेत चलकर वहां आए जहां डेरे पड़े थे. आते ही नंदमहर से तो कहा कि पिता! हम नगर में जाय भला कुतूहल देख आए, औ गोप ग्वालों को अपने बागे दिखलाए।

तब लखि नंद कहै समुझाय, कान्ह तुम्हारी टेव न जाय.
ब्रज वन नहीं हमारौ गांव, यह है कंस राय की ठांव.
यहां जिन कछू उपद्रव करौ, मेरी सीख पूत मन धरौ.

जद नंदराय जी ऐसे समझाय चुके, तद नंदलाल बड़े लाड़ से बोले कि, पिता! भूख लगी है, जो हमारी माता ने खाने को साथ कर दिया है सो दीजिये. इतनी बात के सुनते ही उन्हों ने जो पदारथ खाने का साथ आया था सो निकाल दिया. कृष्ण बलदेव ने ले ग्वाल बालों के साथ मिलकर खाय लिया. इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! इधर तो ये आय परमानंद से ब्यालू कर सोए, औ उधर श्री कृष्ण की बातें सुन कंस के चित में अति चिंता ऊई, तो न उसे बैठे चैन था न खड़े, मन ही मन कुढ़ता था, अपनी पीर किसी से न कहता था. कहा है।

ज्यों काठहि घुन खात है, कोऊ न जाने पीर,
त्यों चिंता चित में भये, बुधि बल घटत शरीर,

निदान अति घबराया, तब मंदिर में जाय सेज पर सोया, पर उसे मारे डरके नींद न आई।

तीन पहर निस जागत गई, लागी पलक नींद छिन भई.
तब सपनौ देख्यौ मन मांह, फिरे सीस बिन धर की छांह.
कबहूं नगन रेत में न्हाय, धावै गदहा चढ़ विष खाय.
बसे मसान भूत संग लिये, रक्त फूल की माला हिये.
बरत रूख देखै चऊं ओर, तिन पर बैठे बाल किशोर.

महाराज! जब कंस ने ऐसा सपना देखा, तब तो वह अति व्याकुल हो चौंक पड़ा, औ सोच विचार करता उठकर बाहर आया, अपने मंत्रियों को बुलाय बोला, तुम अभी जाओ, रंगभूमि को झड़वाय छिड़कवाय संवारो, और नंद उपनंद समेत सब ब्रजवासियों को औ बसुदेव आदि यदुबंसियों को रंगभूमि में बुलाय बिठाओ, औ सब देस देस के जो राजा आए हैं तिन्हें भी; इतने में मैं भी आता हूं।

कंस की आज्ञा पाय मंत्री रंगभूमि में आए, उसे झड़वाय छिड़कवाय तहां पाटंबर छाय बिछाय, ध्वजा पतका तोरन बंदनवार बंधवाय, अनेक अनेक भांति के बाजे बजवाय, सब को बुलाय भेजा; वे आए, औ अपने अपने मंच पर जाय जाय बैठे. इस बीच राजा कंस भी अति अभिमान भरा अपने मचान पर आय बैठा. उस काल देवता बिमानों में बैठे आकाश से देखने लगे. इति।

CHAPTER XLIV.

KṚISHṆ SLAYS THE ELEPHANT KUBALIYÁ.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! भोर ही जब नंद उपनंद आदि सब बड़े बड़े गोप रंगभूमि की सभा में गये, तब श्री कृष्णचंद जी ने बलदेव जी से कहा कि, भाई! सब गोप आगे गये, अब बिलंब न करिये, शीघ्र ग्वाल बाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि देखने चलिये।

इतनी बात के सुनते ही बलराम जी उठ खड़े ऊए. औ सब ग्वाल सखाओं से कहा कि भाइयो! चलो रंगभूमि की रचना देख आवें. यह बचन सुनते की तुरत सब साथ हो लिये; निदान श्री कृष्ण बलराम नटबर भेष किये, ग्वाल बाल सखाओं को साथ लिये, चले चले रंगभूमि की पौर पर आय खड़े ऊए, जहां दस सहस्र हाथियों का बलवाला मतवाला गज कुबलिया खड़ा झूमता था।

देखि मतंग द्वार मतवारौ, गजपाल हि बलराम पुकारौ.
सुनो महावत बात हमारी, लेऊ द्वार तें गज तुम टारी.
जान देऊ हमकों नृप पास, नातर ह्वै है गज कौ नास.
कहे देत नहिं दोष हमारौ, मत जानो हरि कौं लू बारौ.

ये त्रिभुवन पति हैं, दुष्टों को मार भूमि का भार उतारने को आए हैं. यह सुन महावत क्रोध कर बोला. मैं जानता ऊं, गौ चरायके त्रिभुवन पति भये हैं, इसी से यहां आय बड़े सूर की भांति अड़े खड़े हैं; धनुष का तोड़ना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है, जबतक इस्से न लड़ोगे तबतक भीतर न जाने पाओगे. तुमने तो बऊत बली मारे हैं, पर आज इसके हाथ से बचोगे तब मैं जानूंगा कि तुम बड़े बली हो।

तबै कोपि हलधर कह्यौ, सुन रे मूढ़ कुजात,
गज समेत पटकौं अबहि, मुख संभारि कऊ बात,
नेकु न लगि है बार, हाथी मरि जै है अबहि,
तो सों कहत पुकार, अजऊ मान मेरौ कह्यौ.

इतनी बात के सुनते ही झुंझलाकर गजपाल ने गज पेला. जों वह बलदेव जी पर टुटा, तों इन्होंने हाथ घुमाय एक थपेड़ा ऐसा मारा कि, वह सूंड सकोड़ चिंघाड़ मार पीछे हटा. यह चरित्र देख कंस के बड़े बड़े योधा जो खड़े देखते थे, सो अपने जियों में हार मान मन हीं मन कहने लगे कि, इन महा बलवानों से कौन जीत सकेगा? औ महावत भी हाथी को पीछे हटा जान, अति भय मान, जी में बिचार करने लगा, कि जो ये बालक न मारे जांय, तों कंस भी मुझे जीता न छोड़ेगा. यों सोच समझ उसने फिर अंकुस मार हाथी को तत्ता किया, औ इन दोनों भाइयों पर हूल दिया. उसने आते ही सूंड से हरि को पकड़ पछाड़ खुनसाय जों दांतों से दबाया, तों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दांतों के बीच बच रहे।

डरपि उठे तिहि काल सब, सुर मुनि पुर नर नारि,
दुहूं दसन बिच ह्वै कढ़े, बल निधि प्रभु दे तारि.
उठे गजहि के साथ, बझरि ख्याल हीं हांकि दै,
तुरतहिं भये सनाथ, देखि चरित्र सब स्याम के.
हांक सुनत अति कोप बढ़ायौ, झटकि सूंड बझरों गज धायौ.
रहे उदर तर दबकि मुरारि, गये जानि गज रह्यौ निहारि.
पाछें प्रगट फेर हरि टेर्‌यौ, बलदाऊ आगे तें घेर्‌यौ.
लागे गजहिं खिलावन दोऊ, भैचक रहे देख सब कोऊ.

महाराज! उसे कभी बलराम सूंड पकड़ खैंचते थे, कभी स्याम पूंछ पकड़; और जब वह इन्हें पकड़ने को आता था, तब ये अलग हो जाते थे. कितनी एक बेर तक उस्से ऐसे खेलते रहे, जैसे बछड़ों के साथ बालकपन में खेलते थे. निदान हरि ने पूंछ पकड़ फिराय उसे दे पटका, औ मारे घूंसों के मार डाला. दांत उखाड़ लिये, तब उसके मुंह से लोहू नदी भांति बह निकला. हाथी के मरते ही महावत ललकार कर आया, प्रभु ने उसे भी हाथी के पांव तले झट मार गिराया, औ हंसते हंसते दोनों भाई नटवर भेष किये, एक एक दांत हाथी का हाथों में लिये, रंगभूमि के बीच जा खड़े हुए. उस काल नंदलाल को जिन जिन ने जिस जिस भाव से देखा, उस उस को तिसी तिसी भाव से दृष्ट आए; मल्लोंने मल्ल माना; राजाओं ने राजा जाना; देवताओं ने अपना प्रभु बूझा; ग्वाल बालोंने सखा; नंद उपनंद ने बालक समझा; औ पुर की युवतियों ने रूप निधान; औ कंसादिक राक्षसों ने काल समान देखा. महाराज! इनको निहारते ही कंस अति भयमान हो पुकारा, अरे मल्लो! इन्हें पछाड़ मारो, कै मेरे आगे से टालो।

इतनी बात जों कंस के मुंह से निकली, तों सब मल्ल, गुरु सुत चेले संग लिये, बरन बरन के भेष किये, ताल ठोक ठोक भिड़ने को श्री कृष्ण बलराम के चारों ओर घिर आए. जैसे वे आए,

तैसे ये भी संभल खड़े ज़ए; तब उनमें से इन की ओर देख चतुराई कर चानूर बोला, सुनो आज हमारे राजा कुछ उदास हैं, इसे जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखा चाहते हैं; क्योंकि तुमने वन में रह सब बिद्या सीखी है, और किसी बात का मन में सोच न कीजे, हमारे साथ मल्ल युद्ध कर अपने राजा को सुख दीजे।

श्री कृष्ण बोले, राजा जी ने बड़ी दया कर हमें बुलाया है आज, हम से क्या सरेगा इनका काज; तुम अति बली गुनवान, हम बालक अजान, तुम से हाथ कैसे मिलावें? कहा है, ब्याह बैर औ प्रीति समान से कीजे, पर राजा जी से कुछ हमारा बस नहीं चलता, इसे तुम्हारा कहा मानते हैं, हमें बचा लीजो, बल कर पटक न दीजो; अब हमें तुम्हें उचित है, जिस में धर्म रहे सो कीजिये, औ मिलकर अपने राजा को सुख दीजिये।

सुनि चानूर कहै भय खाय, तुम्हारी गति जानी नहिं जाय.
तुम बालक मानुष नहिं दोऊ, कीने कपट बली हौ कोऊ.
खेलत धनुष खंड दै कस्यौ, मार्‍यौ तुरत कुवलिया तस्यौ.
तुम सों लरे हानि नहिं होइ, या बातें जाने सब कोइ. इति।

CHAPTER XLV.

THE WRESTLER CHÁNÚR ENCOUNTERS KṚISHṆ, AND MUSHTAK ATTACKS BALARÁM. THE TWO BROTHERS DESTROY THEIR ANTAGONISTS, AND AFTERWARDS KṚISHṆ SLAYS KANS, AND ASSISTS THE WIVES OF THE TYRANT TO PERFORM HIS OBSEQUIES.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, पृथ्वी नाथ! ऐसे कितनी एक बातें कर, ताल ठोक, चानूर तो श्री कृष्ण के सोंहीं ज़आ, औ मुष्टक बलराम जी से आय भिड़ा, इनसे उनसे मल्लयुद्ध होने लगा।

सिर सों सिर, भुज सों भुजा, दृष्ट दृष्ट सों जोरि,
चरन चरन गहि झपटकै, लपटत झपट झकोरि.

उस काल सब लोग इन्हें उन्हें देख देख आपस में कहने लगे कि, भाइयो! इस सभा में अति अनीति है, देखो कहां ये बालक रूप निधान, कहां ये सबल मल्ल बज्र समान? जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म जाय, इससे अब यहां रहना उचित नहीं, क्योंकि हमारा कुछ बस नहीं चलता।

महाराज! इधर तो ये सब लोग यों कहते थे, औ उधर श्री कृष्ण बलराम मल्लों से मल्लयुद्ध करते थे. निदान इन दोनों भाइयों ने उन दोनों मल्लों को पछाड़ मारा. विनके मरते ही सब मल्ल आय टूटे, प्रभु ने पल भर में तिन्हें भी मार गिराया. तिस समैं हरि भक्त तो प्रसन्न हो बाजन बजाय बजाय जैजैकार करने लगे, औ देवता आकाश से अपने बिमानों में बैठे कृष्ण

जस गाय गाय फूल बरसावने: और कंस अति दुख पाय, व्याकुल हो रिसाय, अपने लोगों से कहने लगा, अरे! बाजे क्यों बजाते हो, तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है? ।

यों कह बोला, ये दोनों बालक बड़े चंचल हैं, इन्हें पकड़ बांध सभा से बाहर ले जाओ. औ देवकी समेत उग्रसेन वसुदेव कपटी को पकड़ लाओ; पहले उन्हें मार पीछे इन दोनों को भी मार डालो. इतना वचन कंस के मुख से निकलते ही, भक्तों के हितकारी मुरारी सब असुरों को छिन भर में मार उछलके वहां जा चढ़े, जहां अति ऊंचे मंच पर झिलम पहने, टोप दिये, फरी खांडा लिये, बड़े अभिमान से कंस बैठा था. वह इनको काल समान निकट देखते ही भय खाय उठ खड़ा हुआ, औ लगा थरथर कांपने।

मन में तो चाहा कि भागूं, पर मारे लाज के भाग न सका, फरी खांडा संभाल लगा चोट चलाने. उस काल नंद लाल अपनी घात लगाये उस की चोट बचाते थे, औ सुर, नर, मुनि गंधर्व, यह महा युद्ध देख देख भयमान हो यों पुकारते थे, हे नाथ! हे नाथ! इस दुष्ट को वेग मारो. कितनी एक वेर तक मंच पर युद्ध रहा; निदान प्रभु ने सब को दुखित जान उसके केस पकड़, मंच से नीचे पटका, औ ऊपर से आप भी कूदे कि उसका जीव घट से निकल सटका. तब सब सभा के लोग पुकारे, श्री कृष्णचंद रे कंस को मारा. यह शब्द सुन सुर नर मुनि सब को अति आनंद हुआ।

करि अस्तुति पुनि पुनि हरष, बरख सुमन सुर वृंद,
मुदित बजावत दुंदुभी, कहि जैजै नंद नंद.
मथुरा पुर नर नारि, अति प्रफुलित सबकौ हियौ,
मनहुं कुमुद बन चारु, विकसित हरि ससि मुख निरखि.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, धर्मावतार! कंस के मरते ही जो अति बलवान आठ भाई उसके थे, सो लड़ने को चढ़ आए. प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया, जब हरि ने देखा कि अब यहां राचस कोई नहीं रहा, तब कंस की लोत को घसीट, यमुना तीर पर ले आए, औ दोनों भाइयों ने बैठ विश्राम लिआ, तिसी दिन से उस ठौर का नाम विश्रांत घाट हुआ।

आगे कंस का मरना सुन, कंस की रानियां औ रानियों समेत अति व्याकुल हो रोती पीटती वहां आईं जहां यमुना के तीर दोनों बीर मृतक लिये बैठे थे; औ लगीं अपने पति का मुख निरख निरख, सुख सुमिर सुमिर, गुन गाय गाय, व्याकुल हो हो, पछाड़ खाय खाय, मरने: कि इस बीच करुना निधान कान्ह करुना कर उनके निकट जाय बोले।

माई सुनहुं शोक नहिं कीजै, मामा जू कों पानी दीजै.
सदा न कोऊ जीवत रहै, झूठौ सो जो अपनौ कहै.

मात पिता सुत बंधु न कोई, जन्म मरन फिरही फिर होई.
जौलों जा सों सनमंद रहै, तौही लों मिलिके सुख लहै.

महाराज! जद श्री कृष्णचंद ने रानियों को ऐसे समझाया, तद विन्हों ने वहां से उठ, धीरज धर, यमुना तीर पै आ, पति को पानी दिया, औ आप प्रभु ने अपने हाथ कंस को आग दे उस की गति की. इति।

CHAPTER XLVI.

KRISHN RELEASES VASUDEV AND DEVAKÍ, WHO HAD BEEN CONFINED BY KANS. HE SEATS UGRASEN ON THE THRONE, AND TAKES LEAVE OF THE COWHERDS, WHO, ALL BUT A FEW, RETURN TO BRINDÁBAN. THE SORROW OF JASODÁ AT KRISHN'S NOT RETURNING. GARG INVESTS KRISHN AND BALARÁM WITH THE BRAHMINICAL THREAD. THEY STUDY THE VEDAS AT THE CITY OF AVANTIKÁ, UNDER THE SAGE SÁNDÍPAN, WHOSE SON KRISHN RECOVERS FROM THE REGENT OF THE DEAD, AFTER DESTROYING A DÆMON IN THE FORM OF A SHELL, NAMED SANKHÁSUR.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, हे राजा! रानियां तो चौरानियों समेत वहां से न्हाय धोय रोय राज मंदिर को गईं; औ श्री कृष्ण बलराम बसुदेव देवकी के पास आय, उनके हाथ पांव की हथकड़ियां बेड़ियां काट, दंडवत कर, हाथ जोड़ सनमुख खड़े ऊए. तिस समैं प्रभु का रूप देख बसुदेव देवकी को ज्ञान ऊआ, तो उन्हों ने अपने जी में निहचै कर जाना कि ये दोनों विधाता हैं, असुरों को मार भूमि का भार उतारने को संसार में औतार ले आए हैं।

जब बसुदेव देवकी ने यों जी में जाना, तब अंतरजामी हरि ने अपनी माया फैलाय दी. उसने उनकी वह मति हर ली; फिर तो विन्होंने इन्हों पुत्र कर समझा कि इतने में श्री कृष्णचंद अति दीनता कर बोले।

तुम बऊ दिवस लह्यो दुख भारी, करत रहे अति सुरत हमारी.

इस में हमारा कुछ अपराध नहीं; क्योंकि जब से आप हमें गोकुल में नंद के यहां रख आए तब से परबस थे, हमारा बस न था, पर मन में सदा यह आता था कि, जिस के गर्भ में दस महीने रह जन्म लिया, विसे न कभी कुछ सुख दिया, न हमहीं माता पिता का सुख देखा, वृथा जन्म पराये यहां खोया. विन्होंने हमारे लिये अति विपति सही, हम से कुछ विनकी सेवा न भई. संसार में सामर्थी वेई हैं, जो मा बाप की सेवा करते हैं; हम विनके ऋनी रहे, टहल न कर सके।

पृथ्वीनाथ! जब श्री कृष्ण जी ने अपने मन का खेद यों कह सुनाया तब अति आनंद कर उन दोनों ने इन दोनों को हितकर कंठ लगाया औ सुख मान पिछला दुख सब गंवाया. ऐसे मात पिता को सुख दे दोनों भाई वहां से चले चले उग्रसेन के पास आए, और हाथ जोड़ कर बोले।

नाना जू अब कीजे राज, शुभ नचत्र नीकौ दिन आज.

इतना हरि मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन उठकर आ श्री कृष्णचंद के पाओं पर गिर कहने लगे कि, कृपानाथ! मेरी बिनती सुन लीजिये, जैसे आपने सब असुरों समेत कंस महा दुष्ट को मार भक्तों को सुख दिया, तैसे हीं सिंहासन पै बैठ अब मधुपुरी का राज कर प्रजा पालन कीजिये. प्रभु बोले, महाराज! यदुबंसियों को राज का अधिकार नहीं, इस बात को सब कोई जानता है. जब राजा जजाति बूढ़े ऊए, तब अपने पुत्र यदु को उन्हों ने बुलाकर कहा कि, अपनी तरुन अवस्था मुझे दे, औ मेरा बुढ़ापा तू ले. यह सुन उसने अपने जी में बिचारा कि, जो मैं पिता को युवा अवस्था दूंगा, तो यह तरुन हो भोग करैगा, इस में मुझे पाप होगा, इससे नहीं करना ही भला है. यों सोच समझके उसने कहा कि, पिता! यह तो मुझ से न हो सकेगा. इतनी बात के सुनते ही राजा जजाति ने क्रोधकर यदु को श्राप दिया कि, जा तेरे बंस में राजा कोई न होगा।

इस बीच पुरु नाम उन का छोटा बेटा सनमुख आ हाथ जोड़ बोला, पिता! अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो औ मेरी तरुनाई तुम लो. यह देह किसी काम की नहीं; जो आप के काम आवै तो इससे उत्तम क्या है? जब पुरु ने यों कहा, तब राजा जजाति प्रसन्न हो, अपनी वृद्ध अवस्था दे उस की युवा आवस्था ले बोले कि, तेरे कुल में राज गादी रहेगी. इससे नाना जी! हम यदुबंसी हैं, हमें राज करना उचित नहीं।

करौ बैठ तुम राज, दूर करऊ संदेह सब.
हम करि हैं सब काज, जो आयसु दै हो हमें.
जो न मानि है आन तुम्हारी, ताहि दंड करि हैं हम भारी.
और कछू चित सोच न कीजै, नीति सहित परजहि सुख दीजै.
यादव जिते कंस के त्रास, नगर छांडिकै गये प्रवास.
तिनकौं अब कर खोज मंगाओ, सुख दै मथुरा मांझ बसाओ.
बिप्र धेनु सुर पूजन कीजै, इनकी रचा में चित दीजै.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले कि, धर्मावतार! महाराजाधिराज भक्त हित कारी श्री कृष्णचंद ने उग्रसेन को अपना भक्त जान, ऐसे समझाय, सिंहासन पर बिठाय, राज तिलक दिया, औ छत्र फिरवाय दोनों भाईयों ने अपने हाथों चंवर किया।

उस काल सब नगर के वासी अति आनंद में मगन हो धन्य धन्य कहने लगे, औ देवता फूल बरसावने. महाराज! यों उग्रसेन को राज पाट पर बिठाय, दोनों भाई बऊत से बस्त्र आभूषन अपने साथ लिवायें. वहां से चले चले नंदराय जी के पास आए, औ सनमुख हाथ जोड़ खड़े हो, अति दीनता कर बोले, हम तुम्हारी क्या बड़ाई करें, जो सहस्र जीभ होय तौभी तुम्हारे गुन का बखान हम से न हो सके. तुम ने हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भांति पाला, सब लाड़

प्यार किया; औ जसोदा मैया भी बड़ा स्नेह करतीं, अपना हित हम हीं पर रखतीं, सदा निज पुत्र समान जानतीं, कभी मन से भी हमें पराया कर न मानतीं।

ऐसे कह फिर श्री कृष्णचंद बोले कि, हे पिता! तुम यह बात सुनकर कुछ बुरा मत मानो, हम अपने मन की बात कहते हैं कि, माता पिता तो तुम्हें हीं कहेंगे, पर अब कुछ दिन मथुरा में रहेंगे, अपने जातभाइयों को देख यदु कुल की उत्पत्ति सुनेंगे, औ अपने माता पिता से मिल उन्हें सुख देंगे. क्योंकि विन्होंने हमारे लिये बड़ा दुख सहा है, जो हमें तुम्हारे वहां न पऊंचा आते, तो वे दुख न पाते. इतना कह, बस्त्र आभूषन नंदमहर के आगे धर, प्रभु ने निरमोही हो कहा।

मैया सों पालागन कहियो, हम पै प्रेम करै तुम रहियो.

इतनी बात श्री कृष्ण के मुंह से निकलते ही नंदराय तो अति उदास हो लगे लंबी सांसें लेने, औ ग्वाल बाल बिचार कर मनहीं मन यों कहने कि, यह अचंभे की बात कहते हैं! इससे ऐसा समझ में आता है कि, अब ये कपटकर जाया चाहते हैं, नहीं तो ऐसे निठुर बचन न कहते. महाराज! निदान उनमें से सुदामा नाम सखा बोला, भैया कन्हैया! अब मथुरा में तेरा क्या काम है, जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहां रहता है? भला किया कंस को मारा, सब काम संवारा, अब नंद के साथ हो लीजिये, औ वृंदाबन में चल राज कीजिये; यहां का राज देख मन में मत ललचाओ, वहां का सा सुख न पाओगे।

सुनो, राज देख मूरख भूलते हैं, औ हाथी घोड़े देख फूलते हैं. तुम वृंदाबन छोड़ कहीं मत रहो, वहां सदा बसंत ऋतु रहती है; सघन बन औ यमुना की सोभा मन से कभी नहीं बिसरती. भाई! जो वह सुख छोड़, हमारा कहा न मान, मात पिता की माया तज यहां रहोगे, तो इस में तुम्हारी क्या बड़ाई होगी? उग्रसेन की सेवा करोगे, औ रात दिन चिंता में रहोगे; जिसे तुमने राज दिया विसी के आधीन होना, यह अपमान कैसे सहा जायगा? इससे अब उत्तम यही है कि नंदराय को दुख न दीजे, इनके साथ हो लीजे।

ब्रज बन नदी बिहार बिचारौ, गायन कों मन तें न बिसारौ.
नहीं छांडि हैं हम ब्रज नाथ, चलि हैं सबै तिहारे साथ.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! ऐसे कितनी एक बातें कह, दस बीसेक सखा श्री कृष्ण बलराम जी के साथ रहे, औ विन्होंने नंदराय से बुझाकर कहा कि, आप सब को ले निस्संदेह आगे बढ़िये, पीछे से हम भी इन्हें साथ लिये चले आते हैं. इतनी बात के सुनते ही ऊए।

व्याकुल सबै अहीर, मानऊं पन्नग के डसे,
हरि मुख लखत अधीर, ठाढ़े काढ़े चित्र से.

उस समैं बलदेव जी नंदराय को अति दुखित देख समझाने लगे कि, पिता! तुम इतना दुख क्यौं पाते हो, थोड़ेएक दिनों में यहां का काज कर हम भी आते हैं. आप को आगे इस लिये बिदा करते हैं कि माता हमारी अकेली व्याकुल होती होगी, तुम्हारे गये से तिन्हें कुछ धीरज होगा. नंद जी बोले कि, बेटा! एक बार तुम मेरे साथ चलो, फिर मिलकर चले आइयो।

ऐसे कह अति बिकल हो, रहे नंद गहि पाय,
भई छीन दुति मंद मति, नैनन जल न रहाय.

महाराज! जब माया रहित श्री कृष्णचंद जी ने ग्वाल बालों समेत नंदमहर को महा व्याकुल देखा, तब मन में विचारा कि, ये मुज से बिछड़ेंगे तो जीते न बचेंगे; तों हीं उन्होंने अपनी उस माया को छोड़ा, जिस से सारे संसार को भुला रक्खा है. उनने आते ही नंद जी को सब समेत अज्ञान किया. फिर प्रभु बोले कि, पिता! तुम इतना क्यों पछताते हो पहले यही बिचारो जो मथुरा औ बृंदावन में अंतर ही क्या है, तुम से हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुख पाते हो; बृंदावन के लोग दुखी होंगे, इस लिये तुम्हें आगे भेजते हैं।

जद ऐसे प्रभु ने नंदमहर को समझाया, तद वे धीरज धर, हाथ जोड़ बोले, प्रभु जो तुम्हारे ही जी में यों आया तो मेरा क्या बस है? जाता हूं, तुम्हारा कहा टाल नहीं सकता. इतना बचन नंद जी के मुख निकलते ही, हरि ने सब गोप ग्वाल बालों समेत नंदराय को तो बृंदावन बिदा किया, औ आप कोई एक सखाओं समेत दोनों भाई मथुरा में रहे. उस काल नंद सहित गोप ग्वाल।

चले सकल मग सोचत भारी, हारे सर्वसु मनहुं जुआरी.
काहू सुधि काहू सुधि नाहीं, लटपट चरन परत मग मांहीं.
जात बृंदावन देखत मधुबन, बिरह बिथा बाढ़ी व्याकुल तन.

इसी रीत से ज्यों त्यों बृंदावन पहुंचे. इनका आना सुनते ही जसोदा रानी अति अकुलाकर दौड़ी आईं, औ राम कृष्ण को न देख महा व्याकुल हो नंद जी से कहने लगीं।

अहो कंत सुत कहां गंवाए, बसन आभुषन लीने आए.
कंचन फैंक काच धर राख्यौ, अम्रत छांडि मूढ़ बिष चाख्यौ.
पारस पाय अंध ज्यों डारै, फिरि गुन सुनहिं कपारहि मारै.

ऐसे तुमने भी पुत्र गंवाए, औ बसन आभुषन उसके पलटे ले आए, अब तिन बिन धन ले क्या करोगे? हे मूरख कंत! जिनके पलक ओट भये छाती फटे, कहो उन बिन दिन कैसे कटे, जब उन्होंने तुम से बिछड़ने को कहा, तब तुम्हारा हिया कैसे रहा!।

इतनी बात सुन नंद जी ने बड़ा दुख पाया, औ नीचा सिर कर यह बचन सुनाया कि, सच

है, ये वस्त्र अलंकार श्री कृष्ण ने दिये, पर मुझे यह सुध नहीं जो किस ने लिये; और मैं कृष्ण की बात क्या कहूंगा, सुन कर तू भी दुख पावेगी।

कंस मार मो पै फिर आए, प्रीति हरन कहि बचन सुनाए.
वसुदेव के पुत्र वे भए, कर मनुहार हमारी गए,
हों तब, महरि! अचंभे रह्यौ, पोषन भरन हमारौ कह्यौ.
अब न, महरि! हरि सों सुत कहिये, ईश्वर जानि भजन करि रहिये.

विसे तो हमने पहले ही नारायन जाना था, पर माया बस पुत्र कर माना. महाराज! जद नंदराय जी ने सच सच बातें श्री कृष्ण की कही कह सुनाईं, तिस समैं माया बस हो जसोदा रानी कभी तो प्रभु को अपना पुत्र जान, मन हीं मन पछताय, व्याकुल हो हो रोती थीं, औ कभी ज्ञान कर ईश्वर जान, उनका ध्यान धर, गुन गाय गाय, मन का खेद खोती थीं; औ इसी रीति से सब वृंदावन बासी क्या स्त्री क्या पुरुष हरि के प्रेम रंग राते, अनेक अनेक प्रकार की बातें करते थे, सो मेरी सामर्थ नहीं जो मैं बरनन करूं, इससे अब मथुरा की लीला कहता हूं, तुम चित दे सुनो।

कि जब हलधर औ गोविंद नंदराय को बिदा कर वसुदेव देवकी के पास आए, तब उन्होंने इन्हें देख दुख भुलाय ऐसे सुख माना कि, जैसे तपी तप कर अपने तप का फल पाय सुख माने. आगे वसुदेव जी ने देवकी से कहा कि, कृष्ण बलदेव पराये यहां रहे हैं, इन्होंने विनके साथ खाया पिया है, औ अपनी जात का व्यौहार भी नहीं जानते, इससे अब उचित है कि पुरोहित को बुलाय पूछें, जो वह कहे सो करें. देवकी बोली, बहुत अच्छा।

तद वसुदेव जी ने अपने कुल पूज गर्ग मुनि जी को बुला भेजा. वे आए. उनसे इन्होंने अपने मन का संदेह सब कहके पूछा कि, महाराज! अब हमें क्या करना उचित है सो दया कर कहिये? गर्ग मुनि बोले, पहले सब जात भाइयों को नौता बुलाइये, पीछे जात कर्म कर राम कृष्ण का जनेऊ दीजे।

इतना वचन पुरोहित के मुख से निकलते ही, वसुदेव जी ने नगर में नौता भेज सब ब्राह्मन औ यदुबंसियों को नौत बुलाया; वे आए तिन्हें अति आदर मान कर बिठाया।

उस काल पहले तो वसुदेव जी ने विधि से जात कर्म कर जन्म पत्री लिखवाय, दस सहस्र गौ, सोने के सींग तांबे की पीठ, रूपे के खुर समेत, पाटंबर उढ़ाय, ब्राह्मनों को दीं, जो श्री कृष्ण जी के जन्म समै संकल्पी थीं. पीछे मंगलाचार करवाय, वेद की विधि से सब रीति भांति कर, राम कृष्ण का यज्ञोपवीत किया, औ उन दोनों भाइयों को कुछ दे विद्या पढ़ने को भेज दिया।

वे चले चले अवंतिका पुरी का एक सांदीपन नाम ऋषि महा पंडित औ बड़ा ज्ञानवान

काशीपुरी में था, उसके यहां आए, दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति दीनता कर बोले।

हम पर कृपा करो ऋषि राय, विद्या दान देऊ मन लाय.

महाराज! जब श्री कृष्ण बलराम जी ने सांदीपन ऋषि से यों दीनता कर कहा, तब तो तिन्होंने इन्हें अति प्यार से अपने घर में रक्खा, औ लगे बड़ी कृपा कर पढ़वाने. कितने एक दिनों में ये चार वेद, उपवेद, छः शास्त्र, नौ व्याकरन, अठारह पुरान, मंत्र, जंत्र, तंत्र, आगम, जोतिष, वैद्दिक, कोक, संगीत, पिंगल पढ़, चौदह बिद्या निधान हुए. तब एक दिन दोनों भाइयों ने हाथ जोड़ अति बिनती कर, गुरु से कहा कि, महाराज! कहा है, जो अनेक जन्म औतार ले बहुतेरा कुछ दीजिये तौभी बिद्या का पलटा न दिया जाय; पर आप हमारी शक्ति देख गुरु दछिना की आज्ञा कीजे, तो हम यथा शक्ति दे असीस ले अपने घर जांय।

इतनी बात श्री कृष्ण बलराम के मुख से निकलते ही, सांदीपन ऋषि वहां से उठ, सोच विचार करता घर भीतर गया, औ उस ने अपनी स्त्री से इनका भेद यों समझाकर कहा कि, ये राम कृष्ण जो दोनों बालक हैं, सो आदि पुरुष अविनाशी हैं, भक्तों के हेतु अवतार ले भूमि का भार उतारने को संसार में आए हैं, मैंने इनकी लीला देख यह भेद जाना; क्योंकि जो पढ़ पढ़ फिर फिर जन्म लेते हैं, सो भी विद्या रूपी सागर की थाह नहीं पाते; औ देखो इस बाल अवस्था से थोड़े ही दिनों में ये ऐसे अगम अपार समुद्र के पार हो गये; ये जो किया चाहें सो पल भर में कर सकते हैं. इतना कह फिर बोले।

इन पै कहा मांगिये नारि, सुनके सुंदरि कहैं विचारि,
मृतक पुत्र मांगो तुम जाय, जो हरि हैं तो दें हैं ल्याय.

ऐसे घर में से विचार कर, सांदीपन ऋषि स्त्री सहित बाहर आय, श्री कृष्ण बलदेव जी के सनमुख कर जोड़ दीनता कर बोले, महाराज! मेरे एक पुत्र था, तिसे साथ ले मैं कुटुंब समेत एक पर्व में समुद्र न्हान गया था. जो वहां पहुंच कपड़े उतार सब समेत तीर में न्हाने लगा, तो एक सागर की बड़ी लहर आई, तिस में मेरा पुत्र बह गया, सो फिर न निकला, किसी मगर मच्छ ने निगल लिया, तिसका दुख मुझे बड़ा है. जो आप गुरु दछिना दिया चाहते हैं तो वही सुत ला दीजे, औ हमारे मन का दुख दूर कीजे।

यह सुन श्री कृष्ण बलराम गुरु पत्नी औ गुरु को प्रनाम कर, रथ पर चढ़ उनके पुत्र लाने के निमित्त समुद्र की ओर चले, औ चले चले कितनी एक बेर में तीर पर जा पहुंचे, कि इन्हें क्रोधवान आते देख सागर भयमान हो, मनुष शरीर धारन कर, बहुत सी भेट ले, नीर से निकल तीर पर डरता कांपता इनके सोंहीं आ खड़ा हुआ, औ भेट रख दंडवत कर, हाथ जोड़, सिर निवाय, अति बिनती कर बोला।

बड़ी भाग प्रभु दरसन दयौ, कौन काज इत आवन भयौ.

श्री कृष्णचंद बोले, हमारे गुरु देव यहां कुनबे समेत न्हाने आए थे, तिसके पुत्र को जो तू तरंग से बहाय ले गया है, तिसे ला दे, इसी लिये हम यहां आए हैं!

सुन समुद्र बोल्यौ सिर नाय, मैं नहिं लीनौं वाहि बहाय.
तुम सबही के गुरु जगदीस, राम रूप बांध्यौ हो ईस.

तभी से मैं बहुत डरता हूं, औ अपनी मर्य्याद से रहता हूं. हरि बोले, जो तूने नहीं लिया तो यहां से और कौन उसे ले गया? समुद्र ने कहा, कृपानाथ! मैं इसका भेद बताता हूं कि एक संखासुर नाम असुर संख रूप मुज में रहता है, सो सब जलचर जीवों को दुख देता है औ जो कोई तीर पै न्हाने को आता है तिसे पकड़कर ले जाता है; कदाचित वह आप के गुरु सुत को लेगया होय तो मैं नहीं जानता, आप भीतर पैठ देखिये।

यों सुन कृष्ण धसे मन लाय, मांझ समंदर पहुंचे जाय.
देखत ही संखासुर मार्यौ, पेठ फाड़कै बाहर डार्यौ.
ता में गुरु कौ पुत्र न पायौ, पछताने बलभद्र सुनायौ.

कि, भैया! हमने इसे बिन काज मारा. बलराम जी बोले, कुछ चिंता नहीं, अब आप इसे धारन कीजे. यह सुन हरि ने उस संख को अपना आयुध किया, आगे दोनों भाई वहां से चले चल यम की पुरी में जा पहुंचे, जिसका नाम है संयमनी, औ धर्म राज जहां का राजा है।

इन को देखतेही धर्मराज अपनी गादी से उठ आगे आय अति आवभगति कर ले गया. सिंहासन पर बैठाय, पांव धो, चरनामृत ले बोला, धन्य यह ठौर, धन्य यह पुरी, जहां आकर प्रभु ने दरसन दिया औ अपने भक्तों को कृतारथ किया; अब कुछ आज्ञा कीजे जो सेवक पूरन करै. प्रभु ने कहा कि हमारे गुरु पुत्र को ला दे।

इतना वचन हरि के मुख से निकलते ही, धर्मराज झट जाकर बालक को ले आया, और हाथ जोड़ बिनती कर बोला कि, कृपानाथ! आप की कृपा से यह बात मैंने पहले ही जानी थी कि आप गुरु सुत के लेने को आवेंगे, इस लिये मैंने यत्नकर रक्खा है, इस बालक को आज तक जन्म नहीं दिया. महाराज! ऐसे कह धर्मराज ने बालक हरि को दिया; प्रभु ने ले लिया, औ तुरंत उसे रथ पर बैठाय वहां से चल कितनी एक बेर में ला गुरु के सोंही खड़ा किया, औ दोनों भाइयों ने हाथ जोड़के कहा, गुरुदेव! अब क्या आज्ञा होती है?।

इतनी बात सुन, औ पुत्र को देख, सांदीपन ऋषि ने अति प्रसन्न हो श्री कृष्ण बलराम जी को बहुत सी आसीसें देकर कहा।

अब हों मागों कहा मुरारी, दीनो मोहि पुत्र सुख भारी.
अति जस तुम सौ शिष्य हमारौ, कुशल छेम अब घरहि पधारौ.

जब ऐसे गुरु ने आज्ञा की, तब दोनों भाई बिदा हो, दंडवत कर, रथ पर बैठ, वहां से चले चले मथुरा पुरी के निकट आए. इन का आना सुन राजा उग्रसेन बसुदेव समेत नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष सब उठ धाए, औ नगर के बाहर आय भेट कर अति सुख पाय बाजे गाजे से पाटंबर के पांवड़े डालते प्रभु को नगर में ले गये. उस काल घर घर मंगलाचार होंने लगे, औ बधाई बाजने. इति।

CHAPTER XLVII.

KRISHN SENDS ÚDHO TO BRINDABAN TO ENQUIRE ABOUT THE COWHERDS. SONGS OF THE COWHERDESSES.

श्री शुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जों श्री कृष्णचंद ने वृंदावन की सुरत करी, तों मैं सब लीला कहता हूं, तुम चित दे सुनो. कि एक दिन हरि ने बलराम जी से कहा कि, भाई! सब वृंदावन वासी हमारी सुरत कर अति दुख पाते होंगे; क्योंकि जो हमने उनसे अवध की थी सो बीत गई, इससे अब उचित है कि किसी को वहां भेज दीजे जो जाकर उन का समाधान कर आवे।

यों भाई से मता कर हरि ने ऊधो को बुलायके कहा कि, अहो ऊधो! एक तो तुम हमारे बड़े सखा हो, दूजे अति चातुर ज्ञानवान, औ धीर; इस लिये हम तुम्हें वृंदाबन भेजा चाहते हैं कि, तुम जाकर नंद जसोदा औ गोपियों को ज्ञान दे, उनका समाधान कर आओ, औ माता रोहिनी को ले आओ. ऊधो जी ने कहा, जो आज्ञा।

फिर श्री कृष्णचंद बोले कि, तुम प्रथम नंद महर औ जसोदा जी को ज्ञान उपजाय, उनके मन का मोह मिटाय, ऐसे समझायकर कहियो जो वे मुझे निकट जान दुख तजें, औ पुत्र भाव छोड़ ईश्वर मान भजें; पीछे तिन गोपियों से कहियो, जिन्होंने मेरे काज छोड़ी है लोक बेद की लाज, रात दिन लीला जस गाती हैं, औ अवध की आस किये प्रान मुट्ठी में लिये हैं कि, तुम कंत भाव छोड़ हरि को भगवान जान भजो, औ बिरह दुख तजो।

महाराज! ऐसे ऊधो को कह दोनों भाइयों ने मिलकर एक पाती लिखी, जिस में नंद जसोदा समेत गोप ग्वाल बालों को तो यथा जोग दंडवत, प्रनाम, आशीरबाद लिखा औ सब व्रज युवतियों को जोग का उपदेस लिख ऊधो के हाथ दी, औ कहा, यह पाती तुम हीं पढ़ सुनाइयो, जैसे बने तैसे उन सब को समझाय शीघ्र आइयो।

इतना संदेसा कह, प्रभु ने निज बस्त्र, आभुषन, मुकुट पहराय, अपने हीं रथ पर बैठाय, ऊधो जी को वृंदावन बिदा किया. ये रथ हांके कितनी एक बेर में मथुरा से चले चले वृंदावन

के निकट जा पहुंचे, तो वहां देखते क्या हैं कि, सघन सघन कुंजों के पेड़ों पर भांति भांति के पक्षी मनभावन बोलियां बोल रहे हैं; औ जिधर तिधर धौली, पीली, भूरी, काली, गायें घटा सी फिरती हैं; औ ठौर ठौर गोपी गोप ग्वाल बाल श्री कृष्ण जस गाय रहे हैं।

यह सोभा निरख हरषते, औ प्रभु का बिहार स्थल जान प्रनाम करते, ऊधो जी जों गांव के खेड़े गये तों किसी ने दूर से हरि का रथ पहिचान पास आय इनका नाम पूछ नंद महर से जा कहा कि, महाराज! श्री कृष्ण का भेष किये, उन्हीं का रथ लिये, कोई ऊधो नाम मथुरा से आया है।

इतनी बात के सुनते ही नंदराय जैसे गोप मंडली के बीच अथाई पर बैठे थे, तैसे ही उठ धाए औ तुरंत ऊधो जी के निकट आए· राम कृष्ण का संगी जान अति हितकर मिले, औ कुशल क्षेम पूछ बड़े आदर मान से घर लिवाय ले गये· पहले पांव धुलवाय आसन बैठने को दिया पीछे षट रस भोजन बनवाय ऊधो जी की पहुनई की· जब वे रुच से भोजन कर चुके, तब एक सुथरी उज्जल फेन सी सेज बिछवा दी: तिस पर पान खाय जाय उन्होंने पौढ़कर अति सुख पाया, औ मारग का श्रम सब गंवाया· कितनी एक बेर में जों ऊधो जी सोके उठे तों नंदमहर उनके पास जा बैठे, औ पूछने लगे कि, कहो ऊधो जी! सूरसेन पुत्र हमारे परम मित्र बसुदेव जी कुटुंब सहित आनंद से हैं, औं हमसे कैसी प्रीति रखते हैं? यों कह फिर बोले।

कुशल हमारे सुत की कहो, जिनके संग सदा तुम रहो·
कबहूं वे सुधि करत हमारी, उन बिन दुख पावत हम भारी·
सब ही सों आवन कह गये, बीती अवध बहुत दिन भये·

नित उठ जसोदा दही बिलोय माखन निकाल हरि के लिये रखती है; उस की औ ब्रज युवतियों की, जो उनके प्रेम रंग में रंगी हैं, सुरत कभू कान्ह करते हैं कै नहीं?।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, पृथ्वीनाथ? इसी रीति से समाचार पूछते पूछते, औ श्री कृष्णचंद की पूर्व लीला गाते गाते, नंदराय जी तो प्रेम रस भीज, इतना कह प्रभु का ध्यान धर अवाक हुए, कि।

महा बली कंसादिक मारे, अब हम काहे कृष्ण बिसारे·

इस बीच अति व्याकुल हो, सुध बुध देह की बिसारे, मन मारे रोती जसोदा रानी ऊधो जी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूछ बोली, कहो ऊधो जी! हरि हम बिन वहां कैसे इतने दिन रहे, औ क्या संदेसा भेजा है, कब आय दरसन देंगे? इतनी बात के सुनते ही पहले तो ऊधो जी ने नंद जसोदा को श्री कृष्ण बलराम की पाती पढ़ सुनाई, पीछे समझा कर कहने लगे कि, जिनके घर में भगवान ने जन्म लिया, औ बाल लीला कर सुख दिया, तिनकी महिमा कौन कह सके? तुम बड़े भागवान हो, क्योंकि जो आदि पुरुष अबिनासी शिव बिरंच का करता,

न जिस के माता न पिता न भाई न बंधु, तिन्हें तुम अपना पुत्र जान मानते हो, औ सदा उसी के ध्यान में मन लगाये रहते हो. वह तुम से कब दूर रह सकता है? कहा है।

सदा समीप प्रेम बस हरी, जन के हेतु देह जिन धरी,
जाकौ वैरी मित्र न कोई, ऊंच नीच कोऊ किन होई.
जोई भक्ति भजन मन धरे, सोई हरि सों मिल अनुसरे.

जैसे भृंगी कीट को ले जाता है, औ अपने रूप बना देता है; और जैसे कंवल के फूल में भौंरी मुंद जाती है, औ भौंरा रात भर उसके ऊपर गूंजता रहता है, विसे छोड़ और कहीं नहीं जाता. तैसे ही जो हरि से हित करता है, औ उनका ध्यान धरता है, तिसे वे भी आप सा बना लेते हैं, औ सदा विसके पास ही रहते हैं।

यों कह फिर ऊधो जी बोले कि, अब तुम हरि को पुत्र कर मत जानौ, ईश्वर कर मानौ. वे अंतरजामी भक्त हितकारी प्रभु आय दरसन दे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे, तुम किसी बात की चिंता न करो।

महाराज! इसी रीति से अनेक अनेक प्रकार की बातें कहते कहते औ सुनते सुनते, जब सब रात बितीत भई, औ चार घड़ी पिछली रही, तब नंदराय जी से ऊधो जी ने कहा कि, महाराज! अब दधि मथने की बिरियां ऊई, जो आप की आज्ञा पाऊं तो यमुना स्नान करि आऊं. नंदमहर बोले बऊत अच्छा. इतना कह वे तो वहां बैठे सोच विचार करते रहे, औ ऊधो जी उठ झट रथ में बैठ यमुना तीर पर आए. पहले वस्त्र उतार देह शुद्ध करी, पीछे नीर के निकट जाय, रज सिर चढ़ाय, हाथ जोड़, कालिंदी की अति स्तुति गाय, आचमन कर, जल में पैठे, औ न्हाय धोय संध्या पूजा तरपन से निचिंत हो लगे जप करने. उसी समें सब ब्रज युवतियां भी उठीं, औ अपना अपना घर झाड़ बुहार लीप पोत धूप दीप कर लगीं दधि मथने।

दधि कौ मथन मेघ सौ गाजै. गावें नूपुर की धुनि बाजै.
दधि मथिकै माखन लियौ, कियौ ग्रेह कौ काम.
तब सब मिल पानी चलीं, सुंदरि ब्रज की बाम.

महाराज! वे गोपियां श्री कृष्ण के वियोग मद मातियां उनका ही जस गातियां, अपने अपने झुंड लिये, प्रीतम का ध्यान किये, बाट में प्रभु की लीला गाने लगीं।

एक कहे मुहि मिले कन्हाई, एक कहे वे भजे लुकाई.
पाछे तें पकरी मो बांह, वे ठाढ़े हरि बर की छांह.
कहत एक गो दोहत देखे, बोली एक भोरही पेखे.
एक कहे वे धेनु चरावें, सुनऊ कान दै वेनु वजावें.
या मारग हम जांय न माई, दान मांगि है कुंवर कन्हाई.

गागरि फोरि गांठि छोरि है,　नेक चितैकै चित्त चोरि है.
हैं कहं दुरे दौरि आय हैं,　तब हम कहां जानि पाय हैं.
ऐसे कहत चलीं ब्रज नारी,　कृष्ण बियोग बिकल तन भारी.　इति।

CHAPTER XLVIII.

ÚDHO CONVEYS THE MESSAGE OF KRISHN TO THE COWHERDESSES. THEIR DISTRESS. ÚDHO RETURNS TO MATHURÁ.

श्री शुकदेव मुनि बोले, पृथ्वीनाथ! जब ऊधो जी जप कर चुके, तब नदी से निकल, बस्त्र आभूषन पहन, रथ में बैठ, ज्यों कालिंदी तीर से नंद गेह की ओर चले, त्यों गोपी जो जल भरने को निकलीं थीं तिन्होंने रथ दूर से पंथ में आते देखा; देखते ही आपस में कहने लगीं कि, यह रथ किसका चला आता है? इसे देख लो तब आगे पांव बढ़ाओ. यों सुन तिन में से एक गोपी बोली कि, सखी! कहीं वही कपटी अक्रूर तो न आया होय, जिस ने श्री कृष्णचंद को ले जाय मथुरा में बसाया, औ कंस को मरवाया. इतना सुन एक और उन में से बोली, यह विश्वासघाती फिर काहेको आया? एक बेर तो हमारे जीवन मूल को ले गया, अब क्या जीव लेगा? महाराज! इसी भांति की आपस में अनेक अनेक बातें कह।

ठाढ़ी भईं तहां ब्रज नारि, सिर तें गागरि धरी उतारि.

इतने में ज्यों रथ निकट आया, त्यों गोपियां कुछ एक दूर से ऊधो जी को देखकर आपस में कहने लगीं कि, सखी! यह तो कोई स्याम बरन, कंवल नैन, मुकुट सिर दिये, बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, पीत पट ओढ़े, श्री कृष्णचंद सा रथ में बैठा हमारी ओर देखता चला आता है. तब तिनहां में से एक गोपी ने कहा कि, सखी! यह तो कल से नंद के यहां आया है, ऊधो इसका नाम है, औ श्री कृष्णचंद ने कुछ संदेसा इसके हाथ कह पठाया है।

इतनी बात के सुनते ही गोपियां एकांत ठौर देख, सोच संकोच छोड़ दौड़कर ऊधो जी के निकट गईं, औ हरि का हितू जान दंडवत कर, कुशल छेम पूछ, हाथ जोड़, रथ के चारों ओर घिरके खड़ी हुईं. उनका अनुराग देख ऊधो जी भी रथ से उतर पड़े, तब सब गोपियां तिन्हें एक पेड़ की छाया में बैठाय आप भी चारों ओर घिरके बैठीं, औ अति प्यार से कहने लगीं।

भली करी ऊधो तुम आए, समाचार माधो के लाए.
सदा समीप कृष्ण के रहौ, उन कौ कह्यौ संदेसौ कहौ.
पठये मात पिता के हेत, और न काहूकी सुधि लेत.
सर्वसु दीनौं उन के हाथ, अरझे प्रान चरन के साथ.

अपने हीं स्वारथ के भये, सबही कों अब दुख दै गये.

औ जैसे फल हीन तरवर को पंछी छोड़ जाता है, तैसे ही हरि हमें छोड़ गये; हम ने उन्हें अपना सर्बस दिया, तौभी वे हमारे न ड़ए. महाराज! जब प्रेम में मगन होय इसी ढब की बातें बड़त सी गोपियों ने कहीं, तब ऊधो जी उन के प्रेम की दृढ़ता देख, जो प्रनाम करने को उठा चाहते थे, तोंहो किसी गोपी ने एक भौंरे को फूल पर बैठता देख उस के मिस ऊधो से कहा।

अरे मधुकर! तैंने माधव के चरन कंवल का रस पिया है, तिसी से तेरा नाम मधुकर ड़आ; औ कपटी का मित्र है, इसी लिये तुझे तिसने अपना दूत कर भेजा है. तू हमारे चरन मत परसे, क्योंकि हम जाने हैं, जितने स्याम बरन हैं, तितने सब कपटी हैं; जैसा तू है, तैसेई हैं स्याम, इससे तू हमें मत करे प्रनाम. जों तू फूल फूल का रस लेता फिरता है, औ किसी का नहीं होता, तों वे भी प्रीति कर किसी के नहीं होते. ऐसे गोपी कह रही थी कि, एक भौंरा और आया: तिसे देख ललिता नाम गोपी बोली।

अहो भ्रमर तुम अलगे रहौ, यह तुम जाय मधुपुरी कहौ.

जहां कुबजा सी पटरानी औ श्री कृष्णचंद विराजते हैं कि, एक जन्म की हम क्या कहैं, तुम्हारी तो जन्म जन्म यही चाल है. बलि राजा ने सर्बस दिया, तिसे पाताल पठाया; औ सीता सी सती को बिन अपराध घर से निकाला; जब उन की यह दसा की, तो हमारी क्या चली है? यों कह फिर सब गोपी मिल, हाथ जोड़ ऊधो से कहने लगीं कि, ऊधो जी! हम अनाथ हैं श्री कृष्ण बिन, तुम अपने साथ ले चलो.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इतना बचन गोपियों के मुख से निकलते ही ऊधो जी ने कहा, जो संदेसा श्री कृष्णचंद ने लिख भेजा है सो मैं समझा कर कहता हूं, तुम चित दे सुनों. लिखा है, तुम भोग की आस छोड़ जोग करो, तुम से बियोग कभी न होगा. औ कहा है, निस दिन तुम करती हो मेरा ध्यान, इस से कोई नहीं है प्रिय मेरे तुम समान।

इतना कह फिर ऊधो जी बोले, जो हैं आदि पुरुष अबिनासी हरी, तिन से तुम ने प्रीति निरंतर करी. औ जिन्हें सब कोई अलख अगोचर अभेद बखाने, तिन्हें तुम ने अपने कंत कर माने. पृथ्वी, पवन, पानी, तेज, आकाश का है जैसे देह में निवास, ऐसे प्रभु तुम में बिराजते हैं, पर माया के गुन से न्यारे दिखाई देते हैं; उनका सुमिरन ध्यान किया करो. वे सदा अपने भक्त के बस रहते हैं: औ पास रहने से होता है ज्ञान ध्यान का नास, इस लिये हरि ने किया है दूर जायके बास. औ मुझे यह भी श्री कृष्णचंद ने समझायके कहा है कि तुम्हें बेनु बजाय बन में बुलाया, औ जब देखा मदन औ बिरह का प्रकास, तब हम ने तुम्हारे साथ मिलकर किया था रास।

जद तुम ईश्वरता बिसराई, अंतरध्यान भये यदुराई.

फिर जों तुम ने ज्ञान कर ध्यान हरि का मन में किया, तोंहीं तुम्हारे चित की भक्ति जान प्रभु ने आय दरसन दिया. महाराज! इतना बचन ऊधो जी के मुख से निकलते ही।

गोपी तबै कहैं सतराय, सुनी बात अब रह अरगाय.
ज्ञान जोग बुद्धि हमहिं सुनावैं, ध्यान छोड़ आकाश बतावैं.
जिन कौ लीला में मन रहै, तिनकों को नारायन कहै?
बालकपन तें जिन सुख दयौ, सो क्यौं अलख अगोचर भयौ?
जो सब गुनयुत रूप सरूप, सो क्यौं निर्गुन होय निरूप.
जौ तन में पिय प्रान हमारे, तौ को सुनि है बचन तिहारे?
एक सखी उठि कहै बिचारि, ऊधो की कीजे मनुहारि.
इनसों सखी कछू नहिं कहिये, सुनके बचन देख मुख रहिये.
एक कहति अपराध न याकौ, यह आयौ पठयौ कुबजा कौ.
अब कुबजा जो जाहि सिखावै, सोई वाकौ गायौ गावै.
कबहूं श्याम कहैं नहिं ऐसी, कही आय ब्रज में इन जैसी.
ऐसी बात सुने को माई? उठत सूल सुनि सही न जाई.
कहत भोग तजि जोग अराधो, ऐसी कैसे कहि हैं माधो.
जप तप संजम नेम अचार, यह सब बिधवा कौ व्यौहार.
जुग जुग जीवहु कुंवर कन्हाई, सीस हमारे पर सुख दाई.
अच्छत पति भभूति किन लाई? कहौ कहां की रीति चलाई?
हम कों नेम जोग ब्रत एहा, नंद नंदन पद सदा सनेहा.
ऊधो तुम्हें दोष को लावै? यह सब कुबजा नाच नचावै.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! जब गोपियों के मुख से ऐसे प्रेम सने बचन सुने, तब जोग कथा कहके ऊधो मनहीं मन पछताय सकुचाय मौन साध सिर निवाय रह गये. फिर एक गोपी ने पूछा, कहो बलभद्र जी कुशल छेम से हैं, औ बालापन की प्रीति बिचार कभी वे भी हमारी सुधि करते हैं कि नहीं?।

यह सुन तिनहीं में से किसी और गोपी ने उत्तर दिया कि, सखी! तुम तो हो अहीरी गंवारि, औ मथुरा की हैं सुंदर नारी तिन के बस हो हरि बिहार करते हैं, अब हमारी सुरत क्यों करेंगे? जद से वहां जाके छाये, सखी! तद से पी भये पराये. जो पहले हम ऐसा जानतीं, तो काहे को जाने देतीं? अब पछताये कुछ हाथ नहीं आता, इससे उचित है कि सब दुख छोड़ अवध की आस कर रहिये. क्योंकि जैसे आठ महीने पृथ्वी बन, पर्वत, मेघ की आस किये तपन

सहते हैं. औ तिन्हें आय वह ठंढा करता है, तैसे हरि भी आय मिलेंगे।

एक कहति हरि कीनौं काज, बैरी मार्यौ लीनौं राज.
काहे कों वृंदावन आवें? राज छांडि क्यों गाय चरावें?
छोड़ऊ सखी अवध की आस, चिंता जैहै भये निरास.
एक त्रिया बोली अकुलाय, कृष्ण आस क्यों छोड़ी जाय.

बन पर्वत औ यमुना के तीर में जहां जहां श्री कृष्ण बलबीर ने लीला करी हैं, वही वही ठार देख सुध आती है खरी, प्रान पति हरि की. यों कह फिर बोली।

दुख सागर यह ब्रज भयौ, नाम नाव बिच धार,
बूडहिं बिरह बियोग जल, कृष्ण करें कब पार?
गोपी नाथ था, क्यों सुधि गई, लाज न कछू नाम की भई?

इतनी बात सुन ऊधो जी मनहीं मन बिचार कर कहने लगे कि, धन्य है इन गोपियों को, औ इनकी दृढ़ता को, जो सर्वसु छोड़ श्री कृष्णचंद के ध्यान में लीन हो रहीं हैं. महाराज! ऊधो जी तो उनका प्रेम देख मनहीं मन सराहते ही थे कि, उस काल सब गोपी उठ खड़ी ऊईं, औ ऊधो जी को बड़े आदर मान से अपने घर लिवाय ले गईं. उन की प्रीति देख इन्हों ने भी वहां जाय भोजन किया, औ बिश्राम कर श्री कृष्ण की कथा सुनाय तिन्हें बऊत सुख दिया. तब सब गोपी ऊधो जी की पूजा कर, बऊत सी भेट आगे धर, हाथ जोड़, अति बिनती कर बोलीं, ऊधो जी! तुम हरि से जाय कहियो कि, नाथ! आगे तो तुम बड़ी कृपा करते थे, हाथ पकड़ अपने साथ लिये फिरते थे, अब ठकुराई पाय नगर नारि कुबजा के कहे जोग लिख भेजा. हम अबला अपवित्र अबतक गुरु मुख भी नहीं ऊई, हम ज्ञान क्या जानें?।

उन सों बालापन की प्रीति, जाने कहा जोग की रीति?
वे हरि क्यों न जोग दे जात, यह न संदेसे की है बात.
ऊधो यों कहियो समझाय, प्रान जात हैं, राखें आय.

महाराज! इतनी बात कह सब गोपियां तो हरि का ध्यान कर मगन हो रहीं, औ ऊधो जी तिन्हें दंडवत कर वहां से उठ, रथ पर बैठ, गोबर्धन में आए. वहां कई एक दिन रहे, फिर वहां से जो चले, तो जहां जहां श्री कृष्णचंद जी ने लीला करी थी, तहां तहां गये, औ दो दो चार चार दिन सब ठौर रहे।

निदान कितने एक दिवस पीछे फिर वृंदावन में आए, औ नंद जसोदा जी के पास जा हाथ जोड़कर बोले, आप की प्रीति देख मैं इतने दिन ब्रज मं रहा, अब आज्ञा पाऊं तो मथुरा को जाऊं।

इतनी बात के सुनते ही जसोदा रानी दूध दही माखन औ बऊत सी मिठाई घर में जाय

ले आई, औ ऊधो जी को देके कहा कि, यह तो तुम श्री कृष्ण बलराम प्यारे को देना, औ बहन देवकी से यों कहना कि, मेरे कृष्ण बलराम को भेज दे, बिरमाय न रक्खे. इतना संदेसा कह नंद रानी अति व्याकुल हो रोने लगी. तब नंद जी बोले कि, ऊधो जी! हम तुम से अधिक क्या कहें, तुम आप चातुर गुनवान महा जान हो, हमारी ओर हो प्रभु से ऐसे जाय कहियो, जो वे ब्रजवासियों का दुख बिचार वेग आय दरसन दें, औ हमारी सुध न बिसारें।

इतना कह जब नंदराय ने आंसू भर लिये, औ जितने ब्रजबासी क्या स्त्री क्या पुरुष वहां खड़े थे सो भी सब लगे रोने, तब ऊधो जी विन्हें समझाय बुझाय आसा भरोसा दे, ढाढ़स बंधाय, बिदा हो, रोहिनी को साथ ले, मथुरा को चले; औ कितनी एक बेर में चले चले श्री कृष्णचंद के पास आ पहुंचे।

इन्हें देखते ही श्री कृष्ण बलदेव उठकर मिले, औ बड़े प्यार से इनकी क्षेम कुशल पूछ वृंदावन के समाचार पूछने लगे, कहो ऊधो जी! नंद जसोदा समेत सब ब्रजबासी आनंद से हैं, औ कभी हमारी सुरत करते हैं कि, नहीं? ऊधो जी बोले, महाराज! ब्रज की महिमा औ ब्रजवासियों का प्रेम मुज से कुछ कहा नहीं जाता. उन के तो तुम्हीं हो प्रान, निस दिन करते हैं वे तुम्हारा ही ध्यान; औ ऐसी देखी गोपियों की प्रीति, जैसी होती है पूरन भजन की रीति; आप का कहा जोग का उपदेस जा सुनाया, पर मैं ने भजन का भेद उनहीं से पाया।

इतना समाचार कह ऊधो जी बोले कि, दीन दयाल! मैं अधिक क्या कहूं, आप अंतर जामी घट घट की जानते हैं, थोड़े ही में समझिये कि, ब्रज में क्या जड़ क्या चैतन्य सब आप के दरस परस बिन महा दुखी हैं, केवल अवध की आस कर रहे हैं।

इतनी बात के सुनते ही, जद दोनों भाई उदास हो रहे, तद ऊधो जी तो श्री कृष्णचंद से बिदा हो नंद जसोदा का संदेसा बसुदेव देवकी को पहुंचाय, अपने घर गये, औ रोहिनी जी श्री कृष्ण बलराम से मिल अति आनंद कर निज मंदिर में रहीं. इति।

CHAPTER XLIX.

KṚISHṆ VISITS KUBJÁ AND AKRÚR.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज, एक दिन श्री कृष्ण बिहारी भक्त हितकारि कुबजा की प्रीति बिचार, अपना वचन प्रतिपालने को ऊधो को साथ ले उस के घर गये।

जब कुबजा जान्यौ हरि आए, पाटंबर पांवड़े बिछाए.
अति आनंद लये उठि आगे, पूरव पुन्य पुंज सब जागे.
ऊधो कौं आसन बैठारि, मंदिर भीतर धसे मुरारि.

वहां जाय देखें तो चित्रशाला में उजला बिछौना बिछा है; उस पर एक फूलों से संवारी अच्छी सेज बिछी है. तिसी पर हरि जा बिराजे; औ कुबजा एक और मंदिर में जाय, सुगंध उबटन लगाय, न्हाय धोय, कंघी चोटी कर, सुथरे कपड़े गहने पहर, आप को नख सिख से सिंगार, पान खाय, सुगंध लगाय, ऐसे रावचाव से श्री कृष्णचंद के निकट आई कि जैसे रति अपने पति के पास आई होय. औ लाज से घूंघट किये, प्रथम मिलन का भय उर लिये, चुपचाप एक ओर खड़ी हो रही. देखते ही श्री कृष्णचंद आनंद कंद ने उसे हाथ पकड़ अपने पास बिठाय लिया, औ उस का मनोरथ पूरन किया।

तब उठि ऊधो के ढिग आए, भई लाज हंसि नैन निवाए.

महाराज, यों कुबजा को सुख दे, ऊधो जी को साथ ले, श्री कृष्णचंद फिर अपने घर आए, औ बलराम जी से कहने लगे कि, भाई! हमने अक्रूर जी से कहा था कि तुम्हारा घर देखन जांयगे, सो पहले तो वहां चलिये, पीछे तिन्हें हस्तिनापुर को भेज वहां के समाचार मंगवावें।

इतना कह दोनों भाई अक्रूर के घर गये. वह प्रभु को देखते ही अति सुख पाय, प्रनाम कर, चरन रज सिर चढ़ाय, हाथ जोड़, बिनती कर बोला, कृपा नाथ! आपने बड़ी कृपा की जो आय दरसन दिया, औ मेरा घर पवित्र किया. यह सुन श्री कृष्णचंद बोले, कका! इतनी बड़ाई क्यों करते हो, हम तो आप के लड़के हैं. यों कह फिर सुनाया कि, कका! आप के पुन्य से असुर तो सब मारे गये, पर एक हो चिंता हमारे जी में है, जो सुनते हैं कि, पंडु बैकुंठ सिधारे, औ दुर्योधन के हाथ से पांचों भाई हैं दुखी हमारे।

कुंती फुफू अधिक दुख पावै, तुम बिन जाय कौन समझावै.

इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी ने हरि से कहा कि, आप इस बात की चिंता न कीजे, मैं हस्तिनापुर जाऊंगा, औ तिन्हें समझाय वहां की सुध ले आऊंगा. इति।

CHAPTER L.

AKRÚR SETS OUT FOR HASTINÁPUR, TO INQUIRE AFTER THE WELFARE OF THE PÁNDAVS. HE RETURNS TO MATHURÁ, AND INFORMS KRISHN THAT THEY ARE TYRANNISED OVER BY DHRITARÁSHTR. HERE ENDS THE FIRST HALF OF THE HISTORY.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब ऐसे श्री कृष्ण जी ने अक्रूर के मुख से सुना, तब उन्हें पंडु की सुध लेने को बिदा किया. वे रथ पर बैठ चले चले कई एक दिन में मथुरा से हस्तिनापुर पहुंचे औ रथ से उतर जहां राजा दुर्योधन अपनी सभा में सिंहासन पर बैठा था

तहां जाय जुहार कर खड़े ऊए. इन्हें देखते ही दुर्योधन सभा समेत उठ कर मिला, औ अति आदर मान से अपने पास बिठाय इनकी कुशल चेम पूछ बोला।

नीके सूरसेन बसुदेव, नीके हैं मोहन बलदेव.
उग्रसेन राजा किहिं हेत नाहि, न काह्न की सुध लेत.
पुत्र हि मार करत हैं राज, तिन्हें न काह्न सों ह काज.

ऐसे जब दुर्योधन ने कहा, तब अक्रूर सुन चुप हो रहा, औ मनहीं मन कहने लगा कि, यह पापियों की सभा है, यहां मुझे रहना उचित नही; क्योंकि जो मैं रहूंगा तो यह ऐसी ऐसी अनेक अनेक बातें कहैगा, सो मुज से कब सुनी जांयगीं, इससे यहां रहना भला नहीं।

यों बिचार अक्रूर जी वहां से उठ बिदुर को साथ ले पंडु के घर गये. तहां जाय देखें तो कुंती पति के सोग से महा व्याकुल हो रो रही है. उसके पास जा बैठे, औ लगे समझाने कि, माई! बिधना से कुछ किसी का बस नहीं चलता, औ सदा कोई अमर हो जीता भी नहीं रहता. देह धर जीव दुख सुख सहता है, इससे मनुष को चिंता करनी उचित नहीं; क्योंकि चिंता किये से कुछ हाथ नहीं आता, केवल चित को दुख देना है।

महाराज! जद ऐसे समझाय बुझाय अक्रूर जी ने कुंती से कहा, तद वह सोच समझ चुप हो रही, औ इनकी कुशल पूछ बोली, कहो अक्रूर जी! हमारे माता पिता औ भाई बसुदेव जी कुटुंब समेत भले हैं? औ श्री कृष्ण बलराम कभी भीम, युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव, इन अपने पांचों भाइयों की सुध करते हैं? ये तो यहां दुख समुद्र में पड़े हैं, वे इनकी रचा कब आय करेंगे? हम से अब तो इस अंध धृतराष्ट्र का दुख सहा नहीं जाता; क्योंकि वह दुर्योधन की मति से चलता है, इन पांचों को मारने के उपाय में दिन रात रहता है. कई बेर तो बिष घोल दिया, सो मेरे भीमसेन ने पीलिया।

इतना कह पुनि कुंती बोली कि, कहो अक्रूर जी! जब सब कौरव यों बैर किये रहैं तब ये मेरे बालक किसका मुंह चहैं, औ मीच से बच कैसे होंय सयाने, यही दुख बड़ा है हम क्या बखाने? जों हरनी झुंड से बिछड़ करती है त्रास, तों मैं भी सदा रहती हूं उदास. जिन्हों ने कंसादिक असुर संहारे, सोई हैं मेरे रखवारे।

भीम, युधिष्ठिर, अर्जुन, भाई, इनकौ दुख तुम कहियौ जाई.

जब ऐसे दीन हो कुंती ने कहे बैन, तब सुनकर अक्रूर ने भर लिये नैन; औ समझाके कहने लगा कि, माता! तुम कुछ चिंता मत करो, ये जो पांचों पुत्र तुम्हारे हैं, सो महा बली जसी होंगे, शत्रु औ दुष्टों को मार करेंगे निकंद, इनके पची हैं श्री गोबिंद. यों कह फिर अक्रूर जी बोले कि, श्री कृष्ण बलराम ने मुझे यह कह तुम्हारे पास भेजा है कि, फूफी से कहियो किसी बात से दुख न पावें, हम बेग ही तुम्हारे निकट आते हैं।

महाराज! ऐसे श्री कृष्ण की कही बातें कह, अक्रूर जी कुंती को समझाय बुझाय, आसा भरोसा दे, बिदा हो, बिदुर को साथ ले धृतराष्ट्र के पास गये, औ उससे कहा कि, तुम पुरखा होय ऐसी अनीति क्यों करते हो, जो पुत्र के बस होय अपने भाई का राज पाट ले भतीजों को दुख देते हो? यह कहां का धर्म है जो ऐसा अधर्म करते हो?।

लोचन गये न सूझे हिये, कुल बहिजाय पाप के किये.

तुमने भले चंगे बैठे बिठाए क्यों भाई का राज लिया, औ भीम युधिष्ठिर को दुख दिया? इतनी बात के सुनते ही धृतराष्ट्र अक्रूर का हाथ पकड़ बोला कि, मैं क्या करूं? मेरा कहा कोई नहीं सुनता: ये सब अपनी अपनी मति से चलते हैं, मैं तो इनके सोंहीं मूरख हो रहा हूं, इससे इन की बातों में कुछ नहीं बोलता. एकांत बैठ चुपचाप अपने प्रभु का भजन करता हूं. इतनी बात जों धृतराष्ट्र ने कही, तों अक्रूर जी दंडवत कर, वहां से उठ, रथ पर चढ़, हस्तिनापुर से चले चले मथुरा नगरी में आए।

उग्रसेन वसुदेव सों, कही पंडु की बात,
कुंती के सुत महा दुखी, भये छीन अति गात.

यों उग्रसेन वसुदेव जी से हस्तिनापुर के सब समाचार कह अक्रूर जी फिर श्री कृष्ण बलराम जी के पास जा प्रनाम कर हाथ जोड़ बोले, महाराज! मैंने हस्तिनापुर में जाय देखा, आप की फूफी औ पांचों भाई कौरों के हाथ से महा दुखी हैं, अधिक क्या कहूंगा, आप अंतरजामी हैं, वहां की अवस्था औ बिपरीत तुम से कुछ छिपी नहीं. यों कह अक्रूर जी तो कुंती का कहा संदेसा सुनाय बिदा हो अपने घर गये. औ सब समाचार सुन श्री कृष्ण बलदेव जो हैं सब देवन के देव, सो लोक रीति से बैठ चिंता कर भूमि का भार उतारने का बिचार करने लगे।

इतनी कथा श्री शुकदेव मुनि ने राजा परीछित को सुनायकर कहा कि, हे पृथ्वीनाथ! यह जो मैंने ब्रजबन मथुरा का जस गाया सो पूर्वार्द्ध कहाया; अब आगे उत्तरार्ध गाऊंगा जो द्वारिकानाथ का बल पाऊंगा.

इति पूर्वार्द्ध।

CHAPTER LI.

THE LAST HALF OF THE HISTORY COMMENCES. JURÁSINDHU, RÁJÁ OF MAGADHA, INVADES MATHURÁ WITH AN IMMENSE ARMY, AND IS DEFEATED BY KṚISHṆ, AND HIS FORCES DESTROYED. HE RETURNS SEVENTEEN TIMES WITH A FRESH ARMY, WHICH IS DESTROYED AS OFTEN. NÁRAD INSTIGATES THE REGENT OF DEATH TO ATTACK KṚISHṆ. HE ADVANCES WITH AN ARMY OF MLECHCHHAS, OR BARBARIANS, ON WHICH KṚISHṆ REMOVES ALL THE INHABITANTS OF MATHURÁ TO DWÁRIKÁ, A CITY BUILT BY THE QUOIT OF VISHNU IN THE SEA.

अथ उत्तरार्द्ध कथा लिख्यते·

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जों श्री कृष्णचंद दल समेत जुरासिंधु को जीत काल यमन को मार मुचकुंद को तार, ब्रज को तज द्वारिका में जाय बसे, तों मैं सब कथा कहता हूं तुम सचेत हो चित लगाय सुनों· कि राजा उग्रसेन तो राज नीति लिये मथुरापुरी का राज करते थे औ श्री कृष्ण बलराम सेवक की भांति उनकी आज्ञाकारी; इससे राजा राज प्रजा सुखी थी, पर एक कंस की रानियां हीं अपने पति के शोक से महा दुखी थीं; न उन्हें नींद आती थी, न भूख प्यास लगती थी, आठ पहर उदास रहती थीं।

एक दिन वे दोनों बहन अति चिंता कर आपस में कहने लगीं कि, जैसे नृप बिन प्रजा, चंद बिन जामिनी, शोभा नहीं पाती, तैसे कंत बिन कामिनी भी शोभा नहीं पाती· अब अनाथ हो यहां रहना भला नहीं, इस से अपने पिता के घर चल रहिये सो अच्छा· महाराज! वे दोनों रानियां ऐसे आपस में सोच बिचार कर, रथ मंगवाय, उस पर चढ़, मथुरा से चली चली मगध देस में अपने पिता के यहां आईं, औ जैसे श्री कृष्ण बलराम जी ने सब असुरों समेत कंस को मारा, तैसे उन दोनों ने रो रो समाचार अपने पिता से सब कह सुनाया।

सुनते ही जुरासिंधु अति क्रोधकर सभा में आया, औ लगा कहने कि ऐसे बली कौन यदुकुल में उपजे, जिन्हों ने सब असुरों समेत महा बली कंस को मार मेरी बेटियों को रांड किया? मैं अभी अपना सब कटक ले चढ़ धाऊं, औ सब यदुबंसियों समेत मथुरापुरी को जलाय राम कृष्ण को जीता बांध लाऊं, तो मेरा नाम जुरासिंधु, नहीं तो नहीं।

इतना कह उसने तुरंत ही चारों ओर के राजाओं को पत्र लिखे कि, तुम अपना दल ले ले हमारे पास आओ, हम कंस का पलटा ले यदुबंसियों को निर्बंस करेंगे· जुरासिंधु का पत्र पाते ही सब देस देस के नरेस, अपना अपना दल साथ ले झट चले आए; औ यहां जुरासिंधु ने भी अपनी सब सेना ठीक ठाक बनाय रक्खी· निदान सब असुर दल साथ ले जुरासिंधु ने जिस समैं मगध देस से मथुरापुरी को प्रस्थान किया, तिस समैं उसके संग तेईस अचौहिनी थीं· इक्कीस सहस्र आठ सौ सत्तर रथी, औ इतने ही गजपति; एक लाख नव सहस्र साढ़े तीन सौ पैदल; औ छसट सहस्र अश्वपति; यह अचौहिनी का प्रमान है।

ऐसी तेईस अक्षौहिनी उस के साथ थीं, औ उन में से एक एक राक्षस जैसा बली था सो मैं कहांतक बर्नन करूं. महाराज! जिस काल जुरासिंधु सब असुर सेना साथ ले धौंसा दे चला, उस काल दसों दिसा के दिगपाल लगे थरथर कांपने, औ सब देवता मारे डरके भागने. पृथ्वी न्यारी ही बोझ से लगी छात सी हिलने. निदान कितने एक दिनों में चला चला जा पहुंचा, औ उस ने चारों ओर से मथुरापुरी को घेर लिया; तब नगर निवासी अति भय खाय श्री कृष्णचंद के पास जा पुकारे कि, महाराज! जुरासिंधु ने आय चारों ओर से नगर घेरा, अब क्या करें औ किधर जांय?।

इतनी बात के सुनते ही हरि कुछ सोच बिचार करने लगे. इस में बलराम जी ने जाय प्रभु से कहा कि, महाराज! आपने भक्तों का दुख दूर करने के हेतु अवतार लिया है, अब अग्नि तन धारन कर असुर रूपी वन को जलाय, भूमि का भार उतारिये. यह सुन श्री कृष्णचंद उन को साथ ले उग्रसेन के पास गये, औ कहा कि, महाराज! हमें तो लड़ने की आज्ञा दीजे, और आप सब यदुबंसियों को साथ ले गढ़ की रक्षा कीजे।

इतना कह जों मात पिता के निकट आए, तो सब नगर निवासी घिर आए; औ लगे अति व्याकुल हो कहने कि, हे कृष्ण! हे कृष्ण! अब इन असुरों के हाथ से कैसे बचें? तब हरि ने मात पिता समेत सब को भयातुर देख समझाके कहा कि, तुम किसी भांति चिंता मत करो, यह असुर दल जो तुम देखते हो सो पल भर में यहां का यहीं ऐसे बिलाय जायगा कि, जैसे पानी के बलूले पानी में बिलाय जाते हैं. यों कह सब को समझाय बुझाय, ढाढ़स बंधाय, उनसे बिदा हो, प्रभु जों आगे बढ़े, तों देवताओंने दो रथ शस्त्र भर इनके लिये भेज दिये. वे आय इनके सोंहीं खड़े हुए, तब ये दोनों भाई उन दोनों रथ में बैठलिये।

निकसे दोऊ यदुराय, पहुंचे सु दल में जाय.

जहां जुरासिंधु खड़ा था, तहां जा निकले; देखते ही जुरासिंधु श्री कृष्णचंद से अति अभिमान कर कहने लगा, अरे! तू मेरे सोंहीं से भाग जा, मैं तुझे क्या मारूं? तू मेरी समान का नहीं, जो मैं तुज पर शस्त्र चलाऊं; भला बलराम को मैं देख लेता हूं. श्री कृष्णचंद बोले, अरे मूरख अभिमानी! तु यह क्या बकता है? जो सूरमा होते हैं सो बड़ा बोल किसी से नहीं बोलते, सब से दीनता करते हैं; काम पड़े अपना बल दिखाते हैं; और जो अपने मुंह अपनी बड़ाई मारते हैं, सो क्या कुछ भले कहाते हैं? कहा है कि गरजता है सो बरसता नहीं, इस से वृथा बकवाद क्या करता है?।

इतनी बात के सुनते ही जुरासिंधु ने जों क्रोध किया तों श्री कृष्ण बलदेव चल खड़े हुए. इनके पीछे वह भी अपनी सब सेना ले धाया, औ उस ने यों पुकारके कह सुनाया, अरे दुष्टो! मेरे आगे से तुम कहां भाग जाओगे? बहुत दिन जीते बचे, तुम ने अपने मन में क्या समझा है,

अब जीते न रहने पाओगे; जहां सब असुरों समेत कंस गया है, तहांई सब यदुबंसियों समेत तुम्हें भी भेजूंगा. महाराज! ऐसा दुष्ट बचन उस असुर के मुख से निकलते ही, कितनी एक दूर जाय दोनों भाई फिर खड़े ऊए. श्री कृष्ण जी ने तो सब शस्त्र लिये, औ बलराम जी ने हल मूसल, जो असुर दल उनके निकट गया तो दोनों बीर ललकार के ऐसे टूटे कि, जैसे हाथियों के यूथ पर सिंह टूटे औ लगा लोहा बाजने।

उस काल मारू जो बाजता था सो तो मेघ सा गाजता था; औ चारों ओर से राक्षसों का दल जो घिर आया था सो दल बादल सा छाया था; औ शस्त्रों की झड़ी झड़ी सी लगी थी. उसके बीच श्री कृष्ण बलराम युद्ध करते ऐसे सोभायमान लगते थे, जैसे सघन घन में दामिनी सुहावनी लगती है. सब देवता अपने अपने बिमानों पर बैठे आकाश से देख देख प्रभु का जस गाते थे, औ इन्हीं की जीत मनाते थे. और उग्रसेन समेत सब यदुबंसी अति चिंताकर मन हीं मन पछताते थे कि, हम ने यह क्या किया, जो श्री कृष्ण बलराम को असुर दल में जाने दिया।

इतनी कथा सुनाय, श्री शुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब लड़ते लड़ते असुरों की बऊत सी सेना कट गई, तब बलदेव जी ने रथ से उतर जुरासिंधु को बांध लिया. इस में श्री कृष्णचंद जी ने जा बलराम से कहा कि, भाई! इसे जीता छोड़ दो, मारो मत; क्योंकि यह जीता जायगा तो फिर असुरों को साथ ले आवेगा, तिन्हें मार हम भूमि का भार उतारेंगे; औ जो जीता न छोड़ेंगे, तो जो राक्षस भाग गये हैं सो हाथ न आवेंगे. ऐसे बलदेव जी को समझाय प्रभु ने जुरासिंधु को छुड़वाय दिया; वह अपने बिन लोगों में गया जो रन से भागके बचे थे।

चऊं दिस चाहि कहै पछताय, सिगरी सेना गई बिलाय,
भयो दुःख अति कैसें जीजे, अब घर छांडि तपस्या कीजे.
मंत्री तबै कहै समझाय, तुम सौ ज्ञानी क्यों पछिताय.
कबऊं हार जीत पुनि होइ, राज देस छांडे नहिं कोइ.

क्या ऊआ जो अब की लड़ाई में हारे, फिर अपना दल जोड़ लावेंगे, औ सब यदुबंसियों समेत कृष्ण बलदेव को स्वर्ग पठावेंगे, तुम किसी बात की चिंता मत करो. महाराज! ऐसे समझाय बुझाय जे असुर रन से भागके बचे थे तिन्हें, औ जुरासिंधु को मंत्री ने घर ले पऊंचाया; औ वह फिर वहां कटक जोड़ने लगा. यहां श्री कृष्ण बलराम रन भूमि में देखते क्या हैं कि, लोऊ की नदी बह निकली है; तिस में रथ बिना रथी नाव से बहे जाते हैं; ठौर ठौर हाथी मरे पहाड़ से पड़े दृष्ट आते हैं; उनके घावों से रक्त झरनों की भांति झरता है. तहां महादेव जी भूत प्रेत संग लिये अति आनंद कर नाच नाच गाय गाय मुंडों की माला बनाय बनाय पहनते हैं. भूतनी प्रेतनी जोगिनयां खप्पर भर भर रक्त पीती हैं; गिद्ध गीदड़ काग लोथों पर बैठ बैठ मास खाते हैं, औ आपस में लड़ते जाते हैं।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जितने रथ हाथी घोड़े औ राक्षस उस खेत में रहे थे, तिन्हें पवन ने तो समेत इकठा किया, और अग्नि ने पल भर में सब को जलाय भस्म कर दिया; पंच तत्व पंच तत्व में मिल गये; उन्हें आते तो सब ने देखा पर जाते किसी ने न देखा कि, किधर गये. ऐसे असुरों को मार, भूमि का भार उतार, श्री कृष्ण बलराम भक्त हितकारी उग्रसेन के पास आय, दंडवत कर, हाथ जोड़ बोले कि, महाराज! आप के पुन्य प्रताप से असुर दल मार भगाया, अब निर्भय राज कीजे, औ प्रजा को सुख दीजे. इतना बचन इनके मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन ने अति आनंद मान बड़ी बधाई की, औ धर्म राज करने लगे. इस में कितने एक दिन पीछे फिर जुरासिंधु उतनी हीं सेना ले चढ़ि आया, औ श्री कृष्ण बलदेव जी ने पुनि त्यौंही मार भगाया. ऐसे तेईस तेईस अक्षौहिनी ले जुरासिंधु सत्रह बेर चढ़ि आया, औ प्रभु ने मार मार हटाया।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस बीच नारद मुनि जी के जो कुछ जी में आई, तो वे एकाएकी उठकर कालयमन के यहां गये. इन्हें देखते ही वह सभा समेत उठ खड़ा हुआ, औ उसने दंडवत कर, कर जोड़ पूछा कि, महाराज! आप का आना यहां कैसे भया?।

मुनिके नारद कहै विचारि, मथुरा में बलभद्र मुरारि,
तो बिन तिन्हें हतै नहिं कोइ, जुरासिंधु सों कुछ नहिं होइ.
तू है अमर अति बली, बालक हैं बलदेव औ हरी.

यों कह फिर नारद जी बोले कि, जिसे तू मेघ बरन कंवल नैन, अति सुंदर बदन, पीतांबर पहरे, पीत पट ओढ़े देखे, तिस का तू पीछा बिन मारे मत छोड़ियो. इतना कह नारद मुनि तो चले गये, औ कालयमन अपना दल जोड़ने लगा. इस में कितने एक दिन बीच उसने तीन कड़ोड़ महा मलेछ अति भयावने इकठे किये, ऐसे कि जिनके मोटे भुज गले, बड़े दांत, मैले भेष, भूरे केस, नैन लाल घूंघची से तिन्हें साथ ले, डंका दे, मथुरापुरी पर चढ़ि आया, औ उसे चारों ओर से घेर लिया. उस काल श्री कृष्णचंद जी ने उस का व्योहार देख अपने जी में बिचारा कि, अब यहां रहना भला नहीं, क्योंकि आज यह चढ़ आया है, औ कल को जुरासिंधु भी चढ़ि आवे तो प्रजा दुख पावेगी, इस्से उत्तम यही है कि यहां न रहिये, सब समेत अनत जाय बसिये. महाराज! हरि ने यों बिचार कर, विश्वकर्मा को बुलाय, समझाय बुझायके कहा कि, तू अभी जाके समुद्र के बीच एक नगर बनाव, ऐसा जिस में सब यदुबंसी सुख से रहैं, पर वे यह भेद न जानें कि ये हमारे घर नहीं, औ पल भर में सब को वहां ले पहुंचाव।

इतनी बात के सुनते ही, जा विश्वकर्मा ने समुद्र के बीच सुदरसन के ऊपर, बारह योजन का नगर जैसा श्री कृष्ण जी ने कहा था तैसा ही रात भर में बनाय, उसका नाम द्वारिका रख,

श्री हरि से कहा. फिर प्रभु ने उसे आज्ञा दी कि, इसी समैं तू सब यदुबंसियों को वहां ऐसे पहुंचाय दे, कि कोई यह भेद न जाने जो हम कहां आए औ कौन ले आया।

इतना बचन प्रभु के मुख से जों निकला, तों रातों रात ही उग्रसेन बसुदेव समेत विश्वकर्मा ने सब यदुबंसियों को ले पहुंचाया. औ श्री कृष्ण बलराम भी वहां पधारे. इस बीच समुद्र की लहर का शब्द सुन सब यदुबंसी चौंक पड़े, औ अति अचरज कर आपस में कहने लगे कि, मथुरा में समुद्र कहां से आया, यह भेद कुछ जाना नहीं जाता।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, पृथ्वीनाथ! ऐसे सब यदुबंसियों को द्वारिका में बसाय, श्री कृष्णचंद जी ने बलदेव जी से कहा कि, भाई! अब चलके प्रजा की रक्षा कीजे, औ कालयमन का बध. इतना कह दोनों भाई वहां से चल ब्रजमंडल में आए. इति।

CHAPTER LII.

KṚISHṈ FLIES BEFORE KÁLYAMAN INTO A CAVE WHERE MUCHKUND IS LYING ASLEEP, WHO, ON AWAKENING, REDUCES KÁLYAMAN TO ASHES BY A LOOK. KṚISHṈ GIVES BATTLE TD JURÁSINDHU, FLIES FROM HIM AND ASCENDS A MOUNTAIN, WHICH IS CONSUMED BY JURÁSINDHU, WHO IMAGINES HE HAS SLAIN KṚISHṈ. KṚISHṈ, HOWEVER, RETURNS TD DWÁRIKÁ, AND JURÁSINDHU TAKES POSSESSION OF MATHURÁ.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! ब्रजमंडल में आते ही श्री कृष्णचंद ने बलराम जी को तो मथुरा में छोड़ा, औ आप रूप सागर, जगत उजागर, पीतांबर पहने, पीत पट ओढ़े, सब सिंगार किये, कालयमन के दल में जाय, उसके सनमुख हो निकले. वह इन्हें देखते ही अपने मन में कहने लगा कि, हो नहो यही कृष्ण है, नारद मुनि ने जो चिन्ह बताये थे सो सब इस में पाये जाते हैं. इन्ही ने कंसादि असुर मारे; जुरासिंधु की सब सेना हनी. ऐसे मन ही मन विचार।

कालयमन यों कहै पुकारि, काहे भागे जात मुरारि!
आय पर्यो अब मो सों काम, ठाढ़े रहौ, करौ संग्राम.
जुरासिंधु हां नाहीं कंस, यादव कुल कौ करौं बिध्वंस.

हे राजा! यों कह कालयमन अति अभिमान कर, अपनी सब सेना को छोड़ अकेला श्री कृष्णचंद के पीछे धाया; पर उस मूरख ने प्रभु का भेद न पाया. आगे आगे तो हरि भागे जाते थे, औ एक हाथ के अंतर से पीछे पीछे वह दौड़ा जाता था निदान भागते भागते जब अनेक दूर निकल गये, तब प्रभु एक पहाड़ की गुफा में बड़ गये; वहां जा देखें तो एक पुरुष सोया पड़ा है. ये झट अपना पीतांबर उसे उढ़ाय, आप अलग एक ओर छिप रहे. पीछे से कालयमन

भी दौड़ता हांफता उस अति अंधेरी कंदरा में जा पहुंचा, औ पीतांबर ओढ़े तिस पुरुष को सोता देख इसने अपने जी में जाना कि यह कृष्ण ही छलकर सो रहा है।

महाराज! ऐसे मन हीं मन बिचार, क्रोध कर, उस सोते हुए को एक लात मार कालयमन बोला, अरे कपटी! क्या मिस कर साध की भांति निचिंताई से सो रहा है? उठ! मैं तुझे अबहीं मारता हूं. यों कह इसने उसके ऊपर से पीतांबर झटक लिया; वह नींद से चौंक पड़ा: और जों तिसने इस की ओर क्रोध कर देखा, तों यह जल बल भस्म हो गया. इतनी बात के सुनते ही राजा परीक्षित ने कहा।

यह शुकदेव कहौ समझाय, को वह रह्यौ कंदरा जाय.
ताकी दृष्ट भस्म क्यों भयौ, काने वाहि महा बर दयौ.

श्री शुकदेव मुनि बोले, पृथ्वीनाथ! इक्ष्वाकबंसी क्षत्री मानधाता का बेटा मुचकुंद अति बली महा प्रतापी, जिस का अरि दल दलन जस छाय रहा नौ खंड. एक समैं सब देवता असुरों के सताये, निपट घबराये, मुचकुंद के पास आए, औ अति दीनता कर उन्होंने कहा, महाराज! असुर बहुत बढ़े, अब तिनके हाथ से बच नहीं सकते, बेग हमारी रक्षा करो. यह रीति परंपरा से चली आई है, कि जब जब सुर मुनि ऋषि अबल हुए हैं, तब तब उनकी सहायता क्षत्रियों ने करी है।

इतनी बात के सुनते ही मचकुंद उनके साथ हो लिया, औ जाके असुरों से युद्ध करने लगा. इस में लड़ते लड़ते कितने हीं जुग बीत गये, तब देवताओं ने मुचकुंद से कहा कि, महाराज! आपने हमारे लिये बहुत श्रम किया. अब कहीं बैठ बिश्राम लीजिये, औ देह को सुख दीजिये।

बहुत दिननि कीनौ संग्राम, गयौ कुटुंब सहित धन धाम.
रह्यौ न कोऊ तहां तिहारौ, ताते अब जिन घर पग धारौ.

और जहां तुम्हारा मन माने तहां जाओ. यह सुन मुचकुंद ने देवताओं से कहा, कृपानाथ! मुझे कहीं कृपा कर ऐसी एकांत ठौर बताइये कि, जहां जाय मैं निचिंताई से सोऊं, औ कोई न जगावे. इतनी बात के सुनते ही प्रसन्न हो देवताओं ने मुचकुंद से कहा कि, महाराज! आप धौलागिरि पर्वत की कंदरा में जाय सयन कीजिये; वहां तुम्हें कोई न जगावेगा, औ जो कोई जाने अनजाने वहां जाके तुम्हे जगावेगा, तो वह देखते ही तुम्हारी दृष्ट से जल बल राख हो जावेगा।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! ऐसे देवताओं से बर पाय, मुचकुंद तिस गुफा में रहा था; इससे उस की दृष्ट पड़ते ही कालयमन जलकर छार हो गया. आगे करुना निधान कान्ह भक्त हितकरी ने मेघ बरन, चंदमुख कंवल नैन, चतुर्भुज हो, शंख, चक्र, गदा, पद्म, लिये, मोर मुकुट, मकराकृति कुंडल, बनमाल औ पीतांबर पहरे मुचकंद

को दरसन दिया. प्रभु का स्वरूप देखते ही वह अष्टांग प्रनाम कर खड़ा हो, हाथ जोड़ बोला कि, कृपानाथ! जैसे आप ने इस महा अंधेरी कंदरा में आय उजाला कर तम दूर किया, तैसे दयाकर अपना नाम भेद बताय मेरे मन का भी भरम दूर कीजे।

श्री कृष्णचंद बोले कि, मेरे तो जन्म कर्म और गुन हैं घने, वे किसी भांति गने न जांय, कोई कितना हीं गने; पर मैं इस जन्म का भेद कहता हूं सो सुनो कि, अबके बसुदेव के यहां जन्म लिया, इससे वासुदेव मेरा नाम हुआ; औ मथुरापुरी में सब असुरों समेत कंस को मैंने ही मार भूमि का भार उतारा; औ सत्रह बेर तेईस तेईस अक्षौहिनी सेना ले जुरासिंधु युद्ध करने को चढ़ि आया, सो भी मुझी से हारा; और यह कालयमन तीन कड़ोड़ म्लेछ की भीड़भाड़ ले लड़ने को आया था सो तुम्हारी दृष्ट से जल मरा. इतनी बात प्रभु के मुख से निकलते ही, सुनकर मुचकुंद को ज्ञान हुआ, तो बोला कि, महाराज! आप की माया अति प्रबल है, उस ने सारे संसार को मोहा है, इसी से किसी की कुछ सुध बुद्धि ठिकाने नहीं रहती।

करत कर्म सब सुख के हेत, तातें भारी दुख सहि लेत.
चुभे हाड़ ज्यों स्वान मुख, रुधिर चचोरे आप.
जानत ताही तें चुवत, सुख माने संताप.

और महाराज! जो इस संसार में आया है सो गृह रूपी अंध कूप से बिन आप की कृपा निकल नहीं सकता; इससे मुझे भी चिंता है कि, मैं कैसे गृह रूप कूप से निकलूंगा? श्री कृष्ण जी बोले, सुन मुचकुंद, बात तो ऐसे ही है, जैसे तू ने कही, पर मैं तेरे तरने का उपाय बता देता हूं सो तू कर. तैं ने राज पाय, भूमि, धन, स्त्री के लिये अधिक अधर्म किये हैं, सो बिन तप किये न छूटेंगे, इससे उत्तर दिस में जाय तू तपस्या कर, यह अपनी देह छोड़ फिर ऋषि के घर जन्म लेगा, तब तू मुक्ति पदारथ पावेगा. महाराज! इतनी बात जों मुचकुंद ने सुनी, तों जाना कि, अब कलियुग आया. यह समझ प्रभु से बिदा हो, दंडवत कर, परिक्रमा दे, मुचकुंद तो बद्रीनाथ को गया; औ श्री कृष्णचंद जी ने मथुरा में आय बलराम जी से कहा।

कालयमन को कियौ निकंद, बद्री दिस पठयौ मुचकुंद.
कालयमन की सेना घनी, तिन घेरी मथुरा आपनी.
आवहु तहां म्लेछन मारैं, सकल भूमि को भार उतारैं.

ऐसे कह हलधर को साथ ले श्री कृष्णचंद मथुरापुरी से निकल वहां आए, जहां कालयमन का कटक खड़ा था; औ आते ही दोनों उनसे युद्ध करने लगे. निदान लड़ते लड़ते जब म्लेछ की सेना प्रभु ने सब मारी, तब बलदेव जी से कहा कि, भाई! अब मथुरा की सब संपति ले द्वारिका को भेज दीजे. बलराम जी बोले बहुत अच्छा. तब श्री कृष्णचंद ने मथुरा का सब धन निकलवाय, भैंसों, छकड़ों, ऊटों, हाथियों पर लदवाय, द्वारिका को भेज दिया. इस बीच

फिर जरासिंधु तेईस ही अक्षौहिनी सेना ले मथुरापुरी पर चढ़ि आया. तब श्री कृष्ण बलराम अति घबरायके निकले, औ उसके सनमुख जा दिखाई दे विसके मन का संताप मिटाने को भाग चले. तद मंत्री ने जरासिंधु से कहा कि, महाराज! आप के प्रताप के आगे ऐसा कौन बली है जो ठहरे! देखो व दोनों भाई कृष्ण बलराम, छोड़के सब धन धाम, लेके अपना प्रान, तुम्हारे त्रास के मारे नंगे पाओं भागे चले जाते हैं. इतनी बात मंत्री से सुन जरासिंधु भी यों पुकारकर कहता ज़आ सेना ले उन के पीछे दौड़ा।

काहे डरके भागे जात? ठाढ़े रहौ करौ कछु बात.
परत उठत कंपत क्यौं भारी? आई है ढिग मीच तिहारी.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब श्री कृष्ण औ बलदेव जी ने भाग के लोक रीति दिखाई, तब जरासिंधु के मन से पिछला सब शोक गया, औ अति प्रसन्न ज़आ, ऐसा कि जिस का कुछ बरनन नहीं किया जाता. आगे श्री कृष्ण बलराम भागते भागते एक गौतम नाम पर्वत, ग्यारह योजन ऊंचा था, तिस पर चढ़ गये और उस की चोटी पर जाय खड़े भये।

देख जरासिंधु कहै पुकारि, शिखर चढ़े बलभद्र मुरारि.
अब किस हम सों जांय पलाय. या पर्वत कों देऊ जलाय.

इतना बचन जरासिंधु के मुख से निकलते ही, सब असुरों ने उस पहाड़ को जा घेरा, औ नगर नगर गांव गांव से काठ कबाड़ लाय लाय उसके चारों ओर चुन दिया; तिस पर गड़गूदड़ घी तेल से भिगो डालकर आग लगा दी. जब वह आग पर्वत की चोटी तक लहकी, तद उन दोनों भाइयों ने वहां से इस भांति द्वारिका की बाट ली कि किसी ने उन्हें जाते भी न देखा; और पहाड़ जलकर भस्म होगया. उस काल जरासिंधु श्री कृष्ण बलराम को उस पर्वत के संग जल मरा जान, अति सुख मान, सब दल साथ ले, मथुरापुरी में आया, और वहां का राज ले, नगर में ढंढोरा दे, उस ने अपना थाना बैठाया. जितने उग्रसेन बसुदेव के पुराने मंदिर थे सो सब ढवाए; और उस ने आप अपने नये बनवाए.।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! इस रीति से जरासिंधु को धोखा दे श्री कृष्ण बलराम जी तो द्वारिका में जाय बसे; और जरासिंधु भी मथुरा नगरी से चल सब सेना ले अति आनंद करता निसंक हो, अपने घर आया. इति।

CHAPTER LIII.

THE MARRIAGE OF BALARÁM WITH REWATÍ, THE DAUGHTER OF THE RÁJÁ OF ARNTÁ. THE ADVENTURES OF KṚISHṆ IN THE CITY OF KUNDALPUR, WHERE HE SEEKS THE HAND OF RUKMINÍ, THE DAUGHTER OF RÁJÁ BHÍSHMAK, WHO HAS BEEN BETROTHED TO SISUPÁL, THE RÁJÁ OF CHANDERÍ.

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! अब आगे कथा सुनिये, कि जब कालयमन को मार, मुचकुंद को तार, जुरासिंधु को धोखा दे, बलदेव जी को साथ ले, श्री कृष्णचंद आनंद कंद जों द्वारिका में गये, तों सब यदुबंसियों के जी में जी आया, औ सारे नगर में सुख छाया. सब चैन आनंद से पुरबासी रहने लगे. इस में कितने एक दिन पीछे एक दिन कई एक यदुबंसियों ने राजा उग्रसन से जा कहा कि, महाराज! अब कहीं बलराम जी का विवाह किया चाहिये; क्योंकि ये सामर्थ हुए. इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने एक ब्राह्मन को बुलाय, अति समझाय बुझाय के कहा कि, देवता! तुम कहीं जाकर अच्छा कुल घर देख बलराम जी की सगाई कर आओ. इतना कह रोली, अच्छत, रुपया, नारियल मंगवा, उग्रसेन जी ने उस ब्राह्मन को तिलक कर, रुपया नारियल दे बिदा किया. वह चला चला अर्नता देश में राजा रेवत के यहां गया, और उस की कन्या रेवती से बलराम जी की सगाई कर, लग्न ठहराय, उसके ब्राह्मन के हाथ टीका लिवाय, द्वारिका में राजा उग्रसेन के पास ले आया, और उस ने वहां का सब ब्यौरा कह सुनाया. सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति प्रसन्न हो, उस ब्राह्मन को बुलाय, जो टीका ले आया था, मंगलाचार करवाय टीका लिया, और उसे बहुत सा धन दे बिदा किया, पीछे आप सब यदुबंसियों को साथ ले बड़ी धूमधाम से अर्नता देश में जाय बलराम जी का ब्याह कर लाए।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव मुनि ने राजा से कहा कि, पृथ्वीनाथ! इस रीति से तो सब यदुबंसी बलदेव जी का ब्याह कर लाए, और श्री कृष्णचंद जी आप ही भाई को साथ ले कुंडलपुर में जाय, भीष्मक नरेस की बेटी रुक्मिनी, सिसुपाल की मांग को राक्षसों से युद्ध कर छीन लाए, उसे घर में लाय ब्याह लिया. यह सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि, कृपासिंधु! भीष्मक सुता रुक्मिनी को श्री कृष्णचंद कुंडलपुर में जाय, असुरों को मार, किस रीति से लाए? सो तुम मुझे समझाकर कहो.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! आप मन लगाय सुनिये, मैं सब भेद वहां का समझाकर कहता हूं कि, विदर्भ देस में कुंडलपुर नाम एक नगर, तहां भीष्मक नाम नरेस, जिसका जस छाय रहा चहुं देस. उन के घर में जाय श्री सीता जी ने औतार लिया. कन्या के होते ही राजा भीष्मक ने जोतिषियों को बुलाय भेजा. विन्हों ने आय लग्न साध उस लड़की

का नाम रुक्मिनी धरकर कहा कि, महाराज! हमारे विचार में ऐसे आता है कि यह कन्या अति सुशील सुभाव, रूप निधान, गुनों में लक्ष्मी समान होगी, और आदि पुरुष से व्याही जायगी!

इतना वचन जोतिषियों के मुख से निकलते ही राजा भीष्मक ने अति सुख मान बड़ा आनंद किया, औ बहुत सा कुछ ब्राह्मनों को दिया. आगे वह लड़की चंद्र कला की भांति दिन दिन बढ़ने लगी. और बाल लीला कर कर मात पिता को सुख देने. इस में कुछ बड़ी हुई तो लगी सखी सहेलियों के साथ अनेक अनेक प्रकार के अनूठे अनूठे खेल खेलने. एक दिन वह मृग नैनी, पिक बैनी, चंपक बरनी, चंद मुखी, सखियों के संग आंखमिचौली खेलने गई, तो खेल समैं सब सखियां उसे कहने लगीं कि, रुक्मिनी! तू हमारा खेल खोने को आई है: क्योंकि जहां तू हमारे साथ अंधेरे में छिपती है, तहां तेरे मुख चंद की जोति से चांदना होजाता है, इससे हम छिप नहीं सकतीं. यह सुन वह हंसकर चुप हो रही।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने कहा कि, महाराज! इसी भांति वह सखियों के संग खेलती थी, औ दिन दिन छवि उस की दूनी होती थी कि, इस बीच एक दिन नारद जी कुंडलपुर में आए, औ रुक्मिनी को देख, श्री कृष्णचंद के पास द्वारिका में जाय उन्हों ने कहा कि, महाराज! कुंडलपुर में राजा भीष्मक के घर एक कन्या रूप, गुन, शील की खान, लक्ष्मी का समान, जन्मी है, सो तुम्हारे योग है. यह भेद जब नारद मुनि से सुन पाया, तभी से रात दिन हरि ने अपना मन उसपर लगाया. महाराज! इस रीति करके तो श्री कृष्णचंद ने रुक्मिनी का नाम गुन सुना, और जैसे रुक्मिनी ने प्रभु का नाम औ जस सुना सो कहता हूं कि, एक समैं देस देस के कितने एक जाचकों ने जाय, कुंडलपुर में श्री कृष्णचंद का जस गाय, जैसे प्रभु ने मथुरा में जन्म लिया, औ गोकुल वृंदावन में जाय ग्वाल बालों के संग मिल बाल चरित्र किया और असुरों को मार भूमि का भार उतार यदुबंसियों को सुख दिया था, तैसे ही गाय सुनाया. हरि के चरित्र सुनते ही सब नगर निवासी अति आश्चर्य कर आपस में कहने लगे कि, जिनकी लीला हम ने कानों सुनी, तिन्हें कब नैनों देखेंगे? इस बीच जाचक किसी ढब से राजा भीष्मक की सभा में जाय प्रभु के चरित्र औ गुन गाने लगे; उस काल।

चढ़ी अटा रुक्मिनी सुंदरी, हरि चरित्र धुन श्रवननि परी.
अचरज करै भूलि मन रहै, फेर उझककर देखनि चहै.
समकै कुंवरि रही मन लाय, प्रेम लता उर उपजी आय.
भई मगन विहवल सुंदरी, वाकी सुध बुध हरि गुन हरी.

यों कह, श्री शुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! इस भांति श्री रुक्मिनी जी ने प्रभु का जस औ नाम सुना, तो विसी दिन से रात दिन आठ पहर चौंसठ घड़ी सोते, जागते, बैठे, खड़े, चलते, फिरते, खाते, पीते, खेलते, तिन्हीं का ध्यान किये रहे, और गुन गाया करे. नित भोरही उठे.

स्नान कर मट्टी की गौर बनाय, रोली, अच्छत, पुष्प चढ़ाय, धूप, दीप, नैवेद्य कर मनाय, हाथ जोड़, सिर नाय, उसके आगे कहा करे।

मो पर गौरि कृपा तुम करौ, यदुपति पति दे मम दुख हरौ.

इसी रीति से सदा रुक्मिनी रहने लगी. एक दिन सखियों के संग खेलती थी कि, राजा भीष्मक उसे देख अपने मन में चिंता कर कहने लगा कि, अब यह हुई ब्याहन जोग, इसे शीघ्र कहीं न दीजे तो हंसेंगे लोग. कहा है कि, जिस के घर में कन्या बड़ी होय, तिस का दान, पुन्य, जप, तप करना वृथा है; क्योंकि किये से तबतक कुछ धर्म नहीं होता, जबतक कन्या के ऋन से न उतरन होय. यों बिचार, राजा भीष्मक अपनी सभा में आय, सब मंत्री औ कुटुंब के लोगों को बुलाय बोले, भाइयो! कन्या ब्याहन जोग हुई, इस के लिये कुलवान, गुन खान, रूप निधान, शीलवान, कहीं बर ढूंढा चाहिये।

इतनी बात के सुनते ही विन लोगों ने अनेक अनेक देसों के नरेसों के कुल, गुन, रूप, औ पराक्रम कह सुनाए; पर राजा भीष्मक के चित में किसी की बात कुछ न आई. तब उन का बड़ा बेटा, जिस का नाम रुक्म, सो कहने लगा कि, पिता! नगर चंदेरी का राजा सिसुपाल अति बलवान है, और सब भांति से हमारी समान; तिससे रुक्मिनी की सगाई वहां कीजे, औ जगत में जस लीजे. महाराज! जद उस की भी बात राजा ने सुनी अनसुनी की, तद तो रुक्मकेश नाम उन का छोटा लड़का बोला।

रुक्मिनि पिता कृष्ण कौं दीजे, बसुदेव सों सगाई कीजे.
यह सुनि भीष्मक हरषे गात, कही पूत तें नीकी बात.
तू बालक सब सों अति ज्ञानी, तेरी बात भली हम मानी.

कहा है

छोटे बड़ेनि पूछके, कीजै मन परतीति,
सार बचन गह लीजिये, यही जगत की रीति.

ऐसे कह फिर राजा भीष्मक बोले कि, यह तो रुक्मकेश ने भली बात कही. यदुबंसियों में राजा सूरसेन बड़े जसी औ प्रतापी हुए, तिन हीं के पुत्र बसुदेव जी हैं, सो कैसे हैं कि, जिन के घर में आदि पुरुष अबिनासी, सकल देवन के देव, श्री कृष्णचंद जी ने जन्म ले महा बली कंसादिक राचसों को मारा, औ भूमि का भार उतार, यदुकुल को उजागर किया, और सब यदुबंसियों समेत प्रजा को सुख दिया, ऐसे जो द्वारिका नाथ श्री कृष्णचंद जी को रुक्मिनी दें तो जगत में जस औ बड़ाई लें. इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग अति प्रसन्न हो बोले कि, महाराज! यह तो तुम ने भली बिचारी, ऐसा वर घर और कहीं न मिलेगा, इस्से उत्तम यही है कि, श्री कृष्णचंद ही को रुक्मनी ब्याह दीजे. महाराज! जब सब सभा के लोगों ने यों कहा, तब राजा

भीष्मक का बड़ा बेटा, जिस का नाम रुक्म, सो सुन निपट झुंझलायके बोला।

समझ न बोलत महा गंवार, जानत नहीं कृष्ण ब्यौहार.
सोरह बरस नंद के रह्यौ, तब अहीर सब काह्न कह्यौ.
कामरि ओढ़ी गाय चराई, बरहे बैठि छाक तिन खाई.

वह तो गंवार ग्वाल है, तिस की जातपांत का क्या ठिकाना? और जिस के मा बाप ही का भेद नहीं जाना जाता, उसे हम पुत्र किस का कहें? कोई नंद गोप का जानता है; कोई वसुदेव का कर मानता है; पर आजतक यह भेद किसी ने नहीं पाया कि, कृष्ण किस का बेटा है, इसी से जो जिस के मन में आता है सो गाता है. महाराज! हमें सब कोई जानता मानता है और यदुबंसी राजा कब भये? क्या हुआ जो थोड़े दिनों से बलकर उन्हों ने बड़ाई पाई? पहला कलंक तो अब न छूटेगा. वह उग्रसेन का चाकर कहाता है, तिस से सगाई कर क्या हम कुछ संसार में जस पावेंगे? कहा है, ब्याह, बैर, और प्रीति समान से करिये तो शोभा पाइये; और जो कृष्ण को देंगे तो लोग कहेंगे ग्वाल का साला, तिस से सब जायगा नाम औ जस हमारा।

महाराज! यों कह फिर रुक्म बोला कि, नगर चंदेरी का राजा सिसुपाल बड़ा बली औ प्रतापी है, उस के डर से सब थर थर कांपते हैं, और परंपरा से उन के घर में राज गादी चली आती है, इस से अब उत्तम यही है कि, रुक्मिनी उसी को दीजे, और मेरे आगे फेर कृष्ण का नाम भी न लीजे. इतनी बात के सुनते ही सब सभा के लोग मारे डर के मन ही मन अछतापछता के चुप हो रहे, और राजा भीष्मक भी कुछ न बोला. इस में रुक्म ने जोतिषी को बोलाय, शुभ दिन लग्न ठहराय, एक ब्राह्मन के हाथ राजा सिसुपाल के यहां टीका भेज दिया. वह ब्राह्मन टीका लिये चला चला नगर चंदेरी में जाय राजा सिसुपाल की सभा में पहुंचा. देखते ही राजा ने प्रनाम कर जब ब्राह्मन से पूछा, कहो देवता, आप का आना कहां से हुआ, और यहां किस मनोरथ के लिये आए? तब तो उस बिप्र ने असीस दे अपने जाने का सब ब्यौरा कहा, सुनते ही प्रसन्न हो राजा सिसुपाल ने अपना पुरोहित बुलाय टीका लिया, औ तिस ब्राह्मन को बहुत सा कुछ दे बिदा किया. पीछे जुरासिंधु आदि सब देस देस के नरेसों को नोंत बुलाया; वे अपना दल ले ले आए, तब यह भी अपना सब कटक ले ब्याहन चढ़ा. उस ब्राह्मन ने आ राजा भीष्मक से कहा जो टीका लेगया था कि, महाराज! मैं राजा सिसुपाल को टीका दे आया, वह बड़ी धूमधाम से बरात ले ब्याहन को आता है, आप अपना कार्य कीजे।

यह सुन राजा भीष्मक पहले तो निपट उदास हुए, पीछे कुछ सोच समझ मंदिर में जाय उन्होंने पटरानी से कहा. वह सुनकर लगी मंगलामुखी औ कुटुंब की नारियों को बुलवाय, मंगलाचार करवाय, ब्याह की सब रीति भांति करने. फिर राजा ने बाहर आ, प्रधान औ मंत्रियों को आज्ञा दी कि, कन्या के विवाह में हमें जो जो वस्तु चाहिये सो सो सब इकठी करो.

राजा की आज्ञा पाते ही मंत्री औ प्रधानों ने सब वस्तु बात की बात में बनवाय मंगवाय लाय धरी. लोगोंने देखा सुना तो यह चरचा नगर में फैली कि, रुक्मिनी का विवाह श्री कृष्णचंद से होता था, सो दुष्ट रुक्म ने न होने दिया, अब सिसुपाल से होगा।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीछित से कहा कि, पृथ्वीनाथ! नगर में तो घर घर यह बात हो रही थी; औ राजमंदिर में नारियां गाय बजायके रीति भांति करती थीं. ब्राह्मन वेद पढ़ पढ़ टेहले करवाते थे. ठौर ठौर दुंदभी बाजते थे. बार बार सपल्लव केले के खंभ गाड़ गाड़, सोंने के कलस भर भर, लोग धरते थे; औ तोरन बंदनवारें बांधते थे; और एक ओर नगर निवासी न्यारे ही हाट, बाट, चौहटे झाड़ बुहार, पट से पाटते थे; इस भांति घर औ बाहर में धूम मच रही थी कि, उसी समैं दो चार सखियों ने जा रुक्मनी से कहा कि।

तोहि रुक्म सिसुपाल हि दई, अब तू रुक्मिनि रानी भई.
बोली सोच नायकर सीस, मन बच मेरे पन जगदीस.

इतना कह रुक्मिनी ने अति चिंता कर, एक ब्राह्मन को बुलाय, हाथ जोड़, उस की बहुत सी विनती औ बड़ाई कर, अपना मनोरथ उसे सब सुनायके कहा कि, महाराज! मेरा संदेसा द्वारिका ले जाओ, और द्वारिकानाथ को सुनाय उन्हें साथ कर ले आओ, तो मैं तुम्हारा बड़ा गुन मानूंगी, औ यह जानूंगी कि, तुम ने हीं दया कर मुझे श्री कृष्ण बर दिया।

इतनी बात के सुनते ही वह ब्राह्मन बोला, अच्छा तुम संदेसा कहो मैं लेजाऊंगा, औ श्री कृष्णचंद को सुनाऊंगा; वे कृपानाथ हैं, जो कृपा कर मेरे संग आवेंगे तो लेआऊंगा. इतना बचन जों ब्राह्मन के मुख से निकला, तोंहीं रुक्मिनी जी ने एक पाती प्रेमरंग राती लिख उसके हाथ दी, और कहा कि, श्री कृष्णचंद आनंद कंद को पाती दे, मेरी ओर से कहियो कि, उस दासी ने कर जोड़ अति विनती कर कहा है, जो आप अंतरजामी हैं, घट घट की जानते हैं, अधिक क्या कहूंगी? मैंने तुम्हारी सरन ली है, अब मेरी लाज तुम्हें है, जिस में रहै सो कीजे, और इस दासी को आय वेग दरसन दीजे।

महाराज! ऐसे कह सुन जब रुक्मिनी जी ने उस ब्राह्मन को विदा किया, तब वह प्रभु का ध्यान कर, नाम लेता, द्वारिका को चला, और हरि इच्छा से बात के कहते जा पहुंचा. वहां जाय देखे तो समुद्र के बीच वह पुरी है, जिस के चहुं ओर बड़े बड़े पर्वत औ बन उपवन शोभा दे रहे हैं; तिन में भांति भांति के पशु पछी बोल रहें हैं; औ निरमल जल भरे सुथरे सरोवर, तिन में कंवल डहडहाय रहे, तिन पर भौंरों के झुंड के झुंड गूंज रहे; और तीर पै हंस सारस आदि पछी कलोलें कर रहे. कोसों तकअनेक अनेक प्रकार के फल फूलों की बाड़ियां चली गई हैं; तिन की बाड़ों पर पनवाड़ियां लहलहा रही हैं. बावड़ी इंदारों पै खड़े मीठे

सुरों मे गाय गाय माली रंहट परोहे चलाय चलाय, ऊंचे नीचे नीर सींच रहे हैं; और पनघटों पर पनहारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लगे ऊए हैं।

यह छवि निरख हरष, वह ब्राह्मन ज्यों आगे बढ़ा, त्यों देखता क्या है कि, नगर के चारों ओर अति ऊंचा कोट, उस में चार फाटक, तिन में कंचन खचित जड़ाऊ किवाड़ लगे ऊए हैं; औ पुरी के भीतर चांदी सोने के मनिमय पचखने, सतखने, मंदिर, ऊंचे ऐसे कि, आकाश से बातें करें, जगमगाय रहे हैं. तिनके कलस कलसियां बिजली सी चमकती हैं. बरन बरन की ध्वजा पताका फहराय रहीं हैं. खिड़की, झरोखों, मोखों, जालियों से सुगंध की लपटें आय रहीं हैं. द्वार द्वार सपल्लव केले के खंभ औ कंचन कलस भरे धरे हैं. तोरन, वंदनवारें बंधी ऊई हैं; और घर घर आनंद के बाजन बाज रहे हैं. ठौर ठौर कथा पुरान औ हरि चरचा हो रही है: अठारह बरन सुख चैन से बास करते हैं; सुदरसन चक्र पुरी की रच्छा करता है।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! ऐसी जो सुंदर सुहावनी द्वारिका पुरी, तिसे देखता देखता वह ब्राह्मन राजा उग्रसेन की सभा में जा खड़ा ऊआ, और असीस कर वहां इसने पूछा कि, श्री कृष्णचंद जी कहां बिराजते हैं? तब किसी ने इसे हरि का मंदिर बताय दिया. यह जो द्वार पर जाय खड़ा ऊआ, त्यों द्वारपालों ने इसे देख दंडवत कर पूछा।

को हो आप कहां तें आए, कौन देस की पाती लाए?

यह बोला, ब्राह्मन हूं, औ कुंडलपुर का रहनेवाला; राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिनी, उस की चीठी श्री कृष्णचंद को देने आया हूं. इतनी बात के सुनते ही पौरियों ने कहा, महाराज! आप मंदिर में पधारिये, श्री कृष्णचंद सोहीं सिंहासन पर बिराजते हैं. बचन सुन ब्राह्मन ज्यों भीतर गया त्यों हरि ने देखते ही सिंहासन से उतर, दंडवत कर, अति आदर मान किया, औ सिंहासन पर बिठाय, चरन धोय, चरनामृत लिया, और ऐसे सेवा करने लगे, जैसे कोई अपने इष्ट की सेवा करे. निदान प्रभु ने सुगंध उबटन लगाय, न्हिलाय धुलाय, पहले तो उसे षट रस भोजन करवाया, पीछे बीड़ा दे, केसर चंदन से चरच, फूलों की माला पहिराय, मनिमय मंदिर में लेजाय, एक सुथरे जड़ाऊ खट छप्पर में लिटाया. महाराज! वह भी बाट का हारा थका तो था ही, लेटते ही सुख पाय सो गया. श्री कृष्ण जी कितनी एक बेर तक तो उस की बातें सुनने की अभिलाषा किये वहां बैठे, मन ही मन कहते रहे कि अब उठे, अब उठे. निदान जब देखा कि न उठा, तब आतुर हो, उसकेपैं ताने बैठ, लगे पांव दाबने. इस में उस की नींद टूटी तो वह उठ बैठा. तद हरि ने बिप्र की छेम कुशल पूछ, पूछा

नीको राज देस तुम तनों, हम सों भेद कहौ आपनों.

कौन काज यहां आवन भयो, दरस दिखाय हमें सुख दयो?

ब्राह्मन बोला कि, कृपा निधान! आप मन दे सुनिये, मैं अपने आने का कारन कहता हूं.

कि, महाराज! कुंडलपुर के राजा भीष्मक की कन्या ने जब से आप का नाम औ गुन सुना है, तभी से वह निस दिन तुम्हारा ध्यान किये रहती है, औ कंवल चरन की सेवा किया चाहती थी. और संयोग भी आय बना था, पर बात बिगड़ गई. प्रभु बोले, सो क्या? ब्राह्मन ने कहा, दीनदयाल! एक दिन राजा भीष्मक ने अपने सब कुटुंब औ सभा के लोगों को बुलायके कहा कि, भाइयो! कन्या ब्याहन जोग भई, अब इस के लिये बर ठहराया चाहिये. इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही, विन्होंने अनेक अनेक राजाओं का कुल, गुन, नाम, औ पराक्रम कह सुनाया; पर इन के मन में न आया. तद रुक्मकेस ने आप का नाम किया, तो प्रसन्न हो राजा ने उसका कहना मान लिया, और सब से कहा कि, भाइयो! मेरे मन में तो इस की बात पत्थर की लकीर हो चुकी, तुम क्या कहते हो? वे बोले, महाराज! ऐसा, घर, वर, जो त्रिलोकी ढूंढियेगा तो भी न पाइयेगा; इस से अब उचित यही है कि विलंब न कीजे, शीघ्र श्री कृष्णचंद से रुक्मिनी का विवाह कर दीजे. महाराज! यह बात ठहर चुकी थी, इस में रुक्म ने भांजी मार रुक्मिनी की सगाई सिसुपाल से की, अब वह सब असुर दल साथ ले ब्याहन को चढ़ा है।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! ऐसे उस ब्राह्मन ने सब समाचार कह, रुक्मिनी जी की चीठी हरि के हाथ दी, प्रभु ने अति हित से पाती ले छाती से लगाय ली, औ पढ़कर प्रसन्न हो ब्राह्मन से कहा, देवता! तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं तुम्हारे साथ चल, असुरों को मार, उन का मनोरथ पूरा करूंगा. यह सुन ब्राह्मन को तो धीरज हुआ, पर हरि रुक्मिनी का ध्यान कर चिंता करने लगे. इति।

CHAPTER LIV.

KRISHN CARRIES OFF RUKMINÍ ON HER MARRIAGE-DAY.

श्री शुकदेव जी बोले कि, हे राजा! श्री कृष्णचंद ने ऐसे उस ब्राह्मन को ढाढ़स बंधाय फिर कहा।

जैसें घिसके काठ तें, काढ़हिं ज्वाला जारि,
ऐसे सुंदरि ल्याय हौं, दुष्ट असुर दल मारि.

इतना कह फिर सुथरे वस्त्र, आभूषन मनमानते पहन, राजा उग्रसेन के पास जाय प्रभु ने हाथ जोड़कर कहा, महाराज! कुंडलपुर के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या देने को पत्र लिख, पुरोहित के हाथ मुझे अकेला बुलाया है, जो आप आज्ञा दें तो जाऊं औ उस की बेटी ब्याह लाऊं।

सुनकर उग्रसेन यों कहै, दूर देस कैसें मन रहै.
तहां अकेले जात मुरारि, मत काहू सों उपजे रारि.

तब तुम्हारे समाचार हमें यहां कौन पहुंचावेगा? यों कह पुनि उग्रसेन बोले कि, अच्छा, जो तुम वहां जाया चाहते हो तो अपनी सब सेना साथ ले दोनों भाई जाओ, औ ब्याह कर शीघ्र चले आओ. व्हां किसी से लड़ाई झगड़ा न करना; क्योंकि तुम चिरंजीव हो तो सुंदरि बहुत आय रहेंगीं. आज्ञा पाते ही श्री कृष्णचंद बोले कि, महाराज! तुम ने सच कहा, पर मैं आगे चलता हूं, आप कटक समेत बलराम जी को पीछे से भेज दीजेगा।

ऐसे कह हरि उग्रसेन बसुदेव से बिदा हो, उस ब्राह्मन के निकट आए, और रथ समेत अपने दारक सारथी को बुलवाया. वह प्रभु की आज्ञा पाते ही चार घोड़े का रथ तुरंत जोत लाया; तब श्री कृष्णचंद उस पर चढ़े, औ ब्राह्मन को पास बिठाय, द्वारिका से कुंडलपुर को चले. जों नगर के बाहर निकले, तों देखते क्या हैं कि दाहनी ओर तो मृग के झुंड के झुंड चले जाते हैं, औ सनमुख से सिंह सिंहनी अपना भच्छ लिये गरजते आते हैं. यह शुभ सगुन देख ब्राह्मन अपने जी में बिचार कर बोला कि, महाराज! इस समैं इस शकुन के देखने से मेरे बिचार में यह आता है कि, जैसे ये अपना काज साधके आते हैं, तैसे ही तुम भी अपना काज सिद्ध कर आओगे. श्री कृष्णचंद बोले, आप की कृपा से. इतना कह हरि वहां से आगे बढ़े, औ नये नये देस, नगर, गांव, देखते देखते कुंडलपुर में जा पहुंचे, तो तहां देखा कि, ठौर ठौर ब्याह की सामा जो संजोय धरी है, तिस से नगर की छबि कुछ और की और हो रही है।

झारें गली चौहटे छावें, चोआ चंदन सों छिरकावें.
पोय सुपारी झौंरा किये, बिच बिच कनक नारियल दिये.
हरे पात फल फूल अपार, ऐसी घर घर बंदनवार.
ध्वजा पताका तोरन तने, सुढब कलस कंचन के बने.

और घर घर में आनंद हो रहा है. महाराज! यह तो नगर की सोभा थी; औ राजमंदिर में जो कुतूहल हो रहा था, उसका बरनन कोई क्या करे? वह देखे ही बनिआवे. आगे श्री कृष्णचंद ने सब नगर देख आ राजा भीष्मक की बाड़ी में डेरा किया, औ शीतल छांह में बैठ, ठंडे हो, उस ब्राह्मन से कहा कि, देवता! तुम पहले हमारे आने का समाचार रुक्मिनी जी को जा सुनाओ, जो वे धीरज धर अपने मन का दुख हरें, पीछे वहां का भेद हमें आ बताओ, जो हम फिर उसका उपाय करें. ब्राह्मन बोला कि, कृपानाथ! आज ब्याह का पहला दिन है, राजमंदिर में बड़ी धूमधाम हो रही है; मैं जाता हूं, पर रुक्मिनी जी को अकेली पाय आप के आने का भेद कहूंगा. यों सुनाय ब्राह्मन वहां से चला. महाराज! इधर से हरि तो यों चुपचाप अकेले पहुंचे; और उधर से राजा सिसुपाल जरासिंधु समेत सब असुर दल लिये, इस धूम से आया कि जिस का वारापार नहीं, औ इतनी भीड़ संग कर लाया कि जिस के बोझ से लगा सेसनाग डगमगाने, और पृथ्वी उथलने. उसके आने की सोध पाय, राजा भीष्मक अपने

मंत्री औ कुटुंब के लोगों समेत आगू बढ़ लेने गये, और बड़े आदर मान से अगोंनी कर, सब को पहरावनी पहराय, रत्न जटित शस्त्र आभूषन औ हाथी घोड़े दे, उन्हें नगर में ले आए, औ जनवासा दिया, फिर खाने पीने का सनमान किया।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! अब मैं अंतर कथा कहता हूं, आप चित लगाय सुनिये, कि, जब श्री कृष्णचंद द्वारिका से चले, तिसी समैं सब यदुबंसियों ने जाय, राजा उग्रसेन से कहा कि, महाराज! हम ने सुना है जो कुंडलपुर में राजा सिसुपाल जरासिंधु समेत सब असुर दल ले ब्याहन आया है, और हरि अकेले गये हैं, इस से हम जानते हैं कि, वहां श्री कृष्ण जी से और उन से युद्ध होगा. यह बात जानके भी हम अजान हो हरि को छोड़ यहां कैसे रहैं? हमारा मन तो मानता नहीं; आगे जो आप आज्ञा कीजे सो करें।

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति भय खाय, घबराय, बलराम जी को निकट बुलाय, समझायके कहा कि, तुम हमारी सब सेना ले श्री कृष्ण के न पहुंचते न पहुंचते शीघ्र कुंडलपुर जाओ, औ उन्हें अपने संग कर ले आओ. राजा की आज्ञा पाते ही बलदेव जी छप्पन करोड़ यादव जोड़ ले कुंडलपुर को चले. उस काल कटक के हाथी काले, धौले, धूमरे, दल बादल से जनाते थे; औ उन के स्वेत स्वेत दांत बग पांति से. धौंसा मेघ सा गरजता था; औ शस्त्र बिजली से चमकते थे. राते पीले बागे पहने घुड़चढ़ों के टोल के टोल जिधर तिधर दृष्ट आते थे. रथों के तांतों के तांते झमझमाते चले जाते थे; तिन की शोभा निरख निरख, हरष हरष, देवता अति हित से अपने अपने बिमानों पर बैठे आकाश से फूल बरसाय बरसाय, श्री कृष्णचंद आनंद कंद की जै मनाते थे. इस बीच सब दल लिये चले चले, कुंडलपुर में हरि के पहुंचते ही बलराम जी भी जा पहुंचे. यों सुनाय फिर श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! श्री कृष्णचंद रूप सागर, जगत उजागर, तो इस भांति कुंडलपुर पहुंच चुके थे, पर रुक्मिनी इन के आने का समाचार न पाय।

बिलख बदन चितवै चहुं ओर, जैसे चंद मलिन भये भोर.
अति चिंता सुंदरि जिय बाढ़ी, देखे ऊंच अटा पर ठाढ़ी.
चढ़ि चढ़ि उझकै खिरकी द्वार, नैननि तें छांडे जल धार.
बिलख बदन अति मलिन मन, लेत उसास निसास,
ब्याकुल बरषा नैन जल, सोचत कहति उदास,

कि अबतक क्यों नहीं आए हरि? बिन का तो नाम है अंतरजामी! ऐसी मुज से क्या चूक पड़ी, जो अबलग तिन्हों ने मेरी सुध न ली? क्या ब्राह्मन वहां नहीं पहुंचा? कै हरि ने मुझे कुरूप जान मेरी प्रीति की प्रतीत न करी? कै जरासिंधु का आना सुन प्रभु न आए! कल ब्याह का दिन है, औ असुर आय पहुंचा, जो वह कल मेरा कर गहेगा, तो यह पापी जीव हरि बिन कैसे

रहैगा? जप, तप, नेम, धर्म, कुछ आड़े न आया, अब क्या करूं और किधर जाऊं? अपनी बरात ले आया सिसुपाल, कैसे बिरमे प्रभु दीन दयाल?।

इतनी बात जब रुक्मिनी के मुंह से निकली, तब एक सखी ने तो कहा कि, दूर देस बिन पिता बंधु की आज्ञा हरि कैसे आवेंगे? औ दूसरी बोली कि, जिनका नाम है अंतरजामी दीन दयाल, वे बिन आए न रहेंगे; रुक्मिनी! तू धीरज धर, व्याकुल न हो; मेरा मन यह हांमी भरता है कि, अभी आय कोई यों कहता है कि, हरि आए. महाराज! ऐसे वे दोनों आपस में बतकहाव कर रही थीं कि, वैसे में ब्राह्मन ने जाय असीस दे कहा कि, श्री कृष्णचंद जी ने आय राज वाड़ी में डेरा किया, औ सब दल लिये बलदेव जी पीछे से आते हैं. ब्राह्मन को देखते और इतनी बात के सुनते ही, रुक्मिनी जी के जी में जी आया; और उन्हों ने उस काल ऐसा सुख माना कि, जैसे तपी तप का फल पाय सुख माने।

आगे श्री रुक्मिनी जी हाथ जोड़, सिर झुकाय, उस ब्राह्मन के सनमुख कहने लगीं कि, आज तुम ने आय हरि का आगमन सुनाय मुझे प्रान दान दिया, मैं इस के पलटे क्या दूं? जो त्रिलोकी की माया दूं, तो भी तुम्हारे रिन से उतरन न हूं. ऐसे कह मन मार सुकचाय रहीं. तद वह ब्राह्मन अति संतुष्ट हो, आसीरबाद कर, वहां से उठ, राजा भीष्मक के पास गया, और उस ने श्री कृष्ण के आने का ब्यौरा सब समझायके कहा. सुनत प्रमान राजा भीष्मक उठ धाया, औ चला चला वहां आया, जहां वाड़ी में श्री कृष्ण बलराम सुख धाम बिराजते थे. आते ही अष्टांग प्रनाम कर, सनमुख खड़े हो, हाथ जोड़के कहा राजा भीष्मक ने।

मेरे मन बच हे तुम हरी, कहा कहीं जो दुष्टनि करी?

अब मेरा मनोरथ पूरन हुआ जो आप ने आय दरसन दिया. यों कह प्रभु के डेरे करवाय, राजा भीष्मक तो अपने घर आय चिंता कर ऐसे कहने लगा।

हरि चरित्र जाने सब कोइ, क्या जाने अब कैसी होइ.

और जहां श्री कृष्ण बलदेव थे, तहां नगर निवासी क्या स्त्री क्या पुरुष, आय आय, सिर नाय नाय, प्रभु का जस गाय गाय, सराहि सराहि, आपस में यों कहते थे कि, रुक्मिनी जोग वर श्री कृष्ण ही है; बिधना करै यह जोरी जुरै, औ चिरंजीव रहै. इस बीच दोनों भाइयों के कुछ जो जी में आया तो नगर देखने चले. उस समैं ये दोनों भाई जिस हाट, बाट, चौंहटे में हो जाते थे, तहां नर नारियोंके ठट्ट के ठट्ट लग जाते थे; औ वे इन के ऊपर चोआ, चंदन, गुलाब नीर, छिड़क छिड़क, फूल बरसाय बरसाय, हाथ बढ़ाय बढ़ाय, प्रभु को आपस में यों कह कह बताते थे।

नीलंबर ओढ़े बलराम, पीतांबर पहने घनस्याम.
कुंडल चपल मुकुट सिर धरें, कमल नयन चाहत मन हरें.

औ ये देखते जाते थे. निदान सब नगर औ राजा सिसुपाल का कटक देख ये तो अपने दल में आए; औ इन के आने का समाचार सुन राजा भीष्मक का बड़ा बेटा अति क्रोध कर अपने पिता के निकट आय कहने लगा कि, सच कहो, कृष्ण यहां किस का बुलाया आया? यह भेद मैंने नहीं पाया, बिन बुलाए यह कैसे आया? ब्याह काज है सुख का धाम, इस में इस का है क्या काम? ये दोनों कपटी कुटिल जहां जाते हैं, तहां हीं उत्पात मचाते हैं; जो तुम अपना भला चाहो तो तुम मुज से सत्य कहो, ये किस के बुलाए आए?।

महाराज! रुक्म ऐसे पिता को धमकाय, यहां से उठ, सात पांच करता वहां गया, जहां राजा सिसुपाल औ जुरासिंधु अपनी सभा में बैठे थे; औ उन से कहा कि, यहां राम कृष्ण आंए हैं, तुम अपने सब लोगों को जता दो, जो सावधानी से रहैं. इन दोनों भाइयों का नाम सुनते ही, राजा सिसुपाल तो हरि चरित्र का लख ब्यौहार, जी हार, करने लगा मनहीं मन बिचार, औ जुरासिंधु कहने कि, सुनों, जहां ये दोनों आवें हैं, तहां कुछ न कुछ उपद्रव मचावें हैं. ये महा बली औ कपटी हैं, उन्हों ने ब्रज में कंसादि बड़े बड़े राचस सहज सुभाव ही मारे, इन्हें तुम मत जानों बारे. ये कभी किसी से लड़ कर नहीं हारे. श्री कृष्ण ने सत्रह बेर मेरा दल हना, जब मैं अठारवीं बेर चढ़ आया, तब यह भाग पर्वत पै जा चढ़ा, जों मैंने उस में आग लगाई, तों यह छलकर द्वारिका को चला गया।

याकौ काहू भेद न पायौ, अब यहां करन उपद्रव आयौ.
है यह छली महा छल करै, काहू पै नहिं जान्यौ परै.

इस से अब ऐसा कुछ उपाय कीजे, जिस से हम सबों की पत रहै. इतनी बात जब जुरासिंधु ने कही, तब रुक्म बोला कि, वे क्या वस्तु हैं, जिनके लिये तुम इतने भावित हो? विन्हें तो मैं भली भांति से जानता हूं कि, बन बन गाते नाचते, बेनु बजाते, धेनु चराते, फिरते थे. वे बालक गंवार युद्ध बिद्या की रीति क्या जाने, तुम किसी बात की चिंता अपने मन में मत करो, हम सब यदुबंसियों समेत कृष्ण बलराम को छिन भर में मार हटावेंगे।

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! उस दिन रुक्म तो जुरासिंधु औ सिसुपाल को समझाय बुझाय, ढाढ़स बंधाय, अपने घर आया; और उन्हों ने सात पांच कर रात गंवाई. भोर होते ही इधर राजा सिसुपाल औ जुरासिंधु तो ब्याह का दिन जान बरात निकालने की धूमधाम में लगे; और उधर राजा भीष्मक के यहां भी मंगलाचार होने लगे. इस में रुक्मिनी जी ने उठते ही एक ब्राह्मन के हाथ, श्री कृष्णचंद से कहला भेजा कि, कृपा निधान! आज ब्याह का दिन है, दो घड़ी दिन रहे नगर के पूरब देवी का मंदिर है, तहां मैं पूजा करने जाऊंगी. मेरी लाज तुम्हें है, जिस में रहे सो करियेगा।

आगे पहर एक दिन चढ़े सखी सहेली औ कुटुंब की स्त्रियां आईं; विन्हों ने आते ही पहले

तो अंगन में गजमोतियों का चौक पुरवाय, कंचन की जड़ाऊ चौकी बिछवाय, तिस पर रुक्मिनी को बिठाय, सात सुहागनों से तेल चढ़वाया; पीछे सुगंध उबटन लगाय न्हिलाय धुलाय, उसे सोलह सिंगार करवाय, बारह आभूषन पहराय, ऊपर राता चोला उढ़ाय, बनी बनाय बिठाया. इतने में घड़ी चार एक दिन पिछला रह गया, उस काल रुक्मिनी बाल, अपनी सब सखी सहेलियों को साथ ले, बाजेगाजे से देवी की पूजा करने को चली, तो राजा भीष्मक ने अपने लोग रखवाली को उस के साथ कर दिये।

ये समाचार पाय कि राजकन्या नगर के बाहर देवी पूजने चली है, राजा सिसुपाल ने भी श्री कृष्णचंद के डर से अपने बड़े बड़े रावत, सावंत, सूर, बीर, जोधाओं को बुलाय, सब भांति ऊंच नीच समझाय बुझाय रुक्मिनी जी की चौकसी को भेज दिया. वे भी जाय अपने अपने अस्त्र शस्त्र संभाल राजकन्या के संग होलिये. उस बिरियां रुक्मिनी जी सब सिंगार किये, सखी सहेलियों के झुंड के झुंड लिये, अंतर पट की ओट में औ काले काले राक्षसों के कोट में जाते, ऐसी सोभायमान लगती थीं कि, जैसे श्याम घटा के बीच तारा मंडल समेत चंद. निदान कितनी एक बेर में चलीं चलीं देवी के मंदिर में पहुंचीं. वहां जाय हाथ पांव धोय, आचमन कर, शुद्ध होय, राजकन्या ने पहले तो चंदन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर, श्रद्धा समेत वेद की बिधि से देवी की पुजा की, पीछे ब्राह्मनियों को इच्छा भोजन करवाय, सुथरी तीयलें पहराय, रोली की खौड़ काढ़, अक्षत लगाय, उन्हें दछिना दी, औ उन से असीस ली।

आगे देवी की परिक्रमा दे, वह चंद मुखी, चंपक बरनी, मृग नयनी, पिक बयनी, गज गौनी, सखियों को साथ ले, हरि के मिलने की चिंता किये, ज्यों वहां से निचिंत हो चलने को हुई, त्यों श्री कृष्णचंद भी अकेले रथ पर बैठ वहां पहुंचे, जहां रुक्मिनी के साथी सब जोधा अस्त्र शस्त्र से जकड़े खड़े थे.

इतना कह श्री शुकदेव जी बोले कि।

पूजि गौर जब ही चली, एक कहति अकुलाय,
सुन सुंदरि आए हरि, देख ध्वजा फहराय.

यह बात सखी से सुन, औ प्रभु के रथ की बैरख देख, राजकन्या अति आनंद कर फूली अंग न समाती थी; औ सखी के हाथ पर हाथ दिये, मोहनी रूप किये, हरि के मिलने की आस लिये, कुछ कुछ मुसकुराती, ऐसे सब के बीच मंद गति जाती थी कि, जिस की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती. आगे श्री कृष्णचंद को देखते ही सब रखवाले भूले से खड़े हो रहे, औ अंतर पट उन के हाथ से छूट पड़ा; इस में मोहनी रूप से रुक्मिनी जी को जो उन्हों ने देखा, तो और भी मोहित हो ऐसे सिथिल हुए कि, जिन्हें अपने तन मन की भी सुध न थी!

भृकुटी धनुष चढ़ाय, अंजन बरुनी पनचकै,
लोचन बान चलाय, मारे पै जीवत रहे.

महाराज! उस काल सब राचस तो चित्र के से कढ़े खड़े देखते हो रहे, औ श्री कृष्णचंद सब के बीच रुक्मिनी के पास रथ बढ़ाय जाय खड़े ऊए. प्रान पति को देखते ही उस ने सकुच कर मिलने को जों हाथ बढ़ाया, तों प्रभु ने बांएं हाथ से उठाय उसे रथ पर बैठाया।

कांपत गात सकुच मन भारी, छांड सबन हरि संग सिधारी.
जौं बैरागी छांडै ग्रेह, कृष्ण चरन सों करै सनेह.

महाराज! रुक्मिनी जी ने तो जप, तप, ब्रत, पुन्य किये का फल पाया, औ पिछला दुख सब गंवाया; बैरी अस्त्र शस्त्र लिये खड़े मुख देखते रहे; प्रभु उन के बीच से रुक्मिनी को ले ऐसे चले कि।

जौं वऊ झुंडनि स्यार के, परै सिंह बिच आय,
अपनौ भचन लेइकै, चलै निडर घहराय.

आगे श्री कृष्णचंद के चलते ही बलराम जी भी पीछे से धौंसा दे, सब दल साथ ले जा मिले. इति।

CHAPTER LV.

SISUPÁL AND JURÁSINDHU PURSUE THE RAVISHER AND ARE DEFEATED. ON THIS RUKM, THE BROTHER OF RUKMINÍ, SETS OUT WITH A GREAT ARMY TO ATTACK KṚISHṈ, AND IS TAKEN PRISONER BY HIM. THE VICTOR, IN DERISION, SHAVES HIS BEARD AND THE HAIR OF HIS HEAD, LEAVING SEVEN LOCKS, WITH WHICH HE BINDS HIM TO HIS CHARIOT. AT THE INTERCESSION OF RUKMINÍ HER BROTHER IS RELEASED. RUKM RETIRES FROM KUNDALPUR AND FOUNDS THE CITY OF BHOJKATU. CELEBRATION OF THE MARRIAGE OF KṚISHṈ WITH RUKMINÍ, AT DWÁRIKÁ.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! कितनी एक दूर जाय श्री कृष्णचंद ने रुक्मिनी जी को सोच संकोचयुत देखकर कहा कि, सुंदरि! अब तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं शंख ध्वनि कर सब तुम्हारे मन का डर हरूंगा, औ द्वारिका में पऊंच वेद की बिधि से बरूंगा. यों कह प्रभु ने उसे अपनी माला पहिराय, बांईं ओर बैठाय, ज्यों शंख धुनि करी, त्यों सिसुपाल औ जुरासिंधु के साथी सब चौंक पड़े; यह बात सारे नगर में फैल गई, कि हरि रुक्मिनी को हर ले गये।

इस में रुक्मिनी हरन अपने विन लोगों के मुख से सुन, कि जो चौकसी को राजकन्या के संग गए थे, राजा सिसुपाल औ जुरासिंधु अति क्रोध कर, झिलम, टोप पहन, पेटी बांध, सब शस्त्र लगाय, अपना अपना कटक ले लड़ने को श्री कृष्ण के पीछे चढ़ दौड़े, औ उनके निकट जाय, आयुध संभाल संभाल ललकारे, अरे भागे क्यों जाते हो? खड़े रहो, शस्त्र पकड़ लड़ो! जो चत्री सूर वीर हैं, वे खेत में पीठ नहीं देते. महाराज! इतनी बात के सुनते ही यादव फिर

सनमुख ऊए, और लगे दोनों ओर से शस्त्र चलने. उस काल रुक्मिनी बाल अति भयमान घूंघट की ओट किये, आंसू भर भर लंबी सांसें लेती थी, औ प्रीतम का मुख निरख निरख मन ही मन बिचार कर यों कहती थी, कि ये मेरे लिये इतना दुख पाते हैं. अंतरजामी प्रभु रुक्मिनी के मन का भेद जान बोले कि, सुंदरि! तू क्यों डरती है, तेरे देखते ही देखते सब असुर दल को मार भूमि का भार उतारता हूं; तू अपने मन में किसी बात की चिंता मत करे.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! उस काल देवता अपने अपने बिमानों में बैठे आकाश से देखते क्या हैं कि।

यादव असुरन सों लरत, होत महा संग्राम,
ठाढ़े देखत कृष्ण हैं, करत युद्ध बलराम.

मारू बाजता है; कड़खैत कड़खा गाते हैं; चारन जस बखानते हैं; अश्वपति अश्वपति से, गज पति गज पति से, रथी रथी से, पैदल पैदल से, भिड़ रहे हैं; इधर उधर के सूर बीर पिल पिलके हाथ मारते हैं, औ कायर खेत छोड़ अपना जी ले भागते हैं; घायल खड़े झूमते हैं; कबंध हाथ में तरवार लिये चारों ओर घूमते हैं, औ लोथ पर लोथ गिरती हैं; तिन से लोहू की नदी बह चली है. तिस में जहां तहां हाथी जो मरे पड़े हैं, सो टापू से जनाते हैं, औ सूंडें मगर सी; महादेव भूत प्रेत पिशाच संग लिये सिर चुन चुन मुंडमाल बनाय बनाय पहनते हैं; औ गिद्ध, शाल, कूकर, आपस में लड़ लड़ लोथें खैंच खैंच लाते हैं, औ फाड़ फाड़ खाते हैं; कौए आंखें निकाल निकाल धड़ों से ले जाते हैं. निदान देवताओं के देखते ही देखते बलराम जी ने सब असुर दल यों काट डाला कि जों किसान खेती काट डाले. आगे जुरासिंधु औ सिसुपाल सब दल कटाय, कई एक घायल संग लिये, भागके एक ठौर जा खड़े रहे. तहां सिसुपाल ने बऊत अछताय पछताय सिर डुलाय जुरासिंधु से कहा कि, अब तो अपजस पाय, औ कुल को कलंक लगाय, संसार में जीना उचित नहीं, इस से आप आज्ञा दें तो मैं रन में जाय लड़ मरूं।

नातर हौं करि हौं बन बास, लैंउं जोग छांडों सब आस.
गई आन पत अब क्यों जीजै? राखि प्रान क्यों अपजस लीजै?

इतनी बात सुन जुरासिंधु बोला कि, महाराज! आप ज्ञानवान हैं, औ सब बात में जान; मैं तुम्हें क्या समझाऊं? जो ज्ञानी पुरुष हैं सो ऊई बात का सोच नहीं करते; क्योंकि भले बुरे का करता और ही है, मनुष का कुछ बस नहीं, यह परबस पराधीन है. जैसे काठ की पुतली को नटुआ जों नचाता है तों नाचती है, ऐसे ही मनुष करता के बस है, वह जो चाहता है सो करता है, इस से सुख दुख में हरष शोक न कीजे, सब सपना सा जान लीजे. मैं तेईस तेईस अक्षौहिनी ले मथुरापुरी पर सत्रह बेर चढ़ गया, और इसी कृष्ण ने सत्रह बेर मेरा सब दल हना; मैंने कुछ सोच न किया, और अठारवीं बेर जद इस का दल मारा तद कुछ हर्ष भी न

किया, यह भाग कर पहाड़ पर जा चढ़ा, मैंने इसे वहीं फूंक दिया, न जानिये यह क्योंकर जिया, इस की गति कुछ जानी नहीं जाती. इतना कह फिर जुरासिंधु बोला कि, महाराज! अब उचित यही है जो इस समय को टाल दीजे. कहा है कि, प्रान बचै तो पीछे सब हो रहता है, जैसे हमें ऊआ कि सत्रह बार हार अठारवीं बेर जीते, इस से जिस में अपनी कुशल होय सो कीजे, औ हठ छोड़ दीजे।

महाराज! जद जुरासिंधु ने ऐसे समझाय के कहा, तद विसे कुछ धीरज ऊआ, औ जितने घायल जोधा बचे थे तिन्हें साथ ले, अछता पछता जुरासिंधु के संग हो लिया. ये तो यहां से यों हारके चले; और जहां सिसुपाल का घर था तहां की बात सुनों, कि पुत्र का आगमन विचार सिसुपाल की मा ज्यों मंगलाचार करने लगी, त्यों सनमुख छींक ऊई; औ दाहनी आंख उस की फड़कने लगी. यह असुगन देख, विसका माथा ठनका कि, इस बीच किसी ने आय कहा जो तुम्हारे पुत्र की सब सेना कट गई, औ दुलहन भी न मिली, अब वहां से भाग अपना जीव लये आता है. इतनी बात के सुनते ही सिसुपाल की महतारी अति चिंता कर अबाक हो रही।

आगे सिसुपाल औ जुरासिंधु का भागना सुन, रुक्म अति क्रोध कर अपनी सभा में आन बैठा, और सब को सुनाय कहने लगा कि, कृष्ण मेरे हाथ से बच कहां जा सकता है! अभी जाय विसे मार रुक्मिनी को ले आऊं तो मेरा नाम रुक्म, नहीं तो फिर कुंडलपुर में न आऊं. महाराज! ऐसे पैज कर रुक्म एक अक्षौहिनी दल ले, श्री कृष्णचंद से लड़ने को चढ़ धाया, और उस ने यादवों का दल जा घेरा, उस काल विसने अपने लोगों से कहा कि, तुम तो यादवों को मारो, औ मैं आगे जाय कृष्ण को जीता पकड़ लाता ऊं. इतनी बात के सुनते ही उसके साथी तो यदुवंसियों से युद्ध करने लगे, औ वह रथ बढ़ाय श्री कृष्णचंद के निकट जाय ललकारकर बोला, अरे कपटी गंवार! तू क्या जाने राज ब्यौहार? बालकपन में जैसे तैं ने दूध दही की चोरी करी, तैसे तू ने यहां भी आय सुन्दरि हरी।

ब्रजबासी हम नहीं अहीर, ऐसे कह कर लीने तीर,
बिष के बुझे लिये उन बीन, खैंच धनुष सर छोड़े तीन.

उन बानों को आते देख श्री कृष्णचंद ने बीच ही काटा. फिर रुक्म ने और बान चलाए, प्रभु ने वे भी काट गिराए, औ अपना धनुष संभाल कई एक बान ऐसे मारे कि, रथ के घोड़ों समेत सारथी उड़ गया, और धनुष उसके हाथ से कट नीचे गिरा. पुनि जितने आयुध उस ने लिये, हरि ने सब काट काट गिरा दिये. तब तो वह अति झुंझलाय, फरी खांडा उठाय, रथ से कूद, श्री कृष्णचंद की ओर यों झपटा कि, जैसे बावला गीदड़ गज पर आवे, कै ज्यों पतंग दीपक पर धावे. निदान जाते ही उनने हरि के रथ पर एक गदा चलाई कि, प्रभु ने झट उसे पकड़ बांधा, औ चाहा कि मारें, इस में रुक्मिनी जी बोलीं।

मारौ मत! भैया है मेरौ,　छांडौ नाथ तिहारौ चेरौ.
मूरख अंध कहा यह जाने?　लच्छीकंत हि मानुष माने.
तुम योगेश्वर आदि अनंत,　भक्त हेत प्रगटत भगवंत.
यह जड़ कहा तुम्हें पहचाने?　दीनदयाल कृपाल बखाने?

इतना कह फिर कहने लगीं कि, साध, जड़ औ बालक का अपराध मन में नहीं लाते, जैसे कि, सिंह स्वान के भूंसने पर ध्यान नहीं करता; और जो तुम इसे मारोगे तो होगा मेरे पिता को सोग, यह करना तुम्हें नहीं है जोग. जिस ठौर तुम्हारे चरन पड़ते हैं, तहां के सब प्रानी आनंद में रहते हैं. यह बड़े अचरज की बात है कि, तुम सा सगा रहते राजा भीष्मक पुत्र का दुख पावे. महाराज! ऐसे कह एक बार तो रुक्मिनी जी यों बोलीं कि, महाराज! तुम ने भला हित संबंधी से किया, जो पकड़ बांधा औ खड़्ग हाथ में ले मारने को उपस्थित हुए. पुनि अति व्याकुल हो, थरथराय, आंखें डबडबाय, बिसूर बिसूर, पांओं पड़, गोद पसार, कहने लगीं।

बंधु भीख प्रभु मोकौं देउ,　इतनों जस तुम जग में लेउ.

इतनी बात के सुन्ने से, औ रुक्मिनी जी की ओर देखने से, श्री कृष्णचंद जी का सब कोप शांत हुआ. तब उन्हों ने उसे जीव से तो न मारा पर सारथी को सैन करी; उसने झट इसकी पगड़ी उतार टुंडियां चढ़ाय, मूंछ, दाढ़ी औ सिर मूंड़, सात चोटी रख, रथ के पीछे बांध लिया।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! रुक्म की तो श्री कृष्ण जी ने यहां यह अवस्था की: और बलदेव वहां से सब असुर दल को मार भगायकर, भाई के मिलने को ऐसे चले कि, जैसे स्वेत गज कंवल दह मं कंवलों को तोड़ खाय, बिथराय, अकुलायके भागता होय. निदान कितनी एक बेर में प्रभु के समीप जाय पहुंचे, औ रुक्म को बंधा देख श्री कृष्ण जी से अति झुंझलायके बोले कि, तुम ने यह क्या काम किया, जु साले को पकड़ बांधा? तुम्हारी कुटेव नहीं जाती।

बांध्यौ याहि करी बुद्धि थोरी,　यह तुम कृष्ण सगाई तोरी.
औ यदुकुल कौं लीक लगाई,　अब हम सों को करि है सगाई?

जिस समैं यह युद्ध करने को आप के सनमुख आया, तब तुमने इसे समझाय बुझायके उलटा क्यों न फेर दिया? महाराज! ऐसे कह, बलराम जी ने रुक्म को तो खोल, समझाय बुझाय, अति शिष्टाचार कर बिदा किया. फिर हाथ जोड़ अति बिनती कर बलराम सुख धाम रुक्मिनी जी से कहने लगे कि, हे सुंदरि! तुम्हारे भाई की जो यह दसा हुई, इस में कुछ हमारी चूक नहीं, यह उसके पूर्व जन्म के किये कर्म का फल है; और क्षत्रियों का धर्म भी है कि, भूमि धन त्रिया के काज, करते हैं युद्ध दल परस्पर साज. इस बात का तुम बिलग मत मानो, मेरा कहा सच ही जानो; हार जीत भी उसके साथ ही लगी है, और यह संसार दुख का समुद्र है.

यहां आय सुख कहां? पर मनुष माया के बस हो दुख सुख, भला बुरा, हार जीत, संयोग वियोग, मन ही मन से मान लेते हैं; पै इस में हरष शोक जीव को नहीं होता. तुम अपने भाई के विरूप होने की चिंता मत करो, क्योंकि ज्ञानी लोग जीव अमर देह का नास कहते हैं, इस लेखे देह की पत जाने से कुछ जीव की नहीं गई।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीछित से कहा कि, धर्मावतार! जब बलराम जी ने ऐसे रुक्मिनी को समझाया तब।

सुनि सुन्दरि मन समझकै किये जेठ की लाज.
सैन मांहिं पिय सों कहत, हांकऊ रथ ब्रजराज.
घुंघट ओट बदन की करै, मधुर बचन हरि सों उच्चरै.
सनमुख ठाढ़े हैं बलदाऊ, अहो कंत रथ बेग चलाऊ.

इतना वचन श्री रुक्मिनी जी के मुख से निकलते ही, इधर तो श्री कृष्णचंद जी ने रथ द्वारिका की ओर हांका, औ उधर रुक्म अपने लोगों में जाय अति चिंता कर कहने लगा कि, मैं कुंडलपुर से यह पैज करके आया था कि, अभी जाय कृष्ण बलराम को सब यदुबंसियों समेत मार, रुक्मिनी को ले आऊंगा; सो मेरा प्रन पूरा न ऊआ और उलटी अपनी पत खोई; अब जीता न रहूंगा; इस देस औ ग्रहस्थाश्रम को छोड़ बैरागी हो, कहीं जाय मरूंगा।

जब रुक्म ने ऐसे कहा, तब उसके लोगों में से कोई बोला, महाराज! तुम महा बीर हो, औ बड़े प्रतापी तुम्हारे हाथ से जो वे जीते बच गये, सा विनके भले दिन थे, अपनी प्रारब्ध के बल से निकल गये, नहीं तो आप के सनमुख हो कोई शत्रु कब जीता बच सकता है? तुम सज्ञान हो, ऐसी बात क्यों बिचारते हो? कभी हार होती है, कभी जीत; पर सूर बीरों का धर्म है जो साहस नहीं छोड़ते; भला, रिपु आज बच गया, फिर मार लेंगे. महाराज! जद यों विसने रुक्म को समझाया, तद वह यह कहने लगा कि सुनो।

हाय्यौ उन सों औ पत गई, मेरे मन अति लज्जा भई.
जन्म न हों कुंडलपुर जाऊं, बरन और ही गांव बसाऊं.
यों कह उन इक नगर बसायौ, सुत दारा धन तहां मंगायौ.
ताकौं धय्यौ भोजकटु नाम, ऐसें रुक्म बसायौ गांम.

महाराज! उधर रुक्म तो राजा भीष्मक से बैर कर वहां रहा; औ इधर श्री कृष्ण चंद औ बलदेव जी चले चले द्वारिका के निकट आय पऊंचे।

उड़ी रेन आकाश जु छाई, तब ही पुरवासिन सुध पाई.
आवत हरि जाने जबहिं, राख्यौ नगर बनाय.
शोभा भई तिऊं लोक की, कही कौन पै जाय?

उस काल घर घर मंगलाचार हो रहे; द्वार द्वार केले के खंभ गड़े; कंचन कलस सजल सपल्लव धरे; ध्वजा पताका फहराय रहीं; तोरन बंदनवारें बंधी ऊईं; और हर हाट, बाट, चौहटों में चौमुखे दिये लिये युवतियों के यूथ के यूथ खड़े, औ राजा उग्रसेन भी सब यदुबंसियों समेत बाजेगाजे से अगाऊ जाय, रीति भांति कर बलराम सुख धाम औ श्री कृष्णचंद आनंद कंद को नगर में ले आए. उस समैं के बनाव की छवि कुछ बरनी नहीं जाती; क्या स्त्री क्या पुरुष सब ही के मन में आनंद छाय रहा था; प्रभु के सोंहीं आय आय सब भेट दे दे भेटते थे; औ नारियां अपने अपने द्वारों, बारों, चौबारों, कोठों पर से मंगली गीत गाय गाय, आरता उतार उतार, फूल बरसावती थीं; औ श्री कृष्णचंद औ बलदेव जी जथा योग सब की मनुहार करते जाते थे; निदान इसी रीति से चले चले राजमंदिर में जा बिराजे. आगे कई एक दिवस पीछे एक दिन श्री कृष्ण जी राजसभा में गये, जहां राजा उग्रसेन, सूरसेन, बसुदेव आदि सब बड़े बड़े यदुबंसी बैठे थे; और प्रनाम कर इन्हों ने उनके आगे कहा कि, महाराज! युद्ध जीत जो कोई सुंदरि लाता है, वही राक्षस ब्याह कहाता है।

इतनी बात के सुनते ही सूरसेन जी ने परोहित बुलाय, विसे समझायके कहा कि, तुम श्री कृष्ण के विवाह का दिन ठहरा दो. उसने झट पत्रा खोल, भला महीना, दिन, बार, नक्षत्र. देख, शुभ सूरज चंद्रमा बिचार, ब्याह का दिन ठहराय दिया. तब राजा उग्रसेन ने अपने मंत्रियों को तो यह अज्ञा दी कि, तुम ब्याह की सब सामा इकठी करो; और आप बैठ पत्र लिख लिख पांडव कौरव आदि सब देस बिदेस के राजाओं को ब्राह्मनों के हाथ भिजवाए. महाराज! चीठी पाते ही सब राजा प्रसन्न हो हो उठ धाए, तिन्हों के साथ ब्राह्मन पंडित भाट भिखारी भी होलिये।

और ये समाचार पाय राजा भीष्मक ने भी बऊत वस्त्र, शस्त्र, जड़ाऊ आभूषन, औ रथ, हाथी, घोड़े, दास, दासियों के डोले, एक ब्राह्मन को दे, कन्यादान का संकल्प मन ही में ले. अति बिनती कर, द्वारिका को भेज दिया. उधर से तो देस देस के नरेस आए; औ इधर से राजा भीष्मक का पठाया सब सामा लिये वह ब्राह्मन भी आया. उस समैं की शोभा द्वारिका पुरी की कुछ बरनी नहीं जाती. आगे ब्याह का दिन आया तो सब रीति भांति कर बर कन्या को मंढ के नीचे लेजा बैठाया, और सब बड़े बड़े मुढ़ यदुबंसी भी आय बैठे; उस बिरियां।

पंडित तहां बेद उच्चरें, रुक्मिनि संग हरि भांवर फिरें.
ढोल दुंदभी भेर बजावें, हरषहि देव पऊप बरसावें.
सिद्ध साध चारन गंधर्व, अंतरीक्ष भये देखें सर्व.
चढ़े बिमान घिरे सिर नावें, देव बधू सब मंगल गावें.
हाथ गह्यौ प्रभु भांवर पारी, बाम अंग रुक्मिनी बैठारी.

छोरी गांठ पटा फेर दियौ, कुल देवी कौं तब पूजियौ.
छोरत कंकन हरि सुंदरी, खेलत दूधा भाती करी.
अति आनंद रच्यौ जगदीस, निरषि हरषि सब देंहिं असीस
हरि रुक्मिनि जोरी चिरजियौ, जिन कौ चरित सुधा रस पियौ.
दीनौ दान बिप्र जे आए, मागध बंदी जन पहिराए.
जे नृप देस देस के आए, दीनी बिदा सबै पञ्चंचाए.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जे जन हरि रुक्मिनी का चरित्र पढ़ै सुनेगा, औ पढ़ सुनके सुमिरन करेगा, सो भक्ति मुक्ति जस पावेगा; पुनि जो फल होता है अश्वमेदादि यज्ञ, गौ आदि दान, गंगादि स्नान, प्रयागादि तीर्थ के करने में, सोई फल मिलता है हरि कथा कहने सुन्ने में. इति।

CHAPTER LVI.

RUKMINÍ BEARS A SON CALLED PRADYUMN, AN INCARNATION OF KÁM DEV, THE GOD OF LOVE, WHO HAD BEEN REDUCED TO ASHES BY SHIVA. SAMBAR, A DÆMON, CARRIES OFF PRADYUMN, AND CASTS HIM INTO THE SEA, WHEN HE IS SWALLOWED BY A FISH, WHICH IS CAUGHT AND PRESENTED TO SAMBAR. ON OPENING THE FISH IN SAMBAR'S KITCHEN, PRADYUMN APPEARS, AND IS GIVEN BY THE COOK TO RATÍ, THE WIFE OF KÁM DEV, WHO HAD BEEN WAITING FOR THIS INCARNATION OF HER HUSBAND. PRADYUMN SLAYS SAMBAR, AND RETURNS WITH RATÍ TO DWÁRIKÁ.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक दिन श्री महादेव जी अपने स्थान के बीच ध्यान में बैठे थे कि, एकाएकी कामदेव ने आ सताया, तो हर का ध्यान छुटा, औ लगे अज्ञान हो पार्वती जी के साथ क्रीड़ा करने. इस में कितनी एक बेर पीछे शिव जी को केलि करते करते जब ज्ञान ऊआ, तब क्रोध कर कामदेव को जलाय भस्म किया।

काम बली जब शिव दह्यौ, तब रति धरत न धीर,
पति बिन अति तलफत खरी, बिह्वल बिकल शरीर.
काम नारि अति लोटति फिरै, कंत कंत कहि चित भुज भरै.
पिय बिन तिय महा दुखिया जान, तब यौं गौरा कियौ बखान.

कि, हे रति! तू चिंता मत करै, तेरा पति तुझे जिस भांति मिलेगा तिसका भेद सुन, मैं कहती हूं कि, पहले तो वह श्री कृष्णचंद के घर में जन्म लेगा, औ तिसका नाम प्रद्युम्न होगा. पीछे उसे संबर लेजाय समुद्र में बहावेगा; फिर वह मच्छ के पेट में हो संबर ही की रसोई में आवेगा. तू वहीं जायके रह, जब यह आवे तब उसे ले पालियो, पुनि वह संबर को मार तुझे साथ ले द्वारिका में सुख से जाय बसेगा, महाराज।

शिव रानी यों रति समझाई, तब तन धर संबर घर आई.
सुंदरि बीच रसोई रहै, निस दिन मारग पिय कौ चहै.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! उधर रति तो पिय के मिलन की आस कर यों रहने लगी: औ इधर रुक्मिनी जी को गर्भ रहा, औ दस महीने में पूरे दिनों लड़का भया. यह समाचार पाय जोतिषियों ने आय, लग्न साध, बसुदेव जी से कहा कि, महाराज! इस बालक के शुभ ग्रह देख हमारे बिचार में यों आता है कि, रूप गुन पराक्रम में यह श्री कृष्णचंद जी ही के समान होगा; पर बालकपन भर जल में रहेगा, पुनि रिपु को मार स्त्री समेत आन मिलेगा. यों कह प्रद्युम्न नाम धर जोतिषी तो दच्छिना ले बिदा हुए; औ बसुदेव जी के घर में रीति भांति औ मंगलाचार होने लगे. आगे श्री नारद मुनि जी ने जाय, उसी समैं समझाय संबर से कहा कि, तू किस नींद सोता है, तुझे चेत है कै नहीं? वह बोला, क्या? इन्हों ने कहा, तेरा बैरी काम का अवतार प्रद्युम्न नाम श्री कृष्णचंद के घर जन्म लेचुका।

राजा! नारद जी तो संबर को यों चिताय चले गये; औ संबर ने सोच बिचार कर मन हीं मन में यह उपाय ठहराया कि, पवन रूप हो वहां जाय उसे हर लाऊं, औ समुद्र में बहाऊं तो मेरे मन की चिंता मिटे, औ निर्भय हो रहूं. यह बिचार कर संबर वहां से उठ अलख रूप हो चला चला श्री कृष्णचंद के मंदिर में आया कि, जहां रुक्मिनी जी सोअर में, हाथ से दबाए, छाती से लगाए, बालक को दूध पिलाती थीं, औ चुपचाप घात लगाय खड़ा हो रहा. जों बालक पर से रुक्मिनी जी का हाथ अलग हुआ, तों असुर, अपनी माया फैलाय, उसे उठाय ऐसे ले आया कि, जितनी स्त्रियां वहां बैठी थीं, तिन में से किसी ने न देखा न जाना कि, कौन किस रूप से आय, क्योंकर उठाय लेगया. बालक को आगे न देख रुक्मिनी जी अति घबराईं, औ रोने लगीं. उनके रोने का शब्द सुन सब यदुबंसी क्या स्त्री क्या पुरुष घिर आए, औ अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह चिंता करने लगे।

इस बीच नारद जी न आय सब को समझाकर कहा कि, तुम बालक के जाने की कुछ भावना मत करो, उसे किसी बात का डर नहीं, वह कहीं जाय पर उसे काल न ब्यापैगा, और बालापन बितीत कर एक सुंदरी नारी साथ लिये तुम्हें आय मिलेगा. महाराज! ऐसे सब यदुबंसियों को भेद बताय, समझाय बुझाय, नारद मुनि जब बिदा हुए, तब वे भी सोच समझ संतोष कर रहे।

अब आगे कथा सुनिये कि, संबर जो प्रद्युम्न को लेगया था, उस ने उन्हें समुद्र में डाल दिया. वहां एक मछली ने इन्हें निगल लिया; उस मछली को एक और बड़ी मछली निगल गई. इस में एक मछुए ने जाय समुद्र में जों जाल फेंका, तों वह मीन जाल में आई. धीमर जाल खैंच, उस मच्छ को देख, अति प्रसन्न हो ले अपने घर आया. निदान वह मछली उस ने

जा राजा संबर को भेट दी. राजा ने ले अपने रसोई घर में भेज दी, रसोई करनेवाली ने जों उस मछली को चीरा तों उस में से एक और मछली निकली. तिस का पेट फाड़ा तो एक लड़का स्याम बरन अति सुन्दर उस में से निकला. उस ने देखते ही अति अचरज किया, औ वह लड़का ले जाय रति को दिया; उस ने महा प्रसन्न हो ले लिया. यह बात संबर ने सुनी तो रति को बुलायके कहा कि, इस लड़के को भली भांति से यत्न कर पाल. इतनी बात राजा की सुन, रति उस लड़के को ले निज मंदिर में आई. उस काल नारद जी ने जाय रति से कहा।

अब तू याहि पाल चित लाय, तो पति प्रदमन प्रगट्यौ आय.
संबर मार तोहि लै जै है, बालापन या ठौर बितै है.

इतना भेद बताय नारद मुनि तो चले गए, और रति अति हित से चित लगाय पालने लगी. जों जों वह बालक बढ़ता था, तों तों रति को पति के मिलने का चाव होता था; कभी वह उसका रूप देख प्रेम कर हिये से लगाती थी; कभी दृग मुख कपोल चूम आप ही बिहस उसके गले लगती थी, और यों कहती थी।

ऐसौ प्रभु संयोग बनायौ, मछरी मांहिं कंत मैं पायौ.

औ महाराज!

प्रेम सहित पय प्यायकै, हित सों ध्यावत ताहि,
हलरावत गुन गायकै, कहत कंत चित चाहि.

आगे जब प्रद्युम्न जी पांच बरस के हुए तब रति अनेक अनेक भांति के वस्त्र आभूषन पहनाय पहनाय, अपने मन का साद पूरा करने लगी, औ नैनों को सुख देने. उस काल वह बालक जों रति का आंचल पकड़कर मा मा कहने लगा, तों वह हंस कर बोली, हे कंत! तुम यह क्या कहते हो, मैं तुम्हारी नारि, तुम देखो अपने हिये बिचार; मुझे पार्वती जी ने यह कहा था कि, तू संबर के घर जाय रह, तेरा कंत श्री कृष्णचंद जी के घर में जन्म लेगा, सो मछली के पेट में हो तेरे पास आवेगा; औ नारद जी भी कह गये थे, कि तू उदास मत हो, तेरा स्वामी तुझे आय मिलता है; तभी से मैं तुम्हारे मिलने की आस किये, यहां वास कर रही हूं, तुम्हारे आने से मेरी आस पूरी भई।

ऐसे कह रति ने फिर पति को धनुष विद्या सब पढ़ाई; जब वे धनुष विद्या में निपुन हुए, तब एक दिन रति ने पति से कहा कि, स्वामी! अब यहां रहना उचित नहीं, क्योंकि तुम्हारी माता श्री रुक्मिनी जी ऐसे तुम बिन दुख पाय अकुलाती हैं, जैसे बच्छ बिन गाय; इससे अब उचित यही है कि असुर संबर को मार मुझे संग ले, द्वारिका में चलि, मात पिता का दरसन कीजे और तिन्हें सुख दीजे, जो आप के देखने की लालसा किये हुए हैं।

श्री शुकदेव जी यह प्रसंग सुनाय राजा से कहने लगे कि, महाराज! इसी रीति से रति

की बातें सुनते सुनते प्रद्युम्न जी जब सयाने हुए तो एक दिन खेलते खेलते राजा संबर के पास गये; वह इन्हें देखते ही अपने हीं लड़के समान जान लाड़ कर बोला कि, इस बालक को मैंने अपना लड़का कर पाला है. इतनी बात के सुनते ही प्रद्युम्न जी ने अति क्रोध कर कहा कि, मैं बालक हूं वैरी तेरा अब तू लड़कर देख बल मेरा. यों सुनाय खंम ठोक सन्मुख हुआ, तब हंसकर संबर कहने लगा कि, भाई! यह मेरे लिये दूसरा प्रद्युम्न कहां से आया, क्या दूध पिला मैंने सर्प बढ़ाया? जो ऐसी बातें करता है. इतना कह फिर बोला, अरे बेटा! तू क्यों कहता है ये बैन, क्या तुझे जम दूत आय हैं लेन।

महाराज! इतनी बात संबर के मुंह से सुनते ही वह बोला प्रद्युम्न मेरा ही है नाम, मुझ से आज तू कर संग्राम; तैंने तो था मुझे सागर में बहाया, पर अब मैं अपना बैर लेन फिर आया; तू ने अपने घर में अपना काल बढ़ाया आप, कौन किसका बेटा और कौन किसका बाप?।

सुन संबर आयुध गहे, बढ्यौ क्रोध मन भाव,
मनहुं सर्प की पूंछ पर, पर्ख्यौ अंधेरे पांव.

आगे संबर अपना सब दल मंगवाय, प्रद्युम्न को बाहर ले आय, क्रोध कर गदा उठाय. मेघ की भांति गरजकर बोला, देखूं अब तुझे काल से कौंन बचाता है. इतना कह जों उस ने दपटकै गदा चलाई, तों प्रद्युम्न जी ने सहज ही काट गिराई, फिर उस ने रिसायकर अग्नि बान चलाए, इन्हों ने जल बान छोड़ बुझाय गिराए; तब तो संबर ने महा क्रोध कर जितने आयुध उसके पास थे सब किये औ इन्हों ने काट काट गिराय दिये. जद कोई आयुध उसके पास न रहा, तद क्रोध कर धाय प्रद्युम्न जी जाय लिपटे, औ दोनों में मल्ल युद्ध होने लगा. कितनी एक बेर पीछे ये उसे आकाश को ले उड़े; वहां जाय खड़्ग से उसका सिर काट गिराय दिया. और फिर आय असुर दल का बध किया।

संबर को मारा रति ने सुख पाया, औ तिसी समय एक बिमान स्वर्ग से आया, उस पर रति पति दोनों चढ़ बैठे, और द्वारिका को चले, ऐसे कि, जैसे दामिनी समेत सुंदर मेघ जाता हो और चले चले वहां पहुंचे कि, जहां कंचन के मंदिर ऊंचे सुमेरु से जगमगाय रहे थे. बिमान से उतर अचानक दोनों रनवास में गये; इन्हें देख सब सुंदरि चौंक उठीं, और यों समझ कि, श्री कृष्ण एक सुंदरि नारी संग ले आए हैं, सकुच रहीं; पर यह भेद किसू ने न जाना कि, प्रद्युम्न है, सब कृष्ण ही कृष्ण कहती थीं. इस में जब प्रद्युम्न जी ने कहा कि, हमारे माता पिता कहां हैं, तब रुक्मिनी जी अपनी सखियों से कहने लगीं, हे सखी! यह हरि की उन्हार कौन है? वे बोलीं, हमारी समझ में तो ऐसा आता है कि, हो नहो यह श्री कृष्ण ही का पुत्र है. इतनी बात के सुनते ही रुक्मिनी जी की छाती से दूध की धार बह निकली, औ बांई बांह फड़कने लगी, और

मिलने को मन घबराया, पर बिन पति की आज्ञा मिल न सकीं. उस काल वहां नारद जी ने आय पूर्व कथा कह सब के मन का संदेह मिटा दिया, तब तो रुक्मिनी जी ने दौड़कर पुत्र का सिर चूम उसे छाती से लगाया, और रीति भांति से व्याह कर बेटे बहू को घर में लिया. उस समय क्या स्त्री क्या पुरुष सब यदुवंसियों ने आय, मंगलाचार कर, अति आनंद किया; घर घर वधाई बाजने लगीं; औ सारी द्वारिका पुरी में सुख छाय गया।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! ऐसे प्रद्युम्न जी जन्म ले, बालकपन अनत बिताय, रिपु को मार, रति को ले द्वारिका पुरी में आए, तब घर घर आनंद मंगल हुए वधाए. इति।

CHAPTER LVII.

SATRÁJÍT, OF THE FAMILY OF YADU, OBTAINS FROM THE SUN, BY PENANCE, A WONDROUS JEWEL, NAMED SUMANTAKÁ. THIS IS LOST BY HIS BROTHER PRASEN, WHO, WHILE HUNTING, IS SLAIN BY A LION, FROM WHOM IT IS TAKEN BY A BEAR, NAMED JÁMWANT, RESIDING IN THE INFERNAL REGIONS. KṚISHṆ IS ACCUSED OF THE MURDER OF PRASEN, AND THEFT OF THE JEWEL, WHEREUPON HE RECOVERS THE GEM FROM JÁMWANT, AND RESTORES IT TO SATRÁJÍT, WHO GIVES HIM HIS DAUGHTER SATBHÁMA IN MARRIAGE.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! सत्राजीत ने पहले तो श्री कृष्णचंद को मनि की चोरी लगाई, पीछे झूठ समझ लज्जित हो उस से अपनी कन्या सतभामा हरि को व्याह दी.

यह सुन राजा परीचित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि, कृपा निधान! सत्राजीत कौन था, मनि उस ने कहां पाई, और कैसे हरि को चोरी लगाई, फिर क्योंकर झूठ समझ कन्या व्याह दी? यह तुम मुझे बुझाके कहो।

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! सुनिये मैं सब समझाकर कहता हूं. सत्राजीत एक यादव था, तिसने बहुत दिन तक सूरज की अति कठिन तपस्या की. तब सूरज देवता ने प्रसन्न हो उसे निकट बुलाय मनि देकर कहा कि, सुमंतका है इस मनि का नाम, इस में है सुख संपत का विश्राम; सदा इसे मानियो, और बल तेज में मेरे समान जानियो; जो तू इसे, जप तप संजम व्रत कर ध्यावेगा, तो इससे मुंह मांगा फल पावेगा; जिस देस, नगर, घर में यह जावेगा, तहां दुख दरिद्र काल कभी न आवेगा; सर्वदा सुकाल रहेगा, औ ऋद्धि सिद्धि भी रहैगी।

महाराज! ऐसे कह सूर्य्य देवता ने सत्राजीत को बिदा किया; वह मनि ले अपने घर आया. आगे प्रात ही उठ वह प्रातस्नान कर, संध्या तर्पन से निचिंत हो, नित चंदन अच्छत पुष्प धूप दीप नैवेद्य सहित मनि की पूजा किया करै, और विस मनि से जो आठ भार सोना निकले सो ले औ प्रसन्न रहै. एक दिन पूजा करते करते सत्राजीत ने मनि की शोभा औ क्रांति देख निज मन में बिचारा कि, यह मनि श्री कृष्णचंद को लेजाकर दिखाइये तो भला।

यों बिचार, मनि कंठ में बांध, सत्राजीत यदुबंसियों की सभा को चला. मनि का प्रकाश दूर से देख सब यदुबंसी खड़े हो श्री कृष्ण जी से कहने लगे कि, महाराज! तुम्हारे दरसन की अभिलाषा किये सूरज चला आता है, तुम को ब्रह्मा, रुद्र, इंद्रादि सब देवता ध्यावते हैं, औ आठ पहर ध्यान धर तुम्हारा जस गावते हैं; तुम हो आदि पुरुष अबिनासी, तुम्हें नित सेवती है कमला भई दासी; तुम हो सब देवों के देव; कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव; तुम्हारे गुन औ चरित्र हैं अपार, क्यों प्रभु छिपोगे आय संसार? महाराज! जब सत्राजीत को आता देख सब यदुबंसी यों कहने लगे, तब हरि बोले कि, यह सूरज नहीं, सत्राजीत यादव है, इसने सूर्य्य की तपस्या कर एक मनि पाई है, उसका प्रकाश सूरज की समान है, वही मनि बांधे वह चला आता है।

महाराज! इतनी बात जबतक श्री कृष्ण जी कहैं, तबतक वह आय सभा में बैठा, जहां यादव सार पासे खेल रहे थे. मनि की क्रांति देख सब का मन मोहित हुआ, औ श्री कृष्ण चंद भी देख रहे. तद सत्राजीत कुछ मन हीं मन समझ उस समय बिदा हो अपने घर गया, आगे वह मनि गले में बांध बांध नित आवे. एक दिन सब यदुबंसियों ने हरि से कहा कि, महाराज! सत्राजीत से मनि ले राजा उग्रसेन को दीजे, औ जग में जस लीजे, यह मनि इसे नहीं फबती, राजा के जोग है।

इस बात के सुनते ही श्री कृष्ण जी ने हंसते हंसते सत्राजीत से कहा कि, यह मनि राजा जी को दो, और संसार में जस बड़ाई लो. देने का नाम सुनते ही वह प्रनाम कर चुपचाप वहां से उठ सोच बिचार करता अपने भाई के पास जा बोला कि, आज श्री कृष्ण जी ने मुज से मनि मांगी, और मैंने न दी. इतनी बात जों सत्राजीत के मुंह से निकली, तों क्रोध कर उस के भाई प्रसेन ने वह मनि ले अपने गले में डाली, औ शस्त्र लगाय, घोड़े पर चढ़, अहेर को निकला; महा बन में जाय, धनुष चढ़ाय, लगा साबर, चीतल, पाढ़े, रोझ औ मृग मारने. इस में एक हिरन जों उसके आगे से झपटा, तों, इस ने भी खिजलायके तिस के पीछे घोड़ा दपटा, औ चला चला अकेला कहां पहुंचा कि, जहां जुगनजुग की एक बड़ी औंडी गुफा थी।

मृग औ घोड़े के पांव की आहट पाय, उस में से एक सिंह निकला; वह इन तीनों को मार मनि ले फिर उस गुफा में बड़ गया. मनि के जाते ही उस महा अंधेरी गुफा में ऐसा प्रकाश हुआ कि पाताल तक चांदना गया. वहां जामवंत नाम रीछ, जो श्री रामचंद को साथ रामावतार में था; सो त्रेता युग से तहां कुटुंब समेत रहा था, वह गुफा में उजाला देख उठ धाया, औ चला चला सिंह के पास आया. फिर वह सिंह को मार मनि ले अपनी स्त्री के निकट गया; तिस ने मनि ले अपनी पुत्री के पालने में बांधी; वह तिसे देख नित हंस हंस खेला करै, औ सारे स्थान में आठ पहर प्रकाश रहै.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! मनि यों गई, औ प्रसेन की यह गति भई, तब प्रसेन के साथ जो लोग गये थे, तिन्हों ने आ सत्राजीत से कहा कि, महाराज!।

हम कौं त्याग अकेलौ धायौ, जहां गयौ तहां खोज न पायौ.
कहत न बने ढूंढ फिर आए, कहूं प्रसेन न वन मं पाए.

इतनी बात के सुनते ही सत्राजीत खाना पीना छोड़, अति उदास हो, चिंता कर, मन हीं मन कहने लगा कि, यह काम श्री कृष्ण का है जो मेरे भाई को मनि के लिये मार, मनि ले घर में आय बैठा है. पहले मुझ से मांगता था, मैंने न दी, अब उसने यों ली. ऐसे वह मन हीं मन कहै, और रात दिन महा चिंता में रहै. एक दिन वह रात्रि समैं स्त्री के पास सेज पर तन छीन मन मलीन मष्ट मारे बैठा मन हीं मन कुछ सोच बिचार करता था, कि उस की नारी ने कहा।

कहा कंत मन सोचत रहौ, मो सौं भेद आपनौं कहौ?

सत्राजीत बोला कि, स्त्री से कठिन बात का भेद कहना उचित नहीं, क्योंकि इसके पेट में बात नहीं रहती; जो घर में सुनती है सो बाहर प्रकाश कर देती है; यह अज्ञान, इसे किसी बात का ज्ञान नहीं, भला हो कैं बुरा. इतनी बात के सुनते ही सत्राजीत की स्त्री खिजलाकर बोली कि, मैंने कब कोई बात घर में सुन बाहर कही है, जो तुम कहते हो? क्या सब नारी समान होती हैं? यों सुनाय फिर उसने कहा कि, जब तक तुम अपने मन की बात मेरे आगे न कहोगे, तब तक मैं अन्न पानी भी न खाऊंगी. यह बचन नारी से सुन सत्राजीत बोला कि, झूठ सच्च की तो भगवान जाने, पर मेरे मन में एक बात आई है, सो मैं तेरे आगे कहता हूं; परंतु तू किसू के सोंहीं मत कहियो. उस की स्त्री बोली, अच्छा, मैं न कहूंगी।

सत्राजीत कहने लगा कि, एक दिन श्री कृष्ण जी ने मुज से मनि मांगी, और मैंने न दी; इससे मेरे जी में आता है कि, उसी ने मेरे भाई को बन में जाय मारा, औ मनि ली; यह उसी का काम है, दूसरे की सामर्थ नहीं जो ऐसा काम करे।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! बात के सुनते ही उसे रात भर नींद न आई, और उसने सात पांच कर रैन गंवाई. भोर होते ही उनने जा सखी सहेली और दासी से कहा कि, श्री कृष्ण जी ने प्रसेन को मारा, औ मनि ली, यह बात रात मैंने अपने कंत के मुख सुनी है, पर तुम किसी के आगे मत कहियो. वे व्हां से तो भला कह चुपचाप चली आईं; पर अचरज कर एकांत बैठ आपस में चरचा करने लगीं. निदान एक दासी ने यह बात श्री कृष्णचंद के रनवास में जा सुनाई; सुनते ही सब के जी में आया कि जो सत्राजीत की स्त्री ने यह बात कही है तो झूठ न होगी. ऐसे समझ, उदास हो सब रनवास श्री कृष्ण को बुरा कहने लगा. इस बीच किसी ने आय श्री कृष्ण जी से कहा कि, महाराज! तुम्हें तो प्रसेन के मारने औ मनि के लेने का कलंक लग चुका, तुम क्या बैठ रहे हो? कुछ इसका उपाय करो।

इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्ण जी पहले तो घबराए; पीछे कुछ सोच समझ वहां आए, जहां उग्रसेन बसुदेव औ बलराम सभा में बैठे थे, और बोले कि, महाराज! हमें सब लोग यह कलंक लगाते हैं कि कृष्ण ने प्रसेन को मार मनि ले ली, इससे आप की आज्ञा ले प्रसेन और मनि के ढूंढने को जाते हैं, जिससे यह अपजस छूटे. यों कह श्री कृष्ण जी वहां से आय, कितने एक यदुबंसियों औ प्रसेन के साथियों को साथ ले, बन को चले. कितनी एक दूर जाय देखें तो घोड़ों के चरन चिन्ह दृष्ट पड़े; तिन्हीं को देखते देखते वहां जाय पहुंचे, जहां सिंह ने तुरंग समेत प्रसेन को मार खाया था; दोनों की लोथ और सिंह के पाओं का चिन्ह देख सब ने जाना कि उसे सिंह ने मार खाया।

यह समझ, मनि न पाय, श्री कृष्णचंद सब को साथ लिये लिये वहां गये, जहां वह औंडी अंधेरी महा भयावनी गुफा थी; उसके द्वार पर देखते क्या हैं, कि सिंह मरा पड़ा है, पर मनि वहां भी नहीं. ऐसे अचरज देख सब श्री कृष्ण जी से कहने लगे कि, महाराज! इस बन में ऐसा बली जंतु कहां से आया जो सिंह को मार मनि ले गुफा में पैठा, अब इसका कुछ उपाय नहीं, जहां तक ढूंढने का धर्म था तहां तक आप ने ढूंढा, तुम्हारा कलंक छूटा अब नाहर के सिर अपजस पड़ा।

श्री कृष्ण जी बोले, चलो! इस गुफा में धसके देखें कि नाहर को मार मनि कौन ले गया. वे सब बोले कि, महाराज! जिस गुफा का मुख देखे हमें डर लगता है, तिस में धसेंगे कैसे? वरन हम तुम से भी बिनती कर कहते हैं कि, इस महा भयावनी गुफा में आप भी न जाइये, अब घर को पधारिये; हम सब मिल नगर में कहेंगे, कि प्रसेन को मार सिंह ने मनि ली, औ सिंह को मार मनि ले कोई जंतु एक अति डरावनी औंडी गुफा में गया; यह हम सब अपनी आंखों देख आए. श्री कृष्णचंद बोले, मेरा मन मनि में लगा है, मैं अकेला गुफा में जाता हूं, दस दिन पीछे आऊंगा, तुम दस दिन तक यहां रहियो, इस में हमें बिलंब होय तो घर जाय संदेसा कहियो. महाराज! इतनी बात कह हरि उस अंधेरी भयावनी गुफा में पैठे, और चले चले वहां पहुंचे, जहां जामवंत सोता था, और उस की स्त्री अपनी लड़की को खड़ी पालने में झुलाती थी।

वह प्रभु को देख, भय खाय पुकारी, औ जामवंत जागा, तो धाय हरि से आय लिपटा, औ मल्ल युद्ध करने लगा. जब उसका कोई दाव औ बल हरि पर न चला, तब मन ही मन बिचारकर कहने लगा कि, मेरे बल के तो हैं लछमन राम, और इस संसार में ऐसा बली कौन है जो मुज से करे संग्राम? महाराज! जामवंत मन ही मन ज्ञान से यों बिचार प्रभु का ध्यान कर।

ठाढ़ौ उसरि जोरकै हाथ, बोल्यौ दरस देउ रघुनाथ,
अंतरजामी मैं तुम जाने, लीला देखत ही पहिचाने.
भली करी लीनौं औतार, करि हौ दूर भूमि कौ भार.

त्रेता युग तें इहिं ठां रह्यौ, नारद भेद तुम्हारो कह्यौ.
मनि के काजे प्रभु इत ऐहैं, तबही तो कौं दरसन दैहैं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी राजा परीचित से कहा कि, हे राजा! जिस समय जामवंत ने प्रभु को जान यों बखान किया, तिसी काल श्री मुरारी भक्त हित कारी ने जामवंत की लगन देख, मगन हो, राम का भेष कर, धनुष बान धर, दरसन दिया. आगे जामवंत ने अष्टांग प्रनाम कर, खड़े हो, हाथ जोड़, अति दीनता से कहा कि, हे कृपा सिंधु दीन बंधु! जो आप की आज्ञा पाऊं तो अपना मनोरथ कह सुनाऊं. प्रभु बोले अच्छा कह. तब जामवंत ने कहा कि, हे पतित पावन दीन नाथ! मेरे चित में यों है कि, यह कन्या जामवती आप को ब्याह दूं, औ जगत में जस बड़ाई लूं. भगवान ने कहा, जो तेरी इच्छा में ऐसे आया तो हमें भी प्रमान है. इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही, जामवंत ने पहले तो श्री कृष्णचंद की चंदन अचत पुष्प धूप दीप नैवेद्य ले पूजा की; पीछे वेद की बिध से अपनी बेटी ब्याह दी, और उसके यौतुक में वह मनि भी धर दी।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि, हे राजा! श्री कृष्णचंद आनंद कंद तो मनि समेत जामवती को ले यों गुफा से चले; और जो यादव गुफा के मुंह पर प्रसेन औ श्री कृष्ण के साथी खड़े थे, अब तिन की कथा सुनिये. गुफा के बाहर उन्हें जब अट्ठाईस दिन बीते, औ हरि न आए, तब वे वहां से निरास हो, अनेक अनेक प्रकार की चिंता करते और रोते पीटते द्वारिका में आए. ये समाचार पाय सब यदुबंसी निपट घबराए, औ श्री कृष्ण का नाम ले ले महा शोक कर कर रोने पीटने लगे, और सारे रनवास मं कुहराम पड़ गया. निदान सब रानियां अति ब्याकुल हो, तन छीन मन मलीन राजमंदिर से निकल, रोती पीटती वहां आईं जहां नगर के बाहर एक कोस पर देवी का मंदिर था।

पूजा कर, गौर को मनाय, हाथ जोड़, सिर नाय, कहने लगीं, हे देवी! तुझे सुर नर मुनि सब ध्यावते हैं औ तुज से जो बर मांगते हैं, सो पावते हैं; तू भूत भविष्य वर्त्तमान की सब बात जानती है; कह श्री कृष्णचंद आनंद कंद कब आवेंगे? महाराज! सब रानियां तो देवी के द्वार धरना दे यों मनाय रहीं थीं; औ उग्रसेन बसुदेव बलदेव आदि सब यादव महा चिंता में बैठे थे कि, इस बीच श्री कृष्ण अबिनासी द्वारिकावासी हंसते हंसते जामवती को लिये आय राजसभा में खड़े हुए. प्रभु का चंदमुख देख सब को आनंद हुआ; औ यह शुभ समाचार पाय सब रानियां भी देवी पूज घर आईं, और मंगलाचार करने लगीं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! श्री कृष्ण जी ने सभा में बैठते ही सत्राजीत को बुला भेजा, औ वह मनि देकर कहा कि, यह मनि हमने न ली थी, तुम ने झूठमूठ हमें कलंक दिया था।

यह मनि जामवंत ही लीनी, सुता समेत मोहि तिन दीनी.
मनि लै तबहि चल्यौ सिर नाय, सत्राजीत मन सोचतु जाय.
हरि अपराध कियौ मैं भारी, अनजाने दीनी कुल गारी.
जादौंपति कौं कलंक लगायौ, मनि के काजे बैर बढ़ायौ.
अब यह दोष कटै सो कीजे, सतिभामा मनि कृष्ण हि दीजे.

महाराज! ऐसे मन हीं मन सोच बिचार करता मनि लिये, मन मारे, सत्राजीत अपने घर गया, और उसने सब अपने जी का बिचार स्त्री से कह सुनाया. विस की स्त्री बोली, स्वामी! यह बात तुमने अच्छी बिचारी, सतिभामा श्री कृष्ण को दीजे, औ जगत में जस लीजे. इतनी बात के सुनते ही सत्राजीत ने एक ब्राह्मन को बुलाय, शुभ लग्न मुहूर्त्त ठहराय, रोली अक्षत रुपया नारियल एक थाली में धर, पुरोहित के हाथ श्री कृष्णचंद के यहां टीका भेज दिया. श्री कृष्ण जी बड़ी धूमधाम से मौड़ बांध व्याहन आए; तब सत्राजीत ने सब रीति भांति कर वेद की बिधि से कन्या दान किया, और बहुत सा धन दे यौतुक में विस मनि को भी धर दिया।

मनि को देखते ही श्री कृष्ण जी ने उस में से निकाल बाहर किया, और कहा कि, यह मनि हमारे किसी काम की नहीं; क्योंकि तुम ने सूर्य्य की तपस्या कर पाई, हमारे कुल में श्री भगवान छुड़ाय और देवता की दी वस्तु नहीं लेते, यह तुम अपने घर में रक्खो. महाराज! श्री कृष्णचंद जी के मुख से इतनी बात निकलते ही, सत्राजीत मनि ले लजाय रहा, औ श्री कृष्ण जी सतिभामा को ले बाजेगाजे से निज धाम पधारे, औ आनंद से सतिभामा समेत राजमंदिर में जा बिराजे।

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि, कृपा निधान! श्री कृष्ण जी को कलंक क्यों लगा, सो कृपाकर कहो. शुकदेव जी बोले, राजा!।

चांद चौथ कौ देखियौ, मोहन भादौं मास,
तातें लग्यौ कलंक यह, अति मन भयौ उदास.

और सुनौं

जो भादौं की चौथ कौ, चांद निहारै कोय,
यह प्रसंग श्रवननि सुने, ताहि कलंक न होय. इति।

CHAPTER LVIII.

DURYODHAN SETS FIRE TO THE HOUSE IN WHICH THE PÁNDUS ARE SLEEPING, ON HEARING WHICH KṚISHṆ AND BALARÁM GO TO HASTINÁPUR. AKRÚR AND KRITBRAMÁ PERSUADE SATDHANWÁ, TO WHOM SATIBHÁMA WAS FIRST BETROTHED, TO REVENGE HIMSELF ON SATRÁJÍT, AND STEAL THE JEWEL SUMANTAKÁ. SATDHANWÁ SLAYS SATRÁJÍT, GIVES THE JEWEL TO AKRÚR, AND TAKES TO FLIGHT, BUT IS SLAIN BY KṚISHṆ. BALARÁM TRAVELS IN SEARCH OF THE JEWEL, WHICH AKRÚR CARRIES OFF WITH HIM TO PRYÁG. A PESTILENCE RAGES IN DWÁRIKÁ, ON ACCOUNT OF THE ABSENCE OF THE VIRTUOUS AKRÚR, WHO AT LAST RETURNS AND GIVES THE JEWEL TO KṚISHṆ, WHO PRESENTS IT TO SATIBHÁMA.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! मनि के लिये जैसे सतधन्वा सत्राजीत को मार मनि ले अक्रूर को दे द्वारिका छोड़ भागा, तैसे मैं कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. एक समैं हस्तिनापुर से आय किसी ने बलराम सुखधाम औ श्री कृष्णचंद आनंदकंद से यह संदेसा कहा कि।

पंडौं न्यौते अंधसुत, घर के बीच सुवाय,
अर्द्ध रात्र चहुं ओर तें, दीनी आग लगाय.

इतनी बात के सुनते ही दोनों भाई अति दुख पाय, घबराय, तत्काल दारक सारथी से अपना रथ मंगाय, तिस पर चढ़, हस्तिनापुर को गए, औ रथ से उतर कौरों की सभा में जा खड़े रहे. वहां देखते क्या हैं कि, सब तन छीन, मन मलीन, बैठे हैं; दुर्योधन मन ही मन कुछ सोचता है; भीष्म नैनों से जल मोचता है; धृतराष्ट्र बड़ा दुख करता है; द्रोनाचार्य की भी आंखों से पानी चलता है; विदूरथ जी ही जी पछताय, गंधारी बैठी उसके पास आय; और भी जो कौरों की स्त्रियां थीं, सो भी पांडवों की सुध कर कर रो रही थीं, औ सारी सभा शोकमय हो रही थी. महाराज! वहां की यह दशा देख श्री कृष्ण बलराम जी भी उनके पास जा बैठे, औ उन्हों ने पांडवों का समाचार पूछा, पर किसी ने कुछ भेद न कहा, सब चुप हो रहे।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! श्री कृष्ण बलराम जी तो पांडवों के जलने के समाचार पाय हस्तिनापुर हो गये; औ द्वारिका में सतधन्वा नाम एक यादव था कि, जिसे पहले सतिभामा मांगी थी, तिसके यहां अक्रूर और कृतब्रमा मिलकर गये, और दोनों ने उससे कहा कि, हस्तिनापुर को गये श्री कृष्ण बलराम, अब आय पड़ा है तेरा दांव. सत्राजीत से तू अपना बैर ले; क्योंकि तिसने तेरी बड़ी चूक की, जो तेरी मांग श्री कृष्ण को दी, औ तुझे गाली चढ़ाई; अब यहां उसका कोई नहीं है सहाई. इतनी बात के सुनते ही सतधन्वा अति क्रोध कर उठा, और रात्र समैं सत्राजीत के घर जा ललकारा; निदान छल बल कर उसे मार वह मनि ले आया; तब सतधन्वा अकेला घर में बैठ कुछ सोच विचार मन हीं मन पछताय कहने लगा।

मैं यह बैर कृष्ण सों कियौ, अक्रूर कौ मतौ सुन लियौ.

कृतबर्मा अक्रूर मिल, मतौ दियौ मोहि आय.
साध कहै जो कपट की, तासों कहा बसाय?

महाराज! इधर सतधन्वा तो इस भांति पछताय पछताय, बार बार कहता था कि, होंनहार से कुछ न बसाय, कर्म की गति किसी से जानी नहीं आय. और उधर सत्राजीत को मरा निहार, उस की नारि रो रो कंत कंत कर उठी पुकार, उसके रोने की धुन सुन सब कुटुंब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक अनेक भांति की बातें कह कह रोने पीटने लगे, औ सारे घर में कुहराम पड़ गया, पिता का मरना सुन उसी समैं आय, सतिभामा जी सब जो समझाय बुझाय, बाप की लोथ तेल में डलवाय, अपना रथ मंगवाय, तिस पर चढ़, श्री कृष्णचंद आनंद कंद के पास चलीं, और रात दिन के बीच जा पऊंचीं ।

देखत ही उठ बोले हरि,   घर है कुशल चेम सुंदरि?
सतिभामा कहि जोरे हाथ,   तुम बिन कुशल कहा यदुनाथ!
हम हिं बिपत सतधन्वा दई, मेरौ पिता हत्यौ मनि लई.
धरे तेल में ससुर तिहारे,   करौ दूर सब सूल हमारे.

इतनी बात कह, सतिभामा जी श्री कृष्ण बलदेव जी के सोंहीं खड़ी हो, हाय पिता! हाय पिता! कर धायमार रोने लगीं. विनका रोना सुन श्री कृष्ण बलराम जी ने भी पहले तो अति उदास हो रोकर लोक रीति दिखाई, पीछे सतिभामा को आसा भरोसा दे, ढाढ़स बंधाय. वहां से साथ ले द्वारिका में आए. श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! द्वारिका में आते ही श्री कृष्णचंद ने सतिभामा को महा दुखी देख प्रतिज्ञा कर कहा कि, सुंदरि! तुम अपने मन में धीर धरो, और किसी बात की चिंता मत करो, जो होना था सो तो ऊआ, पर अब मैं सतधन्वा को मार तुम्हारे पिता का बैर लूंगा, तब मैं और काम करूंगा ।

महाराज! राम कृष्ण के आते ही सतधन्वा अति भय खाय, घर छोड़, मन हीं मन यह कहता कि, पराए कहे मैंने श्री कृष्ण जी से बैर किया, अब सरन किस की लूं? कृतबर्मा के पास आया, और हाथ जोड़ अति बिनती कर बोला कि, महाराज! आप के कहे से मैंने किया यह काम, अब मुझ पर कोपे हैं श्री कृष्ण औ बलराम; इससे मैं भागकर तुम्हारी सरन आया हूं, मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये. सतधन्वा से यह बात सुन कृतबर्मा बोला कि, सुनो हम से कुछ नहीं हो सकता; जिसका बैर श्री कृष्णचंद से भया, सो नर सब ही से गया; तू क्या नहीं जानता था कि है अति बली मुरारि, तिनसे बैर किये होगी हार? किसी के कहे से क्या ऊआ? अपना बल बिचार काम क्यों न किया? संसार की रीति है कि बैर ब्याह औ प्रीति समान ही से कीजे; तू हमारा भरोसा मत रख, हम श्री कृष्णचंद आनंद कंद के सेवक हैं, विनसे बैर करना हमें नहीं सोभता, जहां तेरे सींग समाय तहां जा।

महाराज! इतनी बात सुन सतधन्वा निपट उदास हो, वहां से चल, अक्रूर के पास आया. हाथ बांध, सिर नाय, बिनती कर, हाहा खाय, कहने लगा कि, प्रभु! तुम हो यादव पति ईस, तुम्हें मानके सब निवावते हैं सीस; साध दयाल धरन तुम धीर, दुख सह आप हरते हो पर पीर; बचन कहे की लाज है तुम्हें; अपनी सरन रक्खो तुम हमें; मैंने तुम्हारा ही कहा मान यह काम किया, अब तुम ही श्री कृष्ण के हाथ से बचाओ।

इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी ने सतधन्वा से कहा कि, तू बड़ा मूरख है, जो हम से ऐसी बात कहता है. क्या तू नहीं जानता कि, श्री कृष्णचंद सब के करता दुख हरता हैं, उनसे बैर कर संसार में कब कोई रह सकता है? कहनेवाले का क्या बिगड़ा, अब तो तेरे सिर आन पड़ी. कहा है, सुर नर मुनि की यही है रीति, अपने स्वारथ के लिये करते हैं प्रीति; और जगत में बहुत भांति के लोग हैं, सो अनेक अनेक प्रकार की बातें अपने स्वारथ की कहते हैं, इससे मनुष को उचित है किसी के कहे पर न जाय, जो काम करे तिस में पहले अपना भला बुरा बिचार ले, पीछे उस काज में पांव दे. तू ने समझ बूझ कर किया है काम, अब तुझे कहीं जगत में रहने को नहीं है धाम; जिसने श्री कृष्ण से बैर किया, वह फिर न जिया; जहां भागके रहा, तहां मारा गया; मुझे मरना नहीं जो तेरा पच करूं, संसार में जी सब को प्यारा है।

महाराज! अक्रूर जी ने जब सतधन्वा को यों रूखे सूखे बचन सुनाये तब तो वह निरास हो, जीने की आस छोड़, मनि अक्रूर जी के पास रख, रथ पर चढ़, नगर छोड़ भागा; और उसके पीछे रथ चढ़ श्री कृष्ण बलराम जी भी उठ दौड़े, औ चलते चलते इन्हों ने उसे सौ जोजन पर जाय लिया. इनके रथ की आहट पाय, सतधन्वा अति घबराय, रथ से उतर मिथिलापुरी में जा बड़ा।

प्रभु ने उसे देख क्रोध कर सुदरसन चक्र को आज्ञा की, तू अभी सतधन्वा का सिर काट. प्रभु की आज्ञा पाते ही सुदरसन चक्र ने उसका सिर जा काटा, तब श्री कृष्णचंद ने उसके पास जाय मनि ढूंढी, पर न पाई, फिर इन्हों ने बलदेव जी से कहा कि, भाई! सतधन्वा को मारा, औ मनि न पाई. बलराम जी बोले कि, भाई! वह मनि किसी बड़े पुरुष ने पाई, तिस ने हमें लाय नहीं दिखाई; वह मनि किसी के पास छिपने की नहीं, तुम देखियो, निदान प्रगटेगी कहीं न कहीं।

इतनी बात कह बलदेव जी ने श्री कृष्णचंद से कहा कि, भाई! अब तुम तो द्वारिका पुरी को सिधारो, औ हम मनि के खोजने को जाते हैं, जहां पावेंगे तहां से ले आवेंगे।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! श्री कृष्णचंद आनंद कंद तो सतधन्वा को मार द्वारिकापुरी पधारे; औ बलराम सुखधाम मनि के खोजने को सिधारे. देस देस नगर नगर गांव गांव में ढूंढते ढूंढते बलदेव जी चले चले अजोध्यापुरी जा

पहुंचे. इनके पहुंचने के समाचार पाय अजोध्या का राजा दुरयोधन उठ धाया, आगे बढ़ भेट कर भेट दे प्रभु को बाजेगाजे से पाटंबर के पांवड़े डालता निज मंदिर में ले आया; सिंहासन पर बिठाय, अनेक प्रकार से पूजा कर, भोजन करवाय, अति बिनती कर, सिर नाय, हाथ जोड़, सनमुख खड़ा हो बोला, कृपा सिंधु! आप का आना इधर कैसे हुआ सो कृपा कर कहिये?।

महाराज! बलदेव जी ने उसके मन की लगन देख, मगन हो अपने जाने का सब भेद कह सुनाया. इन की बात सुन राजा दुरयोधन बोला कि, नाथ! वह मनि कहीं किसी के पास न रहैगी, कभी न कभी आप से आप प्रकाश हो रहेगी. यों सुनाय फिर हाथ जोड़ कहने लगा कि, दीन दयाल! मेरे बड़े भाग जो आप का दरसन मैंने घर बैठे पाया, औ जन्म जन्म का पाप गंवाया, अब कृपा कर दास के मन की अभिलाषा पुरी कीजे, और कुछ दिवस रह शिष्य कर गदा युद्ध सिखाय जग में जस लीजे. महाराज! दुरयोधन से इतनी बात सुन बलराम जी ने उसे शिष्य किया, और कुछ दिन वहां रह सब गदा युद्ध की बिद्या सिखाई; पर मनि वहां भी सारे नगर में खोजी औ न पाई. आगे श्री कृष्ण जी के पहुंचने के उपरांत कितने एक दिन पीछे बलराम जी भी द्वारिका नगरी में आए, तो श्री कृष्णचंद जी ने सब यादों साथ ले, सत्राजीत को तेल से निकाल, अग्नि संस्कार किया औ अपने हाथों दाह दिया।

जब श्री कृष्ण जी कृपा कर्म से निचिंत हुए, तब अक्रूर औ कृतब्रंमा कुछ आपस मे सोच विचार कर, श्री कृष्ण जी के पास आय, उन्हें एकांत लेजाय, मनि दिखायकर बोले कि, महाराज! यादव सब बहिर मुख भए, औ माया में मोह गए; तुम्हारा सुमरन ध्यान छोड़ धनांध हो रहे हैं, जो ये अब कुछ कष्ट पावें, तो ये प्रभु की सेवा में आवें; इस लिये हम नगर छोड़ मनि ले भागते हैं: जद हम इनसे आप का भजन सुमरन करावेंगे, तभी द्वारिका पुरी में आवेंगे. इतनी बात कह अक्रूर औ कृतब्रंमा सब कुटुंब समेत आधी रात को श्री कृष्णचंद के भेद में द्वारिका पुरी से भागे, ऐसे कि किसी ने न जाना कि किधर गये. भोर होते ही सारे नगर में यह चरचा फैली कि न जानिये रात की रात में अक्रूर और कृतब्रंमा कुटुंब समेत किधर गये, औ क्या हुए।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इधर द्वारिका पुरी में तो नित घर घर यह चरचा होने लगी; औ उधर अक्रूर जी प्रथम प्रयाग में जाय, मुंडन करवाय, त्रिबेनी न्हाय, बहुत सा दान पुन्य कर, तहां हरि पैड़ी बंधवाय गया को गये; वहां भी फलगू नदी के तीर बैठ, शास्त्र की रीति से श्राद्ध किया, औ गयालियों को जिमाय बहुत ही दान दिया पुनि गदाधर के दरसन कर तहां से चल काशी पुरी में आए; इनके आने का समाचार पाय, इधर उधर के राजा सब आय आय भेट कर भेट धरने लगे, औ ये वहां यज्ञ दान तप ब्रत कर रहने लगे।

इस में कितने एक दिन बीते, श्री मुरारी भक्त हितकारी ने अक्रूर जी का बुलाना जी में ठान, बलराम जी से आनके कहा कि, भाई! अब प्रजा को कुछ दुख दीजे और अक्रूर जी को

बुलवा लीजे. बलदेव जी बोले, महाराज! जो आप की इच्छा में आवै सो कीजे, औ साधों को सुख दीजे. इतनी बात बलराम जी के मुख से निकलते ही, श्री कृष्णचंद जी ने ऐसा किया कि द्वारिका पुरी में घर घर तप, तिजारी, मिरगी, चई, दाद, खाज, आधासीसी, कोढ़, महाकोढ़, जलंदर, भगंदर, कठंदर, अतिसार, आंव, मड़ोड़ा, खांसी, सूल, अर्द्धांग, सीतांग, झोला, सन्निपात आदि व्याधि फैल गई।

और चार महीने बर्षा भी न ऊई, तिस्से सारे नगर के नदी नाले सरोवर सूक गये; इन अन्न भी कुछ न उपजा; नभचर, जलचर, थलचर, जीव जंतु पची औ ढोर लगे व्याकुल हो सूक सूक मरने; और पुरबासी मारे भूखों के त्राहि त्राहि करने; निदान सब नगर निवासी महा व्याकुल हो निपट घबराए, श्री कृष्णचंद दुख निकंद के पास आए, औ अति गिड़गिड़ाय अधिक अधीनता कर, हाथ जोड़, सिर नाय, कहने लगे।

हम तौ सरन तिहारी रहैं, कष्ट महा अब क्योंकर सहैं.
मेघ न बरख्यौ पीड़ा भई, कहा बिधाता ने यह ठई.

इतना कह फिर कहने लगे कि, हे द्वारिकानाथ दीन दयाल! हमारे तो करता दुख हरता तुम हो, तुम्हें छोड़ कहां जाय, औ किस से कहैं? यह उपाध बैठे बिठाए में कहां से आई, और क्यों ऊई सो कृपा कर कहिये?।

श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्णचंद जी ने उन से कहा कि, सुनो जिस पुर से साध जन निकल जाता है, तहां आप से आप काल दरिद्र दुख आता है; जब से अक्रूर जी इस नगर से गये हैं, तभी से यहां यह गति ऊई है; जहां रहते हैं साध सतबादी औ हरि दास, तहां होता है अशुभ अकाल बिपत का नास; इंद्र रखता है हरि भक्तों से सनेह, इसी लिये उस नगर में भली भांति बरसाता है मेह।

इतनी बात के सुनते ही सब यादव बोल उठे कि, महाराज! आप ने सच कहा, यह बात हमारे भी जी में आई, क्योंकि अक्रूर के पिता का सुफलक नाम है, वह भी बड़ा साध सतबादी धर्मात्मा है; जहां वह रहता है, तहां कभी नहीं होता है दुख दरिद्र औ अकाल, सदा समय पर बरसता है मेह, तिस से होता है सुकाल; और सुनिये कि एक समें काशी पुरी में बड़ा दुरभिच पड़ा, तब काशी का राजा सुफलक को बुलाय ले गया. महाराज! सुफलक के जाते ही उस देस में मेह मन मानता बरसा, समा ऊआ औ सब का दुख गया; पुनि काशी पुरी के राजा ने अपनी लड़की सुफलक को व्याह दी; ये आनंद से वहां रहने लगे; तिस राजकन्या का नाम गांदिनका था, तिसी का पुत्र अक्रूर है।

इतना कह सब यादों बोले कि, महाराज! हम तो यह बात आगे से जानते थे, अब जो आप आज्ञा कीजे सो करैं. श्री कृष्णचंद बोले कि, अब तुम अति आदर मान कर, अक्रूर जी को

जहां पाओ तहां से ले आओ. यह बचन प्रभु के मुख से निकलते ही सब यादव मिल अक्रूर को ढूंढन निकले, औ चले चले वारानशी पुरी में पहुंचे; अक्रूर जी से भेट कर, भेट दे, हाथ जोड़, सिर नाय, सनमुख खड़े हो, बोले।

चलौ नाथ बोलत बल स्याम, तुम बिन पुरबासी हैं बिराम.
जित हीं तुम तित हीं सुख बास, तुम बिन कष्ट दरिद्र निवास.
यद्यपि पुर में श्री गोपाल, तऊ कष्ट है पर्‍यौ अकाल.
साधनि के बस श्री पति रहैं, तिन तें सब सुख संपति लहैं.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही अक्रूर जी वहां से अति अतुर हो, कुटुंब समेत कृतब्रंमा को साथ ले, सब यदुबंसियों को लिये, बाजेगाजे से चल खड़े हुए, और कितने एक दिनों के बीच आ सब समेत द्वारिका पुरी में पहुंचे. इनके आने का समाचार पा श्री कृष्ण जी औ बलराम आगे बढ़ आय, इन्हें अति मान सनमान स नगर में लिवाय ले गए. हे राजा! अक्रूर जी के पुरी में प्रवेश करते ही मेह बरसा, औ समा हुआ; सारे नगर का दुख दरिद्र बह गया; अक्रूर की महिमा हुई; सब द्वारिकावासी आनंद मंगल से रहने लगे।

आगे एक दिन श्री कृष्णचंद आनंद कंद ने अक्रूर जी को निकट बुलाय, एकांत लेजायके कहा कि, तुम ने सत्राजीत की मनि ले क्या की? वह बोला, महाराज! मेरे पास है. फिर प्रभु ने कहा, जिस की वस्तु तिसे दीजे, औ वह न होय तो विसके पुत्र को सोंपिये; पुत्र न होय तो उस को स्त्री को दीजिये; स्त्री न होय तो उसके भाई को दीजे, भाई नहो तो उसके कुटुंब को सोंपिये, कुटुंब भी नहो तो उसके गुरुपुत्र को दीजे; गुरुपुत्र नहो तो ब्राह्मन को दीजिये; पर किसी का द्रव्य आप न लीजिये, यह न्याय है, इससे अब तुम्हें उचित है कि, सत्राजीत की मनि उसके नाती को दो, औ जगत में बड़ाई लो।

महाराज! श्री कृष्णचंद के मुख से इतनी बात के निकलते ही अक्रूर जी ने मनि लाय, प्रभु के आगे धर, हाथ जोड़, अति बिनती कर कहा कि, दीना नाथ! यह मनि आप लीजे, औ मेरा अपराध दूर कीजे; क्योंकि जो इस मनि से सोंना निकला, सो ले मैंने तीरथ यात्रा में उठाया है. प्रभु बोले अच्छा किया. यों कह मनि ले हरि ने सतिभामा को जाय दी, औ उसके चित की सब चिंता दूर की. इति।

CHAPTER LIX.

THE ADVENTURES OF KṚISHṆ AND BALARÁM AT HASTINÁPUR, WHERE THEY HAD GONE TO INQUIRE AFTER THE FATE OF THE PÁṆḌAVS. KṚISHṆ MEETS KÁLINDÍ, THE DAUGHTER OF THE SUN, IN A FOREST, AND MARRIES HER. THE ELEMENT, FIRE, REQUESTS FOOD OF KṚISHṆ, WHO DIRECTS HIM TO CONSUME THE FOREST. ON THE CONFLAGRATION REACHING THE ABODE OF A DÆMON, NAMED MY, HE ENTREATS THAT IT MAY BE STOPPED, TO WHICH ENTREATY KṚISHṆ YIELDS. MY BUILDS A HOUSE OF GOLD, STUDDED WITH GEMS, FOR KṚISHṆ. KṚISHṆ CARRIES OFF HIS COUSIN, MITRBINDÁ, THE DAUGHTER OF RÁJÁ RÁJADHIDEWÍ; AND SATYÁ, THE DAUGHTER OF RÁJÁ NAGANAJIT; AS ALSO BHADRÁ, DAUGHTER OF THE RÁJÁ OF KEKY AND LAKSHMANÁ, DAUGHTER OF THE RÁJÁ OF BHADRDES.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक दिन श्री कृष्णचंद जगबंधु आनंद कंद जी ने यह विचार किया कि, अब चलकर पांडवों को देखिये जो आग से बच जीते जागते हैं. इतनी बात कह हरि कितने एक यदुबंसियों को साथ ले, द्वारिकापुरी से चल, हस्तिनापुर आए; इनके आने का समाचार पाय, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, पांचों भाई अति हर्षित हो उठ धाए, औ नगर के बाहर आय मिल बड़ी आव भगत कर लिवाय घर ले गये।

घर में जाते ही कुंती औ द्रौपदी ने पहले तो सात सुहागनों को बुलाय, मोतियों का चौक पुरवाय, तिस पर कंचन की चौकी बिछवाय, उस पै श्री कृष्ण को बिठाय, मंगलाचार करवाय अपने हाथों आरता उतारा; पीछे प्रभु के पांव धुलवाय रसोई में ले जाय, षट रस भोजन करवाया. महाराज! जब श्री कृष्णचंद भोजन कर पान खाने लगे तब।

कोंता ढिग बैठी कहै बात, पिता बंधु पूछत कुशरात.
नीके सूरसेन बसुदेव, बंधु भतीजे अरु बलदेव.
तिन में प्रान हमारौ रहै, तुम बिन कौन कष्ट दुख दहै.
जब जब बिपत परी अति भारी, तब तुम रच्छा करी हमारी.
अहो कृष्ण तुम पर दुख हरना, पांचों बंधु तुम्हारी सरना.
ज्यों मृगनी वृक झुंड के त्रासा, त्यों ये अंध सुतन के बासा.

महाराज! जब कुंती यों कह चुकी,

तबहिं युधिष्ठिर जोरे हाथ, तुम हौ प्रभु यादवपति नाथ.
तुम कों जोगेश्वर नित ध्यावत, शिव बिरंच के ध्यान न आवत.
हम कों घर ही दरसन दीनौ, ऐसौ कहा पुन्य हम कीनौ.
चार मास रहकै सुख दैहौ, बरषा ऋतु बीते घर जैहौ.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इस बात के सुनते ही भक्त हितकारी श्री बिहारी सब को आसा भरोसा दे वहां रहे, औ दिन दिन आनंद प्रेम बढ़ाने लगे. एक दिन राजा युधिष्ठिर के साथ श्री कृष्णचंद अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव को लिये, धनुष

वान कर गहे, रथ पर चढ़, बन में अहेर को गये; वहां जाय, रथ से उतर, फेंट बांध, बांहें चढ़ाय, सर साध, जंगल झाड़ झाड़ लगे सिंह, बाघ, गेंडे, अरने, साबर, सूकर, हिरन, रोझ, मार मार, राजा युधिष्ठिर के सनमुख लाय लाय धरने; औ राजा युधिष्ठिर हंस हंस रीझ रीझ ले ले जो जिसका भच्छ था तिसे देने लगे, और हिरन, रोझ, साबर रसोई में भेजने।

तिस समैं श्री कृष्णचंद औ अर्जुन आखेट करते करते कितनी एक दूर सब से आगे जाय, एक वृक्ष के नीचे खड़े ऊए; फिर नदी के तीर जाके दोनों ने जल पिया; इस में श्री कृष्ण जी देखते क्या हैं कि, नदी के तीर एक अति सुन्दरि नवजोवना, चंद मुखी, चंपक बरनी, मृग नयनी, पिक बयनी, गज गमनी, कटि केहरी, नख सिख से सिंगार किये, अनंग मद पिये, महा छबि लिये, अकेली फिरती है. उसे देखते ही हरि चकित थकित हो बोले।

वह को सुंदरि विहरति अंग, कोऊ नहीं तासु के संग.

महाराज! इतनी बात प्रभु के मुख से सुन, औ विसे देख अर्जुन हड़बड़ाय दौड़कर वहां गया, जहां वह महा सुंदरी नदी के तीर तीर विहरती थी, और पूछने लगा कि, कह सुंदरी तू कौन है, औ कहां से आई है, और किस लिये यहां अकेली फिरती है? यह भेद अपना सब मुझे समझायकर कह. इतनी बात के सुनते ही।

सुंदरि कथा कहै आपनी, हौं कन्या हौं सूरज तनी.
कालिंदी है मेरो नाम, पिता दियो जल में विश्राम.
रचे नदी में मंदिर आय, मो सों पिता कह्यौ समझाय.
की जो सुता नदी ढिग फेरो, आय मिलैगो ह्यां बर तेरो.
यदुकुल मांहिं कृष्ण औतरै, तो काजे इहिं ठां अनुसरै.
आदि पुरुष अविनासी हरी, ता काजे तू है औतरी.
ऐसें जब हि तात रवि कह्यौ, तबतें मैं हरि पद कौं चह्यौ.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही अर्जुन अति प्रसन्न हो बोले कि, हे सुंदरि! जिनके कारन तू यहां फिरती है, वेई प्रभु अबिनासी द्वारिकावासी श्री कृष्णचंद आनंद कंद आय पहुंचे. महाराज! जों अर्जुन के मुंह से इतनी बात निकली तों भक्त हितकारी श्री बिहारी भी रथ बढ़ाय वहां जा पऊंचे. प्रभु को देखते ही अर्जुन ने जद विसका सब भेद कह सुनाया, तब श्री कृष्णचंद जी ने हंसकर झट उसे रथ पर चढ़ाय नगर की बाट ली. जितने में श्री कृष्णचंद बन से नगर में आवें, तितने में विश्वकर्मा ने एक मंदिर अति सुंदर सब से निराला प्रभु की इच्छा देख बना रक्खा; हरि ने आते ही कालिंदी को वहां उतारा, औ आप भी रहने लगे।

आगे कितने एक दिन पीछे एक समैं श्री कृष्णचंद औ अर्जुन रात्र की बिरियां किसी स्थान पर बैठे थे कि, अग्नि ने आय हाथ जोड़, सिर नाय, हरि से कहा, महाराज! मैं बऊत दिन की

भूखी सारे संसार में फिर आई, पर खाने को कहीं न पाया, अब एक आस आप की है, जो आज्ञा पाऊं, तो बन जंगल जाय खाऊं. प्रभु बोले अच्छा जाय खा, फिर आग ने कहा, कृपा नाथ! मैं अकेली बन में नहीं जा सकती, जो जाऊं तो इंद्र आय मुझे बुझाय देगा. यह बात सुन श्री कृष्ण जी ने अर्जुन से कहा कि, बंधु! तुम जाय अग्नि को चराय आओ यह बहुत दिन से भूखी मरती है।

महाराज! श्री कृष्णचंद जी के मुख से इतनी बात के निकलते ही, अर्जुन धनुष बान ले अग्नि के साथ हुए; और आग बन में जाय भड़की, और लगे आम, इमली, बड़, पीपल, पाकड़, ताल, तमाल, महुआ, जामन, खिरनी, कचनार, दाख, चिरोंजी, कौंला, नीबू, बेर, आदि सब वृक्ष जलने, और।

पटकें कांस बांस अति चटके, बन के जीव फिरें मग भटके.

जिधर देखिये तिधर सारे बन में आग हुह्ह कर जलती है औ धुंआं मंडलाय आकाश को गया; तिस धुंए को देख इंद्र ने मेघपति को बुलायके कहा कि, तुम जाय अति बरषा कर अग्नि को बुझाय, बन औ बन के पशु पक्षी जीव जंतु को बचाओ. इतनी आज्ञा पाय मेघपति दलबादल साथ ले वहां आय घहराय ज्यों बरसने को हुआ, त्यों अर्जुन ने ऐसे पवन बान मारे कि, बादल राई काई हो यों उड़ गये कि, जैसे रुई के पहल पौन के झोके में उड़ जांय; न किसी ने आते देखे न जाते; ज्यों आए त्यों सहज ही बिलाय गये; और आग बन झाड़खंड जलाती जलाती वहां आई कि, जहां मय नाम असुर का मंदिर था. अग्नि को अति रिस भरी आती देख मय महा भय खाय नंगे पाओं गले में कपड़ा डाले, हाथ बांधे, मंदिर से निकल सनमुख आय खड़ा हुआ, और अष्टांग प्रनाम कर अति गिड़गिड़ायके बोला, हे प्रभु! हे प्रभु! इस आग से बचाय बेग मेरी रक्षा करो।

चरी अग्नि पायौ संतोष, अब तुम मानौं जिन कछु दोष.
मेरी बिनती मन में लाओ, बैसंदर तें मोहि बचाओ.

महाराज! इतनी बात मय दैत्य के मुख से निकलते ही, अग्नि बान बैसंदर ने धरे, औ अर्जुन भी सुचक रहे खड़े; निदान वे दोनों मय को साथ ले श्री कृष्णचंद आनंदकंद के निकट जा बोले कि, महाराज।

यह मय असुर आय है काम, तुम्हरे लये बनै है धाम.
अब हीं सुध तुम मय की लेऊ, अग्नि बुझाय अभय कर देऊ.

इतनी बात कह अर्जुन ने गांडीव धनुष सर समेत हाथ से भूमि में रक्खा, तब प्रभु ने आग की ओर आंख दबाय सैन की, वह तुरंत बुझ गई, औ सारे बन में सीतलता हुई. फिर श्री कृष्णचंद अर्जुन सहित मय को साथ ले आगे बढ़े; वहां जाय मय ने कंचन के मनिमय मंदिर

अति सुन्दर सुहावने मन भावने छिन भर में बनाय खड़े किये, ऐसे कि, जिन की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती; जो देखने को आता, सो चकित हो चित्र सा खड़ा रह जाता. आगे श्री कृष्ण जी वहां चार महीने बिरमे, पीछे वहां से चल कहां आए कि, जहां राजसभा में राजा युधिष्ठिर बैठे थे. आते ही प्रभु ने राजा से द्वारिका जाने की आज्ञा मांगी. यह बात श्री कृष्णचंद के मुख से निकलते ही सभा समेत राजा युधिष्ठिर अति उदास ज़ए, औ सारे रनवास में भी क्या स्त्री क्या पुरुष सब चिंता करने लगे. निदान प्रभु सब को यथा योग्य समझाय बुझाय, आसा भरोसा दे, अर्जुन को साथ ले, युधिष्ठिर से बिदा हो, हस्तिनापुर से चल, हंसते खेलते कितने एक दिनों में द्वारिका पुरी आ पऊंचे. इनका आना सुन सारे नगर में आनंद हो गया, औ सब का बिरह दुख गया; मात पिता ने पुत्र का मुख देख सुख पाया, औ मन का खेद सब गंवाया।

आगे एक दिन श्री कृष्ण जी ने राजा उग्रसेन के पास जाय, कालिंदी का भेद सब समझायके कहा कि, महाराज! भानु सुता कालिंदी को हम ले आए हैं, तुम वेद की विधि से हमारा उसके साथ ब्याह कर दो. यह बात सुन उग्रसेन ने वोंहीं मंत्री को बुलाय आज्ञा दी कि, तुम अब ही जाय ब्याह की सब सामा लाओ. आज्ञा पाय मंत्री ने विवाह की सामग्री बात में सब लाय दी: तिसी समैं उग्रसेन बसुदेव ने एक जोतिसी को बुलाय, शुभ दिन ठहराय, श्री कृष्ण जी का कालिंदी के साथ वेद की विधि से ब्याह किया।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, हे राजा! कालिंदी का विवाह तो यों ज़आ: अब आगे जैसे मित्रबिंदा को हरि लाये, औ ब्याहा, तैसे कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनो. सूरसेन की बेटी श्री कृष्ण जी की फुफी; तिस का नाम राजधिदेवी; उस की कन्या मित्रबिंदा. जब वह ब्याहन जोग ज़ई, तब उसने स्वयंबर किया: तहां सब देस देस के नरेस गुनवान, रूप निधान, महाजान, बलवान, सूर वीर, अति धीर, बनठनके एक से एक अधिक आ इकठे ज़ए. ये समाचार पाय श्री कृष्णचंद जी भी अर्जुन को साथ ले वहां गये, औ जाके बीचों बीच स्वयंबर के खड़े ज़ए।

हरषी सुन्दरि देखि मुरारि, हार डार मुख रही निहारि.

महाराज! यह चरित्र देख सब देस देस के राजा तो लज्जित हो मन हीं मन अनखाने लगे, और दुर्योधन ने जाय उसके भाई मित्रसेन से कहा कि, बंधु! तुम्हारे मामा का बेटा है हरी, तिसे देख भूली है सुन्दरी, यह लोक विरुद्ध रीति है, इसके होने से जग में हंसाई होगी, तुम जाय बहन को समझाओ, कि कृष्ण को न बरै, नहीं तो सब राजाओं की भीड़ में हंसी होयगी. इतनी बात के सुनते ही मित्रसेन ने जाय, बहन को बुझायके कहा।

महाराज! भाई की बात सुन समझ जों मित्रबिंदा प्रभु के पास से हटकर अलग दूर हो

खड़ी ऊई, तों अर्जुन ने झुककर श्री कृष्णचंद के कान में कहा, महाराज! अब आप किस की कान करते हैं, बात बिगड़ चुकी, जो कुछ करना हो सो कीजे, बिलंब न करिये. अर्जुन की बात सुनते ही श्री कृष्ण जी ने स्वयंबर के बीच से झट हाथ पकड़ मित्रबिंदा को उठाय रथ में बैठाय लिया, औ वोंहीं सब के देखते रथ हांक दिया, उस काल सब भूपाल तो अपने अपने शस्त्र ले ले घोड़ों पर चढ़ चढ़, प्रभु का आगा घेर, लड़ने को जा खड़े रहे, औ नगर निवासी लोग हंस हंस तालियां बजाय बजाय, गालियां दे दे यों कहने लगे।

फुफू सुता कौं व्याहन आयौ, यहतें कृष्ण भलौ जस पायौ.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जब श्री कृष्णचंद जी ने देखा कि चारों ओर से जो असुर दल घिर आया है, सो लड़े बिन न रहैगा, तब विन्हों ने कैएक बान निखंग से निकाल, धनुष तान, ऐसे मारे कि, वह सब सेना असुरों की छितीछान हो वहां की वहां बिलाय गई, औ प्रभु निर्द्वंद आनंद से द्वारिका पऊंचे।

श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! श्री कृष्ण जी ने मित्रबिंदा को तो यों ले जाय द्वारिका में व्याहा; अब आगे जैसे सत्या को प्रभु लाये सो कथा कहता हूं, तुम मन लगाय सुनौं. कौसल देस में नगनजित नाम नरेस, तिस की कन्या सत्या; जब वह व्याहन जोग ऊई, तब राजा ने सात बैल अति ऊंचे भयावने बिन नाथे मंगवाय, यह प्रतिज्ञा कर, देस में छुड़वाय दिये कि, जो इन सातों वृषभों को एक बार नाथ लावेगा उसे मैं अपनी कन्या व्याहूंगा. महाराज! वे सातों बैल सिर झुकाए, पूंछ उठाए, भौं खूंद खूंद डकारते फिरैं, और जिसे पावैं तिसे हनैं।

आगे ये समाचार पाय श्री कृष्णचंद अर्जुन को साथ ले वहां गये, औ जा राजा नगनजित के सनमुख खड़े ऊए. इन को देखते ही राजा सिंहासन से उतर, अष्टांग प्रनाम कर, इन्हें सिंहासन पर बिठाय, चंदन अच्छत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर, नैवेद्य आगे धर, हाथ जोड़, सिर नाय, अति बिनती कर बोला कि, आज मेरे भाग जागे जो शिव बिरंच के करता प्रभु मेरे घर आए. यों सुनाय फिर बोला कि, महाराज! मैंने एक प्रतिज्ञा की है सो पुरी होनी कठिन थी, पर अब मुझे निहचै ऊआ कि वह आप की कृपा से तुरंत पुरी होगी. प्रभु बोले कि, ऐसी क्या प्रतिज्ञा तू ने की है कि जिस का होना कठिन है? कह. राजा ने कहा, कृपा नाथ! मैंने सात बैल अन नाथे छुड़वाय यह प्रतिज्ञा की है कि, जो इन सातों बैल को एक बेर नाथेगा, तिसे मैं अपनी कन्या व्याहूंगा.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज!

सुन हरि फेंट बांध तहां गए, सात रूप धर ठाढ़े भए.
काऊ न लख्यौ अलख ब्यौहार, सातों नाथे एक हि बार.

वे वृषब नाथ के नाथने के समय ऐसे खड़े रहे कि, जैसे काठ के बैल खड़े होंय; प्रभु सातों

को नाथ, एक रस्सी में गांध, राजसभा में ले आए. यह चरित्र देख सब नगर निवासी तो क्या स्त्री क्या पुरुष अचरज कर धन्य धन्य करने लगे, औ राजा नगनजित ने उसी समें पुरोहित को बुलाय, वेद की विधि से कन्या दान दिया; तिस के यौतुक में दस सहस्र गाय, नौ लाख हाथी, दस लाख घोड़े, तिहत्तर लाख रथ दे, दास दासी अनगिनत दिये. श्री कृष्णचंद सब ले वहां से जब चले, तब खिजलाय सब राजाओं ने प्रभु को मारग में आन घेरा; तहां मारे बानों के अर्जुन ने सब को मार भगाया; हरि आनंद मंगल से सब समेत द्वारिका पुरी पहुंचे. उस काल सब द्वारिकावासी आगे आय प्रभु को बाजेगाजे से पाटंबर के पांवड़े डालते राजमंदिर में ले गये, औ यौतुक देख सब अचंभे रहे।

नगनजित की करत बड़ाई, कहत लोग यह बड़ी सगाई.
भलौ व्याह कौसल पति कियौ, कृष्ण हिं इतौ दायजौ दियौ.

महाराज! नगर निवासी तो इस ढब की बातें कर रहे थे कि, उसी समय, श्री कृष्णचंद औ बलराम जी ने वहां आके राजा नगनजित का दिया हुआ सब दायजा अर्जुन को दिया, औ जगत में जस लिया. आगे अब जैसे श्री कृष्ण जी भद्रा को व्याह लाये सो कथा कहता हूं, तुम चित लगाय निचंत हो सुनौ. केकय देस के राजा की बेटी भद्रा ने स्वयंवर किया, औ देस देस के नरेसों को पत्र लिखे; वे जाय इकठे हुए।

तहां श्री कृष्णचंद भी अर्जुन को साथ ले गये, और स्वयंवर के बीच सभा में जा खड़े रहे. जब राजकन्या माला हाथ में लिये सब राजाओं को देखती भालती रूप सागर जगत उजागर श्री कृष्णचंद के निकट आई, तो देखते ही भूल रही, औ उस ने माला इनके गले में डाली. यह देख उसके मात पिता ने प्रसन्न हो वह कन्या हरि को वेद की विधि से व्याह दी; तिसके दायजे में बहुत कुछ दिया कि, जिस का वारापार नहीं।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! श्री कृष्णचंद भद्रा को तो यों व्याह लाए; फिर जैसे प्रभु ने लछमना को व्याहा सो कथा कहता हूं, तुम सुनौ. भद्रदेस का नरेस अति बली औ बड़ा प्रतापी, तिस की कन्या लछमना जद व्याहन जोग हुई, तब उसने स्वयंवर कर चारों देसों के नरेसों को पत्र लिख लिख बुलाया. वे अति धुमधाम से अपनी अपनी सेना साज साज वहां आए औ स्वयंवर के बीच बड़े बनाव से पांति पांति जा बैठे।

श्री कृष्णचंद जी भी अर्जुन को साथ लिये तहां गये, और ज्यों स्वयंवर के बीच जा खड़े भये, त्यों लछमना ने सब को देख आ श्री कृष्ण जी के गले में माला डाली. आगे उसके पिता ने वेद की विधि से प्रभु के साथ लछमना का व्याह कर दिया; सब देस देस के नरेस जो वहां आए थे, सो महा लज्जित हो आपस में कहने लगे कि, देखें हमारे रहते किस भांति कृष्ण लछमना को लेजाता है!।

ऐसे कह, वे सब अपना अपना दल साज मारग रोक जा खड़े ऊए. जों श्री कृष्णचंद औ अर्जुन लछमना समेत रथ ले आगे बढ़े, तों विन्हों ने इन्हें आय रोका, और युद्ध करने लगे; निदान कितनी एक बेर में मारे बानों के अर्जुन औ श्री कृष्ण जी ने सब को मार भगाया, और आप अति आनंद मंगल से नगर द्वारिका पऊंचे. इतके जाते ही सारे नगर में घर घर।

भई बधाई मंगलचार, होत वेद रीति ब्यौहार.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इस भांति श्री कृष्णचंद जी पांच ब्याह कर लाए, तब द्वारिका में आठों पटरानियों समेत सुख से रहने लगे, औ पटरानियां आठों पहर सेवा करने लगीं. पटरानियों के नाम, रुक्मिनी, जामवती, सत्यभामा, कालिंदी, मित्रबिंदा, सत्या, भद्रा, लछमना. इति।

CHAPTER LX.

A DEMON, SON OF THE EARTH, NAMED NARAKÁSUR, OR BHAUMÁSUR, CARRIES OFF THE SIXTEEN THOUSAND ONE HUNDRED VIRGIN DAUGHTERS OF SO MANY RÁJÁS, AND KEEPS THEM IN HIS CITY OF PRÁGUJOTISHPUR. KRISHN SLAYS HIM, AND MARRIES THE SIXTEEN THOUSAND ONE HUNDRED DAMSELS.

श्री शुकदेव जी बोले कि, हे राजा! एक समय पृथ्वी मनुष तन धारन कर अति कठिन तप करने लगी, तहां ब्रह्मा विष्णु रुद्र इन तीनों देवताओं ने आ विससे पूछा कि, तू किस लिये इतनी कठिन तपस्या करती है? धरती बोली, कृपा सिंधु! मुझे पुत्र की बासना है, इस कारन महा तप करती हूं, दयाकर मुझे एक पुत्र अति बलवंत, महा प्रतापी, बड़ा तेजस्वी दो, ऐसा कि जिस का साम्हना संसार में कोई न करै, न वह किसी के हाथ से मरै।

यह बचन सुन प्रसन्न हो तीनों देवताओं ने वर दे उसे कहा कि, तेरा सुत नरकासुर नाम अति बली महा प्रतापी होगा, उससे लड़ कोई न जीतेगा; वह सृष्टि के सब राजाओं को जीत अपने बस करेगा; स्वर्ग लोक में जाय देवताओं को मार भगाय, अदिति के कुंडल छीन, आप पहनेगा; और इंद्र का छत्र छिनाय लाय अपने सिर धरेगा; संसार के राजाओं की कन्या सोलह सहस्र एक सौ लाय अन ब्याही घेर रक्खेगा; तब श्री कृष्णचंद सब अपना कटक ले उस पर चढ़ जांयगे, और उन से तू कहेगी इसे मारो, पुनि वे मार सब राजकन्याओं को ले द्वारिका पुरी पधारगे।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! तीनों देवताओं ने वर दे जब यों कहा, तब भूमि इतना कह चुप हो रही कि, मैं ऐसी बात क्यों कहूंगी कि मेरे बेटे को मारो. आगे कितने एक दिन पीछे भूमि पुत्र भौमासुर ऊआ, तिसी का नाम

नरकासुर भी कहते हैं; वह प्रागुजोतिषपुर में रहने लगा. उस पुर के चारों ओर पहाड़ों की ओट, और जल अग्नि पवन का कोट बनाय, सारे संसार के राजाओं की कन्या बलकर छीन छीन, धाय समेत लाय लाय उसने वहां रक्खीं. नित उठ उन सोलह सहस्र एक सौ राज कन्याओं की खाने पीने पहरने की चोकसी वह किया करे, और बड़े यत्न से उन्हें पलवावे।

एक दिन भौमासुर अति कोप कर, पुष्प बिमान में बैठ, जा लंका से लाया था, सुरपुर में गया, और लगा देवताओं को सताने. विसके दुख से देवता स्थान छोड़ छोड़ अपना जीव ले ले जिधर तिधर भाग गये. तब वह अदिति के कुंडल औ इंद्र का छत्र छीन लाया. आगे सब सृष्टि के सुर मुनियों को अति दुख देने लगा. विसका सब आचरन सुन श्री कृष्णचंद जगबंधु जी ने अपने जी में कहा।

वाहि मार सुन्दरि सब ल्याऊं, सुरपति छत्र तहीं पहुंचाऊं.
जाय अदिति के कुंडल दैहों, निर्भय राज इंद्र कौं कैहों.

इतना कह पुनि श्री कृष्णचंद जी ने सतिभामा से कहा कि, हे नारि! तू मेरे साथ चले तो भौमासुर मारा जाय; क्योंकि तू भूमि का अंस है, इस लेखे उस की मा हुई; जब देवताओं ने भूमि को पुत्र का वर दिया था, तब यह कह दिया था कि, जद तू मारने को कहैगी, तद तेरा पुत्र मरेगा, नहीं तो किसी से किसी भांति मारा न मरेगा. इस बात के सुनते ही सतिभामा जी कुछ मन ही मन सोच समझ इतना कह अनमनी हो रहीं कि, महाराज! मेरा पुत्र आप का सुत हुआ, तुम उसे क्योंकर मारोगे?।

प्रभु ने इस बात को टाल कहा कि, उसके मारने की तो मुझे कुछ इतनी चिंता नहीं, पर एक समैं मैंने तुम्हें बचन दिया था, तिसे पूरा किया चाहता हूं. सतिभामा बोली सो क्या? प्रभु कहने लगे कि, एक समय नारद जी ने आय मुझे कल्पवृक्ष का फूल दिया, वह ले मैंने रुक्मिनी को भेजा. वह बात सुन तू रिसाय रही, तब मैंने यह प्रतिज्ञा करी कि, तू उदास मत हो, मैं तुझे कल्पवृक्ष ही ला दूंगा, सो अपना बचन प्रतिपालने को और तुझे बैकुंठ दिखाने को साथ ले चलता हूं।

इतनी बात के सुनते ही सतिभामा जी प्रसन्न हो हरि के साथ चलने को उपस्थित हुईं. तब प्रभु उसे गरुड़ पर अपने पीछे बैठाय साथ ले चले. कितनी एक दूर जाय श्री कृष्णचंद जी ने सतिभामा जी से पूछा कि, सच कह सुंदरि! इस बात को सुन तू पहले क्या समझ अप्रसन्न हुई थी, उसका भेद मुझे समझायके कह, जो मन का संदेह जाय. सतिभामा बोली कि, महाराज! तुम भौमासुर को मार सोलह सहस्र एक सौ राजकन्या लाओगे, तिन में मुझे भी गिनोगे, यह समझ अन मनी हुई थी।

श्री कृष्णचंद बोले कि, तू किसी बात की चिंता मत करै, मैं कल्पवृक्ष लाय तेरे घर में

रक्खूंगा औ तू तिसके साथ मुझे नारद मुनि को दान कीजो, फिर मोल ले मुझे अपने पास रखना, मैं तेरे सदा आधीन रहूंगा. ऐसे ही इंद्रानी ने इंद्र को वृच्छ के साथ दान किया था, औ अदिति ने कश्यप को. इस दान के करने से कोई नारी तेरी समान मेरे न होगी. महाराज! इसी भांति की बातें कहते कहते श्री कृष्ण जी प्रागयोतिषपुर के निकट जा पहुंचे; वहां पहाड़ का कोट अग्नि, जल, पवन की ओट देखते ही प्रभु ने गरुड़ औ सुदरसन चक्र को आज्ञा की; तिन्हें ने पल भर में ढाय, बुझाय, बहाय, थांम, अच्छा पंथ बनाय दिया।

जों हरि आगे बढ़ नगर में जाने लगे, तों गढ़ के रखवाले दैत्य लड़ने को चढ़ आए; प्रभु ने तिन्हें गदा से सहज ही मार गिराए. तिनके मरने का समाचार पाय, मुर नाम राक्षस पांच सीसवाला, जो उस पुर गढ़ का रखवाला था, सो अति क्रोध कर त्रिशूल हाथ में ले श्री कृष्ण जी पर चढ़ आया, औ लगा आंखें लाल लाल कर दांत पीस पीस कहने, कि।

मो तें बली कौन जग और, ताहि देखि हों मैं या ठौर?

महाराज! इतना कह मुर दैत्य श्री कृष्णचंद पर यों दपटा कि, जों गरुड़ सर्प पर झपटे. आगे उसने त्रिशूल चलाया, सो प्रभु ने चक्र से काट गिराया. फिर खिजलाय मुर ने जितने शस्त्र हरि पर घाले, तितने प्रभु ने सहज ही काट डाले. पुनि वह हकबकाय दौड़कर प्रभु से आय लिपटा, और मल्ल युद्ध करने लगा. निदान कितनी एक बेर में युद्ध करते करते, श्री कृष्ण जी ने सतिभामा जी को महा भयमान जान, सुदरसन चक्र से उसके पांचों सिर काट डाले; धड़ से सिर गिरते ही धमका सुन भौमासुर बोला, कि यह अति शब्द काहेका हुआ? इस बीच किसी ने जा सुनाया कि, महाराज! श्री कृष्ण ने आय मुर दैत्य को मार डाला।

इतनी बात के सुनते ही प्रथम तो भौमासुर ने अति खेद किया, पीछे अपने सेनापति को युद्ध करने का आयसु दिया. वह सब कटक साज लड़ने को गढ़ के द्वार पर जा उपस्थित हुआ, और तिसके पीछे अपने पिता का मरना सुन मुर के सात बेटे जो अति बलवान औ बड़े जोधा थे, सो भी अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र धारन कर श्री कृष्णचंद जी के सनमुख लड़ने को जा खड़े हुए; पीछे से भौमासुर ने अपने सेनापति औ मुर के बेटों से कहला भेजा कि, तुम सावधानी से युद्ध करो, मैं भी आवता हूं।

लड़ने की आज्ञा पाते ही, सब असुर दल साथ ले मुर के बेटों समेत भौमासुर का सेनापति श्री कृष्ण जी से युद्ध करने को चढ़ आया, औ एकाएकी प्रभु के चारों ओर सब कटक दल बादल सा जाय छाया. सब ओर से अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र भौमासुर के सूर श्री कृष्णचंद पर चलाते थे, औ वे सहज सुभाव ही काट काट ढेर करते जाते थे; निदान हरि ने श्री सतिभामा जी को महा भयातुर देख, असुर दल को मुर के सातों बेटों समेत सुदरसन चक्र से बात की बात में यों काट गिराया कि, जैसे किसान ज्वार की खेती को काट गिरावे।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! मुर के पुत्रों समेत सब सेना कटी सुन, पहले तो भौमासुर अति चिंता कर महा घबराया, पीछे कुछ सोच समझ, धीरज कर, कितने एक महा बली राचसों को अपने साथ लिये, लाल लाल आंखें क्रोध से किये, कसकर फेंट बांधे, सर साधे, बकता झखता श्री कृष्ण जी से लड़ने को आय उपस्थित ऊआ. जों भौमासुर ने प्रभु को देखा, तों उस ने एक बार अति रिसाय मूठ की मूठ बान चलाए, सो हरि ने तीन तीन टुकड़े कर काट गिराए; उस काल।

काढ़ खड़ग भौमासुर लियौ, कोपि हंकारि कृष्ण उर दियौ.
करै शब्द अति मेघ समान, अरे गंवार न पावै जान.
करकस बचन तहां उच्चरै, महा युद्ध भौमासुर करै.

महाराज! वह तो अति बलकर इन पर गदा चलाता था, और श्री कृष्ण जी के शरीर में उस की चोट यों लगती थी कि, जों हाथी के अंग में फूल छड़ी. आगे वह अनेक अनेक अस्त्र शस्त्र ले प्रभु से लड़ा, औ प्रभु ने सब काट डाले; तब वह फिर घर जाय एक त्रिशूल ले आया, औ युद्ध करने को उपस्थित ऊआ।

तब सतिभामा टेर सुनाई, अब किन याहि हतौ यदुराई!
बचन सुनत प्रभु चक्र संभाखौ, काटि सीस भौमासुर माखौ.
कुंडल मुकुट सहित सिर पखौ, धर के गिरत सेस थरहखौ.
तिझं लोक में आनंद भयौ सोच दुःख सब ही कौ गयौ.
तासु जोति हरि देह समानी, जैजै शब्द करैं सुर ज्ञानी.
घिरे बिमान पऊप बरषावैं, बेद बखानि देव जस गावैं.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! भौमासुर के मरते ही भूमि औ भौमासुर की स्त्री पुत्र समेत आय, प्रभु के सनमुख हाथ जोड़, सिर निवाय, अति बिनती कर कहने लगी, हे जोती स्वरूप ब्रह्म रूप! भक्त हितकारी बिहारी! तुम साध संत के हेतु धरते हो भेष अनंत, तुम्हारी महिमा लीला माया है अपरंपार, तिसे कौन जाने, और किसे इतनी सामर्थ है जो बिन कृपा तुम्हारी बिसे बखाने? तुम सब देवों के हो देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव।

महाराज! ऐसे कह, छत्र कुंडल पृथ्वी प्रभु के आगे धर, फिर बोली, दीनानाथ! दीनबंधु कृपा सिंधु! यह सुभगदंत भौमासुर का बेटा आप की सरन आया है, अब करुना कर अपना कोमल कमल सा कर इस के सीस पर दीजै, औ अपने भय से इसे निर्भय कीजै. इतनी बात के सुनते ही करुना निधान श्री कान्ह ने करुना कर सुभगदंत के सीस पर हाथ धरा, और अपने डर से उसे निडर करा. तब भौमावती भौमासुर की स्त्री बऊत सी भेट हरि के आगे धर, अति बिनती कर, हाथ जोड़, सीस झुकाय खड़ी हो बोली।

हे दीन दयाल, कृपाल! जैसे आप ने दरसन दे हम सब को कृतार्थ किया, तैसे अब चलकर मेरा घर पवित्र कीजे. इस बात के सुनते ही अंतरजामी भक्त हितकारी श्री मुरारी भौमासुर के घर पधारे. उस काल वे दोनों मा बेटे हरि को पाटंबर के पांवड़े डाल, घर में ले जाय, सिंहासन पर बिठाय, अरघ दे, चरनामृत ले अति दीनता कर बोले, हे त्रिलोकी नाथ! आप ने भला किया जो इस महा असुर को बध किया. हरि से बिरोध कर किस ने संसार में सुख पाया? रावन कुंभकरन कंसादि ने बैर कर अपना जी गंवाया; और जिन जिन ने आप से द्रोह किया, तिस तिस का जगत में नाम लेवा पानी देवा कोई न रहा।

इतना कह फिर भौमावती बोली, हे नाथ! अब आप मेरी बिनती मान, सुभगदंत को निज सेवक जान, जो सोलह सहस्र राजकन्या इसके बाप ने अनब्याही रोक रक्खी हैं, सो अंगीकार कीजे. महाराज! यों कह उस ने सब राजकन्याओं को निकाल प्रभु के सोंहीं पांत की पांत ला खड़ा किया. वे जगत उजागर रूप सागर श्री कृष्णचंद आनंदकंद को देखते ही मोहित हो अति गिड़गिड़ाय, हाहा खाय, हाथ जोड़ बोलीं, नाथ! जैसे आप ने आय हम अबलाओं का इस महा दुष्ट की बंध से निकाला, तैसे अब कृपा कर इन दासियों को साथ ले चलिये, औ निज सेवा में रखिये तो भला।

यह बात सुन श्री कृष्णचंद ने तिन्हें इतना कह कि, हम तुम्हारे साथ ले चलने को रथ पालकियां मंगावे हैं, सुभगदंत की ओर देखा. सुभगदंत प्रभु के मन का कारन समझ अपनी राजधानी में जाय, हाथी घोड़े सजवाय, घुड़बहल औ रथ झमझमाते जगमगाते जुतवाय, सुखपाल, पालकी, नालकी, डोली, चंडोल, झलाबोर के कसवाय लिवाय लाया. हरि देखते ही सब राज कन्याओं को उन पर चढ़ने की आज्ञा दे, सुभगदंत को साथ ले, राज मंदिर में जाय, उसे राजगादी पर बिठाय, राज तिलक बिसे निज हाथ से दे, आप बिदा ले, जिस काल सब राजकन्याओं को साथ लिये वहां से द्वारिका को चले, तिस समय की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती, कि, हाथी बैलों की झलाबोर गंगा जमनी झूलों की चमक, और घोड़ों की पाखरों की दमक, औ सुखपाल पालकी नालकी डोली चंडोल रथ घुड़बहलों के घटाटोपों की ओप, औ उन की मोतियों की झालरों की जोत, सूरज की जोत से मिल एक हो जगमगाय रही थी।

आगे श्री कृष्णचंद सब राजकन्याओं को लिये, कितने एक दिन में चले चले द्वारिका पुरी पहुंचे. वहां जाय राजकन्याओं को राजमंदिर में रख राजा उग्रसेन के पास जाय, प्रनाम कर, पहले तो श्री कृष्ण जी ने भौमासुर के मारने और राजकन्याओं के छुड़ाय लाने का सब भेद कह सुनाया; फिर राजा उग्रसेन से बिदा होय, प्रभु सतिभामा को साथ ले, छत्र कुंडल लिये गरुड़ पर बैठ बैकुंठ को गये, तहां पहुंचते ही।

कुंडल दिये अदिति के ईस, छत्र धर्‌यो सुरपति के सीस.

यह समाचार पाय वहां नारद आया, तिस से हरि ने कह सुनाया कि, तुम जाय इंद्र से कहो, जो सतिभामा तुम से कल्पवृक्ष मांगती है, देखो वह क्या कहता है, इस बात का ऊतर मुझे ला दो, पीछे समझा जायगा. महाराज! इतनी बात श्री कृष्णचंद जी के मुख से सुन, नारद जी न सुरपति से जाय कहा कि, सतिभामा तुम्हारी भौजाई तुम से कल्पतरु मांगती है, तुम क्या कहते हो सो कहो? मैं उन्हें जाय सुनाऊं कि, इंद्र ने यह कहा. इस बात के सुनते ही इंद्र पहले तो हकबकाय कुछ सोच रहा, पीछे उस ने नारद मुनि का कहा सब इंद्रानी से जाय कहा।

इंद्रानी सुन कहै रिसाय, सुरपति तेरी कुमति न जाय.
तू है बड़ौ मूढ़ पति अंधु, को है कृष्ण कौंन कौ बंधु?

तुझे वह सुध है कै नहीं, जो उस ने व्रज में से तेरी पूजा मेट व्रजबासियों से गिरि पुजवाय, छलकर तेरी पूजा का सब पकवान आप खाया; फिर सात दिन तुझे गिरि पर बरसवाय, उस ने तेरा गर्व गंवाय, सब जगत में निरादर किया; इस बात की कुछ तेरे ताईं लाज है कै नहीं? वह अपनी स्त्री की बात मानता है, तू मेरा कहा क्यों नहीं सुनता?।

महाराज! जब इंद्रानी ने इंद्र से यों कह सुनाया, तब वह अपना सा मुंह ले उलट नारद जी के पास आया, और बोला, हे ऋषि राय! तुम मेरी ओर से जाय श्री कृष्णचंद से कहो कि, कल्पवृक्ष नंदन बन तज अनत न जायगा, औ जायगा तो वहां किसी भांति न रहेगा. इतना कह फिर समझाके कहियो, जो आगे की भांति अब तहां हम से बिगाड़ न करें, जैसे व्रज में व्रजबासियों को बहकाय गिरि का मिस कर सब हमारी पूजा की सामा खाय गये, नहीं तो महा युद्ध होगा।

यह बात सुन नारद जी ने आय श्री कृष्णचंद से इंद्र की बात कही कह सुनायके कहा, महाराज! कल्पतरु इंद्र तो देता था, पर इंद्रानी ने न देने दिया. इस बात के सुनते ही श्री मुरारी गर्व प्रहारी नंदन बन में जाय, रखवालों को मार भगाय, कल्पवृक्ष को उठाय, गरुड़ पर धर ले आए. उस काल वे रखवाले जो प्रभु के हाथ की मार खाय भागे थे, इंद्र के पास जा पुकारे. कल्पतरु के लेजाने के समाचार पाय, महाराज! राजा इंद्र अति कोप कर, बज्र हाथ में ले, सब देवताओं को बुलाय, ऐरावत हाथी पर चढ़, श्री कृष्णचंद जी से युद्ध करने को उपस्थित हुआ।

फिर नारद मुनि जी ने जाय इंद्र से कहा, राजा! तू महा मूर्ख है जो स्त्री के कहे भगवान से लड़ने को उपस्थित हुआ है; ऐसी बात कहते तुझे लाज नहीं आती? जो तुझे लड़ना ही था तो जब भौमासुर तेरा छत्र औ अदिति के कुंडल छिनाय लेगया तब क्यों न लड़ा? अब प्रभु ने भौमासुर को मार कुंडल औ छत्र ला दिया, तो तू उन ही से लड़ने लगा! जो तू ऐसा ही बलवान था तो भौमासुर से क्यों न लड़ा? तू वह दिन भूल गया, जो व्रज में जाय प्रभु की अति दीनता कर अपना अपराध क्षमा कराय आया, फिर उन हीं से लड़ने चला है! महाराज! नारद जी

के मुख से इतनी बात सुनते ही, राजा इंद्र जों युद्ध करने को उपस्थित ज्ञआ, तों अछताय पछताय लज्जित हो मन मार रह गया।

आगे श्री कृष्णचंद द्वारिका पधारे, तब हरषित भये देख हरि को यादव सारे. प्रभु ने सतिभामा के मंदिर में कल्पवृक्ष ले जायके रक्खा, औ राजा उग्रसेन ने सोलह सहस्र एक सौ जो राजकन्या अनब्याही थीं, सो सब बेद रीति से श्री कृष्णचंद को ब्याहीं।

भयौ बेद बिधि मंगलचार, ऐसे हरि बिहरत संसार.
सोलह सहस्र एक सौ ग्रेहा, रहत कृष्ण कर परम स्नेहा.
पटरानी आठों जे गनी, प्रीति निरंतर तिन सों घनी.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, हे राजा! हरि ने ऐसे भौमासुर को बध किया, औ अदिति का कुंडल और इंद्र का छत्र ला दिया; फिर सोलह सहस्र एक सौ आठ विवाह कर श्री कृष्णचंद द्वारिका पुरी में आनंद से सब को ले लीला करने लगे. इति।

CHAPTER LXI.

KṚISHṆ DISCOURSES WITH HIS WIFE RUKMINÍ.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक समं मनिमय कंचन के मंदिर में कुंदन के जड़ाऊ छपरखट बिछा था, तिस पर फेन से बिछौने फूलों से संवारे, कपोल गेंडुआ औ ओसीसे समेत सुगंध से महक रहे थे; कर्पूर, गुलाब नीर, चोआ, चंदन, अरगजा, सेज के चारों ओर पात्रों में भरा धरा था; अनेक अनेक प्रकार के चित्र बिचित्र चारों ओर भींतों पर खिंचे ज्ञए थे; आलों में जहां तहां फूल, फल, पकवान, पाक, धरे थे; और सब सुख का सामान जो चाहिये सो उपस्थित था।

झलाबोर का घाघरा घूमघुमाला, तिस पर सच्चे मोती टंके ज्ञए, चमचमाती अंगिया, झलझलाती सारी औ जगमगाती ओढ़नी पहने ओढ़े, नख सिख से सिंगार किये, रोली की आड़ दिये, बड़े बड़े मोतियों की नथ, सीसफूल, करनफूल, मांग, टीका, ढेढ़ी, बंदी, चंद्रहार, मोहनमाल, धुकधुकी, पंचलड़ी, सतलड़ी, मुक्तमाल, दुहरे तिहरे नौरतन औ भुजबंध, कंकन, पऊंची, नौगरी, चूड़ी, छाप, छल्ले, किंकिनी, अनवट, बिछुए, जेहर तेहर, आदि सब आभूषन रतन जटित पहने, चंद बदनी, चंपक बरनी, मृग नयनी, पिक बयनी, गज गमनी, कटि केहरी, श्री रुक्मिनी जी; और मेघ बरन, चंदमुख, कंवल नैन, मोर मुकुट दिये, बनमाल हिये, पीतांबर पहरे, पीत पट ओढ़े, रूप सागर, त्रिभुवन उजागर श्री कृष्णचंद आनंदकंद तहां बिराजते थे,

औ आपस में परसपर सुख लेते देते थे कि, एका एकी लेटे लेटे श्री कृष्ण जी ने रुक्मिनी जी से कहा कि, सुन सुंदरि! एक बात मैं तुज से पूछता हूं, तू उसका उत्तर मुझे दे; कि, तू तो महा सुदरी सब गुन संयुक्त, औ राजा भीष्मक की पुत्री; और महा बली, बड़ा प्रतापी राजा सिसुपाल चंदेरी का राजा, ऐसा कि जिनके घर सात पीढ़ी से राज चला आता है, औ हम उन के त्रास से भागे फिरते हैं, औ मथुरा पुरी तज समुद्र में जाय बसे हैं उन्हीं के भय से-ऐसे राजा को तुम्हें तुम्हारे मात पिता भाई देते थे, औ वह बरात ले व्याहने को भी आ चुका था, तिसे न बर तुम ने कुल की मर्याद छोड़, संसार की लाज औ मात पिता बंधु की संका तज हमें ब्राह्मन के हाथ बुला भेजा।

तुम्हरे जोग न हम परवीन, भूपति नाहिं रूप गुन हीन.
काहू जाचक कीरत करी, सो तुम सुनकै मन में धरी.
कटक साज नृप व्याहन आयौ. तब तुम हमकौं बोल पठायौ.
आय उपाध बनी ही भारी, क्यौं हूं कै पति रही हमारी?
तिनके देखत तुम कौं लाए, दल हलधर उनके बिचराए.
तुम लिख भेजा ही यह बानी, सिसुपाल तें छुड़ावौ आनी.
सो परतज्ञा रही तिहारी, कछू न इच्छा हुती हमारी.
अज हूं कछू न गयौ तिहारौ. सुंदरि मानहुं बचन हमारौ.

कि जो कोई भूपति कुलीन, गुनी, बली, तुम्हारे जोग होय, तुम तिसके पास जा रहौ. महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्री रुक्मिनी जी भयचक हो भहराय पछाड़ खाय भूमि पर गिरीं. औ जल बिन मीन की भांति तड़फड़ाय अचेत हो लगीं ऊर्द्ध सांस लेने. तिस काल।

इहि छबि मुख अलकावली, रही लपट इक संग,
मानहुं ससि भूलत पर्यौ, पीवत अमी भुवंग.

यह चरित्र देख इतना कह श्री कृष्णचंद घबराकर उठे कि, यह तो अभी प्रान तजती है: औ चतुर्भुज हो उसके निकट जाय दो हाथों से पकड़ उठाय, गोद में बैठाय, एक हाथ से पंखा करने लगे, औ एक हाथ से अलक संवारने. महाराज! उस काल नंद लाल प्रेम बस हो अनेक अनेक चेष्टा करने लगे; कभी पीतांबर से प्यारी का चंद मुख पोंछते थे; कभी कोमल कमल सा अपना हाथ उसके हृदे पर रखते थे; निदान कितनी एक बेर में श्री रुक्मिनी जी के जी में जी आया, तब हरि बोले।

तू ही सुन्दरि प्रेम गंभीर, तें मन कछू न राखी धीर.
तें मन जान्यौं सांचे छाड़ी, हम ने हंसी प्रेम की माड़ी.
अब तू सुन्दरि देह संभार, प्रान ठौरकै नैन उघार.

जौलौं तू बोलत नहीं प्यारी, तौलौं हम दुख पावत भारी.
चेती बचन सुनत पिय नारि, चितई बारिज नयन उघारि.
देखे कृष्ण गोद में लिये, भई लाज अति सकुची हिये.
अरबराय उठ ठाढ़ी भई, हाथ जोरि पायन परि हरि.
बोले कृष्ण पीठ कर देत, भली भली जू प्रेम अचेत.

हमने हांसी ठानी, सो तुम ने सच्च ही जानी; हंसी की बात में क्रोध करना उचित नहीं: उठो, अब क्रोध दूर करो, औ मन का शोक हरो. महाराज! इतनी बात के सुनते ही श्री रुक्मिनी जी उठ हाथ जोड़, सिर नाय, कहने लगीं कि, महाराज! आप ने जो कहा कि, हम तुम्हारे जोग नहीं सो सच कहा, क्योंकि तुम लक्ष्मी पति शिव बिरंच के ईस, तुम्हारी समता का त्रिलोकी में कौन है, हे जगदीस! तुम्हें छोड़ जो जन और को धावै, सो ऐसे है जैसे कोई हरि जस छोड़ गीध गुन गावै. महाराज! आप ने जो कहा कि, तुम किसी महा बली राजा को देखो, सो तुम से अति बली औ बड़ा राजा त्रिभुवन में कौन है सो कहो?।

ब्रह्मा रुद्र इंद्रादि सब देवता बरदाई तो तुम्हारे आज्ञाकारी हैं, तुम्हारी कृपा से वे जिसे चाहते हैं तिसे महा बली, प्रतापी, जसी, तेजस्वी बर दे बनाते हैं, और जो लोग आप की सैंकड़ों बरस अति कठिन तपस्या करते हैं, सो राज पद पाते हैं; फिर तुम्हारा भजन, ध्यान, जप, तप भूल, नीति छोड़, अनीति करते हैं, तब वे आप ही अपना सरबस खोय भ्रष्ट होते हैं. कृपानाथ! तुम्हारी तो सदा यह रीति है कि, अपने भक्तों के हेतु संसार में आय बार बार औतार लेते हो, औ दुष्ट राक्षसों को मार, पृथ्वी का भार उतार, निज जनों को सुख दे कृतार्थ करते हो।

श्री नाथ! जिस पर तुम्हारी बड़ी दया होती है, और वह धन, राज, जोबन, रूप, प्रभुता पाय, जब अभिमान से अंधा हो, धर्म कर्म तप सत दया पूजा भजन भूलता है, तब तुम उसे दरिद्री बनाते हो; क्योंकि दरिद्री सदा ही तुम्हारा ध्यान सुमरन किया करता है, इसी से तुम्हें दरिद्री भाता है; जिस पर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, सो सदा निर्धन रहैगा. महाराज! इतना कह फिर रुक्मिनी जी बोलीं कि, हे प्रान नाथ! जैसा काशी पुरी के राजा इंद्रदवन की बेटी अंबा ने किया, तैसा मैं न करूंगी, कि वह पति छोड़ राजा भीषम के पास गई; औ जब उस ने इसे न रक्खा, तब फिर अपने पति के पास आई, पुनि पति ने उसे निकाल दिया, तद उन्ने गंगा तीर में बैठ महादेव का बड़ा तप किया, वहां भोलानाथ ने आय उसे मुंह मांगा बर दिया, उस बर के बल से जाय उस ने राजा भीषम से अपना पलटा लिया, सो मुज से न होगा!

अरु तुम नाथ यही समझाई, काहू जाचक करी बड़ाई.
वाको बचन मान तुम लियो, हम पै बिप्र पठैकै दियो.

जाचक शिव बिरंच सारदा, नारद गुन गावत सरवदा.
बिप्र पठायौ जान दयाल, आय कियौ दुष्टनि कौ काल.
दीन जान दासी संग लई, तुम मोहि नाथ बड़ाई दई.
यह सुनि कृष्ण कहत, सुन प्यारी! ज्ञान ध्यान गति लही हमारी.
सेवा भजन प्रेम तें जान्यौं, तोही सों मेरौ मन मान्यौं.

महाराज! प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही संतुष्ट हो रुक्मिनी जी फिर हरि की सेवा करने लगीं. इति।

CHAPTER LXII.

EACH WIFE OF KRISHN HAS ONE DAUGHTER AND TEN SONS, IN ALL ONE HUNDRED AND SIXTY-ONE THOUSAND SONS. PRADYUMN CARRIES OFF CHÁRUMATÍ, DAUGHTER OF RÁJÁ RUKM, AND HAS A SON BY HER, ANARUDDH, WHO IS MARRIED TO THE GRAND-DAUGHTER OF RUKM. BALARÁM PLAYS AT DICE WITH RUKM, AND IS CHEATED BY HIM, ON WHICH HE SLAYS RUKM, AND KNOCKS OUT THE TEETH OF RÁJÁ KALING.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्रीयों को ले श्री कृष्णचंद आनंद से द्वारिका पुरी में बिहार करने लगे; औ आठों पटरानियां आठों पहर हरि की सेवा में रहैं; नित उठ भोर ही कोई मुख धुलावै; कोई उबटन लगाय न्हिलावै; कोई षट रस भोजन बनाय जिमावै; कोई अच्छे पान लौंग इलायची जावित्री जायफल समेत पिय को बनाय बनाय खिलावै; कोई सुथरे वस्त्र औ रतन जटित आभूषन चुन बास औ बनाय प्रभु को पहनाती थी; कोई फूल माल पहराय गुलाब नीर छिड़क केसर चंदन चरचती थी; कोई पंखा डुलाती थी; और कोई पांव दाबती थी।

महाराज! इसी भांति सब रानियां अनेक अनेक प्रकार से प्रभु की सदा सेवा करैं, औ हरि हर भांति उन्हें सुख दें।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! कई बरस के बीच।

एक एक जदुनाथ की, नारिन जाये पुत्र,
इक इक कन्या लच्छमी, दस दस पुत्र सपुत्र,
एक लाख इकसठ सहस्र, ऐसी बाढ़ इकसार,
भये कृष्ण के पुत्र ये, गुन बल रूप अपार.

सब मेघ बरन चंद मुख कंवल नयन नीले पीले झगुले पहने, गंडे कठले ताइत गले में डाले, घर घर बाल चरित्र कर कर मात पिता को सुख दें; औ उन की माएं अनेक भांति से लाड़

प्यार कर प्रतिपाल करें. महाराज! श्री कृष्णचंद जी के पुत्रों का होना सुन रुक्म ने अपनी स्त्री से कहा कि, अब मैं अपनी कन्या चारुमती जो कृतब्रमा के बेटे को मांगी है, उसे न दूंगा, स्वयंबर करूंगा, तुम किसी को भेज मेरी बहन रुक्मिनी को पुत्र समेत बुलवा भेजो।

इतनी बात के सुनते ही रुक्म की नारी ने अति बिनती कर ननद को पत्र लिख पुत्र समेत बुलवाया एक ब्राह्मन के हाथ, औ स्वयंबर किया. भाई भौजाई की चिट्ठी पाते ही रुक्मिनी जी श्री कृष्णचंद जी से आज्ञा ले, बिदा हो, पुत्र सहित चलीं चलीं द्वारिका से भोजकट में भाई के घर पहुंचीं।

देख रुक्म ने अति सुख पायौ, आदर कर नीचौ सिर नायौ.
पायन पर बोली भौजाई! हरन भयौ तब तें अब आई.

यह कह फिर उसने रुक्मिनी जी से कहा कि, ननद! जो तुम आई हो तो हम पर दया मया कीजे. और इस चारुमती कन्या को अपने पुत्र के लिये लीजे. इस बात के सुनते ही रुक्मिनी जी बोलीं कि, भौंजाई! तुम पति की गति जानती हो, मत किसी से कलह करवाओ, भैया की बात कुछ कही नहीं जाती, क्या जानिये किस समय क्या करे, इसमे कोई बात कहते करते भय लगता है. रुक्म बोला कि, बहन! अब तुम किसी भांति न डरो, कुछ उपाध न होगी; वेद की आज्ञा है कि, दछिन देस में कन्या दान भानजे को दीजे, इस कारन मैं अपनी पुत्री चारुमती तुम्हारे पुत्र प्रद्युम्न कों दूंगा, श्री कृष्ण जी से वैर भाव छोड़ नया संबंध करूंगा।

महाराज! इतना कह जब रुक्म वहां से उठ सभा में गया तब प्रद्युम्न जी भी माता से आज्ञा ले, बन ठनकर स्वयंबर के बीच गये, तो क्या देखते हैं कि, देस देस के नरेस भांति भांति के वस्त्र शस्त्र आभूषन पहने बांधे, बनाव किये, विवाह की अभिलाषा हिये में लिये, सब खड़े हैं; और वह कन्या जैमाल कर लिये, चारों ओर दृष्ट किये, बीच में फिरती है; पर किसी पै दृष्ट उन की नहीं ठहरती, इस में जों प्रद्युम्न जी स्वयंबर के बीच गये तों देखते ही उस कन्या ने मोहित हो आ इन के गले में जैमाल डाली; सब राजा अछता पछताय मुंह देखते अपना सा मुंह लिये खड़े रह गये, और अपने मन ही मन कहने लगे कि, भला! देखें हमारे आगे से इस कन्या को कैसे ले जायगा! हम बाट ही में छीन लेंगे।

महाराज! सब राजा तो यों कह रहे थे, और रुक्म ने बर कन्या को मढ़े के नीचे ले जाय, वेद की विधि से संकल्प कर, कन्या दान किया, और उसके यौतुक में बहुत ही धन द्रव्य दिया, कि जिसका कुछ वारापार नहीं. आगे श्री रुक्मिनी जी पुत्र को ब्याह, भाई भौजाई से बिदा हो, बेटे बहू को ले, रथ पर चढ़, जों द्वारिका पुरी को चलीं, तों सब राजाओं ने आय मारग रोका, इस लिये कि प्रद्युम्न जी से लड़ कन्या को छीन लें।

उन की यह कुमति देख प्रद्युम्न जी भी अपने अस्त्र शस्त्र ले युद्ध करने को उपस्थित हुए;

कितनी बेर तक इन से उन से युद्ध रहा, निदान प्रद्युम्न जी उन सबों को मार भगाय आनंद मंगल से द्वारिका पुरी पहुंचे. इनके पहुंचने के समाचार पाय सब कुटुंब के लोग क्या स्त्री क्या पुरुष पुरी के बाहर आय, रीति भांति कर पाटंबर के पांवड़े डालते बाजे गाजे से इन्हें ले गये; सारे नगर में मंगल हुआ, ये राजमंदिर में सुख से रहने लगे।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा, महाराज! कई बरष पीछे श्री कृष्णचंद आनंदकंद के पुत्र प्रद्युम्न जी के पुत्र हुआ; उस काल श्री कृष्ण जी ने जोतिषियों को बुलाय, सब कुटुंब के लोगों को बैठाय, मंगलाचार करवाय, शास्त्र की रीति से नाम करन किया. जोतिषियों ने पत्रा देख बरष मास पक्ष दिन तिथि घड़ी लग्न नक्षत्र ठहराय, उस लड़के का नाम अनरुद्ध रक्खा: उस काल।

फूले अंग न समांइ, दान दक्षिना द्विजन कौं,
देत न कृष्ण अघांइ, प्रद्युम्न के बेटा भयौ.

महाराज! नाती के होने का समाचार पाय पहले तो रुक्म ने बहन बहनोई को अति हितकर यह पत्री में लिख भेजा कि, तुम्हारे पोते से हमारी पोती का ब्याह होय तो बड़ा आनंद है; और पीछे एक ब्राह्मन को बुलाय, रोली अक्षत रुपया नारियल दे, उसे समझायके कहा कि, तुम द्वारिका पुरी में जाय, हमारी ओर से अति बिनती कर, श्री कृष्ण जी का पौत्र अनरुद्ध जो हमारा दोहता है, तिसे टीका दे आओ. बात के सुनते ही ब्राह्मन टीका औ लग्न साथ ही ले चला चला श्री कृष्णचंद के पास द्वारिका पुरी में गया: तिसे देख प्रभु ने अति मान सनमान कर पूछा कि, कहो देवता! आप का आना कहां से हुआ? ब्राह्मन बोला, महाराज! मैं राजा भीष्मक के पुत्र रुक्म का पठाया उन की पौत्री औ आप के पौत्र से संबंध करने को टीका औ लग्न ले आया हूं।

इस बात के सुनते ही श्री कृष्ण जी ने इस भाइयों को बुलाय, टीका औ लग्न ले, तिस ब्राह्मन को बहुत कुछ दे, बिदा किया: और आप बलराम जी के निकट जाय, चलने का बिचार करने लगे. निदान वे दोनों भाई वहां से उठ राजा उग्रसेन के पास जाय, सब समाचार सुनाय, उन से बिदा हो, बाहर आय, बरात की सब सामा मंगवाय मंगवाय इकठी करवाने लगे. कई एक दिन में जब सब सामान उपस्थित हो चुका, तब बड़ी धुमधाम से प्रभु बरात ले द्वारिका से भोजकट नगर को चले।

उस काल एक झमझमाते रथ पर तो श्री रुक्मिनी जी पुत्र पौत्र को लिये बैठी जाती थीं, औ एक रथ पर श्री कृष्णचंद औ बलराम बैठे जाते थे. निदान कितने एक दिनों में सब समेत प्रभु वहां पहुंचे. महाराज! बरात के पहुंचते ही रुक्म कलिंगादि सब देस देस के राजाओं को साथ ले नगर के बाहर जाय, अगौनी कर, सब को बागे पहराय, अति आदर मान कर जनवासे

में लिवाय लाया; आगे सब को खिलाय पिलाय मांढे के नीचे लिवाय लेगया, औ उस ने वेद की विधि से कन्या दान किया; तिस के यौतुक में जो दान दिया उस को मैं कहां तक कहूं? वह अकथ है।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! ब्याह के हो चुकते ही राजा भीष्मक ने जनवासे में जाय, हाथ जोड़, अति बिनती कर, श्री कृष्णचंद जी से चुपचुपाते कहा, महाराज! विवाह हो चुका औ रस रहा, अब आप शीघ्र चलने का बिचार कीजे; क्योंकि।

भूप सगे जे रुक्म बुलाए, ते सब दुष्ट उपाधी आए.
मत काहू सों उपजै रारि, याही तें हौं कहत मुरारि!

इतनी बात कह ज्यों राजा भीष्मक गए, त्योंही श्री रुक्मिनी जी के निकट रुक्म आया।

कहत रुक्मिनी टेरकर, किम घर पहुंचें जाय,
वैरी भूपति पाहुने, जुरे तिहारे आय.
जौ तुम भैया! चाहौ भलौ, हमहिं बेग पहुंचावन चलौ.

नहीं तो रस में अनरस होता दीसे है. यह वचन सुन रुक्म बोला कि, बहन! तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं पहले जो राजा देस देस के पाहुने आए हैं, तिन्हें विदा कर आऊं पीछे जो तुम कहोगी सो मैं करूंगा. इतना कह रुक्म वहां से उठ जो राजा पाहुने आए थे उनके पास गया. वे सब मिलके कहने लगे कि, रुक्म! तुम ने कृष्ण बलदेव को इतना घर द्रव्य दिया, और तिन्हों ने मारे अभिमान के कुछ भला न माना; एक तो हमें इस बात का पछतावा है. और दूसरे उस बात की कसक हमारे मन से नहीं जाती कि, जो बलराम ने तुम्हें अभरम किया था।

महाराज! इस बात के सुनते ही रुक्म को क्रोध हुआ, तब राजा कलिंग बोला कि, एक बात मेरे जी में आई है, कहो तो कहूं. रुक्म ने कहा कहो; फिर उसने कहा कि, हमें श्री कृष्ण से कुछ काम नहीं, पर बलराम को बुला दो तो हम उससे चौपड़ खेल सब धन जीत लें, और जैसा उसे अभिमान है तैसा यहां से रीते हाथ विदा करें. ज्यों कलिंग ने यह बात कही, त्योंही रुक्म वहां से उठ कुछ सोच विचार करता बलराम जी के निकट जा बोला कि, महाराज! आप को सब राजाओं ने प्रनाम कर बुलाया है चौपड़ खेलने को।

सुन बलभद्र तबहि तहां आए, भूपति उठकै सीस निवाए.

आगे सब राजा बलराम जी का शिष्टाचार कर बोले कि, आप को चौपड़ खेलने का बड़ा अभ्यास है, इस लिये हम आप के साथ खेला चाहते हैं. इतना कह उन्हों ने चौपड़ मंगवाय बिछाई, और रुक्म से औ बलराम जी से होने लगी. पहले रुक्म दस बेर जीता, तो बलदेव जी से कहने लगा कि, धन तो सब बीता, अब काहे से खेलोगे; इस में राजा कलिंग बड़ी बात कह

हंसा. यह चरित्र देख बलदेव जी नीचा सिर कर सोच बिचार करने लगे, तब रुक्म ने दस करोड़ रुपये एक बार लगाए, सो बलराम जी ने जों जीतके उठाए, तों सब धांधल कर बोल कि, यह रुक्म का पासा पड़ा, तुम क्यों रुपये समेटते हो?।

सुनि बलराम फेर सब दीने, अर्ब लगायौ पासे लीने.

फिर हलधर जीते औ रुक्म हारा; उस समय भी रोंगटी कर सब राजाओं ने रुक्म को जिताया, और यों कह सुनाया।

जुआ खेल पासे की सार, यह तुम जानों कहा गंवार!
जुआ युद्ध गति भूपति जाने, ग्वाल गोप गैयन पहचाने.

इस बात के सुनते ही बलदेव जी का क्रोध यों बढ़ा कि, जैसे पुन्यौ को समुद्र की तरंग बढ़े. निदान जों तों कर बलराम जी ने क्रोध को रोका, मन को समझाय, फिर सात अर्ब रुपये लगाये, और चौपड़ खेलने लगे; फिर भी बलदेव जी जीते, औ सबों ने कपट कर रुक्म ही को जीता कहा. इस अनीति के होते ही आकाश से यह बानी हुई कि, हलधर जीते, और रुक्म हारा, अरे राजाओं! तुम ने क्यों झूठ वचन उचारा? महाराज! जब रुक्म समेत सब राजाओं ने आकाश बानी सुनी अनसुनी की तब तो बलदेव जी महा क्रोध में आय बोले।

करी सगाई बैर न छांड्यौ, हम सों फेर कलह तुम मांड्यौ.
मारौं तोहि अरे अन्याई! भलौ बुरौ मानहु भोजाई.
अब काहू की कान न करि हौं, आज प्रान कपटी के हरि हौं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! निदान बलराम जी ने सब के देखते रुक्म को मार डाला, औ कलिंग को पछाड़ मारे घूसों के उसके दांत उखाड़ डाले, औ कहा कि, तू भी मुंह पसारके हंसा था. आगे सब राजाओं को मार भगाय, बलराम जी ने जनवासे में श्री कृष्णचंद जी के पास आय, वहां का सब ब्यौरा कह सुनाया।

बात के सुनते ही हरि ने सब समेत वहां से प्रस्थान किया, और चले चले आनंद मंगल से द्वारिका में आन पहुंचे. इन के आते ही सारे नगर में सुख छाय गया; घर घर मंगलाचार होने लगा; श्री कृष्ण जी औ बलदेव जी ने उग्रसेन राजा के सनमुख जाय हाथ जोड़ कहा, महाराज! आप के पुन्य प्रताप से अनरुद्ध को व्याह लाए, औ महा दुष्ट रुक्म को मारि आए. इति।

CHAPTER LXIII.

SHIVA GRANTS A THOUSAND ARMS TO BÁNÁSUR, AND SUCH STRENGTH THAT NONE CAN OVERCOME HIM. BÁNÁSUR, TO KEEP HIMSELF IN EXERCISE, TEARS UP THE MOUNTAINS AND HILLS. AFTER HE HAS DESTROYED THEM ALL, HE REQUESTS SHIVA TO FIGHT WITH HIM, WHO GIVES HIM A FLAG, AND TELLS HIM TO SET IT UP ON HIS PALACE, AND WHEN IT FALLS HE WILL FIND AN ANTAGONIST. BÁNÁSUR HAS A DAUGHTER, NAMED ÚṢHÁ, WHO SEES ANARUDDH IN A DREAM, AND AT LAST OBTAINS HIM AS A HUSBAND, THROUGH THE INTERVENTION OF CHITRREKHA, BUT KEEPS HIM SECRETLY IN HER CHAMBER, WITHOUT THE KNOWLEDGE OF HER FATHER. BÁNÁSUR AT LAST HEARING OF THE TRANSACTION, MAKES ANARUDDH PRISONER, AFTER AN OBSTINATE BATTLE.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! अब जो श्री द्वारिकानाथ का बल पाऊं, तो ऊषा हरन की कथा सब गाऊं. जैसे उसने रात्र समैं सपने में अनरुद्ध जी को देखा, औ आशक्त हो खेद किया, पुनि चित्ररेखा ने जों अनरुद्ध को लाय ऊषा से मिलाया, तैसे मैं सब प्रसंग कहता हूं, तुम मन दे सुनौ. ब्रह्मा के बंस में पहले कस्यप हुआ, तिसका पुत्र हिरनकस्यप अति बली महा प्रतापी औ अमर भया; उसका सुत हरिजन, प्रभु भक्त पहलाद नाम हुआ; तिसका बेटा राजा बिरोचन, बिरोचन का राजा बल, जिसका जस धर्म धरनी मं अब तक छाय रहा है कि, प्रभु ने बावन अवतार ले राजा बल को छल पाताल पठाया; उस बल का ज्येष्ठ पुत्र महा पराक्रमी, बड़ा तेजस्वी, बानासुर हुआ, वह श्रोनितपुर में बसे, नित प्रति कैलाश में जाय शिव की पूजा करे, ब्रह्मचर्य पाले, सत्य बोलै, जितेंद्री रहै. महाराज! एक दिन बानासुर कैलाश में जाय हर की पूजा कर, प्रेम में आय लगा मगन हो मृदंग बजाय बजाय नाचने गाने; उसका गाना बजाना सुन श्री महादेव भोलानाथ मगन हो, लगे पार्वती जी को साथ ले नाचने, औ डमरू बजाने. निदान नाचते नाचते शंकर ने अति सुख पाय प्रसन्न हो, बानासुर को निकट बुलायके कहा, पुत्र! मैं तुज पर संतुष्ट हुआ, बर मांग, जो तू बर मांगेगा सो मैं दूंगा।

तें कर बाजे भले बजाए, सुनत श्रवन मेरे मन भाए.

इतनी बात के सुनते ही, महाराज! बानासुर हाथ जोड़, सिर नाय, अति दीनता कर बोला कि, कृपा नाथ! जो आप ने मेरे पर कृपा की तो पहले अमर कर मुझे सब पृथ्वी का राज दीजे, पीछे मुझे ऐसा बली कीजे कि कोई मुज से न जीते. महादेव जी बोले कि, मैंने तुझे यही बर दिया, औ सब भय से निर्भय किया; त्रिभुवन में तेरे बल को कोई न पायगा, औ बिधाता का भी कुछ तुझ पर बस न चलेगा।

बाजौ भले बजायकै, दियौ परम सुख मोहि,
मैं अति हिय आनंद कर, दिये सहस्र भुज तोहि.

अब तू घर जाय निचिंताई से बैठ अविचल राज कर. महाराज! इतना बचन भोलानाथ के मुख से सुन, सहस्र भुज पाय, बानासुर अति प्रसन्न हो, परिक्रमा दे, सिर नाय, बिदा होय,

आज्ञा ले, श्रोनितपुर में आया; आगे त्रिलोकी को जीत, सब देवताओं को बस कर, नगर के चारों ओर जल की चुआन चौड़ी खाई औ अग्नि पवन का कोट बनाय, निर्भय हो, सुख से राज करने लगा. कितने एक दिन पीछे।

लखे बिन भई भुज सबल, फरक हि अति सहिरांय,
कहत बान कासों लरें, का पर अब चढ़ि जांय?
भई खाज लखे बिन भारी, को पुजवै हिय हौंस हमारी?

इतना कह बानासुर घर से बाहर जाय, लगा पहाड़ उठाय उठाय तोड़ तोड़ चूर करने, औ देस देस फिरने. जब सब पर्वत फोड़ चुका, औ उसके हाथों की सुरसुराहट खुजलाहट न गई, तब।

कहत बान अब का सों लरों, इतनी भुजा कहा लै करों?
सबल भार मैं कैसे सहौं? बहुरि जायकै हर सों कहौं.

महाराज! ऐसे मन ही मन सोच विचार कर बानासुर महादेव जी के सनमुख जा, हाथ जोड़ सिर नाय बोला कि, हे त्रिशूल पानि त्रिलोकी नाथ! तुम ने जो कृपा कर सहस्र भुजा दीं, सो मेरे शरीर पर भारी भईं; उन का बल अब मुज से संभाला नहीं जाता, इसका कुछ उपाय कीजे, कोई महा बली युद्ध करने को मुझे बताय दीजे; मैं त्रिभुवन में ऐसा पराक्रमी किसू को नहीं देखता जो मेरे सनमुख हो युद्ध करे; हां, दयाकर जैसे आप ने मुझे महा बली किया, तैसे ही अब कृपा कर मुज से लड़ मेरे मन का अभिलाष पूरा कीजे तो कीजे. नहीं तो और किसी अति बली को बता दीजे, जिस से मैं जाकर युद्ध करूं, और अपने मनका शोक हरूं।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! बानासुर से इस भांति की बातें सुन श्री महादेव जी ने बल खाय, मनहीं मन इतना कहा कि, मैंने तो इसे साध जानके बर दिया, अब यह मुझी से लड़ने को उपस्थित हुआ: इस मूरख को बल का गर्व भया, यह जीता न बचेगा; जिसने अहंकार किया सो जगत में आय बहुत न जिया. ऐसे मनहीं मन महादेव जी कह बोले कि, बानासुर! तू मत घबराय, तुज से युद्ध करनेवाला थोड़े दिन के बीच यदुकुल में श्री कृष्णावतार होगा, उस बिन त्रिभुवन में तेरा साम्हना करनेवाला कोई नहीं. यह बचन सुन बानासुर अति प्रसन्न हो बोला, नाथ! वह पुरुष कब अवतार लेगा, और मैं कैसे जानूंगा कि अब वह उपजा? राजा! शिव जी ने एक ध्वजा बानासुर को देके कहा कि, इस बैरख को लेजाय अपने मंदिर के ऊपर खड़ी कर दे, जब यह ध्वजा आप से आप टूटकर गिरे, तब तू जानियो कि, मेरा रिपु जन्मा।

महाराज! जद शंकर ने उसे ऐसे कहा समझाय तद बानासुर ध्वजा ले निज घर को चला सिर नाय. आगे घर जाय ध्वजा मंदिर पर चढ़ाय, दिन दिन यही मनाता था कि कब

वह पुरुष प्रगटे, औ मैं उससे युद्ध करूं! इस में कितने एक बरष बीते, उस की बड़ी रानी, जिसका नाम बानावती, तिसे गर्भ रहा, औ पूरे दिनों एक लड़की हुई. उस काल बानासुर ने जोतिषियों को बुलाय बैठाय के कहा कि, इस लड़की का नाम औ गुन गनकर कहो. इतनी बात के कहते ही जोतिषियों ने झट बरष मास पच्छ तिथ बार, घड़ी महूरत नच्छत्र ठहराय, लग्न बिचार, उस लड़की का नाम ऊषा धर के कहा कि, महाराज! यह कन्या रूप गुन शील की खान महाजान होगी, इस के ग्रह औ लच्छन ऐसे ही आन पड़े हैं।

इतना सुन बानासुर ने अति प्रसन्न हो पहले बहुत कुछ जोतिषियों को दे बिदा किया, पीछे मंगलामुखियों को बुलाय मंगलाचार करवाया. पुनि ज्यों ज्यों वह कन्या बढ़ने लगी, त्यों त्यों बानासुर उसे अति प्यार करने लगा; जब ऊषा सात बरष की भई, तब उसके पिता ने श्रोनितपुर के निकट ही कैलाश था तहां कैएक सखी सहेलियों के साथ उसे शिव पार्वती के पास पढ़ने को भेज दिया. ऊषा गनेश सरस्वती को मनाय, शिव पार्वती के सनमुख जाय, हाथ जोड़, सिर नाय, बिनती कर बोली कि, हे कृपा सिंधु शिव गवरी! दया कर मुझ दासी को बिद्या दान दीजे, औ जगत में जस लीजे. महाराज! ऊषा के अति दीन बचन सुन शिव पार्वती जी ने उसे प्रसन्न हो बिद्या का आरंभ करवाया; वह नित प्रति जाय जाय पढ़ पढ़ आवे; इस में कितने एक दिन के बीच सब शास्त्र पढ़ गुन बिद्यावान हुई, औ सब यंत्र बजाने लगी. एक दिन ऊषा पार्वती जी के साथ मिलकर बीन बजाय सांगीत की रीति से गाय रही थी कि, उस काल शिव जी ने आय पार्वती से कहा, हे प्रिये! मैंने जो कामदेव को जलाया था, तिसे अब श्री कृष्णचंद जी ने उपजाया. इतना कह श्री महादेव जी गिरजा को साथ ले गंगा तीर पर जाय, नीर में न्हाय न्हिलाय, सुख की इच्छा कर, अति लाड़ प्यार से लगे पार्वती जी को वस्त्र आभूषन पहराने, औ हित करने. निदान अति आनंद में मगन हो डमरू बजाय बजाय, तांडव नाच नाच नाच, सांगीत शास्त्र की रीति से गाय गाय, शिवा को लगे रिझाने, और बड़े प्यार से कंठ लगाने; उस समय ऊषा शिव गवरी का सुख प्यार देख देख, पति के मिलने की अभिलाषा कर, मनही मन कहने लगी कि, मेरा भी कंत होय तो मैं भी शिव पार्वती की भांति उसके साथ बिहार करूं, पति बिन कामिनी ऐसे शोभा हीन है, जैसे चंद्र बिन जामिनी।

महाराज! ज्यों ऊषा ने मनहीं मन इतनी बात कही, त्यों अंतरजामी श्री पार्वती जी ने ऊषा की अंतर गति जानि, उसे अति हित से निकट बुलाय, प्यार कर समझायके कहा कि, बेटी! तू किसी बात की चिंता मन में मत कर, तेरा पति तुझे सपने में आय मिलेगा, तू तिसे ढुंढवाय लीजो, औ उसी के साथ सुख भोग कीजो. ऐसे बर दे शिवरानी ने ऊषा को बिदा किया; वह सब बिद्या पढ़, बर पाय, दंडवत कर, अपने पिता के पास आई. पिता ने एक मंदिर

अति सुंदर निराला उसे रहने को दिया; औ यह कितनी एक सखी सहेलियों को ले वहां रहने लगी, औ दिन दिन बढ़ने।

महाराज! जिस काल वह बाल बारह बरष की ऊई, तो उसके मुखचंद की जोति को देखि, पूर्नवासी का चंद्रमा छबि छीन ऊआ; बालों की स्यामता के आगे मावस की अंधेरी फीकी लगने लगी; उस की चोटी की सटकाई लख नागनि अपनी कैंचली छोड़ सटक गई; भौंह की बंकाई निरख धनुष धकधकाने लगा; आंखों की बड़ाई चंचलाई पेख मृग मीन खंजन खिसाय रहे; नाक की सुंदरताई को देख तिल फूल मुरझाय गया; उसके अधर की लाली लख बिंबा फल बिलबिलाने लगा; दांत की पांति निरख दाड़िम का हिया दड़क गया; कपोलों की कोमलताई पेख गुलाब फूलने से रहा; गले की गुलाई देख कपोत कलमलाने लगे; कुचों की कोर निरख कंवल कली सरोवर में जाय गिरी; जिस की कट को छसता देख केहरी ने बन बास लिया; जांघों की चिकनाई पेख केले ने कपूर खाया; देह की गुराई निरख सोने को सकुच भई, औ चंपा चप गया; कर पद के आगे पदम की पदवी कुछ न रही; ऐसी वह गज गवनी, पिक बयनी, नव बाला जोबन की सरसाई से शोभायमान भई कि, जिस ने इन सब की शोभा छीन ली।

आगे एक दिन वह नवजोबना सुगंध उबट लगाय, निर्मल नीर से मल मल न्हाय, कंघी चोटी कर, पाटी संवार, मांग मोतियों से भर, अंजन मंजन कर, मिहदी महावर रचाय, पान खाय, अच्छे जड़ाऊ सोने के गहने मंगाय, सीसफूल, बैना, बेंदी, बंदी, ढेंड़ी, करनफूल, चौदानियां, छड़े, गजमोतियों की नथ भलके लटकन समेत, जुगनी मोतियों के दुलड़े में गुही, चंद्रहार, मोहनमाल, पंचलड़ी, सतलड़ी, धुकधुकी, भुजबंद, नौरतन, चुडी, नौगरी, कंकन, कड़े, मुदरी, छाप, छल्ले, किंकिनी, जेहर, तेहर, गूजरी, अनवट, बिछुए पहन; सुथरा झमझमाता सच्चे मोतियों की कोर का बड़े घेर का घाघरा, औ चमचमाती आंचल पल्लू की सारी पहर; जगमगाती कंचुकी कस; ऊपर से झलझलाती ओढ़नी ओढ़; तिस पर सुगंध लगाय; इस सज धज से हंसती हंसती सखियों के साथ मात पिता को प्रनाम करने गई, कि जैसे लक्ष्मी, जों सनमुख जाय दंडवत कर ऊषा खड़ी भई, तों बानासुर ने इसके जोबन की छटा देख, निज मन में इतना कह, इसे बिदा किया कि, अब यह ब्याहन जोग ऊई; और पीछे से कैएक राचस उसके मंदिर की रखवाली को भेजे, औ कितनी एक राचसी तिस की चौकसी को पठाईं; वे वहां जाय आठ पहर सावधानी से रहने लगे, और राचसनियां सेवा करने लगीं।

महाराज! वह राज कन्या पति के लिये नित प्रति तप दान ब्रत कर श्री पार्वती जी की पूजा किया करे; एक दिन नित्य कर्म से निचिंत हो रात्र समैं सेज पर अकेली बैठी मन मन यों सोच रही थी कि, देखिये पिता मेरा बिवाह कब करे औ किस भांति मेरा बर मुझे मिले? इतना कह पतिही के ध्यान में सो गई, तो सपने में देखती क्या है कि, एक पुरुष किशोर बैस, स्याम

बरन, चंद्मुख, कंवल नयन, अति सुन्दर काम सरूप, मोहन रूप, पीतांबर पहरे, मोर मुकुट सिर धरे, त्रिभंगी छबि करे, रतन जटित आभूषन, मकराकृत कुंडल, बनमाल, गुंजहार पहने औ पीत बसन ओढ़े, महा चंचल सनमुख आय खड़ा हुआ।

यह उसे देखते ही मोहित हो लजाय सिर झुकाय रही; तब उस ने कुछ प्रेम सनी बातें कह, स्नेह बढ़ाय, निकट आय, हाथ पकड़, कंठ लगाय, इसके मन का भ्रम औ सोच संकोच सब बिसराय दिया; फिर तो परसपर सोच संकोच तज, सेज पर बैठ, हाव भाव कटाच्छ औ आलिंगन चुंबन कर सुख लेने देने लगे, औ आनंद में मगन हो प्रीति की बातें करने; कि इस में कितनी एक बेर पीछे ऊषा ने जों प्यार कर चाहा कि पति को अंकवार भर कंठ लगाऊं, तों नयनों से नीद गई, औ जिस भांति हाथ बढ़ाय मिलने को भई थी, तिसी भांति मुरझाय पछताय रह गई।

जाग परी सोचति खरी, भयौ परम दुख ताहि·
कहां गयो वह प्रान पति? देखति चहुं दिस चाहि·
सोचत ऊषा मिलहों काहि, फिर कैसें मैं देखों ताहि?
सोवत जो रहती हौं आज, प्रीतम कबहु न जाती भाज·
क्यों सुख में गहिवे कों भई? जो यह नीद नयन तें गई·
जागतही जामिनि जम भई, जैहै क्योंकर अब यह दई·
बिन प्रीतम जिय निपट अचैन, देखे बिन तरसत हैं नैन·
श्रवन सुन्यौ चाहत हैं बैन, कहां गये प्रीतम सुख दैन?
जौ सपने जिय पुनि लख लेउं, प्रान साथ कर उनके देउं·

महाराज! इतना कह ऊषा अति उदास हो पिय का ध्यान कर, सेज पर जाय, मुख लपेट पड़ रही· जब रात जाय भोर हुआ, औ डेढ़ पहर दिन चढ़ा, तब सखी सहेली मिल आपस में कहने लगीं कि, आज क्या है जो ऊषा इतना दिन चढ़ा औ अब तक सोती नहीं उठी? यह बात सुन चित्ररेखा बानासुर के प्रधान कूषभांड की बेटी चित्रशाला में जाय क्या देखती है कि, ऊषा छपरखट के बीच मन मारे जी हारे निढाल पड़ी रो रो लंबी सांसे ले रही है· उस की यह दशा देख।

चित्ररेखा बोली अकुलाय, कह सखी तू मोसों समझाय·
आज कहा सोचति है खरी, परम वियोग समुद्र में परी?
रो रो अधिक उसासें लेत, तन मन व्याकुल है किहिं हेत?
तेरे मन कौ दुख परिहरौं, मन चीत्यौ कारज सब करौं·
मो सी सखी और ना घनी, है परतीति मोहि आपनी·

सकल लोक में हौं फिर आऊं, जहां जांउ कारज कर ल्याऊं.
मोकों बर ब्रह्मा ने दीनों, बस मेरे सब ही कों कीनों.
मेरे संग सारदा रहै, वाके बल करिहौं जो कहै.
ऐसी महा मोहनी जानौ, ब्रह्मा रुद्र इंद्र छलि आनौ.
मेरौ कोऊ भेद न जाने, अपनौ गुन को आप बखाने.
ऐसें और न कहि है कोऊ, भलौ बुरौ कोऊ किन होऊ.
अब तु कह सब अपनी बात, कैसें कटी आज की रात.
मो सों कपट करै जिन प्यारी, पुजवोंगी सब आस तिहारी.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही ऊषा अति सकुचाय, सिर नाय, चित्ररेखा के निकट आय मधुर बचन से बोली कि, सखी! मैं तुझे अपनी हितू जान रात की बात सब कर सुनाती हूं, तू निज मन में रख, और कुछ उपाय कर सके तो कर. आज रात को सपने में एक पुरुष मेघ बरन, चंद्र बदन, कंवल नैन, पीतांबर पहने, पीत पट ओढ़े, मेरे पास आय बैठा, औ उसने अति हित कर मेरा मन हाथ में ले लिया; मैं भी सोच संकोच तज उससे बातें करने लगी; निदान बतराते बतराते जों मुझे प्यार आया, तों मैंने उसे पकड़ने को हाथ बढ़ाया, इस बीच मेरी नीद गई. औ उस की मोहिनी मूरति मेरे ध्यान में रही।

देख्यौ सुन्यौ और नहिं ऐसौ, मैं कह कहा बताऊं जैसौ?
वाकी छवि बरनी नहीं जाय, मेरौ चित लै गयौ चोराय.

जब मैं कैलाश में श्री महादेव जी के पास बिद्या पढ़ती थी, तब श्री पार्वती जी ने मुझे कहा था कि, तेरा पति तुझे स्वप्न में आय मिलेगा, तू उसे ढुंढवा लीजो; सो वर आज रात मुझे सपने में मिला, मैं उसे कहां पाऊं? औ अपने बिरह की पीर किसे सुनाऊं? कहां जाऊं? उसे किस भांति ढुंढवाऊं? न विसका नाम जानू न गाम. महाराज! इतना कह जद ऊषा लंबी सांसे ले मुरझाय रह गई, तद चित्ररेखा बोली कि, सखी! अब तू किसी बात की चित में चिंता मत करै, मैं तेरे कंत को तुझे जहां होगा तहां से ढूंढ ला मिलाऊंगी, मुझे तीनों लोक में जाने की सामर्थ है, जहां होगा तहां जाय जैसे बनेगा तैसे ही ले आऊंगी, तू मुझे उसका नाम बता, औ जाने की आज्ञा दे।

ऊषा बोली, बीर! तेरी वही कहावत है कि, मरी क्योंकि सांस न आई; जो मैं उसका नांव गांव ही जानती, तो दुख काहेका था? कुछ न कुछ उपाय करती. यह बात सुन चित्ररेखा बोली, सखी! तू इस बात का भी सोच न कर, मैं तुझे त्रिलोकी के पुरुष लिख दिखाती हूं, तिन में से अपने चित चोर को देख बता दीजो, फिर ला मिलाना मेरा काम है. तब तो हंस कर ऊषा बोली, बहुत अच्छा. महाराज! यह बचन ऊषा के मुख से निकलते ही चित्ररेखा लिखने का सब सामान मंगाय आसन मार बैठी, औ गनेश सारदा को मनाय, गुरु का ध्यान कर, लिखने

लगी. पहले तो उसने तीन लोक, चौदह भुवन, सात दीप, नौखंड पृथ्वी, आकाश, सातों समुद्र, आठों लोक, बैकुंठ सहित लिख दिखाए; पीछे सब देव, दानव गंधर्व, किन्नर, यक्ष, ऋषि, मुनि, लोकपाल, दिगपाल, औ सब देसों के भूपाल, लिख लिख एक एक कर चित्ररेखा ने दिखाया; पर ऊषा ने अपना चाहीता उन में न पाया. फिर चित्ररेखा यदुबंसियों की मूरत एक एक लिख लिख दिखाने लगी, इस में अनिरुद्ध का चित्र देखते ही ऊषा बोली।

अब मन चोर सखी मैं पायौ, रात यही मेरे ढिग आयौ.
कर अब सखी तू कछू उपाय, याकौं ढूंढ कहूं तें ल्याय.
सुनकै चित्ररेख यों कहै, अब यह मो तें किम बच रहै?

यों सुनाय चित्ररेखा पुन बोली कि, सखी! तू इसे नहीं जानती, मैं पहचानू हूं, यह यदुबंसी श्री कृष्णचंद जी का पोता, प्रद्युम्न जी का बेटा, औ अनिरुद्ध इसका नाम है: समुद्र के तीर नीर में द्वारिका नाम एक पुरी है, तहां यह रहता है; हरि आज्ञा से उस पुरी की चौकी आठ पहर सुदरसन चक्र देता है, इस लिये कि, कोई दैत्य, दानव, दुष्ट आय यदुबंसियों को न सतावै और जो कोई पुरी में आवे सो बिन राजा उग्रसेन सूरसेन की आज्ञा न आने पावे. महाराज! इस बात के सुनते ही ऊषा अति उदास हो बोली कि, सखी! जो वहां ऐसी बिकट ठांव है, तो तू किस भांति तहां जाय मेरे कंत को लावेगी? चित्ररेखा ने कहा, आली! तू इस बात से निचिंत रह, मैं हरि प्रताप से तेरे प्रान पति को ला मिलाती हूं।

इतना कह चित्ररेखा रामनामी कपड़े पहन, गोपी चंदन का ऊर्द्ध पुंड तिलक काढ़ छापे उर भुज मूल औ कंठ में लगाय, बहुत सी तुलसी की माला गले में डाल, हाथ में बड़े बड़े तुलसी के हीरों की सुमरन ले, ऊपर से हीरावल ओढ़, कांख में आसन लपेटी, भगवतगीता की पोथी दबाय, परम भक्त बैष्णव का भेष बनाय, ऊषा को यों सुनाय, सिर नाय, बिदा हो, द्वारिका को चली।

पैंडे अब आकाश के, अंतरीक्ष व्है जांउ.
ल्याऊं तेरे कंत कौं, चित्ररेख तौ नांउ.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! चित्ररेखा अपनी माया कर, पवन के तुरंग पर चढ़, अंधेरी रात में स्याम घटा के साथ, बात की बात में द्वारिकापुरी में जा बिजली सी चमकी, औ श्री कृष्णचंद के मंदिर में बड़ गई, ऐसे कि, इसका जाना किसी ने न जाना. आगे यह ढूंढती ढूंढती वहां गई, जहां पलंग पर सोए अनिरुद्ध जी अकेले स्वप्न में ऊषा के साथ बिहार कर रहे थे. इसने देखते ही झट उस सोते का पलंग उठाय चट अपनी बाट ली।

सोवत ही परजंक समेत, लिये जात ऊषा के हेत.
अनिरुद्ध कौं लै आई तहां, ऊषा चिंतति बैठी जहां.

महाराज! पलंग समेत अनिरुद्ध को देखते ही ऊषा पहले तो हकबकाय चित्ररेखा के पाओं पर जाय गिरी, पीछे यों कहने लगी, धन्य है धन्य है सखी तेरे साहस औ पराक्रम को! जो ऐसी कठिन ठौर जाय बात की बात में पलंग समेत उठा लाई, औ अपनी प्रतिज्ञा पूरी की; मेरे लिये तैंने इतना कष्ट किया, इसका पलटा मैं तुझे नहीं दे सकती, तेरे गुन की ऋनिया रही।

चित्ररेखा बोली, सखी! संसार में बड़ा सुख यही है जो पर को सुख दीजे, औ कारज भी भला यही है कि, उपकार कीजे; यह शरीर किसी काम का नहीं, इससे किसी का काम हो सके तो यही बड़ा काम है; इस में स्वार्थ परमार्थ दोनों होते हैं. महाराज! इतना बचन सुनाय चित्ररेखा पुनि यों कह बिदा हो अपने घर गई कि, सखी! भगवान के प्रताप से तेरा कंत मैने तुझे ला मिलाया, अब तू इसे जगाय अपना मनोरथ पूरा कर. चित्ररेखा के जाते ही ऊषा अति प्रसन्न लाज किये, प्रथम मिलन का भय लिये, मनही मन कहने लगी।

कहा बात कहि पिय हि जगाऊं, कैसें भुजभर कंठ लगाऊं?

निदान बीन मिलाय मधुर मधुर सुरों से बजाने लगी; बीन की धुनि सुनते ही अनिरुद्ध जी जाग पड़े, और चारों ओर देख देख मन मन यों कहने लगे, यह कौन ठौर किसका मंदिर, मैं यहां कैसे आया, और कौन मुझे सोते को पलंग समेत उठा लाया? महाराज! उस काल अनिरुद्ध जी तो अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह अचरज करते थे, औ ऊषा सोच संकोच लिये, प्रथम मिलन का भय किये एक ओर कोने में खड़ी पिय का चंदमुख निरख, अपने लोचन चकोरों को सुख देती थी; इस बीच।

अनिरुद्ध देखि कह अकुलाय, कह सुंदरि तू अपने भाय?
है तू को मोपै क्यों आई? कै तू मोहि आप लै आई?
सांच झूठ एकौ नहीं जानौ, सपनौ सौ देखतु हौं मानौ.

महाराज! अनिरुद्ध जी ने इतनी बातें कहीं, औ ऊषा ने कुछ उत्तर न दिया, बरन और भी लाज कर कोने में सट रही. तब तो उन्हों ने झट उसे हाथ पकड़ पलंग पर ला बिठाया, औ प्रीति सनी प्यार की बातें कह उसके मन का सोच संकोच और भय सब मिटाया. आगे वे दोनों परस्पर सेज पर बैठे हाव भाव कटाच्छ कर सुख लेने देने लगे, औ प्रेम कथा कहने. इस बीच बातोंही बातों अनिरुद्ध जी ने ऊषा से पूछा कि, हे सुंदरि! तू ने प्रथम मुझे कैसे देखा? और पीछे किस भांति यहां मंगाया? इसका भेद समझाकर कह जो मेरे मन का भ्रम जाय. बात के सुनते ही ऊषा पति का मुख निरख हरषके बोली।

मोहि मिले तुम सपने आय, मेरौ चित ले गये चोराय.
जागी मन भारी दुख लह्यौ, तब मैं चित्ररेख सों कह्यौ.
सोई प्रभु तुम कों ह्यां लाई, ताकी गति जानी नहीं जाई.

इतना कह पुनि ऊषा ने कहा, महाराज! मैं तो जिस भांति तुम्हें देखा औ पाया, तैसे सब कह सुनाया, अब आप कहिये अपनी बात समझाय, जैसे तुम ने मुझे देखा, यादवराज! यह वचन सुन अनिरुद्ध अति आनंद कर मुसकुरायके बोले कि, सुंदरि! मैं भी आज रात्र को सपने में तुझे देख रहा था कि नींद ही में कोई मुझे उठाय यहां ले आया, इसका भेद अब तक मैंने नहीं पाया, कि मुझे कौन लाया. जागा तो मैंने तुझे ही देखा।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! ऐसे वे दोनों पिय प्यारी आपस में बतराय, पुनि प्रीति बढ़ाय अनेक अनेक प्रकार से काम कलोल करने लगे, औ बिरह की पीर हरने. आगे पान की सिठाई मोतीमाल की सीतलताई, औ दीप जोति की मंदताई निरख, जों ऊषा बाहर जाय देखे तो ऊषा काल हुआ; चंद की जोति घटी; तारे दुति हीन भये, आकाश में अरुनाई छाई; चारों ओर चिड़ियां चुहचुहाईं; सरोवर में कमोदनी कुमलाई; औ कंवल फूले: चकवा चकई को संयोग हुआ।

महाराज! ऐसा समय देख, ऐक बार तो सब बार मूंद, ऊषा बहुत घबराय, घर में आय, अति प्यार कर पिय को कंठ लगाय लेटी, पीछे पिय को दुराय, सखी सहेलियों से छिपाय, छिप छिप कंत की सेवा करने लगी; निदान अनिरुद्ध का आना सखी सहेलियों ने जाना; फिर तो वह दिन रात पति के संग सुख भोग किया करे. एक दिन ऊषा की मा बेटी कीसुध लेन आई, तो उस ने छिप कर देखा कि, वह एक महा सुन्दर तरुन पुरुष के साथ कोठें में बैठी आनंद से चौपड़ खेल रही है. यह देखते ही बिन बोल चाले दबे पाओं फिर मनहीं मन प्रसन्न हो असीस देती सूंट मारे वह अपने घर चली गई।

आगे कितने एक दिन पीछे एक दिन ऊषा पति को सोते देख, जी में यह बिचार कर सकुचती सकुचती घर से बाहर निकली कि, कहीं ऐसा नहो जो कोई मुझे न देख अपने मन में जाने कि, ऊषा पति के लिये घर से नहीं निकलती. महाराज! ऊषा कंत को अकेला छोड़ जाते तो गई, पर उस्से रहा न गया; फिर घर में जाय किवाड़ लगाय बिहार करने लगी. यह चरित्र देख पौरियों ने आपस में कहा कि, भाई! आज क्या है जो राजकन्या अनेक दिन पीछे घर से निकली औ फिर उलटे पाओं चली गई? इतनी बात के सुनते ही उन में से एक बोला कि, भाई! मैं कई दिन से देखता हूं, ऊषा के मंदिर का द्वार दिन रात लगा रहता है, और घर भीतर कोई पुरुष कभी हंस हंस बातें करता है, औ कभी चौपड़ खेलता है; दूसरे ने कहा. जो यह बात सच है तो चलो बानासुर से जाय कहें, समझ बूझ यहां क्यों बैठ रहें।

एक कहे यह कही न जाय, तुम सब बैठ रहो अरगाय.
भला बुरी होवे सो होय, होनहार मेटै नहिं कोय.
कछू न बात कुंवरि की कहिये, चुप ह्वै देख बैठही रहिये.

महाराज! द्वारपाल आपस में ये बातें करते ही थे कि कई एक जोधा साथ लिये फिरता फिरता बानासुर वहां आ निकला, और मंदिर के ऊपर दृष्ट कर शिव जी की दी ऊई ध्वजा न देख बोला, य्हां से ध्वजा क्या ऊई? द्वारपालों ने उत्तर दिया कि, महाराज! वह तो बऊत दिन ऊए कि टूट कर गिर पड़ी. इस बात के सुनते ही शिव जी का बचन स्मरन कर भावित हो बानासुर बोला।

कब की ध्वजा पताका गिरी? बैरी कहूं औतर्यो हरी.

इतना बचन बानासुर के मुख से निकलते ही, एक द्वारपाल सनमुख जा खड़ा हो, हाथ जोड़, सिर नाय, बोला कि, महाराज! एक बात है, पर वह मैं कह नहीं सकता, जो आप की आज्ञा पाऊं तो जों की तों कह सुनाऊं. बानासुर ने आज्ञा की, अच्छा कह. तब पौरिया बोला कि, महाराज! अपराध क्षमा; कई दिन से हम देखते हैं कि, राजकन्या के मंदिर में कोई पुरुष आया है: वह दिन रात बातें किया करता है, इसका भेद हम नहीं जानते कि वह कौन पुरुष है, औ कब कहां से आया है, और क्या करता है. इतनी बात के सुनते प्रमान, बानासुर अति क्रोध कर, शस्त्र उठाय, दबे पाओं अकेला ऊषा के मंदिर में जाय छिप कर क्या देखता है कि, एक पुरुष स्याम बरन, अति सुंदर, पीत पट ओढ़े, निद्रा में अचेत ऊषा के साथ सोया पड़ा है।

सोचत बानासुर यों हिये, होय पाप सोवत बध किये.

महाराज! यों मनहीं मन बिचार बानासुर तो कई एक रखवाले वहां रख, उन से यह कह कि, तुम इसके जागते ही हमें जाय कहियो, अपने घर जाय सभा कर सब राक्षसों को बुलाय कहने लगा कि, मेरा बैरी आन पऊंचा है, तुम सब दल ले ऊषा का मंदिर जाय घेरो, पीछे से मैं भी आता हूं. आगे इधर तो बानासुर की आज्ञा पाय सब राक्षसों ने आय ऊषा का घर घेरा, औ उधर अनिरुद्ध जी और राजकन्या निद्रा से चौंक पुनि सार पासे खेलने लगे. इस में चौपड़ खेलते खेलते ऊषा क्या देखती है, कि चऊं ओर से घन घोर घटा घिर आई, बिजली चमकने लगी, दादुर, मोर, पपीहे, बोलने लगे. महाराज! पपीहे की बोली सुनते ही राजकन्या इतना कह पिय के कंठ लगी।

तुम पपिहा पिय पिय मत करौ, यह बियोग भाषा परिहरौ.

इतने में किसीने जाय बानासुर से कहा कि, महाराज! तुम्हारा बैरी जागा. बैरी का नाम सुनते ही बानासुर अति कोप करके उठा, औ अस्त्र शस्त्र ले ऊषा की पौली में आय खड़ा ऊआ, और लगा छिप कर देखने. निदान देखते देखते।

बानासुर यों कहै हंकार, को है रे तू ग्रेह मझार?
घन तन बरन मदन मनहारी, कंवल नयन पीतांबर धारी

अरे चोर बाहर किन आवै?　　जान कहां अब मो सों पावै?

महाराज! जब बानासुर ने टेर के यों कहे बैन, तब ऊषा औ अनिरुद्ध सून और देख भये निपट अचैन. पुनि राजकन्या ने अति चिंता कर, भय मान हो, लंबी सांस ले, कंत से कहा कि, महाराज! मेरा पिता असुर दल ले चढ़ि आया, अब तुम इसके हाथ से कैसे बचोगे?।

तबहि कोप अनिरुद्ध कहै, मत डरपै तू नारि.
स्यार झुंड राक्षस असुर, पल में डारों मारि.

ऐसे कह अनिरुद्ध जी ने वेद मंत्र पढ़, एक सौ आठ हाथ की सिला बुलाय, हाथ में ले. बाहर निकल, दल में जाय, बानासुर को ललकारा. इन के निकलते ही बानासुर धनुष चढ़ाय सब कटक ले अनिरुद्ध जी पर यों टूटा कि, जैसे मधुमाखियों का झूंड किसी पै टूटे. जद असुर अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र चलाने लगे, तद क्रोध कर अनिरुद्ध जी ने सिला के हाथ कैएक ऐसे मारे कि, सब असुर दल काई सा फट गया; कुछ मरे कुछ घायल हुए, बचे सो भाग गए; पुनि बानासुर जाय सब को घेर लाया. औ युद्ध करने लगा. महाराज! जितने अस्त्र शस्त्र असुर चलात थे, तितने इधर उधर हो जाते थे, औ अनिरुद्ध जी के अंग में एक भी न लगता था।

जे अनिरुद्ध पर परें हथ्यार,　　अधवर कटें सिला की धार.
सिला प्रहार सह्यौं नहिं परै,　　वज्र चोट मनो सुरपति करै.
लागत सीस बीच तें फटै,　　टूटहिं जांघ भुजा, धर कटै.

निदान लड़ते लड़ते जब बानासुर अकेला रह गया, औ सब कटक कट गया, तब उसने मनहीं मन अचरज कर इतना कह नाग पास से अनिरुद्ध जी को पकड़ बांधा कि, इस अजीत को मैं कैसे जीतूंगा?।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! जिस समय अनिरुद्ध जी को बानासुर नाग पास से बांध अपनी सभा में ले गया उस काल अनिरुद्ध जी तो मनही मन यों विचारते थे कि, मुझे कष्ट होय तो होय पर ब्रह्मा का वचन झूठा करना उचित नहीं; क्योंकि जो मैं नाग पास से बल कर निकलूंगा, तो उस की अमर्याद होगी; इससे बंधे रहना हीं भला है; और बानासुर यह कह रहा था कि, अरे लड़के! मैं तुझे अब मारता हूं, जो कोई तेरा सहायक हो तो तू बुला. इस बीच ऊषा ने पिय की यह दशा सुन, चित्ररेखा से कहा कि, सखी! धिक्कार है मेरे जीतब को जो पति मेरा दुख में रहै औ मैं सुख से खाऊं और सोऊं! चित्ररेखा बोली, सखी! तू कुछ चिंता मत करै, तेरे पति का कोई कुछ कर न सकेगा, निचिंत रह, अभी श्री कृष्णचंद औ बलराम जी सब यदुबंसियों को साथ ले चढ़ि आवेंगे, और असुर दल को संहार तुझ समेत अनिरुद्ध को छुड़ाय ले जांयगे. उन की यही रीति है कि जिस राजा के सुंदर कन्या सुनते हैं, तहां से बल छल कर जैसे बने तैसे ले जाते हैं. उन्हीं का यह

पोता है जो कुंडलपुर से राजा भीष्मक की बेटी रुक्मिनी को, महा बली बड़े प्रतापी राजा सिसुपाल औ जुरासिंधु से संग्राम कर ले गये थे. तैसे ही अब तुझे ले जांयगे, तू किसी बात की भावना मत करे. ऊषा बोली, सखी! यह दुख मुझ से सहा नहीं जाता।

नाग पास बांधे पिय हरी, दहै गात ज्वाला बिष भरी.
हौं कैसें पौढ़ौं सुख सेना? पिय दुख क्योंकर देखों नैना?
प्रीतम बिपत परे क्यों जीओं? भोजन करों न पानी पीओं.
बर बध अब बानासुर कीजो, मोकों मरन कंत की दीजो.
होनहार होनी है होय, तासों कहा कहैगो कोय?
लोक बेद की लाज न मानौ, पिय संग दुख सुख ही जानौ.

महाराज! चित्ररेखा से ऐसे कह जब ऊषा कंत के निकट जाय, निडर निसंक हो बैठी. तब किसी ने बानासुर को जा सुनाया कि, महाराज! राजकन्या घर से निकल उस पुरुष के पास गई. इतनी बात के सुनते ही बानासुर ने अपने पुत्र स्कंध को बुलायके कहा कि, बेटा! तुम अपनी बहन को सभा से उठाय घर में ले जाय पकड़ रक्खो, औ निकलने न दो।

पिता की आज्ञा पाते ही स्कंध बहन के पास जा अति क्रोध कर बोला कि, तैंने यह क्या किया पापनी, जो छोड़ी लोक लाज औ कान आपनी? हे नीच! मैं तुझे क्या बध करूं? होगा पाप, और अपजस से भी हूं डरूं. ऊषा बोली कि, भाई! जो तुम्हें भावे सो कहो औ करो. मुझे पार्वती जी ने जो बर दिया था सो बर मैंने पाया; अब इसे छोड़ और को धाऊं, तो अपने को गाली चढ़ाऊं; तजती हैं पति को अकुलीनी नारी, यही रीति परंपरा से चली आती है बीच संसार; जिस से बिधना ने संबंध किया, उसी के संग जगत में अपजस लिया तो लिया. महाराज! इतनी बात के सुनते ही स्कंध क्रोध कर हाथ पकड़ ऊषा को वहां से मंदिर उठा लाया, औ फिर न जाने दिया. पुनि अनिरुद्ध जी को भी वहां से उठाय कहीं अनत लेजाय बंध किया. उस काल इधर तो अनिरुद्ध जी तियके बियोग में महा सोग करते थे, औ उधर राज कन्या कंत के बिरह में अन्न पानी तज कठिन जोग करने लगी।

इस बीच कितने एक दिन पीछे एक दिन नारद मुनि जी ने पहले तो अनिरुद्ध जी को जाय समझाया कि, तुम किसी बात की चिंता मत करो, अभी श्री कृष्णचंद आनंदकंद औ बलराम सुख धाम राचसों से कर संग्राम तुम्हें छुड़ाय ले जांयगे. पुनि बानासुर को जा सुनाया कि, राजा! जिसे तुम ने नाग पास से पकड़ बांधा है, वह श्री कृष्ण का पोता औ प्रद्युम्न जी का बेटा है, औ अनिरुद्ध उसका नाम है; तुम यदुबंसियों को भली भांति से जानते हो, जो जानौ सो करो, मैं इस बात से तुम्हें सावधान करने आया था सो कर चला. यह बात सुन, इतना कह बानासुर ने नारद जी को बिदा किया कि, नारद जी! मैं सब जानता हूं. इति।

CHAPTER LXIV.

KṚISHṆ OVERCOMES BÁNÁSUR, AND RELEASES ANIRUDDH AND USHÁ.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जब अनिरुद्ध जी को बंधे बंधे चार महीने ऊए, तब नारद जी द्वारिकापुरी में गये, तो वहां क्या देखते हैं कि, सब यादव महा उदास, मन मलीन, तन छीन हो रहे हैं; और श्री कृष्ण जी औ बलराम जी उनके बीच में बैठे अति चिंता कर कह रहे कि, बालक को उठाय यहां से कौन ले गया? इस भांति की बातें हो रहीं थीं, औ रनवास में रोना पीटना हो रहा था; ऐसा कि, कोइ किसी की बात न सुनता था. नारद जी के जातेही सब लोग क्या स्त्री क्या पुरुष उठ धाये, औ अति व्याकुल तन छीन मन मलीन रोते बिलबिलाते सनमुख आन खड़े ऊए; आगे अति बिनती कर हाथ जोड़ सिर नाय हाहा खाय खाय नारद जी से सब पूछने लगे।

सांची बात कहौ ऋषि राय, जासों जिय राखें बहिराय.
कैसें सुधि अनिरुद्ध की लहैं? कहौ साधि! ताके बल रहैं.

इतनी बात के सुनते ही श्री नारद जी बोले कि, तुम किसी बात की चिंता मत करो, औ अपने मन का शोक हरो; अनिरुद्ध जी जीते जागते सोनतपुर में हैं, वहां जिन्हों ने जाय राजा बानासुर की कन्या से भोग किया, इसी लिये उसने उन्हें नाग पास से पकड़ बांधा है, बिन युद्ध किये वह किसी भांति अनिरुद्ध जी को न छोड़ेगा; यह भेद मैंने तुम्हें कह सुनाया, आगे जो उपाय तुम से हो सके सो करो. महाराज! यह समाचार सुनाय नारद मुनि जी तो चले गये. पीछे सब यदुबंसियों ने जाय राजा उग्रसेन से कहा कि, महाराज! हमने ठीक समाचार पाये कि, अनिरुद्ध जी सोनतपुर में बानासुर के यहां हैं; इन्हों ने उस की कन्या रमी, इससे उनने इन्हें नाग पास से बांध रक्खा हैं, अब हमें क्या आज्ञा होती है? इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने कहा कि, तुम हमारी सब सेना ले जाओ और जैसे बने तैसे अनिरुद्ध को छुड़ा लाओ. ऐसा वचन उग्रसेन के मुख से निकलते ही, महाराज! सब यादव तो राजा उग्रसेन का कटक ले बलराम जी के साथ हए; और श्री कृष्णचंद औ प्रद्युम्न जी गरुड़ पर चढ़ सब से आगे सोनतपुर को गए।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जिस काल बलराम जी राजा उग्रसेन का सब दल ले द्वारिकापुरी से धौंसा दे सोनतपुर को चले, उस समय की कुछ शोभा बरनी नहीं जाती; कि, सबके आगे तो बड़े बड़े दंतीले मतवाले हाथियों की पांति; तिन पर धौंसा बाजता जाता था, औ ध्वजा पताका फहराती थीं; तिनके पीछे एक ओर गजों का

अवली अंबारियों समेत, जिन पर बड़े बड़े रावत जोधा सूर वीर यादव झिलम टोप पहने, सब शस्त्र अस्त्र लगाये बैठे जाते थे; उनके पीछे रथों के तातों के ताते दृष्ट आते थे; तिन की पीठ पर घुड़चढ़ों के युथ के युथ बरन बरन के घोड़े गंडे पट्टेवाले, गजगाह पाखर डाले, जमाते, ठहराते, नचाते, कुदाते, फंदाते, चले जाते थे: और उन के बीच बीच चारन जस गाते थे, औ कड़खैत कड़खा: तिस पीछे फरीं खांडे छुरीं कटारीं जमधर धोपें बरछीं बरछे भाले बल्लम बाने पटे धनुष बान गदा चक्र फरसे गंडासे लुहांगीं गुप्तीं बांक बिछुए समेत अनेक अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लिये पैदलों का दल टीड़ी दल सा चला जाता था, उन के मध्य मध्य धौंसे ढोल डफ बांसुरी भेर नरसिंगों का जो शब्द होता था, सो अति ही सुहावना लगता था।

उडी रेनु आकाश लों छाई, छिप्यो भानु भयो निस के भाई.
चकवी चकवा भयो वियोग, सुंदरि करें कंत सों भोग.
फूले कमल कुमद कुम्हलाने, निसचर फिरहिं निसा जिय जाने.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जिस समय बलराम जी बारह अचौहिनी सेना ले अति धुमधाम से उसके गढ़ गढ़ी कोट तोड़ते, औ देस उजाड़ते, जा सोनतपुर में पहुंचे, और श्री कृष्णचंद औ प्रद्युम्न जी भी आन मिले: तिसी समें किसी ने अति भय खाय घबराय जाय, हाथ जोड़, सिर नाय, बानासुर से कहा कि, महाराज! कृष्ण बलराम अपनी सब सेना ले चढ़ आए, औ उन्हों ने हमारे देस के गढ़ गढ़ी कोट ढाय गिराए, औ नगर को चारों ओर से आय घेरा, अब क्या आज्ञा होती है?।

इतनी बात के सुनते ही बानासुर महा क्रोध कर अपने बड़े बड़े राचसों को बुलाय बोला, तुम सब दल अपना ले जाय नगर के बाहर जाय कृष्ण बलराम के सनमुख खड़े हो, पीछे से मैं भी आता हूं. महाराज! आज्ञा पातेही वे असुर बात की बात में बारह अचौहिनी सेना ले श्री कृष्ण बलराम जी के सोंही लड़ने को अस्त्र शस्त्र लिये आ खड़े रहे; उनके पीछे ही श्री महादेव जी का भजन सुमिरन ध्यान कर बानासुर भी आ उपस्थित हुआ. शुकदेव मुनि बोले कि, महाराज! ध्यान के करते ही शिव जी का आसन डोला, औ ध्यान छूटा, तो उन्हों ने ध्यान धर जाना कि, मेरे भक्त पर भीड़ पड़ी है, इस समय चलकर उस की चिंता मेटा चाहिये।

यह मन ही मन विचार जब पार्वती जी को अर्द्धंग धर, जटा जूट बांध, भस्म चढ़ाय, बहुत सी भांग और आक धतूरा खाय, स्वेत नागों का जनेऊ पहन, गज चर्म ओढ़, मुंडमाल, सर्प हार पहन, त्रिशूल पिनाक डमरू खप्पर ले, नांदिये पर चढ़, भूत प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी भूतनी प्रेतनी पिशाचनी आदि सेना ले भोलानाथ चले, उस समें की कुछ शोभा बरनी नहीं जाती कि, कान में गज मनि की मुद्रा, लिलाट पै चंद्रमा, सीस पर गंगा धरे, लाल लाल लोचन करे, अति भयंकर भेष, महा काल की मूरति बनाये, इस रीति से बजाते गाते, सेना को नचाते जाते थे

कि, वह रूप देखे ही बनि आवे, कहने में न आवे. निदान कितनी एक बेर में शिव जी अपनी सेना लिये वहां पऊंचे कि, जहां सब असुर दल लिये बानासुर खड़ा था. हर को देखते ही बानासुर हरषके बोला कि, कृपा सिंधु! आप बिन कौन इस समय मेरी सुध ले ? ।

तेज तुम्हारौ इन कौं दहै, यादव कुल अब कैसें रहै!

यों सुनाय फिर कहने लगा कि, मराराज! इस समैं धर्म युद्ध करो, औ एक एक के सनमुख हो एक एक लड़ो. महाराज! इतनी बात जों बानासुर के मुख से निकली, तो इधर असुर दल लड़ने को तुलकर खड़ा ऊआ; औ उधर यदुबंसी आ उपस्थित ऊए; दोनों ओर जुझाऊ बाजने लगे; सूर बीर रावत जोधा धीर शस्त्र अस्त्र साजने, औ अधीर नपुंसक कायर खेत छोड़ छोड़ जी ले ले भागने लगे।

उस काल महा काल स्वरूप शिव जी श्री कृष्णचंद के सनसुख ऊए; बानासुर बलराम जी के सोहीं ऊआ; स्कंध प्रद्युम्न जी से आय भिड़ा, औ इसी भांति एक एक से जुट गया, औ दोनों ओर से शस्त्र चलने लगा. उधर धनुष पिनाक महादेव जी के हाथ; इधर सारंग धनुष लिये यदुनाथ; शिव जी ने ब्रह्म बान चलाया; श्री कृष्ण जी ने ब्रह्म शस्त्र से काट गिराया; फिर रुद्र ने चलाई महा बयार; सो हरि ने तेज से दीनी टार; पुनि महादेव ने अग्नि उपाई; वह मुरारि ने मेह बरसाय बुझाई; और एक महा ज्वाला उपजाई, सो सदाशिव जी के दल में धाई; उस ने डाढ़ी मुछ औ जलाय के केस, कीने सब असुर भयानक भेष।

जब असुर दल जलने लगा, औ बड़ा त्राहकार ऊआ, तब भोलानाथ ने जले अधजले राक्षसों औ भूत प्रेतों को तो जल बरसाय ठंडा किया, और आप अति क्रोध कर नारायनी बान चलाने को लिया, पुनि मनहीं मन कुछ सोच समझ न चलाय रख दिया. फिर तो श्री कृष्ण जी आलस्य बान चलाय सब को अचेत कर लगे असुर दल काटने, ऐसे कि, जैसे किसान खेती काटे. यह चरित्र देख जों महादेव जी ने अपने मन में सोच कर कहा कि, अब प्रलय युद्ध बिन किये नहीं बनता; तोंही स्कंध मोर पर चढ़ धाया, और अंतरीच्छ हो उस ने श्री कृष्ण जी की सेना पर बान चलाया।

तब हरि सों प्रद्युम्न उच्चरै, मोर चढ्यौ ऊपर तें लरै.
आज्ञा देऊ युद्ध अति करै, मारौं अबहि भूमि गिर परै.

इतनी बात के कहते ही प्रभु ने आज्ञा दी, औ प्रद्युम्न जी ने एक बान मारा सो मोर को लगा, स्कंध नीचे गिरा. स्कंध के गिरते ही बानासुर अति कोप कर पांच धनुष चढ़ाय, एक एक धनुष पर दो दो बान धर, लगा मेह सा बरसाने; और श्री कृष्णचंद बीच ही लगे काटने. महाराज! उस काल इधर उधर के मारू ढोल डफ से बाजते थे; कड़खैत धमाल सी गाते थे; घावों से लोह्न की धार पिचकारियां सी चल रहीं थीं; जिधर तिधर जहां तहां लाल लाल

लोहू गुलाल सा दृष्ट आता था: बीच बीच भूत प्रेत पिशाच, जो भांति भांति के भेष भयावने बनाए फिरते थे, सो भगत सी खेल रहे थे; औ रक्त की नदी रंग की सी नदी बह निकली थी: लड़ाई क्या, दोनों ओर होली सी हो रही थी. इस में लड़ते लड़ते कितनी एक बेर पीछे श्री कृष्ण जी ने एक बान ऐसा मारा कि, उसके रथ का सारथी उड़ गया, औ घोड़े भड़के. निदान रथवान के मरते ही बानासुर भी रन भूमि छोड़ भागा, श्री कृष्ण जी ने उसका पीछा किया।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! बानासुर के भागने के समाचार पाय उस की मा, जिस का नाम कटरा, सो उसी समैं भयानक भेष, छुटे केस, नंगमुनंगी आ, श्री कृष्णचंद जी के सनमुख खड़ी हुई, औ लगी पुकार करने।

देखत ही प्रभु मूंदे नैन, पीठ दई ताके सुन बैन.
तौलौं बानासुर भज गयौ, फिर अपनौं दल जोरत भयौ.

महाराज! जब तक बानासुर एक अक्षौहिनी दल साज वहां आया, तब तक कटरा श्री कृष्ण जी के आगे से न हटी, पुत्र की सेना देख अपने घर गई. आगे बानासुर ने आय बड़ा युद्ध किया, पर प्रभु के सनमुख न ठहरा, फिर भाग महादेव जी के पास गया. बानासुर को भयातुर देख शिव जी ने अति क्रोध कर, महा विषमज्वर को बुलाय, श्री कृष्ण जी के सेना पर चलाया. वह महा बली, बड़ा तेजस्वी, जिस का तेज सूरज की समान, तीन मूंड, नौ पग, छह करवाला, त्रिलोचन, भयानक भेष, श्री कृष्णचंद के दल को आय साला. उसके तेज से यदुबंसी लगे जलने, औ थर थर कांपने: निदान अति दुख पाय, घबराय, यदुबंसियों ने आय श्री कृष्ण जी से कहा कि, महाराज! शिव जी के ज्वर ने आय सारे कटक को जलाय मारा, अब इसके हाथ से बचाइये, नहीं तो एक भी यदुबंसी जीता न बचेगा. महाराज! इतनी बात सुन, औ सब को कातर देख, हरि ने सीतज्वर चलाया: वह महादेव के ज्वर पर धाया: इसे देखते ही वह डर कर पलाया, औ चला चला सदाशिव जी के पास आया।

तब ज्वर महादेव सों कहै, राखहु सरन कृष्ण ज्वर दहै.

यह बचन सुन महादेव जी बोले कि, श्री कृष्णचंद जी के ज्वर को बिन श्री कृष्णचंद ऐसा त्रिभुवन में कोई नहीं जो हरे, इससे उत्तम यही है कि, तू भक्त हितकारी श्री मुरारी के पास जा. शिव वाक्य सुन, सोच बिचार, विषमज्वर श्री कृष्णचंद आनंदकंद जी के सनमुख जा, हाथ जोड़, अति बिनती कर, गिड़गिड़ाय, हाहा खाय, बोला, हे कृपा सिंधु! दीन बंधु! पतित पावन! दीन दयाल! मेरा अपराध क्षमा कीजे, औ अपने ज्वर से बचाय लीजे।

प्रभु तुम हो ब्रह्मादिक ईस, तुम्हरी शक्ति अगम जगदीस!
तुम हीं रचकर सृष्ट संवारी, सब माया जग कृष्ण तुम्हारी.
कृपा तुम्हारी यह मैं बूझौ, ज्ञान भये जग करता सूझौ.

इतनी बात के सुनते ही हरि दयाल बोले कि, तू मेरी सरन आया, इसमे बचा, नहीं तो जीता न बचता: मैंने तेरा अब का अपराध क्षमा किया, फिर मेरे भक्त औ दासों को मत व्यापियो, तुझे मेरी ही आन है. ज्वर बोला, कृपा सिंधु! जो इस कथा को सुनेगा, उसे सीतज्वर, एकतरा, औ तिजारी, कभी न व्यापैगी. पुनि श्री कृष्णचंद बोले कि, तू अब महादेव के निकट जा, व्हां मत रह, नहीं तो मेरा ज्वर तुझे दुख देगा. आज्ञा पाते ही बिदा हो दंडवत कर विषमज्वर सदाशिव जी के पास गया, औ ज्वर का बहधा सब मिट गया.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज!

यह संवाद सुने जो कोय, ज्वर कौ डर ताकों नहीं होय.

आगे बानासुर अति कोप कर, सब हाथों में धनुष बान ले, प्रभु के सनमुख आ ललकारके बोला।

तुम तें युद्ध कियौ मैं भारी, तौऊ साद न पुजी हमारी.

जब यह कह लगा सब हाथों मे बान चलाने, तब श्री कृष्णचंद जी ने सुदरसन चक्र को छोड़, उसके चार हाथ रक्ख, सब हाथ काट डाले; ऐसे कि, जैसे कोई बात के कहते वृक्ष के गुद्दे छांट डाले. हाथ के काटते ही बानासुर सिथल हो गिरा; घावों से लोहू की नदी बह निकली; तिस में भुजाऐं मगर मच्छ सी जनाती थीं; कटे हुए हाथियों के मस्तक घड़ियाल से डूबते जाते थे; बीच बीच रथ बेड़े नवाड़े से बहे जाते थे; और जिधर तिधर रन भूमि में स्वान स्यार गिद्ध आदि पशु पंछी लोथें खेंच खेंच आपस में लड़ लड़ झगड़ झगड़ फाड़ फाड़ खाते थे; पुनि कौवे सिरों से आंखें निकाल निकाल ले ले उड़ उड़ जाते थे।

श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! रनभूमि की यह गति देख, बानासुर अति उदास हो पछताने लगा, निदान निर्बल हो सदाशिव जी के निकट गया, तब।

कहत रुद्र मन माहि बिसार, अब हरि की कीजे मनुहार.

इतना कह श्री महादेव जी बानासुर को साथ ले, वेद पाठ करते वहां आए कि, जहां रन भूमि में श्री कृष्णचंद खड़े थे. बानासुर को पाओं पर डाल शिव जी हाथ जोड़ बोले कि, हे शरनागतवत्सल! अब यह बानासुर आप की सरन आया, इस पर कृपा दृष्ट कीजे औ इसका अपराध मन में न लीजे; तुम तो बार बार अवतार लेते हो भूमि का भार उतारने को, और दुष्ट हतन औ संसार के तारन को; तुम हो प्रभु अलख अभेद अनंत, भक्तों के हेत संसार में आय प्रगटते हो भगवंत, नहीं तो सदा रहते हो बिराट स्वरूप, तिस का है यह रूप, स्वर्ग सिर, नाभि आकाश, पृथ्वी पांव, समुद्र पेट, इंद्र भुजा, पर्वत नख, बादल केस, रोम वृक्ष, लोचन शशि औ भानु, ब्रह्मा मन, रुद्र अहंकार, पवन स्वासा, पलक लगना रात दिन, गरजन शब्द।

ऐसे रूप सदा अनुसरौ, काहू पै नहीं जाने परौ.

और यह संसार दुख का समुद्र है, इस में चिंता औ मोह रूपी जल भरा है; प्रभु! बिन तुम्हारे नाम की नाव के सहारे, कोई इस महा कठिन समुद्र के पार नहीं जा सकता, और यों तो बहुतेरे डूबते उछलते हैं; जो नर देह पाकर तुम्हारा भजन सुमरन औ न करेगा जाप, सो नर भूलेगा धर्म औ बढ़ावेगा पाप; जिस ने संसार में आय तुम्हारा नाम न लिया, तिस ने अमृत छोड़ विष पिया; जिस के हृदे में तुम बसे आय, उसी को भक्ति मुक्ति मिली गुन गाय।

इतना कह पुनि श्री महादेव जी बोले कि, हे कृपा सिंधु! दीन बंधु! तुम्हारी महिमा अपरंपार है, किसे इतनी सामर्थ है जो उसे बखाने, औ तुम्हारे चरित्रों को जाने? अब मुझ पर कृपा कर इस बानासुर का अपराध क्षमा कीजे, औ इसे अपनी भक्ति दीजे; यह भी तुम्हारी भक्ति का अधिकारी है, क्योंकि भक्त प्रहलाद का बंस अंस है. श्री कृष्णचंद बोले कि, शिव जी! हम तुम में कुछ भेद नहीं, औ जो भेद समझेगा सो महा नर्क में पड़ेगा, और मुझे कभी न पावेगा; जिस ने तुम्हें ध्याया, तिस ने अंत समैं मुझे पाया; इस ने निष्कपट तुम्हारा नाम लिया, तिसी से मैंने इसे चतुर्भुज किया; जिसे तुम ने बर दिया, औ दोगे, तिस का निबाह मैंने किया औ करूंगा।

महाराज! इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही, सदाशिव जी दंडवत कर बिदा हो अपनी सेना ले कैलाश को गये, औ श्री कृष्णचंद वहां हीं खड़े रहे. तब बानासुर हाथ जोड़, सिर नाय, बिनती कर बोला कि, दीनानाथ! जैसे आप ने कृपा कर मुझे तारा, तैसे अब चलके दास का घर पवित्र कीजे, औ अनिरुद्ध जी औ ऊषा को अपने साथ लीजे. इस बात के सुनते ही श्री बिहारी भक्त हितकारी प्रद्युम्न जी को साथ ले बानासुर के धाम पधारे. महाराज! उस काल बानासुर अति प्रसन्न हो प्रभु को बड़ी आवभगत से पाटंबर के पांवड़े डालता लिवाय ले गया. आगे।

चरन धोय चरनोदक लियौ, अचमन कर माथे पर दियौ.

पुनि कहने लगा कि जो चरनोदक सब को दुर्लभ है, सो मैंने हरि की कृपा से पाया, औ जन्म जन्म का पाप गंवाया; यही चरनोदक त्रिभुवन को पवित्र करता है, इसी का नाम गंगा है; इसे ब्रह्मा ने कमंडल में भरा; शिव जी ने सीस पर धरा; पुनि सुर मुनि ऋषि ने माना, औ भागीरथ ने तीनों देवताओं की तपस्या कर संसार में आना, तब से इसका नाम भागीरथी हुआ. यह पाप मल हरनी, पवित्र करनी, साध संत को सुख देनी, बैकुंठ की निसेनी है; औ जो इस में न्हाया, उस ने जन्म जन्म का पाप गंवाया. जिस ने गंगा जल पिया तिस ने निःसंदेह परमपद लिया; जिन्ने भागीरथी का दरसन किया, तिन्ने सारे संसार को जीत लिया. महाराज! इतना कह बानासुर अनिरुद्ध जी औ ऊषा को ले आय, प्रभु के सनमुख हाथ जोड़ बोला।

क्षमिये दोष, भावई भई, यह मैं ऊषा दासी दई.

यों कह, वेद की विधि से बानासुर ने कन्या दान किया, औ तिस के यौतुक में बहुत कुछ दिया कि जिस का वारापार नहीं।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! ब्याह के होते ही श्री कृष्णचंद बानासुर को आसा भरोसा दे, राज गादी पर बैठाय, पोते बहू को साथ ले, बिदा हो, धौंसा बजाय, सब यदुबंसियों समेत वहां से द्वारिकापुरी को पधारे. इनके आने के समाचार पाय, सब द्वारिकाबासी नगर के बाहर जाय, प्रभु को बाजेगाजे से लिवाय लाये. उस काल पुरबासी हाट बाट चौहटों चौबारों, कोठों मे मंगली गीत गाय गाय मंगलाचार करते थे, औ राजमंदिर में श्री रुक्मिनी आदि सब सुंदरि बधाय गाय गाय रीति भांति करती थीं; औ देवता अपने अपने बिमानों पर बैठे अधर से फूल बरसाय जैजैकार करते थे; और घर बाहर सारे नगर में आनंद हो रहा था, कि उसी समय बलराम सुख धाम औ श्री कृष्णचंद आनंदकंद सब यदुबंसियों को बिदा दे, अनिरुद्ध ऊषा को साथ ले राजमंदिर में जा बिराजे।

आनी ऊषा ग्रेह मझारी, हरषहिं देखि कृष्ण की नारी.
देंहिं असीस सासु उर लावें, निरखि हरषि भूषन पहिरावें. इति।

CHAPTER LXV.

RÁJÁ NṚIG FOR THE SIN OF GIVING AWAY A COW TO A BRAHMAN WHICH HAD ALREADY BEEN GIVEN TO ANOTHER BRAHMAN, IS CHANGED INTO A LIZARD IN A DRY WELL. KṚISHṆ RELEASES HIM.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इक्ष्वाकबंसी राजा नृग बड़ा ज्ञानी दानी धर्मात्मा साहसी था, उस ने अनगिनत गौ दान कीं, जो गंगा का बालू के कन, भादों के मेह की बूंदें, औ आकाश के तारे गिने जांय, तो राजा नृग के दान की गायें भी गिनी जांय; ऐसा जो ज्ञानी महा दानी राजा, सो थोड़े अधर्म से गिरगिट हो अंधे कुए में रहा, तिसे श्री कृष्णचंद जी ने मोच दिया।

इतनी कथा सुन श्री शुकदेव जी से राजा परीक्षित ने पूछा, महाराज! ऐसा धर्मात्मा दानी राजा किस पाप से गिरगिट हो अंधे कुए में रहा, औ श्री कृष्णचंद जी ने कैसे उसे तारा? यह कथा तुम मुझे समझाकर कहो, जो मेरे मन का संदेह जाय।

श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! आप चित दे मन लगाय सुनिये, मैं ज्यों की त्यों सब कथा कह सुनाता हूं कि, राजा नृग तो नित प्रति गौ दान किया करते ही थे; पर एक दिन प्रात ही न्हाय, संध्या पूजा करके, सहस्र धौली, धूमरी, काली, पीली, भूरी, कबरी गौ मंगाय, रूपे

के खुर, सोने के सींग, तांबे की पीठ समेत, पाटंबर उढ़ाय संकल्पीं; और उन के ऊपर बहुत सा अन धन ब्राह्मनों को दिया; वे ले अपने घर गये. दूसरे दिन फिर राजा उसी भांति गौ दान करने लगा, तो एक गाय पहले दिन की संकल्पी अनजाने आन मिली, सो भी राजा ने उन गायों के साथ दान कर दी. ब्राह्मन ले अपने घर को चला; आगे दूसरे ब्राह्मन ने अपनी गौ पहचान, बाट में रोकी, औ कहा कि, यह गाय मेरी है, मुझे कल्ह राजा के य्हां से मिली है, भाई! तू क्यों इसे लिये जाता है? यह ब्राह्मन बोला, इसे तो मैं अभी राजा के व्हां से लिये चला आता हूं, तेरी कहां से हुई? महाराज! वे दोनों ब्राह्मन इसी भांति मेरी मेरी कर झगड़ने लगे; निदान झगड़ते झगड़ते वे दोनों राजा के पास गये; राजा ने दोनों की बात सुन हाथ जोड़ अति बिनती कर कहा, कि।

कोऊ लाख रुपैया लेउ, गैया एक काहू कों देउ.

इतनी बात के सुनते ही दोनों झगड़ालू ब्राह्मन अति क्रोध कर बोले कि, महाराज! जो गाय हमने स्वस्ति बोलके ली, सो कड़ोड़ रुपये पाने से भी हम न देंगे; वह तो हमारे प्रान के साथ है. महाराज! पुनि राजा ने उन ब्राह्मनों को पाओं पड़ पड़ अनेक अनेक भांति फुसलाया, समझाया, पर उन तामसी ब्राह्मनों ने राजा का कहना न माना; निदान महा क्रोध कर इतना कह दोनों ब्राह्मन गाय छोड़ चले गये कि, महाराज! जो गाय आप ने संकल्प कर हमें दी, औ हम ने स्वस्ति बोल हाथ पसार ली, वह गाय रुपये ले नहीं दी जाती; अच्छा! यों तुम्हारे व्हां रही तो कुछ चिंता नहीं।

महाराज! ब्राह्मनों के जाते ही राजा नृग पहले तो अति उदास हो मनहीं मन कहने लगा कि, यह अधर्म अनजाने मुझ से हुआ सो कैसे छुटेगा? औ पीछे अति दान पुन्य करने लगा. कितने एक दिन बीते राजा नृग काल बस हो मर गया, उसे यम के गन धर्मराज के पास ले गये. धर्मराज राजा को देखते ही सिंहासन से उठ खड़ा हुआ, पुनि आवभगत कर आसन पर बैठाय अति हित कर बोला, महाराज! तुम्हारा पुन्य है बहुत, औ पाप है थोड़ा, कहो पहले क्या भुगतोगे।

सुन नृग कहत जोर कै हाथ, मेरो धर्म टरो जिन नाथ.
पहलैं हौं भुगतोंगो पाप, तन धरकैं सहि हौं संताप.

इतनी बात के सुनते ही धर्मराज ने राजा नृग से कहा कि, महाराज! तुम ने अनजाने जो दान की हुई गाय फिर दान की, उसी पाप से आप को गिरगिट हो बन बीच गोमती तीर अंधे कुए में रहना हुआ; जब द्वापर के अंत में श्री कृष्णचंद अवतार लेंगे, तब तुम्हें वे मोच देंगे. महाराज! इतना कह धर्मराज चुप रहा. औ राजा नृग उसी समैं गिरगिट हो अंधे कुए में जा गिरा, औ जीव भचन कर कर वहां रहने लगा।

आगे कई जुग बीते, द्वापर के अंत में श्री कृष्णचंद जी ने अवतार लिया, औ ब्रज लीला कर जब द्वारिका को गए, औ उन के बेटे पोते भए, तब एक दिन कितने एक श्री कृष्ण जी के बेटे पोते मिल अहेर को गये, औ बन में अहेर करते करते प्यासे भये. दैवी वे बन में जल ढूंढते ढूंढते उसी अंधे कुए पर गए, जहां राजा नृग गिरगिट का जन्म ले रहा था; कुए में झांकते ही एक ने पुकारके सब से कहा कि, अरे भाई! देखो इस कूप में कितना बड़ा एक गिरगिट है!।

इतनी बात के सुनते ही सब दौड़ आए औ कुए के मनघटे पर खड़े हो लगे पगड़ी फेंटे मिलाय मिलाय, लटकाय लटकाय, उसे काढ़ने, औ आपस में यों कहने कि, भाई! इसे बिन कुए से निकाले हम य्हां से न जांयगे. महाराज! जब वह पगड़ी फेंटों की रस्सी से न निकला, तब उन्होंने गांव से सन, सूत, मूंज, चाम की मोटी मोटी भारी भारी बरतें मंगवाईं, और कुए में फांस गिरगिट को बांध बलकर खेंचने लगे; पर वह वहां से टसका भी नहीं. तब किसी ने द्वारिका में जाय श्री कृष्ण जी से कहा कि, महाराज! बन में अंधे कुए के भीतर एक बड़ा मोटा भारी गिरगिट है, उसे सब कुंवर काढ़ हारे, पर वह नहीं निकलता।

इतनी बात के सुनते ही हरि उठ धाए, औ चले चले वहां आए जहां सब लड़के गिरगिट को निकाल रहे थे. प्रभु को देखते ही सब लड़के बोले कि, पिता! देखो यह कितना बड़ा गिरगिट है! हम बड़ी बेर से इसे निकाल रहे हैं, यह निकलता नहीं. महाराज! इस बचन को सुन जों श्री कृष्णचंद जी ने कुए में उतर उसके शरीर में चरन लगाया, तों वह देह छोड़ अति सुन्दर पुरुष हुआ।

भूपति रूप रह्यौ गहि पाय, हाथ जोड़ बिनवै सिर नाय.

कृपा सिंधु! आपने बड़ा कृपा की, जो इस महा बिपत में आय मेरी सुध ली. शुकदेव जी बोले, राजा! जब वह मनुष रूप हो हरि से इस ढब की बातें करने लगा, तब यादवों के बालक औ हरि के बेटे पोते अचरज कर श्री कृष्णचंद से पूछने लगे कि, महाराज! यह कौन है, और किस पाप से गिरगिट हो य्हां रहा था? सो कृपा कर कहो तो हमारे मन का संदेह जाय. उस काल प्रभु ने आप कुछ न कह उस राजा से कहा।

अपनो भेद कहो समझाय, जैसें सबै सुनै मन लाय.
को हो आप कहां तें आए? कौन पाप यह काया पाए?
सुनकै नृप कहै जोरे हाथ, तुम सब जानत हो यदुनाथ!

तिस पर आप पूछते हो तो मैं कहता हूं, मेरा नाम है राजा नृग, मैंने अनगिनत गौ ब्राह्मनों को तुम्हारे निमित्त दीं. एक दिन की बात है कि, मैंने कितनी एक गाय संकल्प कर ब्राह्मनों को दीं. दूसरे दिन उन गायों में से एक गाय फिर आई, सो मैंने और गायों के साथ अनजाने दूसरे द्विज को दान कर दी. जों लेकर निकला तों पहले ब्राह्मन ने अपनी गौ पहचान

इस्से कहा, यह गाय मेरी है, मुझे कल राजा के ह्यां से मिली है, तू इसे क्यों लिये जाता है? वह बोला, मैं अभी राजा के ह्यां से लिये चला आता हूं, तेरी कैसे ऊई? महाराज! वे दोनों बिप्र इसी बात पर झगड़ते झगड़ते मेरे पास आए, मैंने उन्हें समझाया, और कहा कि, एक गाय के पलटे मुझ से लाख गौ लो, औ तुम में से कोई यह गाय छोड़ दो।

महाराज! मेरा कहा हठकर उन दोनों ने न माना; निदान गौ छोड़ क्रोध कर वे दोनों चले गए; मैं अछताय पछताय मन मार बैठ रहा; अंत समय जम के दूत मुझे धर्मराज के पास ले गये: धर्मराज ने मुझ से पूछा कि, राजा! तेरा धर्म है बऊत, औ पाप है थोड़ा, कह पहले क्या भुगतेगा? मैंने कहा, पाप! इस बात के सुनते ही, महाराज! धर्मराज बोले कि, राजा! तैंने ब्राह्मन को दी ऊई गाय फिर दान की, इस अधर्म से तू गिरगिट हो पृथ्वी पर जाय गोमती तीर बन के बीच अंधे कूप में रह, जब द्वापर युग के अंत में श्री कृष्णचंद अवतार ले तेरे पास जांयगे, तब तेरा उद्धार होगा. महाराज! तभी से मैं सरट स्वरूप इस अंधे कूप में पड़ा आप के चरन कमल का ध्यान करता था: अब आय आपने मुझे महा कष्ट से उबारा, औ भव सागर से पार उतारा।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! इतना कह राजा नृग तो बिदा हो बिमान में बैठ बैकुंठ को गया, औ श्री कृष्णचंद जी सब बाल गोपालों को समझायके कहने लगे।

बिप्र दोष जिन कोऊ करौ,　　मत कोऊ अंस बिप्र कौ हरौ.
मन संकल्प कियौ जिन राखौ,　सत्य बचन बिप्रन सों भाखौ.
बिप्र हि दियौ फेर जो लेइ,　　ताकों दंड इतौ जम देइ.
बिप्रन के सेवक भए रहियौ,　　सब अपराध बिप्र कौ सहियौ.
बिप्रहि माने सो मोहि माने,　　बिप्रन अरु मोहि भिन्न न जाने.

जो मुझ में औ ब्राह्मन में भेद जानेगा, सो नर्क में पड़ेगा; औ बिप्र को मानेगा, वह मुझे पावेगा, औ निसंदेह परम धाम में जावेगा. महाराज! यह बात कह श्री कृष्ण जी सब को वहां से ले द्वारिकापुरी पधारे. इति।

CHAPTER LXVI.

BALARÁM VISITS NAND AND JASODÁ, AND DANCES THE CIRCULAR DANCE WITH THE COWHERDESSES.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक समैं श्री कृष्णचंद आनंदकंद औ बलराम सुखधाम, मनिमय मंदिर में बैठे थे कि, बलदेव जी ने प्रभु से कहा, भाई! जब हमें बृंदाबन से

कंस ने बुला भेजा था, औ हम मथुरा को चले थे, तब गोपियों और नंद जसोदा से हम ने तुम ने यह वचन किया था कि, हम शीघ्र ही आय मिलेंगे, सो वहां न जाय द्वारिका में आय बसे; वे हमारी सुरत करतें होंगे, जो आप आज्ञा करें तो हम जन्म भूमि देखि आवें, औ उन का समाधान करि आवें. प्रभु बोले कि, अच्छा! इतनी बात के सुनते ही बलराम जी सब से बिदा हो, हल मूसल ले, रथ पर चढ़ सिधारे।

महाराज! बलराम जी जिस पुर नगर गांव में जाते थे, तहां के राजा आगू बढ़ अति शिष्टाचार कर इन्हें ले जाते थे; औ ये एक एक का समाधान करते जाते थे. कितने एक दिन में चले चले बलराम जी अवंतिका पुरी पहुंचे।

बिद्या गुरु कों कियौ प्रनाम, दिन दस तहां रहे बलराम.

आगे गुरु से बिदा हो बलदेव जी चले चले गोकुल में पधारे, तो देखते क्या हैं कि, बन में चारों ओर गायें मुंह बायें, बिन तृन खायें, श्री कृष्णचंद की सुरत किये, बांसुरी की तान में मन दिये, रांभती हांकती फिरती हैं; तिन के पीछे पीछे ग्वाल बाल हरि जस गाते, प्रेम रंग राते, चले जाते हैं; औ जिधर तिधर नगर निवासी लोग प्रभु के चरित्र औ लीला बखान रहे हैं. महाराज! जन्म भूमि में जाय ब्रजबासियों औ गायों की यह अवस्था देखि, बलराम जी, करुना कर, नयन में नीर भर लाए. आगे रथ की ध्वजा पताका देख श्री कृष्णचंद औ बलराम जी का आना जान सब ग्वाल बाल दौड़ आए. प्रभु उनके आते ही रथ से उतर लगे एक एक के गले लग लग अति हित से क्षेम कुशल पूछने; इस बीच किसी ने जा नंद जसोदा से कहा कि, बलदेव जी आए. यह समाचार पाते ही, नंद जसोदा औ बड़े बड़े गोप ग्वाल उठ धाए; उन्हें दूर से आते देख बलराम जी दौड़कर, नंदराय के पाओं पर जाय गिरे, तब नंद जी ने अति आनंद कर नयनों में जल भर, बड़े प्यार से बलराम जी को उठाय कंठ से लगाया, औ वियोग दुख गंवाया. पुनि प्रभु ने।

गहे चरन जसुमति के जाय, उनि हित कर उर लिये लगाय.
भुज भरि भेट कंठ गहि रही, लोचन तें जल सलिता बही.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! ऐसे मिलझुल नंदराय जी बलराम जी को घर में ले जाय कुशल क्षेम पूछने लगे कि, कहो उग्रसेन बसुदेव आदि सब यादव औ श्री कृष्णचंद आनंदकंद आनंद से हैं, और कभी हमारी सुरत करते हैं? बलराम जी बोले कि, आप की कृपा से सब आनंद मंगल से हैं, औ सदा सर्वदा आप का गुन गाते रहते हैं. इतना वचन सुन नंदराय चुप रहे. पुनि जसोदा रानी श्री कृष्ण जी की सुरत कर, लोचन में नीर भर, अति व्याकुल हो बोलीं कि, बलदेव जी! हमारे प्यारे नैनों के तारे श्री कृष्ण जी अच्छे हैं? बलराम जी ने कहा, बहुत अच्छे हैं. पुनि नंदरानी कहने लगीं कि, बलदेव! जब से हरि

व्हां से सिधारे, तब से हमारी आंख आगे अंधेरा हो रहा है, हम आठ पहर उन्हीं का ध्यान किये रहते हैं, औ वे हमारी सुरत भुलाय द्वारिका में जाय छाय रहे, और देखो बहन देवकी रोहनी भी हमारी प्रीति छोड़ बैठो।

मथुरा तें गोकुल ढिग जान्यौ, बसी दूर तबही मन मान्यौ.
भेटन मिलन आवते हरी, फिर न मिले ऐसी उन करी.

महाराज! इतना कह जब जसोदा जी अति व्याकुल हो रोने लगीं, तब बलराम जी ने बहुत समझाय बुझाय आसा भरोसा दे उन को ढाढ़स बंधाया. पुनि आप भोजन कर पान खाय घर से बाहर निकले तो क्या देखते हैं कि, सब ब्रज युवती तन छीन, मन मलीन, छुटे केस, मैले भेष, जी हारे, घरबार की सुरत बिसारे, प्रेम रंग रातीं, जोबन की मातीं, हरि गुन गातीं, बिरह में व्याकुल, जिधर तिधर मत्तवत चली जाती हैं. महाराज! बलराम जी को देखते ही अति प्रसन्न हो सब दौड़ आईं, औ दंडवत कर हाथ जोड़ चारों ओर खड़ी हो लगीं पूछने. औ कहने कि, कहो बलराम सुख धाम! अब कहां बिराजते हैं हमारे प्रान सुंदर स्याम? कभी हमारी सुरत करते हैं बिहारी, कै राज पाट पाय पिछली प्रीति सब बिसारी? जब से व्हां से गये हैं, तब से एक बार ऊधो के हाथ जोग का संदेसा कह पठाया था, फिर किसी की सुध न ली: अब जाय समुद्र माहिं बसे, तो काहे को किसी की सोध लेंगे? इतनी बात के सुनते ही एक गोपी बोल उठी कि, सखी! हरि की प्रीति का कौन करे परेखा, उन का तो देखा सब मे यही लेखा।

वे काहू के नाहि न ईठ, मात पिता कौं जिन दई पीठ.
राधा बिन रहते नहीं घरी, सोऊ है बरसाने परी.

पुनि हम तुम ने घर बार छोड़, कुल कान लोक लाज तज, सुत पति त्याग, हरि से नेह लगाय, क्या फल पाया? निदान नेह की नाव पर चढ़ाय, बिरह समुद्र मांझ छोड़ गए. अब सुनती हैं कि, द्वारिका में जाय प्रभु ने बहुत ब्याह किये, और सोलह सहस्र एक सौ राज कन्या, जो भौमासुर ने घेर रक्खी थीं, तिन्हें भी श्री कृष्ण ने लाय ब्याहा; अब उन से बेटे पोते नाती भये, उन्हें छोड़ व्हां क्यों आवेंगे? यह बात सुन एक और गोपी बोली कि, सखी! तुम हरि की बातों का कुछ पछतावा ही मत करो; क्योंकि उनके तो गुन सब ऊधो जी ने आय ही सुनाए थे. इतना कह पुनि वह बोली कि, आली! मेरी बात मानो तो अब।

हलधर जू के परसौ पाय, रहि हैं इन हीं के गुन गाय.
ये हैं गौर स्याम नहिं गात, करि हैं नाहिं कपट की बात.
सुनि संकर्षन ऊतर दियौ, तिहरे हेतु गवन हम कियौ.
आवन हम तुम सों कहि गये, तातें कृष्ण पठै ब्रज दये.
रहि द्वै मास करेंगे रास, पुजवेंगे सब तुम्हरी आस.

महाराज! बलराम जी ने इतना कह सब ब्रज युवतियों को आज्ञा दी कि, आज मधुमास की रात है, तुम सिंगार कर बन में आओ, हम तुम्हारे साथ रास करेंगे. यह कह बलराम जी सांझ समैं बन को सिधारे; तिनके पीछे सब ब्रज युवती भी सुथरे बस्त्र आभूषन पहन, नख सिख से सिंगार कर, बलदेव जी के पास पहुंचीं।

ठाढ़ी भई सबै सिर नाय, हलधर छबि बरनी नहीं जाय.
कनक बरन नीलंबर धरें, ससि मुख कंवल नयन मन हरें.
कुंडल एक श्रवन छबि छाजै, मनौ भान ससि संग बिराजै.
एक श्रवन हरि जस रस पान, दूजौ कुंडल धरत न कान.
अंग अंग प्रति भूषन घने, तिन की शोभा कहत न बने.
यों कह पांय परी सुंदरी, लीला रास करहु रस भरी.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही बलराम जी ने हूं किया; हूं के करते ही रास की सब वस्तु आय उपस्थित हुई. तब तो सब गोपियां सोच संकोच तज, अनुराग कर, बीन, मृदंग, करताल, उपंग, मुरली, आदि सब यंत्र ले ले लगीं बजाने गाने, औ थेई थेई कर नाच नाच भाव बताय बताय प्रभु को रिझाने. उनका बजाना गाना नाचना सुन देख, मगन हो, बारुनी पान कर, बलदेव जी भी सब के साथ मिल गाने नाचने, औ अनेक अनेक भांति के कुतूहल कर कर सुख देने लेने लगे; उस काल देवता, गंधर्व, किन्नर, यच्छ, अपनी अपनी स्त्रीयों समेत आय आय, बिमान पर बैठे प्रभु गुन गाय गाय अधर से फूल बरसाते थे; चंद्रमा तारा मंडल समेत रास मंडली का सुख देख देख किरनों से अमृत बरसाता था; औ पवन पानी भी थंभ रहा था।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इसी भांति बलराम जी ने ब्रज में रह चैत्र बैसाख दो महीने रात्र को तो ब्रज युवतियों के साथ रास बिलास किया, औ दिन को हरि कथा सुनाय नंद जसोदा को सुख दिया; तिसी में एक दिन रात समैं रास करते करते बलराम जी ने जा।

नदी तीर करके बिश्राम, बोले तहां कोपके राम.
यमुना तू इतहीं बहि आव, सहस्र धार कर मोहि न्हवाव.
जो न मानि है कह्यौ हमारौ, खंड खंड जल होय तिहारौ.

महाराज! जब बलराम जी की बात अभिमान कर यमुना ने सुनी अनसुनी की, तब तो इन्हें ने क्रोध कर उसे हल से खेंच ली, औ स्नान किया; उसी दिन से वहां यमुना अब तक टेढ़ी है. आगे न्हाय, श्रम मिटाय, बलराम जी सब गोपियों को सुख दे, साथ ले, बन से चल, नगर में आए. तहां।

गोपी कहैं सुनो ब्रजनाथ! हम कौं हूं लै चलियौ साथ.

यह बात सुन बलराम जी गोपियों को आसा भरोसा दे, ढाढ़स बंधाय, बिदा कर, बिदा होने नंद जसोदा के निकट गये; पुनि तिन्हें भी समझाय बुझाय धीरज बंधाय, कई दिन रह, बिदा हो, द्वारिका को चले, औ कितने एक दिनों में जाय पहुंचे. इति।

CHAPTER LXVII.

PAUNṚIK, RÁJÁ OF KÁSHÍ, ASSUMES THE APPEARANCE OF VISHNU, FOR WHICH HE IS SLAIN BY KṚISHṆ. HIS SON SUDAKSH ENGAGES IN PENANCE, IN ORDER TO OBTAIN POWER TO REVENGE HIS FATHER. SHIVA GRANTS HIM A FEMALE IMP, WHO SETS FIRE TO DWÁRIKÁ, BUT IS REPULSED AND SLAIN BY THE QUOIT SUDARSAN.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! काशी पुरी में एक पौंड्रक नाम राजा, सो महा बली औ बड़ा प्रतापी था; तिस ने बिष्णु का भेष किया, औ छल बल कर सब का मन हर लिया; सदा पीत बसन, बैजंतीमाल, मुक्तमाल, मनिमाल, पहने रहै; औ संख, चक्र, गदा, पद्म लिये, दो हाथ काठ के किये, एक घोड़े पर काठ ही का गरुड़ धरे, उस पर चढ़ा फिरै; वह वासुदेव पौंड्रक कहावे, औ सब से आप को पुजावे; जो राजा उस की आज्ञा न माने, उस पर चढ़ जाय, फिर मारधाड़ कर तिसे अपने बस में रक्खै।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! तिसका यह आचरन देख सुन, देस देस, नगर नगर, गांव गांव, घर घर में लोग चरचा करने लगे कि, एक वासुदेव तो ब्रज भूमि के बीच यदु कुल में प्रगट हुए थे, सो द्वारिका पुरी में बिराजते हैं; दूसरा अब काशी में हुआ है, दोनों में हम किसे सच्चा जानें औ मानें? महाराज! देस देस में यह चरचा हो रही थी कि, कुछ संधान पाय, वासुदेव पौंड्रक एक दिन अपनी सभा में आय बोला।

को है कृष्ण द्वारिका रहै, ताकौं वासुदेव जग कहै.
भक्त हेतु भू हौं औतर्यो, मेरो भेष तहां तिन धर्यो.

इतनी बात कह, एक दूत को बुलाय, उस ने ऊंच नीच की बातें सब समझाय बुझाय, इतना कह द्वारिका में श्री कृष्णचंद जी के पास भेज दिया कि, कै तो मेरा भेष बनाए फिरता है, सो छोड़ दे; नहीं तो लड़ने का बिचार कर. आज्ञा पाते ही दूत बिदा हो काशी से चला चला द्वारिका पुरी पहुंचा, औ श्री कृष्णचंद जी की सभा में जा उपस्थित हुआ. प्रभु ने इससे पूछा कि, तू कौन है, और कहां से आया है? बोला, मैं काशी पुरी के वासुदेव पौंड्रक का दूत हूं, स्वामी का पठाया कुछ संदेसा कहने आप के पास आया हूं, कहो तो कहूं. श्री कृष्णचंद बोले, अच्छा कह. प्रभु के मुख से यह बचन निकलते ही दूत खड़ा हो, हाथ जोड़, कहने लगा कि,

महाराज! वासुदेव पौनृक ने कहा है कि, त्रिभुवन पति जगत का करता तो मैं हूं, तू कौन है, जो मेरा भेष बनाय, जुरासिंधु के डर से भाग, द्वारिका में जाय रहा है? कैतो मेरा बाना छोड़ शीघ्र आय मेरी सरन गह, नहीं तो तेरे सब यदुबंसियों समेत तुझे आय मारूंगा, औ भूमि का भार उतार अपने भक्तों को पालूंगा. मैं हीं हूं अलष अगोचर निरंकार, मेरा ही जप यज्ञ दान करते हैं सुर मुनि ऋषि नर बार बार; मैं हीं ब्रह्मा हो बनाता हूं; बिष्णु हो पालता हूं; शिव हो संहारता हूं. मैंने हीं मच्छ रूप हो वेद डूबते निकाले; कच्छ स्वरूप हो गिर धारन किया; वाराह बन भूमि को रख लिया; नृसिंह अवतार ले हिरनकस्यप को वध किया; बावन अवतार ले बलि को छला; रामावतार ले महा दुष्ट रावन को मारा; मेरा यही काम है कि, जब जब असुर मेरे भक्तों को आय सताते है, तब तब मैं अवतार ले भूमि का भार उतारता हूं।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! वासुदेव पौनृक का दूत तो इस ढब की बातें करता था, श्री कृष्णचंद आनंदकंद रत्न सिंहासन पर बैठे यादवों की सभा में हंस हंस कर सुनते थे कि, इस बीच कोई यदुबंसी बोल उठा।

तोहि कहा जम आयौ लैन? भाखत तू जो ऐसे बैन.
मारें कहा तोहि हम, नीच! आयौ है कपटी के बीच.

जो तू बसीठ न होता, तो बिन मारे न छोड़ते; दूत को मारना उचित नहीं. महाराज! जब यदुबंसी ने यह बात कही, तब श्री कृष्ण जी ने उस दूत निकट बुलाय, समझाय बुझायके कहा कि, तू जाय अपने वासुदेव से कह कि, कृष्ण ने कहा है, जो मैं तेरा बाना छोड़ सरन आता हूं, सावधान हो रहे. इतनी बात के सुनते ही दूत दंडवत कर बिदा हुआ; औ श्री कृष्णचंद जी भी अपनी सेना ले काशी पुरी को सिधारे. दूत ने जाय वासुदेव पौनृक से कहा कि, महाराज! मैंने द्वारिका में जाय आप का कहा संदेसा सब श्री कृष्ण को सुनाया; सुनकर उन्हों ने कहा कि. तू अपने स्वामी से जाय कह कि, सावधान हो रहे, मैं उसका बाना छोड़ सरन लेन आता हूं।

महाराज! बसीठ यह बात कहता ही था कि, किसी ने आय कहा कि, महाराज! आप निचिंत क्या बैठे हो? श्री कृष्ण अपनी सेना ले चढ़ि आया. इतनी बात के सुनते ही वासुदेव पौनृक उसी भेष से अपना सब कटक ले चढ़ धाया, औ चला चला श्री कृष्णचंद जी के सनमुख आया. तिस के साथ एक और भी काशी का राजा चढ़ दौड़ा; दोनों ओर दल तुल कर खड़े हुए; जुझाऊं बाजने लगे; सूर बीर रावत लड़ने, औ कायर खेत छोड़ छोड़ अपना जीव ले ले भागने लगे. उस काल युद्ध करता करता काल बस हो वासुदेव पौनृक उसी भांति श्री कृष्णचंद जी के सनमुख जा ललकारा; उसे बिष्णु भेष से देख सब यदुबंसियों ने श्री कृष्णचंद से पूछा कि, महाराज! इसे इस भेष से कैसे मारेंगे? प्रभु ने कहा, कपटी के मारने का कुछ दोष नहीं।

इतना कह हरि ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी, उस ने जाते ही जो दो भुजा काठ की थीं सो उखाड़ लीं, उसके साथ गरुड़ भी टूटा, औ तुरंग भागा. जब वासुदेव पौनृक नीचे गिरा, तब सुदरसन ने उसका सिर काट फेंका।

कटत सीस नृप पौनृक तस्यौ, सीस जाय कासी में पस्यौ.
जहां हुतौ ताकौ रनवास, देखत सीस सुंदरी तासु.
रोवें यों कहि खेंचें बार, यह गति कहा भई करतार?
तुम तो अजर अमर हे भए, कैसे प्रान पलक में गए?

महाराज! रानीयों का रोना सुन, सुदच्छ नाम उसका एक बेटा था सो वहां आय, बाप का सिर कटा देख, अति क्रोध कर कहने लगा कि, किस ने मेरे पिता को मारा है? उस से मैं बिन पलटा लिये न रहूंगा।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! वासुदेव पौनृक को मार श्री कृष्णचंद जी तो अपना सब कटक ले द्वारिका को सिधारे; औ उसका बेटा अपने बाप का बैर लेन को महादेव जी की अति कठिन तपस्या करने लगा. इस में कितने एक दिन पीछे एक दिन प्रसन्न हो महादेव भोलानाथ ने आय कहा कि, बर मांग. यह बोला, महाराज! मुझे यही बर दीजे कि, श्री कृष्ण से मैं अपने पिता का बैर लूं. शिव जी बोले, अच्छा! जो तू बैर लिया चाहता है तो एक काम कर. बोला, क्या? कहा, उलटे वेद मंत्रों से यज्ञ कर, इससे एक राच्छसी अग्नि से निकलेगी, उस से जो तू कहेगा सो वह करेगी. इतना बचन शिव जी के मुख से सुन, महाराज! वह जाय ब्राह्मनों को बुलवाय, बेदी रच, तिल जौ घी चीनी आदि सब होम की सामा ले, शाकल बनाय, लगा उलटे वेद मंत्र पढ़ पढ़ होम करने. निदान यज्ञ करते करते अग्नि कुंड से कृत्या नाम एक राच्छसी निकली, सो श्री कृष्ण जी के पीछे ही पीछे नगर देस गांव जलाती जलाती द्वारिका पुरी में पहुंची, औ लगी पुरी को जलाने. नगर को जलता देख सब यदुबंसी भय खाय श्री कृष्णचंद जी के पास जा पुकारे कि, महाराज! इस आग से कैसे बचेंगे? यह तो सारे नगर को जलाती चली आती है. प्रभु बोले, तुम किसी बात की चिंता मत करो, यह कृत्या नाम राच्छसी कासी से आई है, मैं अभी इसका उपाय करता हूं।

महाराज! इतना कह श्री कृष्ण जी ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी कि, इसे मार भगाव, औ इसी समय जाय कासी पुरी को जलाय आव. हरि की आज्ञा पाते ही सुदरसन चक्र ने कृत्या को मार भगाया, औ बात के कहते ही कासी को जा जलाया।

परजा भागी फिरे दुखारी, गारी देहि सुदच्छ हि भारी.
फिस्यौ चक्र शिव पुरी जलाय, सोई कही कृष्ण सों आय. इति।

CHAPTER LXVIII.

BALARÁM SLAYS THE MONKEY DUBID.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जैसे बलराम सुखधाम रूप निधान ने दुबिद कपि को मारा, तैसे ही मैं कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनो. एक दिन दुबिद, जो सुग्रीव का मंत्री, औ मयंद्री कपि का भाई, औ भौमासुर का सखा था, कहने लगा कि, एक सूल मेरे मन में है, सो जब न तब खटकता है. यह बात सुन किसी ने उससे पूछा कि, महाराज! सो क्या? बोला जिस ने मेरे मित्र भौमासुर को मारा, तिसे मारूं तो मेरे मन का दुख जाय।

महाराज! इतना कह वह तिसी समैं अति क्रोध कर द्वारिका पुरी को चला, श्री कृष्णचंद के देस उजाड़ता, औ लोगों को दुख देता; किसी को पानी बरसाय बहाया; किसी को आग बरसाय जलाया; किसी को पहाड़ से पटका; किसी पर पहाड़ दे पटका; किसी को समुद्र में डुबाया; किसी को पकड़ बांध गुफा में छिपाया; किसी का पेट फाड़ डाला; किसी पर वृच उखाड़ मारा; इसी रीति से लोगों को सताता जाता था, औ जहां मुनि ऋषि देवताओं को बैठे पाता था, तहां गू मूत रुधिर बरसाता था; निदान इसी भांति लोगों को दुख देता, औ उपाध करता, जा द्वारिका पुरी पहुंचा, औ अल्प तन धर श्री कृष्णचंद के मंदिर पर जा बैठा. उसको देख सब सुंदरी मंदिर के भीतर किवाड़ दे दे भागकर जाय छिपीं; तब तो वह मन हीं मन यह विचार बलराम जी के समाचार पाय रेवत गिर पर गया, कि।

पहले हलधर कौं बध करौं, पाछे प्रान कृष्ण के हरौं.

जहां बलदेव जी स्त्रियों के साथ विहार करते थे, महाराज! छिपकर यह वहां क्या देखता है कि, बलराम जी मद पी, सब स्त्रियों को साथ ले एक सरोवर बीच अनेक अनेक भांति की लीला कर कर गाय गाय न्हाय न्हिलाय रहे हैं. यह चरित्र देख दुबिद एक पेड़ पर जा चढ़ा, औ किलकारियां मार मार, घुरक घुरक, लगा डाल डाल कूद कूद फिर फिर चरित्र करने; औ जहां मदिरा का भरा कलस औ सब के चीर धरे थे, तिन पर हगने मूतने लगा. बंदर को सब सुंदरी देखते ही डर कर पुकारीं कि, महाराज! यह कपि कहां से आया? जो हमें डराय डराय, हमारे वस्त्रों पर हग मूत रहा है. इतनी बात के सुनते ही बलदेव जी ने सरोवर से निकल, जों हंसके ढेल चलाया तों वह इन को मतवाला जान, महा क्रोध कर, किलकारी मार नीचे आया; आते ही उस ने मद का भरा घड़ा जो तीर पर धरा था सो लुढ़ाय दिया, औ सारे चीर फाड़ लीर लीर कर डाले. तब तो क्रोध कर बलराम जी ने हल मूसल संभाले, औ

वह भी पर्वत सम हो प्रभु के सोंहीं युद्ध करने को आय उपस्थित ज़आ. इधर से ये हल मूसल चलाते थे, औ उधर से वह पेड़ पर्वत।

महा युद्ध दोऊ मिल करैं, नैक न कहूं ठौर तें टरैं.

महाराज! ये तो दोनों बली अनेक अनेक प्रकार की घातें बातें कर निधड़क लड़ते थे; पर देखनेवालों का मारे भय के प्रान ही निकलता था; निदान प्रभु ने सब को दुखित जान दुविद को मार गिराया. उसके मरते ही सुर नर मुनि सब के जी को आनंद ज़आ, औ दुख दंद गया।

फूले देव पज़प बरसावैं, जैजे कर हलधर हि सुनावैं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने कहा कि, महाराज! त्रेतायुग से वह बंदर ही था, तिसे बलदेव जी ने मार उद्धार किया. आगे बलराम सुखधाम सब को सुख दे वहां से साथ ले, श्री द्वारिकापुरी में आए, औ दुविद के मारने के समाचार सारे यदुबंसियों को सुनाए. इति।

CHAPTER LXIX.

SAMBÚ, THE SON OF KRISHN, ENDEAVOURS TO CARRY OFF LAKSHMANÁ, THE DAUGHTER OF DURYODHAN, BUT IS TAKEN PRISONER. ON THE KAURAVAS REFUSING TO RELEASE HIM, BALARÁM DRAWS THEIR CITY TO THE GANGES, AND IS ABOUT TO DROWN IT, WHEN THEY SUPPLICATE FOR MERCY. THENCEFORTH HASTINÁPUR REMAINS ON THE BANK OF THE RIVER.

श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! अब दुर्योधन की बेटी लछमना के विवाह की कथा कहता हूं कि जैसे संबू हस्तिनापुर जाय उसे ब्याह लाए. महाराज! राजा दुर्योधन की पुत्री लछमना जब ब्याहन जोग ज़ई, तब उसके पिता ने सब देस देस के नरेसों को पत्र लिख लिख बुलाया, औ स्वयंबर किया. स्वयंबर के समाचार पाय श्री कृष्णचंद का पुत्र, जो जामवती से था संबू नाम, वह भी वहां पज़ंचा. वहां जाय संबू क्या देखता है कि, देस देस के नरेस, बलवान, गुनवान, रूप निधान, महा जान, सुथरे वस्त्र आभूषन रत्न जटित पहने, अस्त्र शस्त्र बांधे, मौन साधे, स्वयंबर के बीच पांति पांति खड़े हैं; औ उन के पीछे उसी भांति सब कौरव भी; जहां तहां बाहर बाजन बाज रहे हैं; भीतर मंगली लोग मंगलाचार कर रहे हैं; सब के बीच राज कुमारी मात पिता की प्यारी, मन हीं मन यों कहती, हार लिये, आंखों की सी पुतली फिरती है कि, मैं किसे बरूं?।

महाराज! जब वह सुंदरी शीलवान, रूप निधान, माला लिये, लाज किये, फिरती फिरती संबू के सनमुख आई, तब इन्हों ने सोच संकोच तज, निर्भय उसे हाथ पकड़, रथ में बैठाय, अपनी बाट ली. सब राजा खड़े मुंह देखते रह गए, और कर्न, द्रोन, सल्य, भूरिश्रवा दुर्योधन आदि सारे कौरव भी उस समय कुछ न बोले; पुनि अति क्रोध कर आपस में कहने लगे

कि, देखो इस ने क्या काम किया, जो रस में आय अनरस किया कर्न बोला! कि, यदुबंसियां की सदा से यह टेव है कि, जहां कहीं शुभ काज में जाते हैं, तहां उपाध ही करते हैं. सत्य ने कहा।

जात हीन अब हीं ये बढ़े, राज पाय माथे पर चढ़े.

इतनी बात के सुनते ही सब कौरव महा कोप कर अपने अपने अस्त्र शस्त्र ले यों कह चढ़ दौड़े कि, देखें वह कैसा बली है जो हमारे आगे से कन्या ले निकल जायगा! औ बीच बाट के संबू को जा घेरा. आगे दोनों ओर से शस्त्र चलने लगे; निदान कितनी एक बेर के लड़ने में जब संबू का सारथी मारा गया, औ वह नीचे उतरा, तब ये उसे घेर पकड़ कर बांध लाए; सभा के बीचों बीच खड़ा कर इन्होंने उस से पूछा कि, अब तेरा पराक्रम कहां गया? यह बात सुन वह लजाय रहा. इस में नारद जी ने आय राजा दुर्योधन समेत सब कौरवों से कहा कि, यह संबू नाम श्री कृष्णचंद का पुत्र है, तुम इसे कुछ मत कहो, जो होना था सो ऊआ, अभी इसके समाचार पाय दल साज आवेंगे श्री कृष्ण औ बलराम, जो कुछ कहना सुन्ना हो सो उन से कह सुन लीजो, लड़के से बात कहनी तुम्हें किसी भांति उचित नहीं, इस ने लड़क बुद्धि की तो की. महाराज! इतना बचन कह नारद जी वहां से बिदा हो, चले चले द्वारिकापुरी को गये, औ उग्रसेन राजा की सभा में जा खड़े रहे।

देखत सबै उठे सिर नाय, आसन दियौ ततछन लाय.

बैठते ही नारद जी बोले कि, महाराज! कौरवों ने संबू को बांध महा दुख दिया, औ देते हैं; जो इस समैं जाय उस की सुध लो तो लो, नहीं फिर संबू का बचना कठिन है।

गर्ब भयौ कौरव कों भारी, लाज सकुच नहीं करी तिहारी.
बालक कों बांध्यौ उन ऐसें, शत्रु कों बांधे कोऊ जैसें.

इस बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने अति कोप कर यदुबंसियों को बुलायके कहा कि, तुम अभी सब हमारा कटक ले हस्तिनापुर पर चढ़ जाओ, औ कौरवों को मार संबू को छुड़ाय ले आओ. राजा की आज्ञा पाते ही जों सब दल चलने को उपस्थित ऊआ, तों बलराम जी ने जाय राजा उग्रसेन से समझायकर कहा कि, महाराज! आप उन पर सेना न पठाइये, मुझे आज्ञा कीजे जो मैं जाय उन्हें उलहना दे संबू को छुड़ाय लाऊं; देखूं विन्हों ने किस लिये संबू को पकड़ बांधा, इस बात का भेद बिन मेरे गये न खुलेगा।

इतनी बात के कहते ही राजा उग्रसेन ने बलराम जी को हस्तिनापुर जाने की आज्ञा दी; औ बलदेव जी कितने एक बड़े बड़े पंडित ब्राह्मन औ नारद मुनि को साथ ले द्वारिका से चले, चले चले हस्तिनापुर पऊंचे. उस समय प्रभु ने नगर के बाहर एक बाड़ी में डेरा कर नारद जी से कहा कि, महाराज! हम य्हां उतरे हैं, आप जाय कौरवों से हमारे आने के समाचार कहिये.

प्रभु की आज्ञा पाय नारद जी ने नगर में जाय बलराम जी के आने के समाचार सुनाए।

सुनकै सावधान सब भए, आगे होय लेन तहां गए.
भीषम कर्न द्रोन मिल चले, लीने बसन पटंबर भले.
दुर्योधन यों कहिकै धायौ, मेरौ गुरु संकर्षन आयौ.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! सब कौरवों ने उस बाड़ी में जाय बलराम जी से भेट कर भेट दी, औ पाश्रों पड़, हाथ जोड़ बहुत सी स्तुति की. आगे चोआ चंदन लगाय, फूलमाल पहराय, पाटंबर के पांवड़े बिछाय, बाजेगाजे से नगर में लिवालाए. पुनि षट रस भोजन करवाय, पास बैठ सब की कुशल चेम पूछ पूछा कि, महाराज! आप का आना व्हां कैसे हुआ? कौरवों के मुख से यह बात निकलते ही बलराम जी बोले कि, हम राजा उग्रसेन के पठाए, संदेसा कहन तुम्हारे पास आए हैं. कौरव बोले कहो. बलदेव जी ने कहा कि, राजा जी ने कहा है कि, तुम्हें हम से बिरोध करना उचित न था।

तुम हे बहुत सो बालक एक, कियौ युद्ध तज ज्ञान बिवेक.
महा अधर्म जानकै कियौ, लोक लाज तज सुर गह लियौ.
ऐसो गर्व तुम्हें अब भयौ, समझ बूज ताकौं दुख दयौ.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही कौरव महा कोप कर बोले कि, बलराम जी! बस करो, बस करो, अधिक बड़ाई उग्रसेन की मत करो; हम से यह बात सुनी नहीं जाती. चार दिन की बात है कि, उग्रसेन को कोई जानता मानता न था; जब से हमारे व्हां सगाई की, तभी से प्रभुता पाई; अब हमी से अभिमान की बात कह पठाई; उसे लाज नहीं आती जो द्वारिका में बैठा राज पाय, पिछली बात सब गंवाय, जो मन मानता है सो कहता है? वह दिन भूल गया कि, मथुरा में ग्वाल गूजरों के साथ रहता खाता था? जैसा हमने साथ खिलाय संबंध कर राज दिलवाया, तिस का फल हाथों हाथ पाया; जो किसी पूरे पर गुन करते, तो वह जन्म भर हमारा गुन मानता; किसी ने सच कहा है कि, ओछे की प्रीत बालू की भींत समान है।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, महाराज! ऐसे अनेक अनेक प्रकार की बातें कह कह, कर्न, द्रोन, भीषम, दुर्योधन, सल्य, आदि सब कौरव गर्व कर उठ उठ अपने घर गए; औ बलराम जी उन की बातें सुन सुन हंसि हंसि वहां बैठ मन हीं मन यों कहते रहे कि, इन को राज औ बल का गर्व भया है जो ऐसी ऐसी बातें करते हैं; नहीं तो ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र का ईस, जिसे निवावै सीस, तिस उग्रसेन की ये निंदा करें! तो मेरा नाम बलदेव जो सब कौरवों को नगर समेत गंगा में डबोऊं नहीं तो नहीं।

महाराज! इतना कह बलदेव जी अति क्रोध कर सब कौरवों को नगर समेत हल से खैंच गंगा तीर पर ले गए, औ चाहैं कि डबोवैं, तोहीं अति घबराय भय खाय सब कौरव आय,

हाथ जोड़, सिर नाय, गिड़गिड़ाय, बिनती कर बोले कि, महाराज! हमारा अपराध क्षमा कीजे, हम आप की सरन आए, अब बचाय लीजे, जो कहोगे सो करेंगे, सदा राजा उग्रसेन की आज्ञा में रहेंगे. राजा! इतनी बात के कहते ही बलराम जी का क्रोध शांत हुआ, औ जो हल से खैंच नगर गंगा तीर पर लाए थे, सो वहीं रक्खा; तिसी दिन से हस्तिनापुर गंगा तीर पर है, पहले वहां न था. आगे उन्हों ने संबू को छोड़ दिया, औ राजा दुर्योधन ने चचा भतीजों को मनाय, घर में ले जाय, मंगलाचार करवाय, वेद की बिध से संबू को कन्या दान दिया, औ उस के यौतुक में बहुत कुछ संकल्प किया।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने कहा कि, महाराज! ऐसे बलराम जी हस्तिनापुर जाय, कौरवों का गर्व गंवाय, भतीजे को छुड़ाय ब्याह लाए. उस काल सारी द्वारिका पुरी में आनंद हो गया; औ बलदेव जी ने हस्तिनापुर का सब समाचार ब्यौरे समेत समझाय राजा उग्रसेन के पास जाय कहा. इति।

CHAPTER LXX.

THE SAGE NÁRAD VISITS KRISHN, AND OBSERVES HIS MANNER OF LIVING WITH HIS SIXTEEN THOUSAND ONE HUNDRED AND EIGHT WIVES.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक समय नारद जी के मन में आई कि, श्री कृष्णचंद सोलह सहस्र एक सौ आठ स्त्री ले कैसे गृहस्थाश्रम करते हैं, सो चलकर देखा चाहिये. इतना विचार चले चले द्वारिकापुरी में आए, तो नगर के बाहर क्या देखते हैं कि, कहीं बाड़ियों में नाना भांति के बड़े बड़े ऊंचे ऊंचे वृक्ष हरे फल फूलों से भरे खरे झूम रहे हैं; तिन पर कपोत कीर, चातक, मोर, आदि पक्षी मन भावन बोलियां बैठे बोल रहे हैं: कहीं सुंदर सरोवरों में कंवल खिले हुए, तिन पर भौंरों के झुंड के झुंड गूंज रहे; तीर में हंस सारस समेत खग कुलाहल कर रहे हैं; कहीं फुलवाड़ियों में माली मीठे सुरों से गाय गाय ऊंचे नीचे नीर चढ़ाय, क्यारियों में जल खैंच रहे हैं; कहीं इंदारे बावड़ियों पर रहंट परोहे चल रहे हैं; औ पनघट पर पनहारियों के ठट्ठ के ठट्ठ लगे हैं; तिन की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती, वह देखे ही बन आवे।

महाराज! यह शोभा बन उपबन की निरख हरष नारद जी पुरी में जाय देखें, तो अति सुंदर कंचन के मनिमय मंदिर जगमगाय रहे हैं; तिन पर ध्वजा पताका फहराय रही हैं; बार बार में तोरन बंदनवार बंधी हैं; द्वार पर केले के खंभ औ कंचन के कुंभ सपल्लव भरे धरे हैं; घर घर की जाली झरोखों मोखों से धूप का धुंआं निकल स्याम घटा सा मंडलाय रहा है; उस के बीच सोने के कलस कलसियां बिजली सी चमक रही हैं; घर घर पूजा पाठ होम यज्ञ दान

हो रहा है; ठौर ठौर भजन सुमिरन गान कथा पुरान की चरचा चल रही है; जहां तहां यदुबंसी इंद्र की सी सभा किये बैठे हैं; औ सारे नगर में सुख छाय रहा है।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीछित से कहा कि, महाराज! नारद जी पुरी में जाते ही मगन हो कहने लगे कि, प्रथम किस मंदिर में जाऊं जो श्री कृष्णचंद को पाऊं? महाराज! मन ही मन इतना कह नारद जी पहले श्री रुक्मिनी जी के मंदिर में गये. वहां श्री कृष्णचंद बिराजते थे, सो इन्हें देख उठ खड़े भये. रुक्मिनी जी जल की झारी भर लाई. प्रभु ने पांव धोय आसन पर बैठाय, धूप दीप नैवेद्य धर, पूजा कर, हाथ जोड़ नारद जी से कहा।

जा घर चरन साध के परैं, ते नर सुख संपत अनुसरैं.
हम से कुटमी तारन हेतु, घर हि आय तुम दरसन देतु.

महाराज! प्रभु के मुख से इतना बचन निकलते ही, यह असीस दे नारद जी जंबावती के मंदिर में गये कि, जगदीस! तुम चिर थिर रहो श्री रुक्मिनी जी के सीस. तो देखा कि, हरि सारपासे खेल रहे हैं. नारद जी को देखते ही जों प्रभु उठे, तो नारद जी आशीर्वाद दे उलटे फिरे. पुनि सतिभामा के व्हां गये, तो देखा कि, श्री कृष्णचंद बैठे तेल उबटन लगवाय रहे ह. वहां से चुपचाप नारद जी फिर आए, इस लिये कि, शास्त्र में लिखा है जो तेल लगाने के समैं न राजा प्रनाम करै, न ब्राह्मन असीस. आगे नारद जी कालिंदी के घर गये; वहां देखा कि, हरि सो रहे हैं. महाराज! कालिंदी ने नारद जी को देखते ही हरि को पांव दाब जगाया; प्रभु जागते ही ऋषि के निकट जाय दंडवत कर, हाथ जोड़ बोले कि, साध के चरन तीरथ के जल समान है, जहां पड़े तहां पवित्र करते हैं. यह सुन वहां से भी असीस दे नारद जी चल खड़े हुए, औ मित्रबिंदा के धाम गए; तहां देखा कि ब्रह्म भोज हो रहा है, औ श्री कृष्ण परोसते हैं. नारद जी को देख प्रभु ने कहा कि, महाराज! जो कृपा कर आए हो तो आप भी प्रसाद ले हमें उच्छिष्ट दीजे, औ घर पवित्र कीजे. नारद जी ने कहा, महाराज! मैं थोड़ा फिर आऊं, फिर आऊंगा, ब्राह्मनों को जिमा लीजे, पुनि ब्रह्म शेष आय मैं पाऊंगा. यों सुनाय नारद जी बिदा हो सत्या के गेह पधारे; वहां क्या देखते हैं कि, श्री बिहारी भक्त हितकारी आनंद से बैठे बिहार कर रहे हैं. यह चरित्र देख नारद जी उलटे पावों फिरे; पुनि भद्रा के स्थान पर गए तो देखा कि, हरि भोजन कर रहे हैं; वहां से फिरे तो लछमना के गेह पधारे, तो तहां देखा कि, प्रभु स्नान कर रहें हैं।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने कहा कि, महाराज! इसी भांति नारद मुनि जी सोलह सहस्र एक सौ आठ घर फिरे, पर बिन श्री कृष्ण कोई घर न देखा, जहां देखा तहां हरि को गृहस्थाश्रम का काज ही करते देखा; यह चरित्र लख।

नारद के मन अचरज एह, कृष्ण बिना नहीं कोऊ गेह.
जा घर जांउ तहां हरि प्यारी, ऐसी प्रभु लीला बिस्तारी.
सोलह सहस्र अठोतर सौ घर, तहां तहां सुंदरि संग गिरधर.
मगन होय ऋषि कहत बिचारी, जोग माया यदुनाथ तिहारी.
काहू सों नहीं जानी परै, कौन तिहारी माया तरै?

महाराज! जब नारद जी ने अचंभा कर कहे ये बैन, तब बोले प्रभु श्री कृष्णचंद सुख दैन कि, नारद! तू अपने मन में कुछ खेद मत करै, मेरी माया अति प्रबल है, औ सारे संसार में फैल रही है, यह मुझे ही मोहती है, तो दूसरे की क्या सामर्थ जो इस के हाथ से बचे, औ जगत के बीच आय इस में न रचे?।

नारद सुन बिनवै सिर नाय, मो पर कृपा करौ यदुराय,

जो आप की भक्ति सदा मेरे चित में रहे, औ मेरा मन माया के बस होय बिषय की वासना न चहे. राजा! इतना कह नारद जी प्रभु से बिदा हो, दंडवत कर, बीन बजाते, गुन गाते, अपने स्थान को गये, औ श्री कृष्णचंद जी द्वारिका में लीला करते रहे. इति।

CHAPTER LXXI.

A BRAHMAN BRINGS A MESSAGE FROM TWENTY THOUSAND RÁJÁS TO KṚISHṆ, TO THE EFFECT THAT THEY ARE IMPRISONED BY JURÁSINDHU, IN MAGADH. AT THE SAME TIME NÁRAD INFORMS KṚISHṆ THAT THE PÁNDAVS ARE EXPECTING HIM TO AID THEM IN PERFORMING A ROYAL SACRIFICE.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक दिन श्री कृष्णचंद रात समैं श्री रुक्मिनी जी के साथ बिहार करते थे, औ श्री रुक्मिनी जी आनंद में मगन बैठीं प्रीतम का चंदमुख निरख अपने नयन चकोरों को सुख देती थीं कि, इस बीच रात बितीत भई; चिड़ियां चुहचुहाईं; अंबर में अरुनाई छाई; चकोर को बियोग हुआ; औ चकवा चकवियों को संजोग; कंवल बिकसे; कमोदनी कुम्हलाई; चंद्रमा छबि छीन भया; औ सूरज का तेज बढ़ा; सब लोग जागे, औ अपना अपना गृह काज करन लागे।

उस काल रुक्मिनी जी तो हरि के समीप से उठ, सोच संकोच लिये घर की टहल टकोर करने लगीं, औ श्री कृष्णचंद जी देह शुद्ध कर, हाथ मुंह धोय, स्नान कर, जप ध्यान पूजा तर्पन से निचिंत होय, ब्राह्मनों को नाना प्रकार के दान दे, नित्य कर्म से सुचित हो, बालभोग पाय, पान लौंग इलायची जायपत्री जायफल के साथ खाय, सुथरे वस्त्र आभूषन मंगाय पहन, शस्त्र

लगाय, राजा उग्रसेन के पास गये; पुनि जुहार कर यदुबंसियों की सभा के बीच आय रत्न सिंहासन पर बिराजे।

महाराज! उसी समैं एक ब्राह्मन ने जाय द्वारपालों से कहा कि, तुम श्री कृष्णचंद जी से जाकर कहो कि, एक ब्राह्मन आप के दरसन की अभिलाषा किये द्वार पर खड़ा है, जो प्रभु की आज्ञा पावे तो भीतर आवे. ब्राह्मन की बात सुन द्वारपाल ने भगवान से जा कहा कि, महाराज! एक ब्राह्मन आप के दरसन की अभिलाषा किये पौर पर खड़ा है, जो आज्ञा पावे तो आवे. हरि बोले, अभी लाव. प्रभु के मुख से बात निकलते ही, द्वारपाल हाथों हाथ ब्राह्मन को सनमुख ले गए. विप्र को देखते ही श्री कृष्णचंद सिंहासन से उतर, दंडवत कर, आगू बढ़, हाथ पकड़, उसे मंदिर में ले गए, औ रत्न सिंहासन पर अपने पास बिठाय पूछने लगे कि, कहो देवता! आप का आना कहां से हुआ, औ किस कार्य के हेतु पधारे? ब्राह्मन बोला, कृपा सिंधु दीन बंधु! मैं मगध देस से आया हूं औ बीस सहस्र राजाओं का संदेसा लाया हूं. प्रभु बोले, सो क्या? ब्राह्मन ने कहा, महाराज! जिन बीस सहस्र राजाओं को जुरासिंधु ने बल कर पकड़ हथकड़ी बेड़ी दे रक्खा है, तिन्हों ने मेरे हाथ आप को अति बिनती कर यह संदेसा कहला भेजा है. दीनानाथ! तुम्हारी सदा सर्वदा यह रीति है कि, जब जब असुर तुम्हारे भक्तों को सताते हैं, तब तब तुम अवतार ले अपने भक्तों की रक्षा करते हो. नाथ! जैसे हिरनकस्यप से प्रहलाद को छुड़ाया, औ गज को ग्राह से, तैसे ही दया कर अब हमें इस महा दुष्ट के हाथ से छुड़ाइये, हम महा कष्ट में है, तुम बिन और किसी की सामर्थ नहीं जो इस महा बिपत से निकाले, औ हमारा उद्धार करे।

महाराज! इतनी बात के सुनते ही प्रभु दयाल हो बोले कि, हे देवता! तुम अब चिंता मत करो, विन की चिंता मुझे है. इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन संतोष कर श्री कृष्णचंद को असीस देने लगा. इस बीच नारद जी आ उपस्थित हुए. प्रनाम कर श्री कृष्णचंद ने उन से पूछा कि, नारद जी! तुम सब ठौर जाते आते हो, कहो हमारे भाई युधिष्ठिर आदि पांचों पांडव इन दिनों कैसे हैं, औ क्या करते है? बहुत दिन से हम ने उन के कुछ समाचार नहीं पाए, इस से हमारा चित उन्हीं में लगा है. नारद जी बोले कि, महाराज! मैं विन्हीं के पास से आता हूं; हैं तो कुशल क्षेम से, पर इन दिनों राजसू यज्ञ करने के लिये निपट भावित हो रहे हैं, औ घड़ी घड़ी यह कहते हैं कि, बिना श्री कृष्णचंद की सहायता के हमारा यज्ञ पूरा न होगा, इस से महाराज! मेरा कहा मानिये तो।

पहिले उन को यज्ञ संवारो, पाछें अनत कहूं पग धारो.

महाराज! इतनी बात नारद जी के मुख से सुनते ही प्रभु ने ऊधो जी को बुलाय के कहा।

ऊधो तुम हौ सखा हमारे, मन आंखन तें कबहु न न्यारे.
दुहुं ओर की भारी भीर, पहले कहां चलें कहौ बीर?
उत राजा संकट में भारी, दुख पावत किये आस हमारी.
इत पंडनि मिल यज्ञ रचायौ. ऐसे कहि प्रभु बचन सुनायौ. इति।

CHAPTER LXXII.

BY THE ADVICE OF UDHO, KRISHN SETS OUT FOR HASTINÁPUR, TO CONSULT WITH THE PÁNDAVS AS TO THE RELEASE OF THE TWENTY THOUSAND RÁJÁS. HE ARRIVES AT THAT CITY.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! पहले तो श्री कृष्णचंद जी ने उस ब्राह्मन को इतना कह बिदा किया, जो राजाओं का संदेसा लाया था, कि, देवता! तुम हमारी ओर से सब राजाओं से जाय कहो कि, तुम किसी बात की चिंता मत करो हम बेग आय तुन्हें छुड़ाते हैं. महाराज! यह बात कह श्री कृष्णचंद ब्राह्मन को बिदा कर, ऊधो जी को साथ ले, राजा उग्रसेन सूरसेन की सभा में गये, औ इन्हों ने सब समाचार उन के आगे कहे; वे सुन चुप हो रहे. इस में ऊधो जी बोले कि, महाराज! ये दोनों काज कीजे; पहले राजाओं को जुरासिंधु से छुड़ा लीजे, पीछे चल कर यज्ञ संवारिये; क्योंकि राजसू यज्ञ का काम बिन राजा और कोई नहीं कर सकता; औ वहां बीस सहस्र नृप इकठे हैं, विन्हें छुड़ाओगे तो वे सब गुन मान यज्ञ का काज बिन बुलाए जाकर करेंगे. महाराज! और कोई दसों दिस जीत आवेगा, तो भी इतने राजा इकठे न पावेगा; इस से अब उत्तम यही है कि, हस्तिनापुर को चलिये, पांडवों से मिल मता कर जो काम करना हो सो करिये।

महाराज! इतना कह पुनि ऊधो जी बोले कि, महाराज! राजा जुरासिंधु बड़ा दाता औ गौ ब्राह्मन का मानने औ पूजने वाला है; जो कोई विस से जाकर जो मांगता है सो पाता है; जाचक उस के य्हां से बिमुख नहीं आता; वह झूठ नहीं बोलता, जिस से बचन बंध होता है, विस से निवाहता है; औ दस सहस्र हाथी का बल रखता है, उस के बल की समान भीमसेन का बल है. नाथ! जो तुम वहां चलो तो भीमसेन को भी अपने साथ ले चलो, मेरी बुद्धि में आता है कि, उस की मीच भीमसेन के हाथ है।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीछित से कहा कि, राजा! जब ऊधो जी ने ये बात कहीं, तभी श्री कृष्णचंद जी ने राजा उग्रसेन सूरसेन से बिदा हो सब यदुबंसियों से कहा कि, हमारा कटक साजो, हम हस्तिनापुर को चलेंगे. बात के सुनते ही सब यदुबंसी सेना साज ले आए, औ प्रभु भी आठों पटरानियों समेत कटक के साथ हो लिए. महाराज! जिस काल

श्री कृष्णचंद कुटुंब सहित सब सेना ले धौंसा दे द्वारिकापुरी से हस्तिनापुर को चले, उस समय की शोभा कुछ बरनी नहीं जाती; आगे हाथियों का कोट; बाऐं दाहने रथ घोड़ों की ओट; बीच में रनवास, औ पीछे सब सेना साथ लिये, सब की रचा किये, श्री कृष्णचंद जी चले जाते थे; जहां डेरा होता था, तहां कै जोजन के बीच एक सुंदर सुहावना नगर बन जाता था; देस देस के नरेस भय खाय आय आय भेट कर भेट धरते थे, औ प्रभु विन्हें भयातुर देख तिन का सब भांति समाधान करते थे।

निदान इसी धूमधाम से चले चले हरि सब समेत हस्तिनापुर के निकट पहुंचे. इस में किसी ने राजा युधिष्ठिर से जाय कहा कि, महाराज! कोइ नृपति अति सेना ले बड़ी भीड़भाड़ से आप के देस पर चढ़ आया है. आप बेग उसे देखिये नहीं तो उसे यहां पहुंचा जानिये. महाराज! इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने अति भय खाय, अपने नकुल सहदेव दोनों छोटे भाइयों को यह कह, प्रभु के सनमुख भेजा कि, तुम देखि आओ कि, कौन राजा चढ़ आता है. राजा की आज्ञा पाते ही।

सहदेव नकुल देख फिर आए,   राजा कौं ये बचन सुनाए.
प्रान नाथ आए हैं हरी,   सुनि राजा चिंता परिहरी.

आगे अति आनंद कर राजा युधिष्ठिर ने भीम अर्जुन को बुलायके कहा कि, भाई! तुम चारों भाई आगू जाय श्री कृष्णचंद आनंदकंद को ले आओ. महाराज! राजा की आज्ञा पाय, औ प्रभु का आना सुन वे चारों भाई अति प्रसन्न हो, भेट पूजा की सब सामा औ बड़े बड़े पंडितों को साथ ले, बाजेगाजे से प्रभु को लेने चले. निदान अति आदर मान से मिल, वेद ही बिधि से भेट पूजा कर, ये चारों भाई श्री कृष्ण जी को सब समेत पाटंबर के पांवड़े डालते, चोआ चंदन गुलाब नीर छिड़कते, चांदी सोने के फूल बरसाते, धूप दीप नैवेद्य करते, बाजेगाज से नगर में ले आए. राजा युधिष्ठिर ने प्रभु से मिल अति सुख माना औ अपना जीतब सुफल जाना. आगे बाहर भीतर सब ने सब से मिल यथा योग्य परस्पर सनमान किया, औ नयनों को सुख दिया; घर बाहर सारे नगर में आनंद हो गया: औ श्री कृष्णचंद वहां रह सब को सुख देने लगे. इति।

CHAPTER LXXIII.

KRISHN, WITH BHÍM AND ARJUN, VISIT THE RÁJÁ JURÁSINDHU, IN THE DISGUISE OF BRAHMANS. KRISHN RELATES TO JURÁSINDHU THE MARVELLOUS CHARITIES OF RÁJÁ HARICHAND, RÁTIDEV, AND UDDÁL, AND CONCLUDES BY ASKING OF HIM A BOON, VIZ., THAT HE WOULD FIGHT WITH HIMSELF, BHÍM, AND ARJUN. THE RÁJÁ ACCEPTS THE COMBAT WITH BHÍM, AND DECLINES THE OTHER TWO. THEY FIGHT FOR TWENTY-SEVEN DAYS, AND ON THE LAST DAY, AT THE SUGGESTION OF KRISHN, BHÍM SEIZES JURÁSINDHU BY THE LEG, AND SPLITS HIM UP. KRISHN PERFORMS THE OBSEQUIES OF JURÁSINDHU, AND INSTALS HIS SON SAHADEV IN HIS PLACE.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक दिन श्री कृष्णचंद, करुना सिंधु दीन बंधु भक्त हितकारी, ऋषि मुनि ब्राह्मन चत्रियों की सभा में बैठे थे कि, राजा युधिष्ठिर ने आय अति गिड़गिड़ाय बिनती कर, हाथ जोड़, सिर नायके कहा कि, हे शिव बिरंच के ईस! तुम्हारा ध्यान करते हैं सदा सुर मुनि ऋषि जोगीस. तुम हो अलष अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद।

मुनि जोगेश्वर इक चित धावत, तिन के मन छिन कभू न आवत.
हम कों घर हीं दरसन देतु, मानत प्रेम भक्त के हेतु.
जैसी मोहन लीला करौ, काहू पै नहीं जाने परौ.
माया में भुलयौ संसार, हम सों करत लोक ब्यौहार.
जे तुम कौं सुमिरत जगदीस, ताहि आपनौ जानत ईस.
अभिमानी तें हौ तुम दूर, सतबादी के जीवन मूर.

महाराज! इतना कह पुनि राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे दीन दयाल! आप की दया से मेरे सब काम सिद्ध ऊए, पर एक ही अभिलाषा रही. प्रभु बोले सो क्या? राजा ने कहा कि, महाराज! मेरा यही मनोरथ है कि, राजसू यज्ञ कर आप को अर्पन करूं, तो भव सागर तरूं. इतनी बात के सुनते ही श्री कृष्णचंद प्रसन्न हो बोले कि, राजा! यह तुम ने भला मनोरथ किया, इस में सुर नर मुनि ऋषि सब संतुष्ट होंगे; यह सब को भाता है, और इस का करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं; क्योंकि तुम्हारे चारों भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, बड़े प्रतापी औ अति बली हैं; संसार में ऐसा अब कोई नहीं जो इन का साम्हना करे. पहले इन्हें भेजिये कि, ये जाय दसों दिसा के राजाओं को जीत अपने बस कर आवें, पीछे आप निचिंताई से यज्ञ कीजे।

राजा! प्रभु के मुख से इतनी बात जों निकली, त्योंहीं राजा युधिष्ठिर ने अपने चारों भाइयों को बुलाय, कटक दे, चारों को चारों ओर भेज दिया. दखन को सहदेव जी पधारे, पच्छिम को नकुल सिधारे; उत्तर को अर्जुन धाये; पुरब में भीमसेन जी आए. आगे कितने एक दिन के बीच, महाराज! वे चारों हरि प्रताप से सात दीप नौ खंड जीत, दसों दिसा के राजाओं को बस कर, अपने साथ ले आए. उस काल राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ श्री कृष्णचंद जी से

कहा कि, महाराज! आप की सहायता से यह काम तो हुआ, अब क्या आज्ञा होती है? इस में ऊधो जी बोले कि, धर्मावतार! सब देस के नरेस तो आए; पर अब एक मगध देस का राजा जुरासिंधु ही आप के बस का नहीं, और जब तक वह बस न होगा, तब तक यज्ञ भी करना सुफल न होगा. महाराज! जुरासिंधु राजा जैंद्रथ का बेटा महा बली बड़ा प्रतापी औ अति दानी धर्मात्मा है; हर किसी की सामर्थ नहीं जो उस का साम्हना करे. इस बात को सुन जों राजा युधिष्ठिर उदास हुए, तों श्री कृष्णचंद बोले कि, महाराज! आप किसी बात की चिंता न कीजे, भाई भीम अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजे; कैतो बल छल कर हम उसे पकड़ लावें कै मार आवें, इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने दोनों भाइयों को आज्ञा दी. तद हरि ने उन दोनों को अपने साथ ले मगध देस की बाट ली. आगे जाय पंथ में श्री कृष्ण जी ने अर्जुन औ भीम से कहा कि।

विप्र रूप ह्वै पग धारिये, छल बल कर बैरी मारिये.

महाराज! इतनी बात कह श्री कृष्णचंद जी ने ब्राह्मन का भेष किया. उस के साथ भीम अर्जुन ने भी विप्र भेष लिया. तीनों त्रिपुंड किये, पुस्तक कांख में लिये, अति उज्जल स्वरूप सुंदर रूप बन ठन कर ऐसे चले, कि, जैंसे तीनों गुन सत रज तम देह धरे जाते होंय, कै तीनों काल. निदान कितने एक दिनों में चले चले ये मगध देस में पहुंचे, औ दो पहर के समय राजा जुरासिंधु की पौर पर जा खड़े हुए. इन का भेष देख पौरियों ने अपने राजा से जा कहा कि, महाराज! तीन ब्राह्मन अतिथि बड़े तेजस्वी महा पंडित अति ज्ञानी, कुछ कांछा किये द्वार पर खड़े हैं, हमें क्या आज्ञा होती है? महाराज! बात के सुनते ही राजा जुरासिंधु उठ आया, औ इन तीनों को प्रनाम कर अति मान सनमान से घर में लेगया. आगे वह इन्हें सिंहासन पर बैठाय आप सनमुख हाथ जोड़ खड़ा हो, देख देख सोच सोच बोला।

जाचक जो पर द्वारे आवे, बड़ो भूप सोऊ अतिथ कहावे.
विप्र नहीं तुम जोधा बली, बात न कछू कपट की भली.
जो ठग ठगनि रूप धर आवें, ठगि तो जाय भलो न कहावे.
छिपे न छत्री क्रांति तिहारी, दीसत सूर बीर बल धारी.
तेजवंत तुम तीनों भाई, शिव विरंच हरि से बर दाई.
मैं जान्यो जिय कर निर्मान, करो देव तुम आप बखान.
तुम्हारी इच्छा हो सो करों, अपनी बाचा तें नहीं टरों.
दानी मिथ्या कबहु न भाखे, धन तन सर्बसु कछू न राखे.
मांगो सोई देहों दान, सुत सुंदरि सर्वस्य परान.

महाराज! इस बात के सुनते ही श्री कृष्णचंद जी ने कहा कि, महाराज! किसी समैं राजा

हरिचंद बड़ा दानी हो गया है कि, जिस की कीर्त्ति संसार में अब तक छाय रही है. सुनिये! एक समैं राजा हरिचंद के देस में काल पड़ा, औ अन्न बिन सब लोग मरने लगे, तब राजा ने अपना सर्बस बेच बेच सब को खिलाया. जद देस नगर धन गया, औ निर्धन हो राजा रहा, तद एक दिन सांझ समैं यह तो कुटुंब सहित भूखा बैठा था कि, इस में बिस्वामित्र ने आय इन का सत देखने को यह बचन कहा, महाराज! मुझे धन दीजे, औ कन्या दान का फल लीजे. इस बचन के सुनते ही जो कुछ घर में था सो ला दिया; पुनि ऋषि ने कहा महाराज! मेरा काम इतने में न होगा. फिर राजा ने दास दासी बेच धन ला दिया, औ धन जन गंवाय निर्धन निर्जन हो स्त्री पुत्र को ले रहा. पुनि ऋषि ने कहा कि, धर्म मूर्त्त! इतने धन से मेरा काम न सरा, अब मैं किस के पास जाय मागूं? मुझे तो संसार में तुझ से अधिक धनवान धर्मात्मा दानी कोई नहीं दृष्ट आता; हां एक सुपच नाम चंडाल माया पात्र है, कहो तो तिस से जा धन मागूं; पर इस में भी लाज आती है कि, ऐसे दानी राजा को जाच उस से क्या जाचूं? महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा हरिचंद बिस्वामित्र को साथ ले उस चंडाल के घर गए, औ इन्हों ने तिस से कहा कि, भाई? तू हमें एक बरष के लिये गहने धर, औ इन का मनोरथ पूरा कर. सुपच बोला।

कैसे टहल हमारी करि हो? राजस तामस मन तें हरि हो?
तुम नृप महा तेज बल धारी, नीच टहल है खरी हमारी.

महाराज! हमारे तो यही काम है कि, स्मशान में जाय चौकी दें, औ जो मृतक आवे उस से कर लें, पुनि हमारे घर बार की चौकसी करे. तुम से यह हो सकै तो मैं रुपये दूं, औ तुम्हें बंधक रक्खूं. राजा ने कहा, अच्छा, मैं बरष भर तुम्हारी सेवा करूंगा, तुम इन्हें रुपये दो. महाराज! इतना बचन राजा के मुख से निकलते ही सुपच ने बिस्वामित्र को रुपये गिन दिये; वह ले अपने घर गया, औ राजा वहां रह उस की सेवा करने लगा. कितने एक दिन पीछे काल बस हो राजा हरिचंद का पुत्र रुहितास मर गया; उस मृतक को ले रानी मरघट में गई, और जौं चिता बनाय अग्नि संस्कार करने लगी, तौंहीं राजा ने आय कर मांगा।

रानी बिलख कहै दुख पाय, देखौ समझ हिये तुम राय.

यह तुम्हारा पुत्र रुहितास है, औ कर देने को मेरे पास और तो कुछ नहीं, एक यह चीर है जो पहरे खड़ी हूं. राजा ने कहा, मेरा इस में कुछ बस नहीं, मैं स्वामी के कार्य पर खड़ा हूं, जो स्वामी का काम न करूं तो मेरा सत जाय. महाराज! इस बात के सुनते हीं रानी ने चीर उतारने को जों आंचल पर हाथ डाला, तों तीनों लोक कांप उठे. वोंहीं भगवान ने राजा रानी का सत देख पहले एक बिमान भेज दिया, औ पीछे से आय दरसन दे तीनों का उद्धार किया. महाराज! जब बिधाता ने रुहितास को जिवाय, राजा रानी को पुत्र सहित

बिमान पर बैठाय, बैकुंठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिचंद ने हाथ जोड़ भगवान से कहा कि, हे दीन बंधु, पतितपावन, दीन दयाल! मैं सुपच बिना बैकुंठ धाम में कैसे जा करूं बिश्राम? इतना बचन सुन, श्री राजा के मन का अभिप्राय जान, श्री भक्त हितकारी, करुना सिंधु, हरि ने पुरी समेत सुपच को भी राजा रानी औ कुंवर के साथ तारा।

ह्यां हरिचंद अमर पद पायौ, ह्यां जुगान जुग जस चलि आयौ.

महाराज! यह प्रसंग जुरासिंधु को सुनाय श्री कृष्णचंद जी ने कहा कि, महाराज! और सुनिये कि, रातिदेव ने ऐसा तप किया कि, अठतालीस दिन बिन पानी रहा, औ जब जल पीने बैठा, तिसी समय कोई प्यासा आया; इस ने वह नीर आप न पी, उस तृषावंत को पिलाया; उस जल दान से उस ने मुक्ति पाई. पुनि राजा बलि ने अति दान किया, तो पाताल का राज लिया: औ अब तक उस का जस चला जाता है. फिर देखिये कि, उद्दाल मुनि छठे महीने अन्न खाते थे: ऐक समैं खाती बिरयां उन के ह्यां कोई अतिथि आया: उन्हों ने अपना भोजन आप न खाय भूखे को खिलाया, औ उस छुधा ही में मरे: निदान अन्न दान करने से बैकुंठ को गऐ चढ़ कर बिमान।

पुनि एक समय सब देवताओं को साथ ले राजा इंद्र ने जाय, दधीच से कहा कि, महाराज! हम बृतासुर के हाथ से अब बच नहीं सकते, जो आप अपना अस्थि हमैं दीजे, तो उस के हाथ से बचें, नहीं तो बचना कठिन: क्योंकि वह बिन तुम्हारे हाड़ के आयुध किसी भांति न मारा जायगा. महाराज! इतनी बात के सुनते ही दधीच ने शरीर गाय से चटवाय, जांघ का हाड़ निकाल दिया; देवताओं ने ले उस अस्थि का बज्र बनाया, औ दधीच ने प्रान गंवाय बैकूंठ धाम पाया।

ऐसे दाता भये अपार, तिन को जस गावत संसार.

राजा! यों कह श्री कृष्णचंद जी ने जुरासिंधु से कहा कि, महाराज! जैसे आगे और जुग में धरमात्मा दानी राजा हो गये हैं, तैसे अब इस काल में तुम हो; जों आगे उन्हों ने जाचकों की अभिलाषा पूरी की, तों तुम अब हमारी आस पुजाओ।

कहा है जाचक कहा न मांगई, दाता कहा न देय.
यह सुत सुंदरि लोभ नहिं, तन सिर दे जस लेय.

इतनी बचन प्रभु के मुख से निकलते ही जुरासिंधु बोला कि, जाचक को दाता की पीर नहीं होती, तौभी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता, इस में सुख पावे कै दुख. देखो हरि ने कपट रूप कर बावन बन, राजा बलि के पास जाय तीन पैंड पृथ्वी मांगी; उस समैं शुक्र ने बलि को चिताया, तौभी राजा ने अपना प्रन न छोड़ा!

देह समेत मही तिन दई, ताकी जग में कीरति भई.
जाचक बिष्णु कहा जस लीनौं, सर्वसु लै तौऊ हठ कीनौं.

इस से तुम पहले अपना नाम भेद कहो, तद जो तुम मांगोगे सो मैं दूंगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता. श्री कृष्णचंद बोले, कि, राजा! हम चत्री हैं, वासुदेव मेरा नाम है, तुम भली भांति हमें जानते हो; औ ये दोनों अर्जुन भीम हमारे फुफेरे भाई हैं; हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आए हैं; हम से युद्ध कीजे, हम यही तुम से मांगने आए है, और कुछ नहीं मांगते. महाराज! यह बात श्री कृष्णचंद जी से सुनि जुरासिंधु हंसकर बोला कि, मैं तुझ से क्या लडूं? तू मेरे सोंहीं से भाग चुका है; औ अर्जुन से भी न लडूंगा; क्योंकि यह विदर्भ देस गया था करके नारी का भेष; रहा भीमसेन, कहो तो इस से लडूं, यह मेरी समान का है, इस से लड़ने में मुझे कुछ लाज नहीं।

पहले तुम सब भोजन करौ, पाछे मल्ल अखारे लरौ.
भोजन दे नृप बाहर आयौ, भीमसेन तहां बोल पठायौ.
अपनी गदा ताहि तिन दई, गदा दूसरी आपुन लई.
जहां सभा मंडल बन्यौं, बैठे जाय मुरारि,
जुरासिंधु अरु भीम तहां, भए ठाढ़े इक बारि.
टोपा सीस काछनी काछे, बने रूप नटुवा के आछे.

महाराज! जिस समय दोनों बीर अखाड़े में खम ठोक, गदा तान, धज पलट, झूमकर सनमुख आए, उस काल ऐसे जनाए कि, मानों दो मतंग मतवाले उठ धाए. आगे जुरासिंधु ने भीमसेन से कहा कि, पहले गदा तू चला क्योंकि तु ब्राह्मन का भेष ले मेरी पौरी पै आया था, इस से मैं पहले प्रहार तुझ पर न करूंगा. यह बात सुन भीमसेन बोले, कि, राजा! हम से तुम से धर्म युद्ध है, इस में यह ज्ञान न चाहिये, जिस का जी चाहे सो पहले शस्त्र करे. महाराज! उन दोनों वीरों ने परस्पर ये बातें कर एक साथ ही गदा चलाई, औ युद्ध करने लगे।

ताकत घात आप आपनी, चोट करत बाईं दाहनी.
अंग बचाय उछरि पग धरें, झरपहिं गदा गदा सों लरें.
खटपट चोट गदा पटकारी, लागत शब्द कुलाहल भारी.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! इसी भांति वे दोनों बली दिन भर तो धर्म युद्ध करते, औ सांझ को घर आय एक साथ भोजन कर विश्राम. ऐसे नित लड़ते लड़ते सत्ताइस दिन भए, तब एक दिवस उन दोनों के लड़ने के समय श्री कृष्णचंद जी ने मनहीं मन बिचारा कि, यह यों न मारा जायगा; क्योंकि जब यह जन्मा था, तब दो फांक हो जन्म था; उस समें जरा राचसी ने आय, जुरासिंधु का मुंह औ नाक मूंदी, तब दोनों फांक मिल गईं. यह समाचार सुनि उस के पिता जैंद्रथ ने जोतिषियों को बुलायके पूछा कि, कहो इस लड़के का नाम क्या होगा, औ कैसा होगा? जोतिषियों ने कहा कि, महाराज!

इस का नाम जुरासिंधु ऊआ, औ यह बड़ा प्रतापी औ अजर अमर होगा; जब तक इस की संधि न फटेगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा. इतना कह जोतिषी बिदा हो चले गये. महाराज! यह बात श्री कृष्ण जी ने मन मन सोच, औ अपना बल दे, भीमसेन को तिनका चीर सैन से जताया कि, इसे इस रीति से चीर डालो. प्रभु के चिताते ही भीमसेन ने जुरासिंधु को पकड़कर दे मारा, औ एक जांघ पर पांव दे दूसरा पांव हाथ से पकड़ यों चीर डाला कि, जैसे कोई दातन चीर डाले. जुरासिंधु के मरते हीं सुर नर गंधर्व ढोल दमामे भेर बजाय बजाय, फूल बरसाय बरसाय, जैजैकार करने लगे, औ दुख दंद जाय सारे नगर में आनंद हो गया. उसी बिरियां जुरासिंधु की नारी रोती पीटती आ श्री कृष्णचंद जी के सनमुख खड़ी हो, हाथ जोड़ बोली कि, धन्य है धन्य है नाथ तुम्हें, जो ऐसा काम किया कि, जिस ने सरबस दिया, तुम ने उस का प्रान लिया, जो जन तुम्हें सुत बित औ समर्पे देह, उस से तुम करते हो ऐसा ही नेह।

कपट रूप कर छल बल कियौ, जगत आय तुम यह जस लियौ.

महाराज! जुरासिंधु की रानी ने जब करुनाकर करुनानिधान के आगे हाथ जोड़ बिनतीकर, यों कहा, तब प्रभु ने दयाल हो पहले जुरासिंधु की क्रिया की पीछे उस के सुत सहदेव को बुलाय, राज तिलक दे, सिंहासन पर बिठायके कहा कि, पुत्र! नीति सहित राज कीजो, औ ऋषि, मुनि, गौ, ब्राह्मन, प्रजा की रक्षा. इति।

CHAPTER LXXVI.

THE TWENTY-THOUSAND RÁJÁS, WHOM JURÁSINDHU HAD IMPRISONED, ARE RELEASED BY KRISHN, SENT TO THEIR OWN COUNTRIES, AND DIRECTED TO BE IN ATTENDANCE AN YUDHISHṬHIR'S APPROACHING SACRIFICE.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! राजपाट पर बैठाय समझाय, श्री कृष्णचंद जी ने सहदेव से कहा कि, राजा! अब तुम जाय उन राजाओं को ले आओ, जिन्हें तुम्हारे पिता ने पहाड़ की कंदरा में मूंद रक्खा है. इतना बचन प्रभु के मुख से सुनते ही, जुरासिंधु का पुत्र सहदेव. बऊत अच्छा कर कंदरा के निकट जाय, उस के मुख से सिला उठाय, आठ सौ बीस सहस्र राजाओं को निकाल, हरि के सनमुख ले आया. आते ही हथकड़ियां बेड़ियां पहने, गले में सांकल लोहे की डाले, नख केस बढ़ाये, तन छीन, मन मलीन, मैले भेष, सब राजा प्रभु के सनमुख पांति पांति खड़े हो, हाथ जोड़, बिनती कर बोले, हे कृपा सिंधु, दीन बंधु! आप ने भले समय आय हमारी सुध ली, नहीं तो सब मर चुके थे; तुम्हारा दरसन पाया, हमारे जी में जी आया, पिछला दुख सब गंवाया।

महाराज! इस बात के सुनते ही कृपा सागर श्री कृष्णचंद ने जों उन पर दृष्टि की, तों

बात की बात में सहदेव उन को ले जाय, हथकड़ी बेड़ी कडी कटवाय, चौर करवाय, न्हिलवाय धुलवाय, षट रस भोजन खिलाय, वस्त्र आभूषन पहराय, शस्त्र अस्त्र बंधवाय, पुनि हरि के सोहीं लिवाय लाय. उस काल श्री कृष्णचंद जी ने उन्हें चतुर्भुज हो, संख चक्र गदा पद्म धारन कर, दरसन दिया. प्रभु का स्वरूप भूप देखते ही हाथ जोड़ बोले, नाथ! तुम संसार के कठिन बंधन से जीव को छुड़ाते हो, तुम्हें जुरासिंधु की बंध से हमें छुड़ना क्या कठिन था? जैसे आप ने कृपा कर हमें इस कठिन बंधन से छुड़ाया, तैसे ही अब हमें ग्रह रूप कूप से निकाल काम क्रोध लोभ मोह से छुड़ाइये, जो हम एकांत बैठ आप का ध्यान करें, औ भव सागर को तरें.

श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! जब सब राजाओं ने ऐसे ज्ञान वैराग्य भरे बचन कहे. तब श्री कृष्णचंद जी प्रसन्न हो बोले कि, सुनो! जिन के मन में मेरी भक्ति है, वे निःसंदेह भक्ति मुक्ति पावेंगे; बंध मोच मन हीं का कारन है, जिसका मन स्थिर है, तिन्हें घर औ बन समान है. तुम और किसी बात की चिंता मत करो, आनंद से घर में बैठ नीति सहित राज करो, प्रजा को पालो, गौ ब्राह्मन की सेवा में रहो, झूठ मत भाखो, काम क्रोध लोभ अभिमान तजो, भाव भक्ति से हरि को भजो, तुम निःसंदेह परम पद पाओगे; संसार में आय जिसने अभिमान किया, वह बड़त न जिया; देखो अभिमान ने किसे किसे न खो दिया।

सहस्र बाहु अति बली बखान्यौ, परसुराम ताकौ बल भान्यौ,
वैनु भुप रावन हो भयौ, गर्व आपने सोऊ गयौ.
भौमासुर बानासुर कंस, भए गर्व तें ते बिध्वंस.
श्रीमद गर्व करो जिन कोय, त्यागै गर्व सो निर्भय होय.

इतना कह श्री कृष्णचंद जी ने सब राजाओं से कहा कि, अब तुम अपने घर जाओ, कुटुंब से मिल अपना राजपाट संभाल, हमारे न पड़ंचते न पड़ंचते हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर के य्हां राजसू यज्ञ में शीघ्र आओ. महाराज! इतना बचन श्री कृष्णचंद जी के मुख से निकलते ही, सहदेव ने सब राजाओं के जाने का समान जितना चाहिये, तितना बात की बात में ला उपस्थित किया. वे ले प्रभु से विदा हो अपने अपने देसों को गए; औ श्री कृष्णचंद जी भी सहदेव को साथ ले, भीम अर्जुन सहित वहां से चल, चले चले आनंद मंगल से हस्तिनापुर आए. आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर के पास जाय, जुरासिंधु के मारने के समाचार और सब राजाओं के छुड़ाने के ब्यौरे समेत कह सुनाए।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! श्री कृष्णचंद आनंदकंद जी के हस्तिनापुर पड़ंचते पड़ंचते ही वे सब राजा भी अपनी अपनी सेना ले भेट सहित आन पड़ंचे, औ राजा युधिष्ठिर से भेट कर भेट दे श्री कृष्णचंद जी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे, औ यज्ञ की टहल में आ उपस्थित ड़ए. इति।

CHAPTER LXXV.

YUDHISHTHIR'S GREAT SACRIFICE. SISUPÁL, WHO IS A SECOND APPEARANCE OF RÁVAN, IS DISSATISFIED, AND INVEIGHS AGAINST KRISHN, ON WHICH THE QUOIT SUDARSAN CUTS OFF HIS HEAD. A BRILLIANT LIGHT ISSUES FROM HIS BODY, WHICH ENTERS THE MOUTH OF KRISHN. DURYODHAN, WHO DISTRIBUTES THE MONEY, IS ALSO DISSATISFIED, BUT CONCEALS IT.

श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठिर ने किया औ सिसुपाल मारा गया, तैसे मैं सब कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनो. बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के जाते ही, चारों ओर के और जितने राजा थे, क्या सूर्यबंसी औ क्या चंद्रबंसी, तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए. उस समय श्री कृष्णचंद औ राजा युधिष्ठिर ने मिलकर सब राजाओं का सब भांति शिष्टाचार कर समाधान किया, औ हरएक को एक एक काम यज्ञ का सोंपा. आगे श्री कृष्णचंद जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि, महाराज! भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सहित हम पांचों भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल करें, और आप ऋषि मुनि ब्राह्मनों को बुलाय यज्ञ का आरंभ कीजे. महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मनों को बुलाकर पूछा कि, महाराजो! जो जो वस्तु यज्ञ में चाहिये, सो सो आज्ञा कीजे. महाराज! इस बात के कहते ही ऋषि मुनि ब्राह्मनों ने ग्रंथ देख देख, यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी, औ राजा ने वोंही मंगवाय उन के आगे धरवा दी. ऋषि मुनि ब्राह्मनों ने मिल यज्ञ की बेदी रची; चारों वेद के सब ऋषि मुनि ब्राह्मन बेदी के बीच आसन बिछाय बिछाय जा बैठे. पुनि सुच होय स्त्री सहित गंठजोड़ा बांध राजा युधिष्ठिर भी आय बैठा; औ द्रोनाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, सिसुपाल, आदि जितने योधा औ बड़े बड़े राजा थे, वे भी आन बैठे. ब्राह्मनों ने स्वस्ति वाचन कर गणेश पुजवाय, कलश स्थापन कर, ग्रह स्थान किया. राजा ने भरद्वाज, गौतम, बशिष्ट, विश्वामित्र, वामदेव, परासर, व्यास, कश्यप आदि बड़े बड़े ऋषि मुनि ब्राह्मनों का बरन किया, औ तिन्हों ने वेद मंत्र पढ़ पढ़ सब देवताओं का आवाहन किया औ राजा से यज्ञ का संकल्प करवाय होम का आरंभ।

महाराज! मंत्र पढ़ पढ़ ऋषि मुनि ब्राह्मन आहुत देने लगे, औ देवता प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाय बढ़ाय लेने; उस समय ब्राह्मन वेद पाठ करते थे, औ सब राजा होमने की सामग्री ला ला देते थे, औ राजा युधिष्ठिर होमते थे कि, इस में निर्द्वंद यज्ञ पूरन हुआ, औ राजा ने पूर्नाहुति दी. उस काल सुर नर मुनि सब राजा को धन्य धन्य कहने लगे. औ यक्ष गंधर्व किन्नर बाजन बजाय बजाय, जस गाय गाय, फूल बरसावने.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! यज्ञ से निचिंत हो राजा युधिष्ठिर ने सहदेव जी को बुलायके पूछा।

पहले पूजा काकी कीजे? अचत तिलक कौंन कौं दीजे?
कौंन बड़ौ देवन कौ ईस? ताहि पूज हम नावें सीस.

सहदेव जी बोले कि, महाराज! सब देवों के देव हैं वासुदेव, कोई नहीं जानता इनका भेव; ये हैं ब्रह्मा रुद्र इंद्र के ईस; इन्हीं को पहले पूज नवाइये सीस. जैसे तरव की जड़ में जल देने से सब शाखा हरी होती है, तैसे हरि की पूजा करने से सब देवता संतुष्ट होते हैं. यही जगत के करता हैं, औ यही उपजाते पालते मारते हैं. इन की लीला हैं अनंत, कोई नहीं जानता इनका अंत. येई हैं प्रभु अलख अगोचर अबिनासी, इन्हीं के चरन कंवल सदा सेवती है कमला भई दासी. भक्तों के हेतु बार बार लेते हैं अवतार, तनु धर करते है लोक ब्यौहार।

बंधु कहत घर बैठे आवें, अपनी माया मांहि भुलावें.
महा मोह हम प्रेम भुलाने, ईश्वर कौं भ्राता कर जाने.
इनते बड़ौ न दीसे कोई, पूजा प्रथम इन्हीं की होई.

महाराज! इस बात के सुनते ही सब ऋषि मुनि औ राजा बोल उठे कि, राजा! सहदेव जी ने सत्य कहा, प्रथम पूजन जोग हरि ही हैं. तब तो राजा युधिष्ठिर ने श्री कृष्णचंद जी को सिंहासन पर बिठाय, आठौं पटरानियों समेत, चंदन अचत पुष्प धूप दीप नैवेद्य कर पूजा, पुनि सब देवताओं ऋषियों मुनियों ब्राह्मनों और राजाओं की पूजा की. रंग रंग के जोड़े पहनाए, चंदन केसर की खौड़ें कीं. फूलों के हार पहराए, सुगंध लगाय यथा योग राजा ने सब की मनुहार की. श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा!।

हरि पूजत सब कौं सुख भयौ, सिसुपाल कौ सीस भूं नयौ.

कितनी एक बेर तक तो वह सिर झूकाए मन ही मन कुछ सोच बिचार करता रहा. निदान काल बस हो अति क्रोध कर सिंहासन से उतर सभा के बीच निःसंकोच निडर हो बोला कि, इस सभा में धृतराष्ट्र, दुर्योधन, भीषम, कर्न, द्रोनाचार्य आदि सब बड़े बड़े ज्ञानी मानी हैं, पर इस समय सब की गति मति मारी गई, बड़े बड़े मनीश बैठे रहे, औ नंद गोप के सुत की पूजा भई, औ कोइ कुछ न बोला; जिस ने ब्रज में जन्म ले ग्वाल बालों की झूठी छाक खाई, तिसी की इस सभा में भई प्रभुताई बड़ाई।

ताहि बड़ौ सब कहत अचेत, सुरपति कौ बल का गहि देत.

जिन्ने गोपी औ ग्वालनों से नेह किया, इस सभा ने तिसे ही सब से बड़ा साध बनाय दिया; जिस ने दूध दही मही माखन घर घर चुराय खाया, उसी का जस सब ने मिल गाया; बाट घाट में जिन्ने लिया दान, तिसी का य्हां ऊआ सनमान; पर नारी से जिस ने छल बल कर भोग किया, सब ने मता कर उसी को पहले तिलक दिया; ब्रज में से इंद्र की पुजा जिस ने उड़ाई, औ पर्वत की पूजा ठहराई, पुनि पूजा की सब सामग्री गिर के निकट लिवाय ले जाय मिस कर

आप ही खाई, तो भी उसे लाज न आई; जिस की जात पांत औ मात पिता कुल धर्म का नहीं ठिकाना, तिसी को अलख अबिनासी कर सब ने माना।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! इसी भांति से काल बस होय राजा सिसुपाल अनेक अनेक बुरी बातें श्री कृष्णचंद जी को कहता था, औ श्री कृष्णचंद जी सभा के बीच सिंहासन पर बैठे, सुन सुन एक एक बात पर एक एक लकीर खैंचते थे; इस बीच भीष्म, कर्न, द्रोन, औ बड़े बड़े राजा हरि निंदा सुन अति क्रोध कर बोले कि, अरे मूर्ख! तू सभा में बैठा हमारे सनमुख प्रभु की निंदा करता है, रे चंडाल! चुप रह, नहीं अभी पकड़ मार डालते हैं. महाराज! यह कह शस्त्र ले ले सब राजा सिसुपाल के मारने को उठ धाए. उस समय श्री कृष्णचंद आनंदकंद ने सब को रोककर कहा कि, तुम इस पर शस्त्र मत करो, खड़े खड़े देखो, यह आप से आपही मारा जाता है, मैं इस के सौ अपराध सहूंगा, क्योंकि मैंने बचन हारा है, सौ से बढ़ती न सहूंगा, इसी लिये मैं रेखा काढ़ता जाता हूं.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही सब ने हाथ जोड़ श्री कृष्णचंद से पूछा कि, कृपा नाथ! इस का क्या भेद है जो आप इस के सौ अपराध चमा करियेगा? सो कृपा कर हमें समझाइये, जो हमारे मन का संदेह जाय. प्रभु बोले कि, जिस समय यह जन्मा था, तिस समय इस के तीन नेत्र औ चार भुजा थीं. यह समाचार पाय इस के पिता राजा दमघोष ने जोतिषियों औ बड़े बड़े पंडितों को बुलायके पूछा कि, यह लड़का कैसा हुआ? इस का बिचार कर मुझे उत्तर दो. राजा की बात सुनते ही पंडित औ जोतिषियों ने शास्त्र बिचार के कहा कि, महाराज! यह बड़ा बली औ प्रतापी होगा, और यह भी हमारे बिचार में आता है कि, जिस के मिलने से इस की एक आंख औ दो बांह गिर पड़ेंगीं, यह उसी के हाथ मारा जायगा. इतना सुन इस की मा महादेवी, सूरसेन की बेटी, बसुदेव की बहन, हमारी फुफी, अति उदास भई, औ आठ पहर पुत्र ही की चिंता में रहने लगी।

कितने एक दिन पीछे एक समैं पुत्र को लिये पिता के घर द्वारिका में आई, औ इसे सब से मिलाया. जब यह मुझ से मिला, औ इस की ऐक आंख औ दो बांह गिर पड़ीं, तब फुफी ने मुझे बचन बंध करके कहा कि, इस की मीच तुम्हारे हाथ है, तुम इसे मत मारियो, मैं यह भीख तुम से मांगती हूं. मैं ने कहा, अच्छा, सौ अपराध हम इस के न गिनेंगे; इस उपरांत अपराध करेगा तो हनेंगे. हम से यह बचन ले फुफू सब से बिदा हो, इतना कह, पुत्र सहित अपने घर गई कि, यह सौ अपराध क्यों करेगा, जो कृष्ण के हाथ मरेगा!।

महाराज! इतनी कथा सुनाय श्री कृष्ण जी से सब राजाओं के मन का भ्रम मिटाय, उन लकीरों को गिना, जो एक एक अपराध पर खैंची थीं, गिनते ही सौ से बढ़ती हुईं: तभी प्रभु ने सुदरसन चक्र को आज्ञा दी, उस ने झट सिसुपाल का सिर काट डाला. उस के धड़ से जो

जोति निकली, सो एक बार तो आकाश को धाई, फिर आय सब के देखते श्री कृष्णचंद के मुख में समाई. यह चरित्र देख सुर नर मुनि जैजैकार करने लगे, औ पुष्प बरसावने; उस काल श्री मुरारी भक्त हितकारी ने उसे तीसरी मुक्ति दी औ उस की क्रिया की।

इतनी कथा सुन राजा परीचित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि, महाराज! तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भांति दी, सो मुझे समझायके कहिये? शुकदेव जी बोले कि, राजा! एक बार यह हिरनकस्यप हुआ, तब प्रभु ने नृसिंह अवतार ले तारा; दूसरी बेर रावन भया, तो हरि ने रामावतार ले इस का उद्धार किया; अब तीसरी बिरियां यह है, इसी से तीसरी मुक्ति भई.

इतना सुन राजा ने मुनि से कहा कि, महाराज! अब आगे कथा कहिये. श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! यज्ञ के हो चुकते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित पहराय, ब्राह्मनों को अनगिनत दान दिया; देने का काम यज्ञ में राजा दुर्योधन को था, तिस ने द्वेश कर एक की ठौर अनेक दिये, इस में उस का जस हुआ, तोभी वह प्रसन्न न हुआ।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! यज्ञ के पूर्न होते ही श्री कृष्ण जी राजा युधिष्ठिर से बिदा हो, सब सेना ले, कुटुंब सहित, हस्तिनापुर से चले चले द्वारिकापुरी पधारे, प्रभु के पहुंचते ही घर घर मंगलाचार होने लगा, औ सारे नगर में आनंद हो गया. इति।

CHAPTER LXXVI.

REASON OF THE VEXATION OF DURYODHAN. THE DÆMON MY BUILDS A HOUSE FOR YUDHIṢHṬHIR AND CONTRIVES THAT AT A CERTAIN PLACE THE DRY GROUND SHALL BE MISTAKEN FOR WATER, AND THE WATER FOR DRY GROUND. DURYODHAN PULLS OFF HIS CLOTHES TO CROSS THE DRY PLACE, AND GETS WET AT THE OTHER. HE RETIRES IN WRATH.

राजा परीचित बोले कि, महाराज! राजसू यज्ञ होने से सब कोई प्रसन्न हुआ, एक दुर्योधन अप्रसन्न हुआ, इस का कारन क्या है सो तुम मुझे समझायके कहो? जो मेरे मन का भ्रम जाय. श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! तुम्हारे पितामह बड़े ज्ञानी थे. तिन्हों ने यज्ञ में जिसे जैसा देखा, तिसे तैसा काम दिया, भीम को भोजन करवाने का अधिकारी किया; पूजा पर सहदेव को रक्खा; धन लाने को नकुल रहे; सेवा करने पर अर्जुन ठहरे; श्री कृष्णचंद जी ने पांव धोने औ झूठी पत्तल उठाने का काम लिया; दुर्योधन को धन बांटने का कार्य दिया; और सब जितने राजा थे तिन्हों ने एक एक काज बांट लिया. महाराज! सब तो निःकपट यज्ञ की टहल करते थे, पर एक राजा दुर्योधन ही कपट सहित काम करता था, इस से वह एक की ठौर अनेक उठाता था, निज मन में यह बात ठानके कि, इन का भंडार टूटे तो अप्रतिष्ठा होय;

पर भगवत कृपा से अप्रतिष्ठा न हो और जस होता था, इस लिये वह अप्रसन्न था, और वह यह भी न जानता था कि, मेरे हाथ में चक्र है, एक रुपया दूंगा तो चार इकठे होंगे।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! अब आगे कथा सुनिये, श्री कृष्णचंद जी के पधारते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को खिलाय पिलाय, पहराय, अति शिष्टाचार कर, बिदा किया; वे दल साज साज अपने अपने देस को सिधारे. आगे राजा युधिष्ठिर पांडव को कौरवों को ले, गंगा स्नान को बाजे गाजे से गए, तीर पर जाय दंडवत कर रज लगाय आचमन कर स्त्री सहित नीर में पैठे; उन के साथ सब ने स्नान किया. पुनि न्हाय धोय संध्या पूजन से निचिंत होय, वस्त्र आभूषन पहन, सब को साथ लिये, राजा युधिष्ठिर कहां आते हैं, कि जहां मय दैत्य ने मंदिर अति सुंदर सुवर्न के रतन जटित बनाए थे. महाराज! वहां जाय राजा युधिष्ठिर सिंहासन पर बिराजे. उस काल गंधर्व गुन गाते थे; चारन बंदी जन जस बखानते थे; सभा के बीच पातर नृत्य करती थीं; घर बाहर में मंगली लोग गाय बजाय मंगलाचार करते थे; और राजा युधिष्ठिर की सभा इंद्र की सी सभा हो रही थी. इस बीच राजा युधिष्ठिर के आने के समाचार पाय, राजा दुर्योधन भी कपट स्नेह किये वहां मिलने को बड़ी धूमधाम से आया।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! वहां मय ने चौक के बीच ऐसा काम किया था कि, जो कोई जाता था तिसे थल में जल का भ्रम होता था, औ जल में थल का. महाराज! जों राजा दुर्योधन मंदिर में पैठा, तों उसे थल देख जल का भ्रम हुआ, उस ने वस्त्र समेट उठाय लिये, पुनि आगे बढ़ जल देख उस थल का धोखा हुआ जों पांव बढ़ाया, तों तिस के कपड़े भींगे. यह चरित्र देख सब सभा के लोग खिलखिला उठे; राजा युधिष्ठिर ने हंसी को रोक मुंह फेर लिया. महाराज! सब के हंस पड़ते ही राजा दुर्योधन अति लज्जित हो महा क्रोध कर उलटा फिर गया. सभा में बैठ कहने लगा कि, कृष्ण का बल पाय युधिष्ठिर को अति अभिमान हुआ है, आज सभा में बैठ मेरी हांसी की, इस का पलटा मैं लूं, औ उस का गर्व तोडूं तो मेरा नाम दुर्योधन, नहीं तो नहीं. इति।

CHAPTER LXXVII.

A DÆMON, NAMED SÁLAV, TO REVENGE HIS MASTER SISUPÁL, PRACTICES AUSTERITIES AND OBTAINS FROM MAHÁDEV THE BOON OF IMMORTALITY, AND A CAR WHICH TAKES HIM WHERE HE PLEASES. HE ASSAULTS THE CITY OF DWÁRIKÁ. PRADYUMN REPULSES HIM, BUT IS STRUCK DOWN BY DUBID, THE MINISTER OF SÁLAV, AND THE DÆMONS MAKE GREAT HAVOC OF THE DESCENDANTS OF YADU. KRISHN PROCEEDS TO THE BATTLE-FIELD, BUT FOR SOME TIME IS UNDER THE ILLUSIVE POWER OF SÁLAV, WHO MAKES AN UNREAL FIGURE OF THE FATHER OF KRISHN, AND CUTS OFF ITS HEAD IN SIGHT OF THE TWO ARMIES. KRISHN AT LAST RECOVERS HIMSELF AND SLAYS SÁLAV, WHEN A JEWEL FALLS OUT OF HIS HEAD, THE LUSTRE OF WHICH ENTERS THE MOUTH OF KRISHN.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जिस समय श्री कृष्णचंद औ बलराम जी हस्तिनापुर में थे, तिसी समैं सालव नाम दैत्य सिसुपाल का साथी, जो रुक्मिनी के ब्याह में श्री कृष्णचंद जी के हाथ की मार खाय भागा था, सो मन ही मन इतना कह लगा महादेव जी की तपस्या करने कि, अब मैं अपना बैर यदुबंसियों से लूंगा।

इंद्री जीत सबै बस कीनी, भूख प्यास सब ऋतु सह लीनी.
ऐसी बिधि तप लाग्यौ करन, सुमिरै महादेव के चरन.
नित उठ मुठी रेत लै खाय, करै कठिन तप शिव मन लाय.
बरष एक ऐसी बिधि गयौ, तब हीं महादेव बर दयौ.

कि आज से तू अजर अमर हुआ, औ एक रथ माया का तुझे मय दैत्य बना देगा, तू जहां जाने चाहेगा, वह तुझे तहां ले जायगा, बिमान की भांति त्रिलोकी में उसे मेरे बर से सब ठौर जाने की सामर्थ होगी।

महाराज! सदाशिव जी ने जों बर दिया, तों एक रथ आय इस के सनमुख खड़ा हुआ. यह शिव जी को प्रनाम कर रथ पर चढ़ द्वारिकापुरी को धरधमका. वहां जाय नगर निवासियों को अनेक अनेक भांति की पीड़ा उपजाने लगा. कभी अग्नि बरसाता था, कभी जल; कभी वृक्ष उखाड़ नगर पर फैंकता था, कभी पहाड़. उस के डर से सब नगर निवासी अति भयमान हो भाग राजा उग्रसेन के पास जा पुकारे, कि महाराज की दुहाई! दैत्य ने आय नगर में अति धूम मचाई, जो इसी भांति उपाध करैगा तो कोई जीता न रहैगा. महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा उग्रसेन ने प्रद्युम्न जी औ संबू को बुलायके कहा कि, देखो! हरि का पीछा ताक यह असुर आया है प्रजा को दुख देने; तुम इस का कुछ उपाय करो. राजा की आज्ञा पाय, प्रद्युम्न जी सब कटक ले रथ पर बैठ, नगर के बाहर लड़ने को जा उपस्थित हुए, औ संबू को भयातुर देख बोले कि, तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं हरि प्रताप से इस असुर को बात की बात में मार लेता हूं. इतना बचन कह प्रद्युम्न जी सेना ले शस्त्र पकड़ जों उस के सनमुख हुए, तो उस ने ऐसी माया की कि, दिन की महा अंधेरी रात हो गई. प्रद्युम्न जी ने वोंहीं तेज बान चलाय यों

महा अंधकार को दूर किया कि जों सूरज का तेज कुहासे को दूर करै. पुनि कई एक बान उन्हों ने ऐसे मारे, कि उस का रथ अस्तव्यस्त हो गया, औ वह घबराकर कभी भाग जाता था, कभी आय अनेक अनेक राचसी माया उपजाय उपजाय लड़ता था, औ प्रभु की प्रजा को अति दुख देता था।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! दोनों ओर से महा युद्ध होता ही था कि इस बीच एका एकी आय, सालव दैत्य के मंत्री दुविद ने प्रद्युम्न जी की छाती में एक गदा ऐसी मारी कि, ये मूर्छा खाय गिरे; इन के गिरते ही वह किलकारी मारके पुकारा कि, मैं ने श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न को मारा. महाराज! यादव तो राचसों से महा युद्ध कर रहे थे, उसी समय प्रद्युम्न जी को मूर्छित देख दारुक सारथी का बेटा रथ में डाल रन से ले भागा, औ नगर में ले आया: चैतन्य होते ही प्रद्युम्न जी ने अति क्रोध कर सूत से कहा।

ऐसो नाहिं उचित हो तोहि, जान अचेत भजावै मोहि.
रन तजकै तू ल्यायौ धाम, यह तो नहीं सूर कौ काम.
यदु कुल में ऐसौ नहीं कोय, तजकै खेत जो भाग्यौ होय.

क्या तैं ने कहीं मुझे भागते देखा था, जो तू आज मुझे रन से भगाय लाया? यह बात जो सुनेगा, सो मेरी हांसी औ निंदा करेगा; तैं ने यह काम भला न किया, जो बिन काम कलंक का टीका लगा दिया. महाराज! इतनी बात के सुनते ही सारथी रथ से उतर, सनमुख खड़ा हो, हाथ जोड़, सिर नाय बोला कि, हे प्रभु! तुम सब नीति जानते हो, ऐसा संसार में कोई धर्म नहीं जिसे तुम नहीं जानते: कहा है।

रथी सूर जो घायल परै, ताकौं सारथी लै नीकरै.
जो सारथी परै खा घाय, ताहि बचाय रथी लै जाय.
लागी प्रबल गदा अति भारी, मूर्छित ह्वै सुध देह बिसारी.
तब हौं रन तें लै नीसर्‌यो, स्वामि द्रोह अपजस तें डर्‌यो.
घरी एक लीनौ बिश्राम, अब चलकर कीजे संग्राम.
धर्म नीति तुम तें जानिये, जग उपहास न मन आनिये.
अब तुम सबही कौं बध करि हौ, माया मय दानव की हरि हौ.

महाराज! ऐसे कह, सूत प्रद्युम्न जी को जल के निकट ले गया, वहां जाय उन्हों ने मुख हाथ पांव धोय, सावधान होय, कवच टोप पहन, धनुष बान संभाल, सारथी से कहा, भला जो भया सो भया, पर अब तू मुझे वहां ले चल, जहां दुविद यदुबंसियों से युद्ध कर रहा है. बात के सुनते ही सारथी बात की बात में रथ वहां ले गया, जहां वह लड़ रहा था. जाते ही

इन्हों ने ललकार कर कहा कि, तू इधर उधर क्या लड़ता है? आ मेरे सनमुख हो, जो तुझे सिसुपाल के पास भेजूं. यह बचन सुनते ही वह जों प्रद्युम्न जी पर आय टूटा, तों कई एक बान मार इन्हों ने उसे मार गिराया, औ संबू ने भी असुर दल काट काट समुद्र में पाटा।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जब असुर दल से युद्ध करते करते द्वारिका में सब यदुबंसियों को सत्ताईस दिन हुए, तब अन्तरजामी श्री कृष्णचंद जी ने हस्तिनापुर में बैठे बैठे द्वारिका की दसा देख, राजा युधिष्ठिर से कहा कि, महाराज! मैं ने रात्र स्वप्न में देखा कि, द्वारिका में महा उपद्रव हो रहा है, औ सब यदुबंसी अति दुखी हैं, इस से अब आप आज्ञा दो तो हम द्वारिका को प्रस्थान करें. यह बात सुन राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़कर कहा, जो प्रभु की इच्छा. इतना बचन राजा युधिष्ठिर के मुख से निकलते ही श्री कृष्ण बलराम सब से बिदा हो, जों पुर के बाहर निकले, तों क्या देखते हैं कि, बांई ओर एक हिरनी दौड़ी चली आती है, औ सोंहीं स्वान खड़ा सिर झाड़ता है. यह अपशकुन देख हरि ने बलराम जी से कहा कि, भाई! तुम सब को साथ ले पीछे आओ, मैं आगे चलता हूं. राजा! भाई से यों कह श्री कृष्णचंद जी आगे जाय रन भूमि में क्या देखते हैं कि, असुर यदुबंसियों को चारों ओर से बड़ी मार मार रहे हैं; औ वे निपट घबराय घबराय शस्त्र चलाय रहे हैं. यह चरित्र देख हरि जों वहां खड़े हो कुछ भावित हुए, तों पीछे से बलदेव जी भी जा पहुंचे. उस काल श्री कृष्ण जी ने बलराम जी से कहा कि, भाई! तुम जाय नगर औ प्रजा की रक्षा करो, मैं इन्हें मार चला आता हूं. प्रभु की आज्ञा पाय बलदेव जी तो पुरी में पधारे, औ आप हरि वहां रन में गए, जहां प्रद्युम्न जी सालव से युद्ध कर रहे थे. यदुपति के आते ही शंख धुनि हुई, औ सब ने जाना कि, श्री कृष्णचंद आए. महाराज! प्रभु के जाते ही सालव अपना रथ उड़ाय आकाश में ले गया, औ वहां से अग्नि सम बान बरसाने लगा. उस समय श्री कृष्णचंद जी ने सोलह बान गिनकर ऐसे मारे कि, उस का रथ औ सारथी उड़ गया, औ वह लड़खड़ाय नीचे गिरा. गिरते ही संभलकर एक बान उस ने हरि की बाम भुजा में मारा, औ यों पुकारा कि, रे कृष्ण! खड़ा रह, मैं युद्ध कर तेरा बल देखता हूं, तैं ने तों संखासुर भौमासुर औ सिसुपाल आदि बड़े बड़े बलवान छल बल कर मारे हैं, पर अब मेरे हाथ से तेरा बचना कठिन है।

मो सों तोहि पर्यो अब काम, कपट छांडि कीजो संग्राम.
बानासुर भौमासुर बरी, तेरौ मग देखत हैं हरी.
पठऊं तहां बहुरि नहि आवै, भाजे तू न बड़ाई पावै.

यह बात सुन जों श्री कृष्ण जी ने इतना कहा कि, रे मूरख अभिमानी कायर क्रूर! जो हैं क्षत्री गंभीर धीर सूर, वे पहले किसी से बड़ा बोल नहीं बोलते, तों उस ने दौड़कर हरि पर एक गदा अति क्रोधकर चलाई, सो प्रभु ने सहज सुभाव ही काट गिराई; पुनि श्री कृष्णचंद जी ने

उसे एक गदा मारी, वह गदा खाय माया की ओट में जाय दो घड़ी मूर्छित रहा, फिर कपट रूप बनाय प्रभु के सनमुख आय बोला।

माय तिहारी देवकी, पठयौ मोहि अकुलाय.
रिपु सालव वसुदेव कौं, पकरे लीये जाय.

महाराज! वह असुर इतना वचन सुनाय वहां से जाय, माया का वसुदेव बनाय, बांध लाय, श्री कृष्णचंद के सोंहीं आय बोला, रे कृष्ण! देख, मैं तेरे पिता को बांध लाया, औ अब इस का सिर काट सब यदुबंसियों को मार समुद्र में पाटूंगा, पीछे तुझे मार इकछत राज करूंगा. महाराज! ऐसे कह उस ने माया के वसुदेव का सिर पछाड़के श्री कृष्ण जी के देखते काट डाला, औ बरछी के फल पर रक्ख सब को दिखाया. यह माया का चरित्र देख पहले तो प्रभु को मूर्छा आई; पुनि देह संभाल मन हीं मन कहने लगे कि, यह क्योंकर हुआ जो यह बसुदेव जी को बलराम जी के रहते द्वारिका से पकड़ लाया? क्या यह उन से भी बली है जो उन के सनमुख से वसुदेव जी को ले निकल आया!।

महाराज! इसी भांति की अनेक अनेक बातें कितनी एक बेर लग आसुरी माया में आय प्रभु ने की, औ महा भावित रहे. निदान ध्यान कर हरि ने देखा तो सब आसुरी माया की छाया का भेद पाया, तब तो श्री कृष्णचंद जी ने उसे ललकारा; प्रभु की ललकार सुन वह आकाश को गया, औ लगा वहां से प्रभु पर शस्त्र चलाने. इस बीच श्री कृष्णचंद जी ने कई एक बान ऐसे मारे कि वह रथ समेत समुद्र में गिरा. गिरते ही संभल गदा ले प्रभु पर झपटा, तब तो हरि ने उसे अति क्रोध कर सुदरसन चक्र से मार गिराया, ऐसे कि जैसे सुरपति ने ब्रतासुर को मार गिराया था. महाराज! उस के गिरते ही उस के सीस की मनि निकल भूमि पर गिरी, औ जोति श्री कृष्णचंद के मुख में समाई. इति।

CHAPTER LXXVIII.

KRISHṆ SLAYS BAKRDANT AND BIDÚRATH, THE TWO BROTHERS OF SISUPÁL. HE GOES TO HASTINÁPUR TO AID THE PÁṆḌAVS AGAINST THE KAURAVAS. BALARÁM GOES ON A PILGRIMAGE, AND SLAYS THE SAGE SÚTJÍ, FOR NOT RISING UP AT HIS APPROACH.

श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! अब मैं सिसुपाल के भाई बक्रदंत औ बिदूरथ की कथा कहता हूं कि जैसे वे मारे गए. जब से सिसुपाल मारा गया, तब से वे दोनों श्री कृष्णचंद जी से अपने भाई का पलटा लेने का विचार किया करते थे; निदान सालव औ दुबिद के मरते ही अपना सब कटक ले द्वारिकापुरी पर चढ़ि आए, औ चारों ओर से घेर लगे अनेक अनेक प्रकार के जंत्र औ शस्त्र चलाने।

परॆो नगर में खरवर भारी, सुनि पुकार रथ चढ़े मुरारी.

आगे श्री कृष्णचंद जी नगर के बाहर जाय वहां खड़े ज़ए कि जहां अति कोप किये शस्त्र लिये वे दोनों असुर लड़ने को उपस्थित थे. प्रभु को देखते ही बक्रदंत महा अभिमान कर बोला कि, रे कृष्ण! तू पहले अपना शस्त्र चलाय ले, पीछे मैं तुझे मारूंगा. इतनी बात मैं ने इस लिये तुझे कही कि मरते समय तेरे मन में यह अभिलाषा न रहे कि, मैं ने बक्रदंत पर शस्त्र न किया; तू ने तो बड़े बड़े बली मारे हैं, पर अब मेरे हाथ से जीता न बचेगा. महाराज! ऐसे कितने एक दुष्ट वचन कह, वक्रदंत ने प्रभु पर गदा चलाई, सो हरि ने सहज ही काट गिराई; पुनि दूसरी गदा ले हरि से महा युद्ध करने लगा, तब तो भगवान ने उसे मार गिराया, औ तिस का जी निकल प्रभु के मुख में समाया।

आगे वक्रदंत का मरना देख, बिदूरथ जों युद्ध करने को चढ़ आया, तोंहीं श्री कृष्ण जी ने सुदरसन चक्र चलाया, उस ने बिदूरथ का सिर मुकुट कुंडल समेत काट गिराया; पुनि सब असुर दल को मार भगाया; उस काल।

फूले देव पज़प बरषावें, किन्नर चारन हरि जस गावें.
सिद्ध साध विद्याधर सारे, जयजय चढ़े बिमान पुकारे.

पुनि सब बोले कि, महाराज! आप की लीला अपरंपार है, कोई इस का भेद नहीं जानता; प्रथम हिरनकस्यप औ हिरनाकुस भए, पीछे रावन औ कुंभकरन; अब ये दंतवक्र औ सिसुपाल हो आए, तुम ने तीनों बेर इन्हें मारा औ परम मुक्ति दी, इस से तुम्हारी गति कुछ किसू से जानी नहीं जाती. महाराज! इतना कह देवता तो प्रभु को प्रनाम कर चले गए, औ हरि बलराम जी से कहने लगे कि, भाई! कौरव औ पांडवों से ज़ई लड़ाई, अब क्या करें? बलदेव जी बोले, कृपा निधान! कृपा कर आप हस्तिनापुर को पधारिये, तीरथ यात्रा कर पीछे से मैं भी आता हूं.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! यह वचन सुन श्री कृष्णचंद जी तो वहां को पधारे, जहां कुरक्षेत्र में कौरव औ पांडव महाभारत युद्ध करते थे; औ बलराम जी तीरथ यात्रा को निकले. आगे सब तीरथ करते करते बलदेव जी नीमषार में पज़ंचे, तो वहां क्या देखते हैं कि, एक ओर ऋषि मुनि यज्ञ रच रहे हैं, औ एक ओर ऋषि मुनि की सभा में सिंहासन पर बैठे सूत जी कथा बांच रहे हैं. इन को देखते ही सौनकादि सब मुनि ऋषियों ने उठकर प्रनाम किया, औ सूत सिंहासन पर गद्दी लगाए बैठा देखता रहा।

महाराज! सूत के न उठते ही बलराम जी ने सौनकादि सब ऋषि मुनियों से कहा कि, इस मूरख को किस ने बक्ता किया, और व्यास आसन दिया? वक्ता चाहिये भक्तिवंत विवेकी औ ज्ञानी; यह है गुन हीन कृपन औ अति अभिमानी; पुनि चाहिये निर्लोभी औ परमारथी; यह

है महा लोभी औ आप स्वारथी; ज्ञान हीन अविवेकी को यह व्यास गादी फबती नहीं; इसे मारें तो क्या, पर व्हां से निकाल दिया चाहिये. इस बात के सुनते ही सौनकादि बड़े बड़े मुनि ऋषि अति बिनती कर बोले कि, महाराज! तुम हो बीर धीर सकल धर्म नीति के जान, यह है कायर अधीर अविवेकी अभिमानी अज्ञान; इस का अपराध क्षमा कीजे, क्योंकि यह व्यास गादी पर बैठा है, औ ब्रह्मा ने यज्ञ कर्म के लिये इसे व्हां स्थापित किया ह।

आसन गर्व मूढ़ मन धर्‍यौ, उठि प्रनाम तुम कौं नहीं कर्‍यौ.
यही, नाथ! याकौ अपराध, परी चूक है तौ यह साध.
सूत हि मारे पातक होय, जग में भलौ कहै नहीं कोय.
निर्फल बचन न जाय तिहारौ, यह तुम निज मन मांहि बिचारौ.

महाराज! इतनी बात के सुनते ही बलराम जी ने एक कुश उठाय, सहज सुभाव सूत को मारा, उस के लगते वह मर गया. यह चरित्र देख सौनकादि ऋषि मुनि हाहाकार कर अति उदास हो बोले कि, महाराज! जो बात होनी थी सो तौ हुई, पर अब कृपा कर हमारी चिंता मेटिये. प्रभु बोले, तुम्हें किस बात की इच्छा है? सो कहो, हम पूरी करें. मुनियों ने कहा, महाराज! हमारे यज्ञ करने में किसी बात का बिघ्न न होय, यही हमारी बासना है, सो पूरी कीजे, औ जगत में जस लीजे. इतना बचन मुनियों के मुख से निकलते ही, अंतरजामी बलराम जी ने सूत के पुत्र को बुलवाय, व्यास गादी पर बैठायके कहा, यह अपने बाप से अधिक बक्ता होगा, औ मैं ने इसे अमर पद दे चिरंजीव किया, अब तुम निचिंताई से यज्ञ करो. इति।

CHAPTER LXXIX.

BALARÁM SLAYS THE DÆMON JÁLAB, THE SON OF LAB. CONVERSATION BETWEEN KRISHN AND BALARÁM AS TO THE WAR OF THE PÁNDAVS AND KAURAVAS. BALARÁM IS PURIFIED FROM THE CRIME OF KILLING SÚTJÍ.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! बलराम जी की आज्ञा पाय सौनकादि सब ऋषि मुनि अति प्रसन्न हो जों यज्ञ करने लगे, तौं जालव नाम दैत्य लव का बेटा आय, महा मेघ कर बादल गरजाय, बड़ी भयंकर अति काली आंधी चलाय लगा आकाश से रुधिर औ मल मूत्र बरसावने, और अनेक अनेक उपद्रव मचाने।

महाराज! दैत्य की यह अनीति देखि बलदेव जी ने हल मूसल का आवाहन किया, वे आय उपस्थित हुए. पुनि महा क्रोध कर प्रभु ने जालव को हल से खैंच एक मूसल उस के सिर में ऐसा मारा कि।

फूट्यौ मस्तक छूटे प्रान, रुधिर प्रवाह भयौ तिहिं स्थान.
कर भुज डारि पर्‍यौ बिकरार, निकरे लोचन राते वार.

जालब के मरते ही सब मुनियों ने अति संतुष्ट हो बलदेव जी की पूजा की, औ बड़त सी स्तुति कर भेट दी. फिर बलराम सुख धाम वहां से बिदा हो, तीरथ यात्रा को निकले, तो महाराज! सब तीरथ कर पृथ्वी प्रदक्षना करते करते वहां पड़ंचे कि जहां कुरक्षेत्र में दुर्योधन औ भीमसेन महा युद्ध करते थे, औ पांडव समेत श्री कृष्णचंद औ बड़े बड़े राजा खड़े देखते थे. बलराम जी के जाते ही दोनों वीरों ने प्रनाम किया; एक ने गुरु जान, दूसरे ने बंधु मान. महाराज! उन दोनों को लड़ता देख बलदेव जी बोले।

सुभट समान प्रबल दोऊ वीर, अब संग्राम तजऊ तुम धीर.
कौर पंडु की राखऊ बंस, बंधु मित्र सब भए विध्वंस.
दोऊ सुनि बोले सिर नाय, अब रन तें उतर्यौ नहीं जाय.

पुनि दुर्योधन बोला कि, गुरुदेव! मैं आप के सनमुख झूठ नहीं भाषता, आप मेरी बात मन दे सुनिये; यह जो महाभारत युद्ध होता है, औ लोग मारे गए औ जाते हैं औ जांयगे, सो तुम्हारे भाई श्री कृष्णचंद जी के मते से. पांडव केवल श्री कृष्ण जी के बल से लड़ते हैं, नहीं इन की क्या सामर्थ थी जो ये कौरवों से लड़ते? ये बापरे तो हरि के बस ऐसे हो रहे हैं कि जैसे काठ की पुतली नटुए के बस होय; जिधर वह चलावे तिधर वह चले. उन को यह उचित न था, जो पांडवों की सहायता कर हम से इतना द्वेष करें. दूसासन की भीम से भुजा उखड़ाई; औ मेरी जांघ में गदा लगवाई: तुम से अधिक हम क्या कहैंगे इस समय?।

जो हरि करें सोई अब होय, या बातें जाने सब कोय.

यह वचन दुर्योधन के मुख से निकलते ही, इतना कह बलराम जी श्री कृष्णचंद के निकट आए कि, तुम भी उपाध करने में कुछ घाट नहीं; औ बोले कि, भाई! तुम ने यह क्या किया जो युद्ध करवाय दूसासन की भुजा उखड़वाई, औ दुर्योधन की जांघ कटवाई? यह धर्म युद्ध की रीति नहीं हैं कि, कोई बलवान हो किसी की भुजा उखाड़े, कै कटि के नीचे शस्त्र चलावे! हां धर्म युद्ध यह है कि, एक एक को ललकार सनमुख शस्त्र करे. श्री कृष्णचंद बोले कि, भाई! तुम नहीं जानते, ये कौरव बड़े अधर्मी अन्याई हैं, इन की अनीति कुछ कही नही जाती; पहले इन्हों ने दूसासन शकुन भगदंत के कहे जुआ खेल, कपट कर, राजा युधिष्ठिर का सर्वस जीत लिया; दूसासन द्रौपदी को हाथ पकड़ लाया, इस से उस के हाथ भीमसेन ने उखाड़े; दुर्योधन ने सभा के बीच द्रौपदी को जांघ पर बैठने को कहा, इसी से उस की जांघ काटी गई।

इतना कह पुनि श्री कृष्णचंद बोले कि, भाई! तुम नहीं जानते, इसी भांति की जो जो अनीति कौरवों ने पांडवों के साथ की है, सो हम कहां तक कहैंगे? इस से यह भारत की आग किसी रीति से अब न बुझेगी, तुम इस का कुछ उपाय मत करो. महाराज! इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही बलराम जी कुरक्षेत्र से चलि द्वारिकापुरी में आए, औ राजा उग्रसेन

सूरसेन से भेट कर हाथ जोड़ कहने लगे कि, महाराज! आप के पुन्य प्रताप से हम सब तीरथ यात्रा तो कर आए, पर एक अपराध हम से ऊआ. राजा उग्रसेन बाले सो क्या? बलराम जी ने कहा, महाराज! नीमषार में जाय हम ने सूत को मारा, तिन की हत्या हमें लगी, अब आप की आज्ञा होय तो पुनि नीमषार जाय, यज्ञ के दरसन कर, तीरथ न्हाय, हत्या का पाप मिटाय आवें, पीछे ब्राह्मन भोजन करवाय जात को जिमावें जिस से जग में जस पावें. राजा उग्रसेन बोले, अच्छा, आप हो आइये. महाराज! राजा की आज्ञा पाय बलराम जी कितने एक यदुबंसियों को साथ ले, नीमषार जाय स्नान दान कर, शुद्ध हो आए; पुनि पुरोहित को बुलाय, होम करवाय, ब्राह्मन जिमाय, जात को खिलाय, लोक रीति कर पवित्र ऊए. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले, महाराज!

जो यह चरित्र सुने मन लाय, ताको सब ही पाप नसाय. इति।

CHAPTER LXXX.

SUDÁMÁ, AN INDIGENT BRÁHMAN, SEEKS RELIEF FROM KṚISHṆ.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! अब मैं सुदामा की कथा कहता ऊं कि जैसे वह प्रभु के पास गया, औ उस का दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनौ. दच्छन दिसा की ओर है एक द्राविड़ देस, तहां बिप्र औ बनिक बस्ते थे नरेस; जिन के राज में घर घर होता था भजन सुमिरन औ हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप यज्ञ धर्म दान, और साध संत गौ ब्राह्मन का सन्मान।

ऐसे बसें सबै तिहिं ठौर, हरि बिन कछू न जाने और.

तिसी देस में सुदामा नाम ब्राह्मन श्री कृष्णचंद का गुरु भाई, अति दीन, तन छीन, महा दरिद्री, ऐसा कि जिस के घर पै न घास, न खाने को कुछ पास रहता था. एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय महा दुख पाय, पति के निकट जाय, भय खाय, डरती कांपती बोली कि, महाराज! अब इस दरिद्र के हाथ से महा दुख पाते हैं, जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊं. ब्राह्मन बोला सो क्या? कहा, तुम्हारे परम मित्र त्रिलोकी नाथ द्वारिका बासी श्री कृष्णचंद आनंदकंद हैं, जो उन के पास जाओ तो यह जाय, क्योंकि वे अर्थ धर्म काम मोच्छ के दाता हैं।

महाराज! जब ब्राह्मनी ने ऐसे समझायकर कहा, तब सुदामा बोला कि, हे प्रिये! बिन दिये श्री कृष्णचंद भी किसी को कुछ नहीं देते; मैं भली भांति से जानता ऊं कि, जन्म भर मैं ने किसी को कभी कुछ नहीं दिया, बिन दिये कहां से पाऊंगा? हां तेरे कहे से जाऊंगा, तो श्री

कृष्ण जी के दरसन कर आऊंगा. इस बात के सुनते ही ब्राह्मनी ने एक अति पुराने धौले वस्त्र में थोड़े से चांवल बांध ला दिये प्रभु की भेट के लिये; और डोर लोटा औ लाठी ला आगे धरी, तब तो सुदामा डोर लोटा कांधे पर डाल, चांवल की पोटली कांख में दबाय, लाठी हाथ में ले, गनेस को मनाय, श्री कृष्णचंद जी का ध्यान कर, द्वारिकापुरी को पधारा।

महाराज! बाट ही में चलते चलते सुदामा मन ही मन कहने लगा कि, भला, धन तो मेरी प्रारब्ध में नहीं, पर द्वारिका जाने से श्री कृष्णचंद आनंदकंद का दरसन तो करूंगा. इसी भांति से सोच बिचार करता करता सुदामा तीन पहर के बीच द्वारिकापुरी में पहुंचा, तो क्या देखता है कि नगर के चारों ओर समुद्र है, औ बीच में पुरी. वह पुरी कैसी है कि जिस के चहुं ओर बन उपबन फूल फल रहे हैं; तड़ाग वापी इंदारों पर रंहट परोहे चल रहे हैं; ठौर ठौर गायों के यूथ के यूथ चर रहे हैं; तिन के साथ साथ ग्वालबाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! सुदामा बन उपबन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देखे तो कंचन के मनिमय मंदिर महा सुंदर जगमगाय रहे हैं; ठांव ठांव अथाईयों में यदुबंसी इंद्र की सी सभा किये बैठे हैं; हाट बाट चौहटों में नाना प्रकार की वस्तु बिक रही है; घर घर जिधर तिधर गान दान हरि भजन औ प्रभु का जस हो रहा है; औ सारे नगर निवासी महा आनंद में हैं. महाराज! यह चरित्र देखता देखता, औ श्री कृष्णचंद का मंदिर पूछता पूछता, सुदामा जा प्रभु की सिंह पौर पर खड़ा हुआ. इस ने किसी से डरते डरते पूछा कि, श्री कृष्णचंद जी कहां बिराजते हैं? उस ने कहा कि, देवता! आप मंदिर भीतर जाओ, सनमुख ही श्री कृष्णचंद जी रत्न सिंहासन पर बैठे हैं।

महाराज! इतना वचन सुन सुदामा जों भीतर गया, तों देखते ही श्री कृष्णचंद सिंहासन से उतर, आगू बढ़, भेट कर, अति प्यार से हाथ पकड़ उसे ले गए; पुनि सिंहासन पर बिठाय, पांव धोय, चरनामृत लिया; आगे चंदन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर, प्रभु ने सुदामा की पूजा की।

इतनी करिकै जोरे हाथ, कुशल क्षेम पूछत यदुनाथ.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! यह चरित्र देख श्री रुक्मिनी जी समेत आठों पट रानियां औ सोलह सहस्र आठ सौ रानियां और सब यदुबंसी जो उस समय वहां थे, मन हीं मन यों कहने लगे कि, इस दलिद्री, दुर्बल, मलीन, वस्त्र हींन ब्राह्मन ने ऐसा क्या अगले जन्म पुन्य किया था, जो त्रिलोकी नाथ ने इसे इतना माना? महाराज! अंतरजामी श्री कृष्णचंद उस काल सब के मन की बात समझ, उन का संदेह मिटाने को सुदामा से गुरु के घर की बातें करने लगे कि, भाई! तुम्हें वह सुध है जो एक दिन गुरु पत्नी ने हमें तुम्हें

ईंधन लेने भेजा था, औ जब बन मे ईंधन ले गठड़ियां बांध सिर पर धर घर को चले, तब आंधी और मेह आया, औ लगा मूंसलाधार बरसने; जल थल चारों ओर भर गया; हम तुम भींगकर महा दुख पाय, जाड़ा खाय, रात भर एक वृक्ष के नीचे रहे; भोर ही गुरुदेव बन में ढूंढने आए, औ अति करुना कर असीस दे हमें तुम्हें अपने साथ घर लिवाय लाए।

इतना कह पुनि श्री कृष्णचंद जी बोले कि, भाई! जब से तुम गुरुदेव के य्हां से बिछड़े, तब से हम ने तुम्हारा समाचार न पाया था कि कहां थे, औ क्या करते थे, अब आय दरस दिखाय तुम ने हमें महा सुख दिया, औ घर पवित्र किया. सुदामा बोला, हे कृपा सिंधु! दीनबंधु! स्वामी अंतरजामी! तुम सब जानते हो, कोई बात संसार में ऐसी नहीं जो तुम से छिपी है. इति।

CHAPTER LXXXI.

KRISHṆ LOADS SUDÁMÁ WITH RICHES.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! अंतरजामी श्री कृष्ण जी ने सुदामा की बात सुन, औ उस के अनेक मनोरथ समझ, हंसकर कहा कि, भाई! भाभी ने हमारे लिये क्या भेट भेजी है? सो देते क्यों नहीं, कांख में किस लिये दबाय रहे हो? महाराज! यह बचन सुन सुदामा तो सुकचाय मुरझाय रहा, औ प्रभु ने झट चांवल की पोटली उस की कांख से निकाल ली; पुनि खोल उस में से अति रुचि कर दो मुट्ठी चांवल खाए, और जों तीसरी मुट्ठी भरी, तो श्री रुक्मिनी जी ने हरि का हाथ पकड़ा, औ कहा कि, महाराज! आप ने दो लोक तो इसे दिये, अब अपने रहने को भी कोई ठौर रक्खोगे के नहीं? यह तो ब्राह्मन सुशील कुलीन अति बैरागी महा त्यागी सा दृष्ट आता है; क्योंकि इसे बिभौ पाने से कुछ हर्ष न हुआ, इस से मैंने जाना कि, ये लाभ हांन समान जानते हैं, इन्हें पाने का हर्ष, न जाने का शोक।

इतनी बात रुक्मिनी जी के मुख से निकलते ही श्री कृष्णचंद जी ने कहा कि, हे प्रिये! यह मेरा परम मित्र है, इस के गुन मैं कहां तक बखानूं? सदा सर्वदा मेरे स्नेह में मगन रहता है, और उस के आगे संसार के सुख को तृनवत समझता है।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीछित से कहा कि, महाराज! ऐसे अनेक अनेक प्रकार की बातें कर, प्रभु रुक्मिनी जी को समझाय, सुदामा को मंदिर में लिवाय ले गये, आगे षट रस भोजन करवाय, पान खिलाय, हरि ने सुदामा को फेन सी सेज पर ले जाय बैठाया. वह पथ का हारा थका तो था ही, सेज पर जाय सुख पाय सो गया. प्रभु ने उस समय विश्वकर्मा को बुलायके कहा कि, तुम अभी जाय सुदामा के मंदिर अति सुन्दर कंचन रत्न के बनाय, तिन में अष्ट सिद्धि नव निद्धि धर आओ, जो इसे किसी बात की कांक्षा न रहै, इतना

वचन प्रभु के मुख से निकलते ही विश्वकर्मा वहां जाय बात की बात में बनाय आया, औ हरि से कह अपने स्थान को गया।

भोर होते ही सुदामा उठ स्नान ध्यान भजन पूजा से निचिंत होय प्रभु के पास बिदा होने गया; उस समय श्री कृष्णचंद जी मुख से तो कुछ न बोल सके, पर प्रेम में मगन हो आंखें डबडबाय सिथल हो देख रहे. सुदामा बिदा हो प्रनाम कर अपने घर को चला, औ पंथ में जाय मन हीं मन विचार करने लगा कि, भला भया जो मैं ने प्रभु से कुछ न मांगा, जो उन से कुछ मांगता तो वे देते तो सही, पर मुझे लोभी लालची समझते. कुछ चिंता नहीं, ब्राह्मनी को मैं समझाय लूंगा; श्री कृष्णचंद जी ने मेरा अति मान सन्मान किया, औ मुझे निर्लोभी जाना, यही मुझे लाख है. महाराज! ऐसे सोच बिचार करता करता सुदामा अपने गांव के निकट आया तो क्या देखता है कि, न वह ठाव है, न वह टूटी मढ़ैया, वहां तो एक इंद्र पुरी सी बस रही है. देखते ही सुदामा अति दुखित हो कहने लगा कि, हे नाथ! तू ने यह क्या किया? एक दुख तो था ही, दूसरा और दिया; य्हां से मेरी झोंपड़ी क्या ऊई, और ब्राह्मनी कहां गई, किस से पूछूं, औ किधर ढूंढूं?।

इतना कह द्वार पर जाय सुदामा ने द्वारपाल से पूछा कि, यह मंदिर अति सुंदर किस के हैं? द्वारपाल ने कहा, श्री कृष्णचंद के मित्र सुदामा के हैं. यह बात सुन जों सुदामा कुछ कहने को ऊआ, तों भीतर से देख उस की ब्राह्मनी अच्छे वस्त्र आभूषन पहने, नख सिख से सिंगार किये, पान खाए, सुगंध लगाए, सखियों को साथ लिये, पति के निकट आई।

पायन पर पाटंबर डारे, हाथ जोर ये वचन उचारे.
ठाढ़े क्यों? मंदिर पग धारौ, मन सों सोच करौ तुम न्यारौ.
तुम पाछें बिश्वकर्मा आए, तिन मंदिर पल मांझ बनाए.

महाराज! इतनी बात ब्राह्मनी के मुख से सुन, सुदामा जी मंदिर में गए, औ अति विभौ देख महा उदास भए. ब्राह्मनी बोली स्वामी! धन पाय लोग प्रसन्न होते हैं, तुम उदास ऊए, इस का कारन क्या है? सो कृपा कर कहिये, जो मेरे मन का संदेह जाय. सुदामा बोला कि, हे प्रिये! यह बड़ी ठगनी है, इस ने सारे संसार को ठगा है ठगनी है औ ठगेगी, सो प्रभु ने मुझे दी, औ मेरे प्रेम की प्रतीति न की; मैंने उन से कब मांगी थी? जो उन्हों ने मुझे दी, इसी से मेरा चित उदास है. ब्राह्मनी बोली, स्वामी! तुम ने तो श्री कृष्णचंद जी से कुछ न मांगा था, पर वे अंतरजामी घट घट की जानते हैं, मेरे मन में धन की वासना थी, सो प्रभु ने पुरी की, तुम अपने मन में और कुछ मत समझो. इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! इस प्रसंग को जो सदा सुने सुनावेगा, सो जन जगत में आय दुख कभी न पावेगा, औ अंत काल वैकुंठ धाम जावेगा. इति।

CHAPTER LXXXII.

KRISHN AND BALARÁM GO TO KURKSHETR TO BATHE ON THE OCCASION OF AN ECLIPSE. HISTORY OF THE SANCTITY ACQUIRED BY THE REGION OF KURKSHETR, AND ADVENTURE OF THE SAGE YAMADAGNI WITH THE THOUSAND-ARMED RÁJÁ SAHASRÁRJUN, WHO IS SLAIN BY PARSHURÁM. THE INHABITANTS OF BRAJ VISIT KRISHN.

श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! अब मैं प्रभु के कुरक्षेत्र जाने की कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनो कि, जैसे द्वारिका से सब यदुबंसियों को साथ ले श्री कृष्णचंद औ बलराम जी सूर्य ग्रहन न्हाने कुरक्षेत्र गए. राजा ने कहा, महाराज! आप कहिये, मैं मन दे सुनता हूं.

पुनि श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक समय सूर्य ग्रहन के समाचार पाय श्री कृष्णचंद औ बलदेव जी ने राजा उग्रसेन के पास जायके कहा कि, महाराज! बहुत दिन पीछे सूर्य ग्रहन आया है, जो इस पर्व को कुरक्षेत्र में चलकर कीजे तो बड़ा पुन्य होय; क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि, कुरक्षेत्र में जो दान पुन्य करिये सो सहस्र गुना होय. इतनी बात के सुनते ही यदुबंसियों ने श्री कृष्णचंद जी से पूछा कि, महाराज! कुरक्षेत्र ऐसा तीर्थ कैसे हुआ, सो कृपा कर हमें समझायके कहिये।

श्री कृष्ण जी बोले कि, सुनो! यमदग्नि ऋषि बड़े ज्ञानी ध्यानी तपस्वी तेजस्वी थे; तिन के तीन पुत्र हुए; उन में सब से बड़े परशुराम, सो बैराग कर घर छोड़ चित्रकूट में जाय रहे, औ सदाशिव की तपस्या करने लगे, लड़कों के होते ही यमदग्नि ऋषि गृहस्थाश्रम छोड़, बैराग कर, स्त्री सहित बन में जाय तप करने लगे. उन की स्त्री का नाम रेनुका, सो एक दिन अपने बहन को नौतने गई, उस की बहन राजा सहस्रार्जुन की स्त्री थी. नौता देते ही अहंकार कर राजा सहस्रार्जुन की रानी रेनुका की बहन हंसकर बोली कि, बहन! तुम हमें हमारे कटक समेत जिमाय सको तो नौता दो, नहीं तो न दो।

महाराज! यह बात सुन रेनुका अपना सा मुंह ले चुपचाप वहां से उठ अपने घर आई; इसे उदास देख यमदग्नि ऋषि ने पूछा कि, आज क्या है जो तू अनमनी हो रही है? महाराज! बात के पूछते ही रेनुका ने रोकर सब जों की तों बात कही. सुनते ही यमदग्नि ऋषि ने स्त्री से कहा कि, अच्छा, तू जायके अभी अपनी बहन को कटक समेत नौत आ. पति की आज्ञा पाय रेनुका बहन के घर जाय नौत आई, उस की बहन ने अपने स्वामी से कहा कि, कल तुम्हें हमें दल समेत यमदग्नि ऋषि के यहां भोजन करने जाना है. स्त्री की बात सुन, अच्छा कह, वह हंस कर चुप हो रहा; भोर होते ही यमदग्नि उठ कर राजा इंद्र के पास गए, औ कामधेनु मांग लाए, पुनि जाय राजा सहस्रार्जुन को बुलाय लाए; वह कटक समेत आया, तिसे यमदग्नि जी ने इच्छा भोजन खिलाया।

कटक समेत भोजन कर राजा सहस्रार्जुन अति लज्जित ऊत्र्पा, औ मन हीं मन कहने लगा कि, इस ने इतने लोगों के खाने की सामग्री रात भर में कहां पाई, औ कैसे बनाई? इस का भेद कुछ जाना नहीं जाता. इतना कह बिदा होय, उस ने अपने घर जाय, यों कह, एक ब्राह्मन को भेज दिया कि, देवता! तुम यमदग्नि के घर जाय इस बात का भेद लाओ कि, उस ने किस के बल से एक दिन के बीच मुझे कटक समेत नौत जिमाया. इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन ने झट जाय देख आय सहस्रार्जुन से कहा कि, महाराज! उस के घर में कामधेनु है, उसी के प्रभाव से उस ने तुम्हें एक दिन में नौत जिमाया. यह समाचार सुन सहस्रार्जुन ने उसी ब्राह्मन से कहा कि, देवता! तुम जाय हमारी ओर से यमदग्नि ऋषि से कहो कि, सहस्रार्जुन ने कामधेनु मांगी है।

बात के सुनते ही वह ब्राह्मन संदेसा ले ऋषि के पास गया, औ उस ने सहस्रार्जुन की कही बात कही. ऋषि बोले कि, यह गाय हमारी नहीं जो हम दें, यह तो राजा इंद्र की है, हम इसे दे नहीं सकते, तुम जाय अपने राजा से कहो. बात के कहते ही ब्राह्मन ने आय राजा सहस्रार्जुन से कहा कि, महाराज! ऋषि ने कहा है, कामधेनु हमारी नहीं, यह तो राजा इंद्र की है, इसे हम दे नहीं सकते. इतनी बात ब्राह्मन के मुख से निकलते ही सहस्रार्जुन ने अपने कितने एक जोधाओं को बुलायके कहा, तुम अभी जाय यमदग्नि के घर से कामधेनु खोल लाओ।

स्वामी की आज्ञा पाय जोधा ऋषि के स्थान पर गए, औ ज्यों धेनु को खोल यमदग्नि के सनमुख हो ले चले, त्यों ऋषि ने दौड़कर बाट में जाय कामधेनु को रोका. यह समाचार पाय, क्रोधकर सहस्रार्जुन ने आ, ऋषि का सिर काट डाला, कामधेनु भाग इंद्र के यहां गई, रेनुका आय पति के पास खड़ी भई।

सिर खसोट लोटत फिरै, बैठि रहै गहि पाय,
छाती पीटै रुदन करि, पिउ पिउ कहि बिललाय.

उस काल रेनुका का बिलबिलाना औ रोना सुन दसों दिसा के दिगपाल कांप उठे, औ परशुराम जी का तप करते आसन डिगा, औ ध्यान छुटा. ध्यान के छूटते ही ज्ञान कर परशुराम जी अपना कुठार ले वहां आए, जहां पिता की लोथ पड़ी थी, औ माता पीटती खड़ी थी. देखते ही परशुराम जी को महा कोप ऊत्र्पा; इस में रेनुका ने पति के मारे जाने का सब भेद पुत्र को रो रो कह सुनाया. बात के सुनते ही परशुराम जी इतना कह वहां गये, जहां सहस्रार्जुन अपनी सभा में बैठा था कि, माता! पहले मैं अपने पिता के बैरी को मारि आऊं, तब आय पिता को उठाऊंगा. उसे देखते ही परशुराम जी कोप कर बोले।

अरे क्रूर कायर कुल द्रोही, तात मारि दुख दीनों मोही.

ऐसे कह जब फरसा ले परशुराम जी महा कोप में आए, तब वह भी धनुष बान ले इन के मांहीं खड़ा ऊत्र्पा, दोनों बली महा युद्ध करने लगे; निदान लड़ते लड़ते परशुराम जी ने

चार घड़ी के बीच सहस्रार्जुन को मार गिराया; पुनि उस का कटक चढ़ि आया, तिसे भी इन्हों ने उसी के पास काट डाला: फिर ह्यां से आय पिता की गति करी, औ माता को समझा पुनि उसी ठौर परशुराम जी ने रुद्र यज्ञ किया, तभी से वह स्थान क्षेत्र कहकर प्रसिद्ध हुआ; वहां जाकर ग्रहन में जो कोई दान स्नान तप यज्ञ करता है, उसे सहस्र गुना फल होता है।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस प्रसंग के सुनते ही सब यदुवंसियों ने प्रसन्न हो श्री कृष्णचंद जी से कहा कि, महाराज! शीघ्र कुरक्षेत्र को चलिये, अब बिलंब न करिये; क्योंकि पर्व पर पहुंचा चाहिये. बात के सुनते ही श्री कृष्णचंद औ बलराम जी ने राजा उग्रसेन से पूछा कि, महाराज! सब कोई कुरक्षेत्र को चलेगा, यहां पुरी की चौकसी को कौन रहेगा? राजा उग्रसेन ने कहा, अनिरुद्ध जी को रख चलिये. राजा की आज्ञा पाय प्रभु ने अनिरुद्ध को बुलाय समझायकर कहा कि, बेटा! तुम यहां रहो, गौ ब्राह्मन की रक्षा करो, औ प्रजा को पालो, हम राजा जी के साथ सब यदुवंसियों समेत कुरक्षेत्र न्हाय आवें. अनिरुद्ध जी ने कहा, जो आज्ञा. महाराज! एक अनिरुद्ध जी को पुरी की रखवाली में छोड़ सुरसेन, वसुदेव, उद्धव, अक्रूर कृतवर्मा आदि छोटे बड़े सब यदुबंसी अपनी अपनी स्त्रियों समेत राजा उग्रसेन के साथ कुरक्षेत्र चलने को उपस्थित हुए. जिस समैं कटक समेत राजा उग्रसेन ने पुरी के बाहर डेरा किया, उस काल सब जाय मिले. तिन के पीछे से श्री कृष्णचंद जी भी भाई भौजाई को साथ ले, आठों पटरानी औ सोलह सहस्र आठ सौ रानी औ बेटों पोतों समेत जाय मिले. प्रभु के पहुंचते ही राजा उग्रसेन ने वहां से डेरा उठाया, औ राजा इंद्र की भांति बड़ी धूमधाम से आगे को प्रस्थान किया।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! कितने एक दिनों में चले श्री कृष्णचंद सब यदुवंसियों समेत आनंद मंगल से कुरक्षेत्र में पहुंचे. वहां जाय पर्व में सब ने स्नान किया, औ यथा शक्ति हरएक ने हाथी घोड़ा, रथ पालकी, वस्त्र शस्त्र, रत्न आभूषन, अन्न धन दान दिया, पुनि वहां सबों ने डेरे डाले. महाराज! श्री कृष्णचंद औ बलराम जी के कुरक्षेत्र जाने के समाचार पाय, चहुं ओर के राजा कुटंब सहित अपनी अपनी सब सेना ले ले वहां आय आय श्री कृष्ण बलराम जी को मिले. पुनि सब कौरव पांडव भी अपना अपना दल ले सकुटुंब वहां जाय मिले. उस काल कुंती औ द्रौपदी यदुवंसियों के रनवास में जाय सब से मिलीं. आगे कुंती ने भाई के सनमुख जाय कहा कि, भाई! मैं बड़ी अभागी, जिस दिन से मांगी, उसी दिन से दुख उठाती हूं, तुम ने जब से ब्याह दी, तब से मेरी सुधि कभी न ली, औ राम कृष्ण जो सब के हैं सुख दाई, उन को भी मेरी दया कुछ न आई. महाराज! इस बात के सुनते ही करुना कर आंखें भर वसुदेव जी बोले कि, बहन! तू मुझे क्या कहती है? इस में मेरा कुछ बस नहीं, कर्म की गति जानी नहीं जाती, हरि इच्छा प्रबल है, देखो कंस के हाथ मैं ने भी क्या क्या दुख न पाया!।

प्रभु आधीन सकल जग आय, कित दुख करौ देख जग भाय.

महाराज! इतना कह बहन को समझाय बुझाय बसुदेव जी वहां गए जहां सब राजा राजा उग्रसेन की सभा में बैठे थे, औ राजा दुर्योधन आदि बड़े बड़े नृप औ पांडव उग्रसेन ही की बड़ाई करते थे कि, राजा! तुम बड़े भागी हो, जो सदा श्री कृष्णचंद का दरसन पाते हो, औ जन्म जन्म का पाप गंवाते हो; जिन्हें शिव विरंच आदि सब देवता खोजते फिरें सो प्रभु तुम्हारी सदा रक्षा करें; जिन का भेद जोगी जति मुनि ऋषि न पावें, सो हरि तुम्हारी आज्ञा लेन आवें; जो हैं सब जग के ईस, वेई तुम्हें निवावते हैं सीस।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! ऐसे सब राजा आय आय राजा उग्रसेन की प्रशंसा करते थे, औ वे यथा योग सब का समाधान. इस में श्री कृष्ण बलराम जी का आना सुन, नंद उपनंद भी सकुटुंब सब गोपी गोप ग्वाल बाल समेत आन पहुंचे. स्नान दान से सुचित हो नंद जी वहां गए जहां पुत्र सहित बसुदेव देवकी विराजते थे; इन्हें देखते ही वसुदेव जी उठकर मिले, औ दोनों ने परस्पर प्रेम कर ऐसे सुख माना कि, जैसे कोई गई वस्तु पाय सुख माने. आगे वसुदेव जी ने नंदराय जी से ब्रज की पिछली सब बात कह सुनाई, जैसे नंदराय जी ने श्री कृष्ण बलराम जी को पाला था. जहाराज! इस बात के सुनते ही नंदराय जी नयनों में नीर भर वसुदेव जी का मुख देख रहे. उस काल श्री कृष्ण बलदेव जी प्रथम नंद जसोदा जी को यथा योग दंडवत प्रनाम कर, पुनि ग्वाल बालों से जाय मिले. तहां गोपियों ने आय हरि का चंदमुख निरख, अपने नयन चकोरों को सुख दिया, औ जीतब का फल लिया.

इतना कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! बसूदेव, देवकी, रोहनी, श्री कृष्ण बलराम से मिल, जो कुछ प्रेम नंद उपनंद जसोदा गोपी गोप ग्वाल बालों ने किया, सो मुझ से कहा नहीं जाता, वह देखे ही बन आवै. निदान सब को स्नेह में निपट व्याकुल देख श्री कृष्णचंद जी बोले कि, सुनौ।

मेरी भक्ति जो प्रानी करै, भव सागर निर्भय सो तरै.
तन मन धन तुम अर्पन कीन्हौ, नेह निरंतर कर मोहि चीन्हौ.
तुम सम बड़भागी नहीं कोय, ब्रह्मा रुद्र इंद्र किन होय.
जोगेश्वर के ध्यान न आयौ, तुम संग रह नित प्रेम बढ़ायौ.
हौं सबही के घट घट रहौं, अगम अगाध जु बानी कहौं.

जैसे तेज जल अग्नि पृथ्वी आकाश का है देह में बास, तैसे सब घट में मेरा है प्रकाश. श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जब श्री कृष्णचंद ने यह सब भेद कह सुनाय, तब सब ब्रजबासियों को धीरज आया. इति।

CHAPTER LXXXIII.

RUKMINÍ AND THE SIXTEEN-THOUSAND ONE-HUNDRED AND EIGHT WIVES OF KṚISHṆ, RELATE TO DRAUPADÍ THE MANNER OF THEIR NUPTIALS.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जैसे द्रौपदी औ श्री कृष्णचंद जी की स्त्रियों में परस्पर बातें ऊईं, सो मैं प्रसंग कहता हूं, तुम सुनौ. एक दिन कौरव औ पांडवों की स्त्रियां श्री कृष्णचंद जी की नारियों के पास बैठी थीं औ प्रभु के चरित्र औ गुन गाती थीं; इस में कुछ बात जो चली तो द्रौपदी ने श्री रुक्मिनी जी से कहा कि, हे सुंदरि! कह, तू ने श्री कृष्णचंद जी को कैसे पाय? श्री रुक्मिनी जी बोलीं।

सुनौ द्रौपदी तुम चित लाय, जैसे प्रभु ने किये उपाय.

मेरे पिता का तो मनोरथ था कि मैं अपनी कन्या श्री कृष्णचंद को दूं, औ भाई ने राजा सिसुपाल को देने का मन किया. वह बरात ले ब्याहन को आया, औ श्री कृष्णचंद जी को मैं ने ब्राह्मन भेज बुलाया. ब्याह के दिन मैं जों गौरि की पूजा कर घर को चली, तों श्री कृष्णचंद जी ने सब असुर दल के बीच से मुझे उठाय ले रथ में बैठाय अपनी बाट ली. तिस पीछे समाचार पाय सब असुर दल प्रभु पर आय टूटा, सो हरि ने सहज ही मार भगाया. पुनि मुझे ले द्वारिका पधारे. वहां जाते ही राजा उग्रसेन सूरसेन वसुदेव जी ने वेद की विधि से श्री कृष्णचंद जी के साथ मेरा ब्याह किया, विवाह के समाचार पाय मेरे पिता ने बऊत सा यौतुक भिजवाय दिया।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! जैसे द्रौपदी जी ने श्री रुक्मिनी से पूछा औ उन्हों ने कहा, तैसे ही द्रौपदी जी ने सतभामा, जंबावती, कालिंदी, भद्रा, सत्या, मित्रविंदा, लक्ष्मना आदि श्री कृष्णचंद की सोलह सहस्र सौ आठ पटरानियों से पूछा औ एक एक ने सब समाचार अपने अपने विवाह का ब्यौरे समेत कहा. इति।

CHAPTER LXXXIV.

VASUDEV PERFORMS A SACRIFICE.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! अब मैं सब ऋषियों के आने की, औ वसुदेव जी के यज्ञ करने की कथा कहता हूं, तुम चित दे सुनौ. महाराज! एक दिन राजा उग्रसेन सूरसेन वसुदेव श्री कृष्ण बलराम सब यदुबंसियों समेत सभा किये बैठे थे, औ सब देस देस के नरेस वहां उपस्थित थे, कि इस बीच श्री कृष्णचंद आनंदकंद के दरसन की अभिलाषा कर, व्यास, वशिष्ट,

विश्वामित्र, बामदेव, परासर, भृगु, पुलस्ति, भरद्वाज, मारकंडेय आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि वहां आए, औ तिन के साथ नारद जी भी. उन्हें देखते ही सभा की सभा सब उठ खड़ी हुई; पुनि सब दंडवत कर पटंबर के पांवड़े डाल, सब को सभा में ले गए. आगे श्री कृष्णचंद ने सब को आसन पर बैठाय, पांव धोय चरनामृत ले पिया, औ सारी सभा पर छिड़का. फिर चंदन अक्षत पुष्प धूप दीप नैवेद्य कर, भगवान ने सब की पूजा कर परिक्रमा की. पुनि हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो हरि बोले कि, धन्य भाग हमारे, जो आप ने आय घर बैठे दरसन दिया; साध का दरसन गंगा के स्नान समान है; जिस ने साध का दरसन पाया, उस ने जन्म जन्म का पाप गंवाया. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज!

श्री भगवान बचन जब कहे, तब सब ऋषि विचारत रहे.

कि जो प्रभु है जोति स्वरूप, औ सकल सृष्टि का करता, सो जब यह बात कहै तब और की किस ने चलाई? मन हीं मन सब मुनियों ने जद इतना कहा, तद नारद जी बोले।

सुनौ सभा तुम सब मन लाय, हरि माया जानी नहीं जाय.

ये आपही ब्रह्मा हो उपजावते हैं; विष्णु हो पालते हैं; शिव हो संहारते हैं; इन की गति अपरंपार है, इस में किसी की बुद्धि कुछ काम नहीं करती; पर इतना इन की कृपा से हम जानते हैं कि, साधों के सुख देने को, औ दुष्टों के मारने को, औ सनातन धर्म चलाने को, बार बार अवतार ले प्रभु आते हैं. महाराज! जों इतनी बात कह नारद जी सभा से उठने को हुए, तों वसुदेव जी सनमुख आय हाथ जोड़ बिनती कर बोले कि, हे ऋषिराय! मनुष संसार में आय कर्म से कैसे छूटे, सो कृपा कर कहिये? महाराज! यह बात वसुदेव जी के मुख से निकलते ही सब मुनि ऋषि नारद जी का मुख देख रहे, तब नारद जी ने मुनियों के मन का अभिप्राय समझ कर कहा कि, हे देवताओं! तुम इस बात का अचरज मत करो, श्री कृष्ण की माया प्रबल है, इस ने सारे संसार को जीत रक्खा है, इसी से वसुदेव जी ने यह बात कही, औ दूसरे ऐसे भी कहा है कि, जो जन जिस के समीप रहता है, वह उस का गुन प्रभाव औ प्रताप माया के बस हो नहीं जानता, जैसे।

गंगा वासी अनत हि जाइं, तज के गंग कूप जल न्हाइं,
यों ही यादव भए अयाने, नाहीं कछू कृष्ण गति जाने.

इतनी बात कह नारद जी ने मुनियों के मन का संदेह मिटाय, वसुदेव जी से कहा कि, महाराज! शास्त्र में कहा है, जो नर तीरथ, दान, तप, ब्रत, यज्ञ करता है, सो संसार के बंधन से छूट परम गति पाता है. इस बात के सुनते ही प्रसन्न हो वसुदव जी ने बात की बात में सब यज्ञ की सामा मंगाय उपस्थित की, औ ऋषियों औ मुनियों से कहा कि, कृपा कर यज्ञ का आरंभ कीजे. महाराज! वसुदेव जी के मुख से इतना वचन निकलते ही, सब ब्राह्मनों ने यज्ञ

का स्थान बनाय संवारा. इस बीच स्त्रियों समेत वसुदेव जी बेदी में जा बैठे, सब राजा औ यादव यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! जिस समय वसुदेव जी बेदी में जाय बैठे, उस काल वेद की बिधि से मुनियों ने यज्ञ का आरंभ किया, औ लगे वेद मंत्र पढ़ पढ़ आहुत देने, औ देवता संदेह भाग आय आय लेने. महाराज! जिस काल यज्ञ होने लगा, उस काल उधर किन्नर गंधर्व भेर दुंदभी बजाय बजाय गुन गाते थे; चारन बंदी जन जस बखानते थे; उरवसी आदि अपसरा नाचती थीं; औ देवता अपने अपने बिमानों में बैठे फुल बरसावते थे; औ इधर सब मंगली लोग गाय बजाय मंगलाचार करते थे, औ जाचक जैजैकार. इस में यज्ञ पूरन हुआ, औ वसुदेव जी ने पूर्नाहुत दे, ब्राह्मनों को पाटंबर पहराय, अलंकृत कर रत्न धन बहुत सा दिया, औ उन्हों ने वेद मंत्र पढ़ पढ़ आशीर्वाद किया. आगे सब देस देस के नरेसों को भी वसुदेव जी ने पहराया औ जिमाया; पुनि उन्हों ने यज्ञ की भेट करकर बिदा हो अपनी अपनी बाट ली. महाराज! सब राजाओं के जाते ही, नारद जी समेत सारे ऋषि मुनि भी बिदा हुए; पुनि नंदराय जी गोपी गोप ग्वाल बाल समेत जब वसुदेव जी से बिदा होने लगे, उस समय की बात कुछ कही नहीं जाती. इधर तो यदुबंसी करुना कर अनेक अनेक प्रकार की बातें करते थे; औ उधर सब ब्रजबासी; उस का बखान कुछ कहा नहीं जाय, वह सुख देखे ही बनि आय. निदान वसुदेव जी औ श्री कृष्ण बलराम जी ने सब समेत नंदराय जी को समझाय बुझाय पहराय औ बहुत सा धन दे बिदा किया.

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इस भांति श्री कृष्णचंद औ बलराम जी पर्व न्हाय यज्ञ कर सब समेत जब द्वारिका पुरी में आए, तो घर घर आनंद मंगल भए बधाए. इति।

CHAPTER LXXXV.

KRISHN, AT THE REQUEST OF HIS MOTHER DEVAKÍ, RECOVERS FROM THE INFERNAL REGIONS HIS SIX ELDER BROTHERS, WHO HAD BEEN SLAIN BY KANS.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! द्वारिका पुरी के बीच एक दिन श्री कृष्णचंद औ बलराम जी जों वसुदेव जी के पास गए, तों वे इन दोनों भाइयों को देख यह बात मन में बिचार उठ खड़े हुए कि, कुरुक्षेत्र में नारद जी ने कहा था कि, श्री कृष्णचंद जगत के करता हैं, औ हाथ जोड़ बोले कि, हे प्रभु! अलख अगोचर अविनासी! सदा सेवती है तुम्हें कमला भई दासी; तुम हो सब देवों के देव, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव; तुम्हारी ही जोति है चांद

सूरज पृथ्वी आकाश में; तुम्हीं करते हो सब ठौर प्रकाश; तुम्हारी माया है प्रबल, उस ने सारे संसार को भुला रक्खा है; त्रिलोकी में सुर नर मुनि ऐसा कोई नहीं जो उस के हाथ से बचा हो. महाराज! इतना कह पुनि वसुदेव जी बोले कि, नाथ!

कोऊ न भेद तुम्हारो जाने, बेदन मांझ अगाध बखाने.
शत्रु मित्र कोऊ न तिहारो, पुत्र पिता न सहोदर प्यारो.
पृथ्वी भार हरन अवतरो, जन के हेत भेष बहु धरो.

महाराज! ऐसे कह वसुदेव जी बोले कि, हे करुना सिंधु दीन बंधु! जैसे आप ने अनेक अनेक पतितों को तारा, तैसे कृपा कर मेरा भी निस्तार कीजे, जो भव सागर के पार हो आय के गुन गाऊं. श्री कृष्णचंद बोले कि, हे पिता! तुम ज्ञानी होय पुत्रों की बड़ाई क्यों करते हो? टुक आप ही मन में विचारो कि, भगवत की लीला अपरंपार है, उस का पार किसी ने आज तक नहीं पाया; देखो वह।

घट घट माहि जोति ह्वै रहै, ताही सों जग निर्गुन कहै.
आप ही सिरजे आप ही हरै, रहै मिल्यो बांध्यो नहीं परै.
भू आकाश वायु जल जोति, पंच तत्व ते देह जो होति.
प्रभु की शक्ति सबनि में रहै, वेद माहिं विधि ऐसें कहै.

महाराज! इतनी बात श्री कृष्णचंद जी के मुख से सुनते ही, वसुदेव जी मोह बस होय चुपकर हरि का मुख देख रहे. तब प्रभु वहां से चल माता के निकट गए तो पुत्र का मुख देखते ही देवकी जी बोलीं, हे श्री कृष्णचंद आनंदकंद! एक दुख मुझे जब न तब साले है. प्रभु बोले सो क्या? देवकी जी ने कहा कि, पुत्र! तुम्हारे छह बड़े भाई जो कंस ने मार डाले हैं, उन का दुख मेरे मन से नहीं जाता।

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! बात के कहते श्री कृष्णचंद जी इतना कह पाताल पुरी को गए कि, माता! तुम अब मत कुढ़ो, मैं अपने भाइयों को अभी जाय ले आता हूं. प्रभु के जातेही समाचार पाय राजा बलि आय, अति धुमधाम से पाटंबर के पांवड़ डाल, निज मंदिर में लिवाय लेगया. आगे सिंहासन पर बिठाय, राजा बलि ने चंदन अक्षत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य धर श्री कृष्णचंद की पूजा की. पुनि सनमुख खड़ा हो हाथ जोड़ अति स्तुति कर बोला कि, महाराज! आप का आना यहां कैसे हुआ? हरि बोले कि, राजा! सतयुग में मरीचि ऋषि नाम एक ऋषि बड़े ब्रह्मचारी, ज्ञानी, सत्यवादी, औ हरि भक्त थे; उस की स्त्री का नाम उरना; तिसके छह बेटे; एक दिन वे छहों भाई तरुन अवस्था में प्रजापति के सनमुख जा हंसे, उन को हंसता देख प्रजापति ने महा कोप कर यह श्राप दिया कि, तुम जाय अवतार ले असुर हो. महाराज! इस बात के सुनते ही ऋषि पुत्र अति भय खाय, प्रजापति के चरनों

पर जाय गिरे, औ बहुत गिड़गिड़ाय अति बिनती कर बोले कि, कृपा सिंधु! आप ने आप तो दिया, पर अब कृपा कर कहिये कि, इस आप से हम कब मोच पावेंगे? उन के दीन बचन सुन प्रजापति ने दयाल हो कहा कि, तुम श्री कृष्णचंद के दरसन पाय मुक्ति होगे. महाराज!

इतनो कहत प्रान तज गए, ते हरिनाकुस पुत्र जु भए.
पुनि वसुदेव के जन्मे जाय, तिन कौं हत्यो कंस ने आय.
मारत तिन्हें माया लै आई, इह ठां राखि गई सुखदाई.

उन का दुख माता देवकी करती हैं, इसी लिये हम यहां आए हैं कि, अपने भाइयों को ले जाय माता को दीजे, औ उन के चित्त की चिंता दूर कीजे. श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! इतना बचन हरि के मुख से निकलते ही राजा बलि ने छहों बालक ला दिये, औ बहुत सी भेटें आगे धरीं; तब प्रभु वहां से भाइयों को साथ ले माता के पास आये; माता पुत्रों को देख अति प्रसन्न हुई. इस बात को सुन सारी पुरी में आनंद हुआ, औ उन का आप छूटा. इति।

CHAPTER LXXXVI.

BALARÁM PROPOSES TO GIVE HIS SISTER SUBHADRÁ IN MARRIAGE TO DURYODHAN, BUT AT THE INSTIGATION OF KRISHN, ARJUN CARRIES HER OFF. WRATH OF BALARÁM.

श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! जैसे द्वारिका से अर्जुन श्री कृष्णचंद जी की बहन सुभद्रा को हरि ले गये, औ जैसे श्री कृष्णचंद मिथला में जाय रहे, तैसे मैं कथा कहता हूं, तुम मन लगाय सुनो. देवकी की बेटी श्री कृष्ण जी से छोटी, जिस का नाम सुभद्रा, जब व्याहन जोग हुई, तब वसुदेव जी ने कितने एक यदुबंसी औ श्री कृष्ण बलराम जी को बुलायके कहा कि, अब कन्या व्याहन जोग भई, कहो किसे दें? बलराम जी बोले कि, कहा है, व्याह बैर प्रीति समान से कीजे; एक बात मेरे मन में आई है कि, यह कन्या दुर्योधन को दीजे तो जगत में जस औ बड़ाई लीजे. श्री कृष्णचंद ने कहा, मेरे बिचार में आता है जो अर्जुन को लड़की दें तो संसार में जस लें।

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! बलराम जी के कहने पर तो कोई कुछ न बोला, पर श्री कृष्णचंद जी के मुख से बात निकलते ही सब पुकार उठे कि, अर्जुन को कन्या देना अति उत्तम है. इस बात के सुनते ही बलराम जी बुरा मान वहां से उठ गए, औ तिन का बुरा

मानना देख सब लोग चुप रहे. आगे ये समाचार पाय अर्जुन सन्यासी का भेष बनाय, दंड कमंडल ले, द्वारिका में जाय, एक भली सी ठौर देख मृगछाला बिछाय आसन मार बैठा।

चार मास बरषा भरि रह्यौ, काहू मरम न ताको लह्यौ.
अतिथ जान सब सेवन लागे, विष्णु हेतु ताको अनुरागे.
वाको भेद कृष्ण सब जान्यौ, काहू सों तिन नांहि बखान्यौ.

महाराज! एक दिन बलदेव जी भी जिमाने अर्जुन को साथ कर घर लिवाय ले गए; जों अर्जुन भोजन करने बैठे, तों चंद्र बदनी मृग लोचनी, सुभद्रा जी दृष्ट आई. देखते ही उधर तो अर्जुन मोहित हो सब की दीठ बचाय फिर फिर देखने लगे, औ मन ही मन यह विचार करने कि, देखिये विधाता कब जन्मपत्री की बिधि मिलावें? औ इधर सुभद्रा जी इन के रूप की छटा देख रीझ मन मन यों कहती थीं, कि!

है कोऊ नृपति, नाहिं सन्यासी, का कारन यह भयौ उदासी?

महाराज! इतना कह उधर तो सुभद्रा जी घर में जाय पति के मिलन की चिंता करने लगी; औ इधर भोजन कर अर्जुन अपने आसन पर आय, प्रिया के मिलन को अनेक अनेक प्रकार की भावना करने लगे. इस में कितने दिन पीछे एक समैं शिवरात्र के दिन, सब पुरवासी क्या स्त्री क्या पुरुष नगर के बाहर शिव पूजन को गए; तहां सुभद्रा जी अपनी सखी सहेलियों समेत गईं; उन के जाने का समाचार पाय अर्जुन भी रथ पर चढ़, धनुष बान ले, वहां जाय उपस्थित हुए. महाराज! जों शिव पूजन कर सखियों को साथ ले सुभद्रा जी फिरीं, तों देखते ही सोच संकोच तज अर्जुन ने हाथ पकड़ उठाय सुभद्रा को रथ में बैठाय अपनी बाट ली।

सुनिकै राम कोप अति कर्‌यौ, हल मूसल लै कांधे धर्‌यौ.
राते नयन रक्त से करे, घन सम गाज बोल उचरे.
अबही जाय प्रलै मैं करि हौं, भुव उठायकर माथे धरि हौं.
मेरी बहन सुभद्रा प्यारी, ताकौं कैसे हरै भिखारी!
अब हौं जहां सन्यासी पाऊं, तिन कौ सब कुल खोज मिटाऊं.

महाराज! बलराम जी तो महा क्रोध में बक झक रहे ही थे, कि इस बात के समाचार पाय प्रद्युम्न अनिरुद्ध संबू औ बड़े बड़े यादव बलदेव जी के सनमुख आय हाथ जोड़ जोड़ बोले कि, महाराज! हमें आज्ञा होय तो जाय शत्रु को पकड़ लावें।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! जिस समय बलराम जी सब यदुबंसियों को साथ ले अर्जुन के पीछे चलने को उपस्थित हुए, उस काल श्री कृष्णचंद जी ने जाय बलदेव जी को सुभद्रा हरन का सब भेद समझाय औ अति बिनती कर कहा कि, भाई! अर्जुन एक तो हमारी फुफी का बेटा, औ दूसरे परम मित्र, उस ने जाने अनजाने, समझे बिन

समझे, यह कर्म किया तो किया, पर हमें उससे लड़ना किसी भांति उचित नहीं, यह धर्म विरुद्ध औ लोक विरुद्ध है, इस बात को जो सुनेगा सो कहेगा कि, यदुबंसियों की प्रीति है बालू की सी भींत. इतनी बात के सुनते ही बलराम जी सिर धुन झुंझलाकर बोले कि, भाई! यह तुम्हारा ही काम है कि, आग लगाय पानी को दौड़ना, नहीं तो अर्जुन की क्या सामर्थ थी जो हमारी बहन को ले जाता? इतना कह मन हीं मन पछताय ताव पेच खाय बलराम जी भाई का मुख देख, हल मूंसल पटक बैठ रहे, औ उन के साथ सब यदुबंसी भी।

श्री शुकदेव जी बोले कि, राजा! इधर तो श्री कृष्णचंद जी ने सब को समझाय रक्खा, औ उधर अर्जुन ने घर जाय वेद की विधि से सुभद्रा के साथ ब्याह किया. ब्याह के समाचार पाय श्री कृष्ण बलराम जी ने वस्त्र आभूषन, दास दासी, हाथी घोड़े, रथ औ बहुत से रुपये एक ब्राह्मन के हाथ संकल्प कर हस्तिनापुर भेज दिए. आगे श्री मुरारी भक्त हितकारी रथ पर बैठ मिथिला को चले, जहां सुतदेव बहुलास नाम एक राजा एक ब्राह्मन दो भक्त थे. महाराज! प्रभु के चलते ही नारद बामदेव व्यास अत्रि परशुराम आदि कितने एक मुनि आनि मिले, औ श्री कृष्णचंद जी के साथ हो लिये. पुनि जिस देस में हो प्रभु जाते थे, तहां के राजा आगू आय आय पूज पूज भेट धरते आते थे. निदान चले चले कितने एक दिनों में प्रभु वहां पधारे. हरि के आने के समाचार पाय वे दोनों जैसे बैठे थे तैसे ही भेट ले उठ धाए, औ श्री कृष्णचंद के पास आए. प्रभु का दरसन करते ही दोनों भेट धर दंडवत कर हाथ जोड़ सनमुख खड़े हो अति विनती कर बोले कि, हे कृपा सिंधु दीन बंधु! आपने बड़ी दया की, जो हम से पतितों को दरसन दे पावन किया, औ जन्म मरन का निबेड़ा चुका दिया।

इतना कथा कह श्री शुकदेव जी बोले की, महाराज! अंतरजामी श्री कृष्णचंद उन दोनों भक्तों के मन की भक्ति देखि, दो स्वरूप धारन कर दोनों के घर जाय रहे; उन्हों ने मन मानता सब राबचाव किया, औ हरि ने कितने एक दिन वहां ठहर उन्हें अधिक सुख दिया. आगे प्रभु उन के मन का मनोरथ पूरा कर ज्ञान दृढ़ाय जब द्वारिका को चले, तब ऋषि मुनि पंथ से बिदा हुए, औ हरि द्वारिका में जा बिराजे. इति।

CHAPTER LXXXVII.

IN WHAT MANNER THE VEDAS GLORIFIED THE DEITY.

इतनी कथा सुन राजा परीछित ने श्री शुकदेव जी से पूछा कि, महाराज! आप जो आगे कह आए कि वेद ने परम ईश्वर की स्तुति की, सो निर्गुन ब्रह्म की स्तुति वेद ने क्योंकर की? यह मुझे समझाकर कहो जो मेरे मन का संदेह जाय.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! सुनिये, कि जिसने बुद्धि इंद्रि मन प्रान धर्म अर्थ काम मोच को बनाया है, सो प्रभु सदा निर्गुन रूप रहता है; पर जब ब्रह्मांड रचता है, तब सरगुन स्वरूप होता है; इस से निर्गुन सर्गुन वही एक ईश्वर है।

इतना कह पुनि शुकदेव मुनि बोले कि, राजा! जो प्रश्न तुम ने की, सोई प्रश्न एक समय नारद जी ने नरनारायन से की थी. राजा परीचित ने कहा कि, महाराज! यह प्रसंग मुझे कर कहिये जो मेरे मन का संदेह जाय. शुकदेव जी बोले कि, राजा! सत युग में एक समैं नारद जी ने सत लोक में जाय, जहां नरनारायन अनेक मुनियों के संग बैठे तप करते थे पूछा कि, महाराज! निराकार ब्रह्म की स्तुति वेद किस भांति करते है? सो कृपा कर कहिये. नरनारायन बोले कि, सुन नारद! जो संदेह तू ने मुझ से पूछा, यही संदेह एक समय जनलोक में जहां सनातनादि ऋषि बैठे तप करते थे, हुआ था; तद सनंदन मुनि ने कथा कहि सब का संदेह मिटाया. नारद जी बोले, महाराज! मैं भी तो वहीं रहता हूं, जो यह प्रसंग चलता तो मैं भी सुनता. नरनारायन ने कहा, नारद जी! जब तुम सेतदीप में भगवत दरसन को गए थे, तभी यह प्रसंग चला था, इस से तुम ने नहीं सुना।

इतनी बात सुन नारद जी ने पूछा, महाराज! वहां क्या प्रसंग चला था सो कृपा कर कहिये? नरनारायन बोले, सुन नारद! जद मुनियोंने यह प्रश्न की, तद सनंदन मुनि कहने लगे कि, सुनो! जिस समय महा प्रलय होय चौदह ब्रह्मांड जलाकार हो जाते हैं, उस समैं पूरन ब्रह्म अकेले सोते रहते हैं. जब भगवान को सृष्टि करने की इच्छा होती है, तब उन के स्वास से वेद निकल हाथ जोड़ स्तुति करते हैं, ऐसे कि जैसे कोई राजा अपने स्थान पर सोता हो, औ बंदी जन भोर ही उस का जस गाय गाय उसी को जगावें, इस लिये कि चैतन्य हो शीघ्र अपने कार्य को करे।

इतना प्रसंग कह नरनारायन बोले कि, सुन नारद! प्रभु के मुख से निकल वेद यह कहते हैं कि, हे नाथ! वेग चैतन्य हो सृष्टि रचो, औ जीवों के मन से अपनी माया दूर करो; क्योंकि वे तुम्हारे रूप को पहचानें. माया तुम्हारी प्रबल है, यह सब जीवों को अज्ञान कर रखती है; जो इस से छूटे तो जीव को तुम्हारे समझने का ज्ञान हो. हे नाथ! तुम बिन इसे कोई बस नहीं कर सकता; जिस के हृदे में ज्ञान रूप हो तुम बिराजते हो, सोई इस माया को जीतता है, नहीं तो किस की सामर्थ है जो माया के हाथ से बचे? तुम सब के करता हो, सब जीव तुम्हीं मे उत्पति हो तुम्हीं में समाते हैं, ऐसे कि जैसे पृथ्वी से अनेक वस्तु हो पुनि पृथ्वी में मिल जाती हैं. कोई किसी देवता की पूजा स्तुति करे, पर वह तुम्हारी ही पूजा स्तुति होती है. ऐसे कि जैसे कोई कंचन के अनेक आभरन बनाय अनेक नाम धरे पर वह कंचन ही हैं, तिसी भांति तुम्हारे अनेक रूप हैं, और ज्ञान कर देखिये तो कोई कुछ नहीं, जिधर देखये तिधर तुम हीं

तुम दृष्ट आते हो. नाथ! तुम्हारी माया अपरंपार हैं; यही सत रज तम तीन गुन हो तीन स्वरूप धारन कर सृष्टि को उपजाय पाल नाश करती है; इस का भेद न किसी ने पाया, न कोई पावेगा; इस से जीव को उचित यह है कि, सब बासना छोड़ तुम्हारा ध्यान करे, इसी में इस का कल्यान है. महाराज! इतना प्रसंग सुनाय नरनारायन ने नारद से कहा कि, हे नारद! जब सनंदन मुनि ने पुरातन कथा कह सब के मन का संदेह दूर किया, तब सनकादि मुनियों ने वेद की विधि से सनंदन मुनि की पूजा की।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, हे राजा! यह नारायन नारद का संवाद जो कोई सुनेगा, सो निस्संदेह भक्ति पदार्थ पाय मुक्ति होगा; जो कथा पूरन ब्रह्म की वेद ने गाई सोई कथा सनंदन मुनि ने सनकादि मुनियों को सुनाई; पुनि वही कथा नरनारायन ने नारद के आगे गाई, नारद से व्यास ने पाई; व्यास ने मुझे पढ़ाई सो मैं ने अब तुम्हें सुनाई; इस कथा को जो जन सुने सुनावेगा, सो मन मानता फल पावेगा; जो पुन्य होता है तप यज्ञ दान व्रत तीरथ करने में, सोई पुन्य होता है इस कथा के कहने सुन्ने में. इति।

CHAPTER LXXXVIII.

BIKASUR HAVING OBTAINED AS A BOON FROM MAHÁDEV, THAT ON WHOMSOEVER HE SHOULD LAY HIS HAND, THAT BEING SHOULD BE CONSUMED TO ASHES, PURSUES MAHÁDEV HIMSELF WITH THE INTENTION OF DESTROYING THE GOD IN THAT MANNER. BY THE INFLUENCE OF NÁRÁYAN, BIKÁSUR LAYS HIS HAND ON HIS OWN HEAD, AND PERISHES.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! भगवत की अद्भुत लीला है, इसे सब कोई जानता है, जो जन हरि की पूजा करे, सो दरिद्री होय, औ और देव को माने से धनवान. देखो, हरि हर की कैसी रीति है, ये लक्ष्मी पति, वे गौरी पति; ये धरे बनमाल, वे मुंडमाल, ये चक्रपानि, वे त्रिशूलपानि; ये धरनीधर, वे गंगाधर; ये मुरली बजावें, वे सींगी; ये बैकुंठ नाथ, वे कैलाश बासी; ये प्रतिपालें, वे संहारें; ये चरचें चंदन, वे लगावें भभूत; ये ओढें अंबर, वे बाघंबर; ये पढ़ें वेद, वे आगम; इन का बाहन गरुड़, उन का नंदी; ये रहें ग्वाल बालों में, वे भूत प्रेतों में।

दोऊ प्रभु की उलटी रीति, जित इच्छा तित कीजे प्रीति,

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! राजा युधिष्ठिर से श्री कृष्णचंद ने कहा है कि, हे युधिष्ठिर! जिस पर मैं अनुग्रह करता हूं, हौले हौले उस का सब धन खोता हूं; इस लिये कि धन हीन को भाई बंधु स्त्री पुत्र आदि सब कुटुंब के लोग तज देते हैं, तब उसे बैराग उपजता है; बैराग होने से धन जन की माया छोड़ निरमोही हो, मन लगाय मेरा भजन करता

है; भजन के प्रताप से अटल निर्वान पद पाता है. इतना कह पुनि शुकदेव जी कहने लगे कि, महाराज! और देवता को पूजा करने से मन कामना पूरी होती है, पर मुक्ति नहीं मिलती।

यह प्रसंग सुनाय मुनि ने पुनि राजा परीचित से कहा कि, महाराज! एक समय कश्यिप का पुत्र बिकासुर तप करने की अभिलाषा कर जों घर से निकला, तों पंथ में उसे नारद मुनि मिले. नारद जी को देखते ही इस ने दंडवत कर, हाथ जोड़, सनमुख खड़े हो, अति दीनता कर पूछा कि, महाराज! ब्रह्मा विष्णु महादेव इन तीनों देवताओं में शीघ्र बरदाता कौन है? सो कृपा कर कहो, तो मैं उन्हीं की तपस्या करूं. नारद जी बोले कि, सुन बिकासुर! इन तीनों देवताओं में महादेव जी बड़े बरदायक हैं; इन्हें न रीझते बिलंब, न खीजते; देखो, शिव जी ने थोड़े से तप करने से प्रसन्न हो सहस्रार्जन को सहस्र हाथ दिया, औ अल्प ही अपराध में क्रोध कर उस का नाश किया. महाराज! इतना कह नारद मुनि तो चले गए, औ बिकासुर अपने स्थान पर आय महादेव का अति तप यज्ञ करने लगा. सात दिन के बीच उस ने छुरी से अपने शरीर का मास सब काट काट होम दिया, आठवें दिन जब सिर काटने का मन किया, तब भोलानाथ ने आय उस का हाथ पकड़ के कहा, कि मैं तुझ से प्रसन्न हुआ, जो तेरी इच्छा में आवे सो बर मांग, मैं तुझे अभी दूंगा. इतना बचन शिव जी के मुख से निकलते ही बिकासुर हाथ जोड़कर बोला।

ऐसो बर दीजै अबै, जाके सिर धरों हाथ,
भस्म होय सो पलक में, करऊ कृपा तुम नाथ!

महाराज! बात के कहते ही महादेव जी ने उसे मुंह मांगा बर दिया; बर पाय वह शिव ही के सिर पर हाथ धरने गया. उस काल भय खाय महादेव जी आसन छोड़ भागे; उन के पीछे असुर भी दौड़ा. महाराज! सदाशिव जी जहां जहां फिरे, तहां तहां वह भी उन के पीछे ही लगा आया. निदान अति व्याकुल हो महादेव जी बैकुंठ में गए. इन को महा दुखित देख भक्त हितकारी बैकुंठ नाथ श्री मुरारी करुना निधान करुना कर विप्र भेष धर बिकासुर के सनमुख जाय बोले कि, हे असुर राय! तुम इन के पीछे क्यों श्रम करते हो? यह मुझे समझाकर कहो. बात के सुनते ही बिकासुर ने सब भेद कह सुनाया. पुनि भगवान बोले कि, हे असुर राय! तुम सा सयाना हो धोखा खाय, यह बड़े अचरज की बात है. इस नंगमुनंगे बावले भांग धतूरा खानेवाले जोगी की बात कौन सत्य माने? यह सदा छार लगाए सर्प लिपटाए, भयानक भेष किए, भूत प्रेतों को संग लिए, श्मशान में रहता है. इस की बात किस के जी में सच आवें? महाराज! यह बात कह श्री नारायन बोले कि, हे असुर राय! जो तुम मेरा कहा झूठ मानो तो अपने सिर पर हाथ रख देख लो।

महाराज! प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही, माया के बस अज्ञान हो, जों बिकासुर

ने अपने सिर पर हाथ रक्खा, तों जलकर भस्म का ढेर हुआ. असुर के मरते ही सुरपुर में आनंद के बाजन बाजने लगे, औ देवता जैजैकार कर फूल बरसावने; विद्याधर गंधर्व किन्नर हरि गुन गाने: उस काल हरि ने हर की अति स्तुति कर बिदा किया, औ बिकासुर को मोक्ष पदार्थ दिया. श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! इस प्रसंग को जो सुने सुनावेगा, सो निस्संदेह हरि हर की कृपा से परम पद पावेगा. इति।

CHAPTER LXXXIX.

THE SAGE BHRIGU MAKES TRIAL OF BRAHMÁ, MAHÁDEV, AND VISHNU, AND PRONOUNCES VISHNU TO BE THE MOST EXCELLENT. ARJUN ENGAGES TO PRESERVE THE CHILDREN OF A BRÁHMAN, WHOSE FORMER OFFSPRING HAD PERISHED PREMATURELY. ARJUN, BEING UNABLE TO PERFORM HIS COMPACT, IS ABOUT TO BURN HIMSELF, WHEN KRISHN CARRIES HIM TO THE DEITY, AND RESTORES THE CHILDREN.

शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक समय सरस्वती के तीर सब ऋषि मुनि बैठे तप यज्ञ करते थे, कि उन में से किसी ने पूछा कि, ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों देवताओं में बड़ा कौन है? सो कृपा कर कहो. इस में किसी ने कहा, शिव; किसी ने कहा, विष्णु; किसी ने कहा, ब्रह्मा; पर सब ने मिल एक को बड़ा न बताया. तब कई एक बड़े बड़े मुनीशों ऋषिशों ने कहा कि, हम यों तो किसी का बात नहीं मानते, पर हां, जो कोई इन तीनों देवताओं की जाकर परीक्षा कर आवे औ धर्म स्वरूपी कहें, तो उस का कहना सत्य मानें।

महाराज! यह बात सुन सब ने प्रमान की, औ ब्रह्मा के पुत्र भृगु को तीनों देवताओं की परीक्षा कर आने को आज्ञा दीं. आज्ञा पाय भृगु मुनि प्रथम ब्रह्मलोक में गए, औ चुपचाप ब्रह्मा की सभा में जा बैठे, न दंडवत की, न स्तुति, न परिक्रमा दी. राजा! पुत्र का अनाचार देख ब्रह्मा ने महा कोप किया, औ चाहा कि, श्राप दूं, पर पुत्र की ममता कर न दिया. उस काल भृगु ब्रह्मा को रजोगुन में आशक्त देख वहां से उठ कैलाश में गया, औ जहां शिव पार्वती विराजते थे, तहां जा खड़ा रहा. इसे देख शिव जी खड़े हो जों हाथ पसार मिलने को हुए, तों यह बैठ गया; बैठते ही शिव जी ने अति क्रोध किया, औ इस के मारने को त्रिशूल हाथ में लिया. उस समय श्री पार्वती जी ने अति बिनती कर पाओं पड़ महादेव जी को समझाया, औ कहा कि, यह तुम्हारा छोटा भाई है, इस का अपराध क्षमा कीजे. कहा है, ।

बालक सों जो चूक कछू परै, साध न कबहू मन में धरै.

महाराज! जब पार्बती जी ने शिव जी को समझाकर ठंडा किया, तब भृगु महादेव जी को तमोगुन में लीन देख चल खड़े ऊए. पुनि बैकुंठ में गए, जहां भगवान मनिमय कंचन के छपरखट पर फूलों की सेज में लच्मी के साथ सोते थे. आते ही भृगु ने भगवान के हृदे में एक लात ऐसी मारी कि, वे नीद मे चौंक पड़े. मुनि को देख लच्मी को छोड़, छपरखट से उतर, हरि भृगु जी का पांव सिर आंखों से लगाय लगे दाबने, औ यों कहने कि, हे ऋषि राय! मेरा अपराध छमा कीजे, मेरे हृदय कठोर की चोट तुम्हारे कोमल चरन में अनजाने लगी, यह दोष चित्त में न लीजे. इतना बचन प्रभु के मुख से निकलते ही भृगु जी अति प्रसन्न हो स्तुति कर बिदा हो वहां आए, जहां सरस्वती तीर सब ऋषि मुनि बैठे थे. आते ही भृगु जी ने तीनों देवताओं का भेद सब जों का तों कह सुनाया, कि।

ब्रह्मा राजस में लपटान्यौ, महादेव तामस में सान्यौ.
विष्णु जु सात्विक मांहिं प्रधान, तिन तें बड़ौ देव नहीं आन.
सुनत ऋषिन कौ संसौ गयौ, सब ही के मन आनंद भयौ.
विष्णु प्रसंसा सब ने करी, अविचल भक्ति हृदे में धरी.

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! मैं अंतर कथा कहता हूं, तुम मन लगाय सुनो. द्वारिका पुरी में राजा उग्रसेन तो धर्मराज करते थे, औ श्री कृष्णचंद बलराम उन की आज्ञाकारी. राजा के राज मे सब लोग अपने अपने स्वधर्म में सावधान, काज कर्म नें सज्ञान रहते, औ आनंद चैन करते थे. तहां एक ब्राह्मन भी अति सुशील धरमिष्ट रहता था. एक समैं उस के पुत्र हो मर गया. वह उस मरे पुत्र को ले राजा उग्रसेन के द्वार पर गया, औ जो उस के मुंह में आया सो कहने लगा कि, तुम बड़े अधर्मी दुष्कर्मी पापी हो, तुम्हारे ही कर्म धर्म से प्रजा दुख पाती है, औ मेरा भी पुत्र तुम्हारे ही पाप से मरा।

महाराज! इसी भांति की अनेक अनेक बातें कह मरा लड़का राजद्वार पर रक्ख, ब्राह्मन अपने घर आया. आगे उस के आठ बेटे ऊए, औ आठों को वह उसी रीति से राजद्वार पर रक्ख आया. जब नवां पुत्र होने को ऊआ, तब वह ब्राह्मन फिर राजा उग्रसेन की सभा में जा श्री कृष्णचंद जी के सनमुख खड़ा हो पुत्रों के मरने का दुख सुमिर सुमिर रो रो यों कहने लगा, धिःकार है राजा औ इस के राज को! पुनि धिःकार है उन लोगों को जो इस अधर्मी की सेवा करते हैं! औ धिःकार है मुझे जो इस पुरी में रहता हूं! जो इन पापियों के देस में न रहता, तो मेरे पुत्र बचते, इन्हीं के अधर्म से मेरे पुत्र मरे औ किसी ने उपराला न किया।

महाराज! इसी ढब की सभा के बीच खड़े हो ब्राह्मन ने रो रो बऊत सी बातें कहीं पर कोइ कुछ न बोला. निदान श्री कृष्णचंद के पास बैठा सुन सुन घबराकर अर्जुन बोला कि, हे देवता! तू किस के आगे यह बात कहे है, औ क्यों इतना खेद करे है? इस सभा में कोई धनुर्धर

नहीं जो तेरा दुख दूर करे? आज कल के राजा आपकाजी हैं, पर दु:ख निवारन नहीं जो प्रजा को सुख दें, औ गौ ब्राह्मन की रचा करें. ऐसे सुनाय, पुनि अर्जुन ने ब्राह्मन से कहा कि, देवता! अब तुम जाय अपने घर निचिंत हो बैठो, जब तुम्हारे लड़का होने का दिन आवे, तब तुम मेरे पास आइयो, मैं तुम्हारे साथ चलूंगा, औ लड़के को न मरने दूंगा. महाराज! इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मन खिजलायके बोला कि, मैं इस सभा के बीच श्री कृष्ण बलराम प्रद्युम्न औ अनिरुद्ध छुड़ाय ऐसा बलवान किसी को नहीं देखता जो मेरे पुत्र को काल के हाथ से बचावे. अर्जुन बोला कि, ब्राह्मन! तु मुझे नहीं जानता कि, मेरा नाम धनंजय है, मैं तुझ से प्रतिज्ञा करता हूं कि, जो मैं तेरा सुत काल के हाथ से न बचाऊं, तो तेरे मरे हुए लड़के जहां पाऊं तहां से ले आय तुझे दिखाऊं, औ वे भी न मिलें तो गांडीव धनुष समेत अपने तईं अग्नि में जलाऊं. महाराज! प्रतिज्ञा कर जब अर्जुन ने ऐसे कहा, तब वह ब्राह्मन संतोष कर अपने घर गया. पुनि पुत्र होने के समय विप्र अर्जुन के निकट आया. उस काल अर्जुन धनुष बान ले उस के साथ उठ धाया. आगे वहां जाय विप्र का घर अर्जुन ने बानों से ऐसा छाया कि, जिस में पवन भी प्रवेश न कर सके, औ आप धनुष बान लिये उस के चारों ओर फिरने लगा।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीचित से कहा कि, महाराज! अर्जुन ने बहुत सा उपाय बालक के बचाने को किया, पर न बचा; और दिन बालक होने के समय रोता था, उस दिन सांस भी न लिया, बरन पेट ही से मरा निकला. मरे लड़के का होना सुन लज्जित हो अर्जुन श्री कृष्णचंद के निकट आया, औ उस के पीछे ब्राह्मन भी. महाराज! आते ही रो रो वह ब्राह्मन कहने लगा कि, रे अर्जुन! धि:कार है तुझे औ तेरे जीतव को, जो मिथ्या बचन कह संसार में लोगों को मुख दिखाता है. अरे नपुंसक! जो तू मेरे पुत्र को काल से न बचा सकता था, तो तैंने प्रतिज्ञा क्यों की थी कि, मैं तेरे पुत्र को बचाऊंगा, औ न बचा सकूंगा तो तेरे मरे हुए सब पुत्र ला दूंगा।

महाराज! इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुष बान ले वहां से उठ चला चला संजमनी पुरी में धर्मराज के पास गया. इसे देख धर्मराज उठ खड़ा हुआ, औ हाथ जोड़ स्तुति कर बोला कि, महाराज! आप का आगमन यहां कैसे हुआ? अर्जुन बोला कि, मैं अमुक ब्राह्मन के बालक लेने आया हूं, धर्मराज ने कहा कि, यहां वे बालक नहीं आए. महाराज! इतना बचन धर्मराज के मुख से निकलते ही अर्जुन वहां से बिदा हो सब ठौर फिरा, पर उस ने ब्राह्मन के लड़कों को कहीं न पाया; निदान अछता पछता द्वारिका पुरी में आया, औ चिता बनाय धनुष बान समेत जलने को उपस्थित हुआ. आगे अग्नि जलाय अर्जुन ज्यों चाहे कि, चिता पर बैठे, त्यों श्री मुरारी गर्वप्रहारी ने आय हाथ पकड़ा, औ हंसके कहा कि, हे अर्जुन! तू मत जलै, तेरी प्रतिज्ञा मैं पूरी करूंगा, जहां उस ब्राह्मन के पुत्र होंगे, तहां से ला दूंगा. महाराज! ऐसे कह

त्रिलोकी नाथ रथ पर बैठ अर्जुन को साथ ले पुरब दिसा की ओर को चले, औ सात समुद्र पार हो लोकालोक पर्वत के निकट पहुंचे; वहां जाय रथ से उत्तर एक अति अंधेरी कंदरा में पैठे. उस समय श्री कृष्णचंद जी ने सुदरसन चक्र को आज्ञा की, वह कोटि सूर्य का प्रकाश किये प्रभु के आगे आगे महा अंधकार को टालता चला।

तम तज केतिक आगे गए, जल में तबै जु पैठत भए.
महा तरंग तासु में लसे, मूंदि आंखि ये ता में धसे.
पहुड़े हुते शेष जी जहां, कृष्ण अरु अर्जुन पहुंचे तहां.

जाते ही आंख खोलकर देखा कि, एक बड़ा लंबा चौड़ा ऊंचा कंचन का मनिमय मंदिर अति सुंदर है, तहां शेष जी के सीस पर रतन जड़ित सिंहासन धरा है, तिस पर श्याम घन रूप, सुंदर स्वरूप, चंद बदन, कंवल नयन, किरीट कुंडल पहने, पीत बसन ओढ़े, पीतांबर काछे, बनमाल मुक्तमाल डाले आप प्रभु मोहनी मूरति विराजे हैं, औ ब्रह्मा रुद्र इंद्र आदि सब देवता सनमुख खड़े स्तुति करते हैं. महाराज! ऐसा स्वरूप देख अर्जुन औ श्री कृष्णचंद जी ने प्रभु के सोंहीं जाय, दंडवत कर, हाथ जोड़, अपने जाने का सब कारन कहा. बात के सुनते ही प्रभु ने ब्राह्मन के बालक सब मंगाय दीने, औ अर्जुन ने देख भाल प्रसन्न हो लीने; तब प्रभु बोले।

तुम दोऊ मेरी कला जु आहि, हरि अर्जुन देखौ चित चाहि.
भार उतारन भुव पर गए, साधु संत कौं बहु सुख दए.
असुर दैत्य तुम सब संहारे, सुर नर मुनि के काज संवारे.
मेरे अंस जु तुम में द्वै हैं, पूरन काम तुम्हारे ह्वै हैं.

इतना कह भगवान ने अर्जुन औ श्री कृष्ण जी को बिदा किया. ये बालक ले पुरी में आए, द्विज के पुत्र द्विज ने पाए; घर घर आनंद मंगल भए बधाए. इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज।

जे यह कथा सुने धर ध्यान, तिन के पुत्र होंय कल्यान. इति।

CHAPTER XC.

THE HAPPY LIFE OF KRISHN WITH HIS NUMEROUS WIVES AND PROGENY. THREE HUNDRED MILLION, EIGHTY-EIGHT THOUSAND, ONE HUNDRED SCHOOLS, WITH THE SAME NUMBER OF SCHOOLMASTERS, ARE ESTABLISHED FOR INSTRUCTING HIS FAMILY.

श्री शुकदेव जी बोले कि, महाराज! द्वारिकापुरी में श्री कृष्णचंद सदा विराजें; रिद्धि सिद्धि सब यदुबंसियों के घर घर राजें; नर नारी बसन आभुषन ले नव वेष बनावें; चोआ चंदन चरच सुगंध लगावें; महाजन हाट बाट चौहटे झाड़ बुहार छिड़कावें, तहां देस देस के

व्यौपारी अनेक अनेक पदार्थ बेचने को लावें: जिधर तिधर पुरवासी कुतूहल करें; ठौर ठौर ब्राह्मन वेद उच्चरें; घर घर में लोग कथा पुरान सुने सुनावें: साध संत आठों जाम हरि जस गावें; सारथी रथ घुड़ बहल जोत जोत राजद्वार पर लावें; रथी महारथी गजपति अश्वपति सूर वीर रावत जोधा यादव राजा को जुहार करने आवें; गुनि जन नाचें गावें बजावें रिझावें; बंदी जन चारन जस बखान कर कर हाथी घोड़े वस्त्र शस्त्र अन धन कंचन के रतन जटित आभूषन पावें।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! उधर तो राजा उग्रसेन की राजधानी में इसी रीति से भांति भांति के कुतूहल हो रहे थे, औ इधर श्री कृष्णचंद आनंदकंद सोलह सहस्र एक सौ आठ युवतियों के साथ नित्य विहार करें; कभी युवतियां प्रेम में आशक्त हो प्रभु का वेष बनाव करें; कभी हरि आशक्त हो युवतियों को सिंगारें. औ जो परस्पर लीला क्रीड़ा करें सो अकथ हैं, मुझ से कही नहीं जातीं, वह देखे ही बनि आवे.

इतना कह शुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक दिन रात्र समय श्री कृष्णचंद सब युवतियों के साथ विहार करते थे, औ प्रभु के नाना प्रकार के चरित्र देख किन्नर गंधर्व बीन पखावज भेर दुंदभी बजाय बजाय गुन गाते थे, और एक समा हो रहा था, कि इस में विहार करते करते जो कुछ प्रभु के मन में आया, तो सब को साथ ले सरोवर के तीर जाय नीर में पैठ जल क्रीड़ा करने लगे. आगे जल क्रीड़ा करते करते सब स्त्रीं श्री कृष्णचंद के प्रेम में मगन हो तन मन की सुरत भूलाय, एक चकवा चकवी को सरोवर के वारपार बैठे बोलते देख बोलीं, ।

हे चकई तू दुख क्यों रोवै? पिय वियोग तें रैन न सोवै?
अति व्याकुल ह्वै पियहि पुकारे, हम लौं तू निज पियहि संभारे.
हम तो तिन की चेरी भईं, ऐसें कहि आगे कों गईं.

पुनि समुद्र से कहने लगीं कि, हे समुद्र! तू जो लंबी सांस लेता है, औ रात दिन जागता है, सो क्या तुझे किसी का वियोग है, कै चौदह रत्न गए का सोग है? इतना कह फिर चंद्रमा को देख बोलीं, हे चंद्रमा! तू क्यों तन छीन मन मलीन हो रहा है? क्या तुझे राजरोग हुआ जो दिन घटता बढ़ता है? कै श्रीकृष्णचंद को देख जैसे हमारी गती मति भूलती है, तैसे तेरी भी भूली है? ।

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! इसी भांति सब युवतियों ने पवन, मेघ, कोकिल, पर्वत, नदी, हंस से अनेक बातें कहीं, सो जान लीजे. आगे सब स्त्री श्री कृष्णचंद के साथ विहार करें, औ सदा सेवा में रहें, प्रभु के गुन गावें, औ मन वांछित फल पावें; प्रभु गृहस्थ धर्म से गृहस्थाश्रम चलावें. महाराज! सोलह सहस्र एक सौ आठ श्री कृष्णचंद की रानी जो प्रथम बखानी, तिन में एक एक रानी के दस दस पुत्र औ एक एक कन्या थी, औ उन

की संतान अनगिनत ऊई, सो मेरी सामर्थ नहीं जो विन का बखान करूं; पर मैं इतना जातना हूं कि, तीन करोड़ अट्ठासी सहस्र एक सौ चटसाल थीं, श्री कृष्ण चंद की संतान के पढ़ाने को, औ इतने हीं पांडे थे. आगे श्री कृष्णचंद जी के जितने बेटे पोते नाती ऊए, रूप बल पराक्रम धन धर्म में कोई कम न था, एक एक से बढ़कर था, उन का बरनन मैं कहां तक करूं? इतना कह ऋषि बोले महाराज मैं ने ब्रज औ द्वारिका की लीला गाई, यह है सब की सुखदाई; जो जन इसे प्रेम सहित गावेगा, सो निःसंदेह भक्ति मुक्ति पदार्थ पावेगा. जो फल होता है तप यज्ञ दान ब्रत तीरथ स्नान करने से सो फल मिलता है हरि कथा सुनने से. इति संपूर्णम् ।

संवत ससि वसु गय चिती, माघ पाख अंधियार.
छप्यो ग्रंथ पुनि सोधि यह, तिथि वारसि लच्छीवार.

ईसा सन ईश्वर नयन अयन गयन भुइं लेख, मास सेतंबर एकहीं छपा ग्रंथ यह पेख.

VOCABULARY.

[In the following Vocabulary will be found the three thousand three hundred and eighty-eight words explained by Price, and upwards of two thousand additional ones. It is hoped, in fact, that no one word in the whole Prem Sāgar has been omitted, though some have been inserted from Price, which are not to be found in the Text. References to the line and page where the word occurs are given, so that the reader may substantiate the meaning for himself. In general where a corresponding word occurs in Sanskṛit it is annexed; as is also the derivation, which is denoted by the mark (;), as composition is by (:). A. stands for Arabic, H. for Hindī, P. for Persian, and s. for Sanskṛit.]

s. अ *a*, an inseparable particle, signifying negation or privation; as अधर्म *adharm*, injustice, from धर्म justice. As a negative prefix to words beginning with a vowel, अ *a* is changed to अन् *an*, thus अनंत *anaṅt* : अ not, अंत end—endless.

s. अंकवार *aṅkwār*, f. An embrace, the bosom. अंकवार भरना *aṅkwār bharnā*, v.a. to embrace; p. 164, l. 8.

s. अंकस *aṅkas* / अंकुस *aṅkus* (s. अङ्कुश ; अक to go) m. The iron hook by which elephants are guided or driven; p. 52, l. 11.

s. अंगिया *aṅgiyā* (; s. अङ्ग the body) m. Boddice, stays; p. 152, l. 18.

s. अंगिरा *Aṅgirā* (; s. अङ्गिरस : अगि to go) m. One of the principal sages born of Brahmā; p. 58, l. 21.

s. अंगीकार *aṅgīkār* (s. अङ्गीकार : अङ्ग particle of asseveration, कार making) m. Acceptance अंगीकार करना *aṅgīkār karnā*, to accept; p. 150, l. 10.

s. अंगुरी (s. अङ्गुलि ; अङ्ग to count) f. A finger; p. 44, l. 27.

s. अंगूठा *aṅgūṭhā* (s. अङ्गुष्ठ : अङ्गु the hand, ष्ठ ; स्था to stay) m. the thumb. 2. Finger, toe पांव के अंगूठे *pāṅw ke aṅgūṭhe*, the toe; p. 19, l. 4.

H. अंगोछा *aṅgochhā*, m. A cloth with which Hindūs wipe themselves after bathing; p. 46, l. 25. A towel.

s. अंचल *aṅchal* (s. अञ्चल) m. The breast of a woman; p. 56, l. 13.

s. अंजन *aṅjan* (s. अञ्जन ; अञ्ज to anoint) m. A collyrium for anointing the eyes to strengthen them, and as an ornament; p. 117, l. 29.

s. अंजर *aṅjar* (: s. अ not, जरा decay) adj. Not subject to decrepitude or the infirmities of age; undecayable; p. 187, l. 7.

s. अंत *aṅt* (s. अन्त ; अम to go) m. End, completion. 2. adv. After all, at last.

s. अंतर *aṅtar* (s. अन्तर : अन्त, end; र from रा, to obtain) m. Intermediate space, distance; p. 83, l. 12. 2. Heart, as in अंतरजामी *aṅtarjāmī*, acquainted with the heart, *q.v.* 3. Difference. 4. Other.

s. अंतर कथा *aṅtar kathā* (: अंतर internal, कथा story) f. An intermediate story, an episode; p. 114, l. 4.

s. अंतरगति *aṅtargati* (: s. अन्तर within, गति motion) f. The emotions of the heart, inward sensations.

s. अंतर्‌जामी / अंतर्जामी } *añtarjāmī* (s. अन्तर्यामी : अन्तर् the heart, यामी who knows) adj. Acquainted with the heart (an epithet of the Deity); p. 28, l. 9.

s. अंतरधान *añtardhān* (s. अन्तर्द्धान concealment, : अन्तर् within, धा to have or hold) out of sight. अंतरधान होना *añtardhān honā* to disappear, to vanish; chap. i. (Generally used contemptuously or upbraidingly).

s. अंतर्ध्यान होना *añtardhyān honā* (s. अन्तर्द्धान : अन्तर् within, धा to have or hold) v.n. To disappear; p. 51, l. 2.

s. अंतरपट *añtarpaṭ* / अंतर्पट *añtarpaṭ* } (: अन्तर् within, पट cloth) m. A curtain, a screen; p. 117, l. 11.

s. अंतर होना *añtar honā* = अतर्ध्यान होना *q.v.*; p. 52, l. 17.

s. अंतरिक्ष *añtariksh* / अंतरीक्ष *añtarīksh* } (s. अन्तरीक्ष : अन्तर् within, ऋक्ष a star, *i.e.* in which are stars, or, अन्तर् within, ईक्ष to see) m. The sky or atmosphere; p. 123, l. 28, and p. 166, l. 22.

s. अंधकार *añdhkār* (: अन्ध blind, कार that makes) m. Darkness; p. 211, l. 1.

s. अंध कूप *añdh kūp* / अंधा कूप *andhā kūp* / अंधा कुआ *añdhā kuā* } (: अंध dark, कूआ, or s. कूप a well) m. A well overgrown by bushes or weeds; p. 104, l. 15.

s. अंधसुत *añdhsut* (: अन्ध dark, सुत son) m. The son of the blind man; i.e., Duryodhan, who was the son of the blind King Dhritarāṣhtr; p. 134, l. 5.

s. अंधा *añdhā* (s. अन्ध to be blind) adj. Blind, dark; chap. i.

s. अंधेर *añdher* (perhaps from s. अन्धकार) m. Injustice, tyranny, oppression; अंधेर करना *añdher karnā*, to act unjustly, to tyrannise; p. 6, l. 17.

s. अंधेरा *añdherā* (s. अन्धकार : अन्ध blind, कार that makes), adj. Dark; p. 14, l. 20.

s. अंब *amb* / आम *ām* / आंब *āmb* } (s. आम्र : अम to be sick) m. The mango tree or fruit (Mangifera Indica); p. 33, l. 15.

s. अंबर *ambar* (s. अम्बर) m. Clothes; नृप अंबर *nrip ambar*, the royal apparel; p. 72, l. 26. 2. The sky or atmosphere.

s. अंबा *Ambā* : f. A daughter of the King of Benāres, who deserted her husband for King Bhīṣhm, and on his not receiving her, did penance to Mahādev, in order to obtain the power of revenging herself on him; p. 154, l. 25.

A. अंबारी *ambārī* (A. عماري) f. A litter (used on an elephant or camel); p. 173, l. 1.

s. अंबिका *Ambikā* (s. अम्बिका ; अम्बा a mother) f. Mother, a name of Pārvatī, the wife of Shiva; p. 58, l. 1.

s. अंस *añs* (s. अंश) m. A part, division, portion; p. 28, l. 10.

s. अकथ *akath* (s. अकथ्य : अ not, कथ्य fit to be spoken) adj. Unspeakable, ineffable; p. 158, l. 3. 2. Unfit to be spoken, obscene.

s. अकर्म *akarm* (s. अकर्म्म : अ not, कर्म्म action) m. Bad action, sin, vice.

s. अक्रूर *Akrūr*, (s. अक्रूर : अ not, क्रूर cruel) m. The paternal uncle and friend of Kriṣhṇ; p. 62, l. 17.

s. अक्वार *akwār* (*vide* अंकवार).

s. अकाम *akām*, / अकारथ *akārath* } (s. अकार्य्य : अ not, कार्य्य to be done) adj. Fruitless, unprofitable, yielding no return, vain.

s. अकाल *akāl* (s. अकाल ; अ not, काल time) m. A famine, a general scarcity; p. 138, l. 19. 2. Unseasonable, premature.

s. अकुलाना *akulānā* (; s. आकुल perplexed) v.n. To be agitated, distracted, confused; p. 14, l. 1.

s. अकुलीना *akulīnā* (s. अकुलीन : अ not, कुलीन of good family ; कुल family) adj. Not noble, plebeian, ignoble, of mean extraction ; p. 171, l. 18.

s. अकेला *akelā* (s. एक) adj. Alone, solitary; p. 6, l. 10.

s. अक्षत *akshat* (s. अक्षत : अ not, क्षत torn, broken) m. Whole or unbroken rice used in oblations; p. 37, l. 4.

s. अक्षौहिनी *akshauhinī* (s. अक्षौहिणी : अक्ष a carriage, ऊहिणी assemblage) f. A complete army, consisting of 109,350 foot, 65,610 horse, 21,870 chariots, and 21,870 elephants ; p. 98, l. 22.

s. अखंड *akhaṇḍ* (s. अखण्ड : अ not, खण्ड a part) adj. Unbroken, entire ; p. 44, l. 18.

H. अखारा *akhārā*, m. A palæstra, or arena for wrestling; p. 202, l. 9. 2. A court.

s. अखिल *akhil* (s. अखिल : अ not, खिल separated) adj. Entire, the whole, undivided.

s. अखै बृक्ष *akhai briksh*, अक्षै बृक्ष *akshai briksh* (: s. अ not, क्षय destruction, बृक्ष a tree) m. An undecayable tree ; p. 30, l. 23.

s. अगम *agam* (s. अगम्य : अ not, गम्य passable ; गम to go) adj. Impassable ; p. 85, l. 16. Unfordable, inaccessible, unaccomplishable, incomprehensible.

s. अग्हन *Aghan* (s. अग्रहायण : अग्र first, हायन year, according to the ancient system the first month of the year) m. The eighth month of the lunar year of the Hindūs, when the moon is full near the head of Orion, or about November-December ; p. 36, l. 22.

H. अगाऊ जाना *agāū jānā*, v.n. To advance, to meet a person ; p. 123, l. 4.

s. अगाध *agādh* (s. अगाध : अ not, गाध fixed place) adj. Bottomless, unfathomable, very deep ; p. 224, l. 26 ; and p. 228, l. 4.

s. अगोचर *agochar* (s. अगोचर : अ not, गोचर object of sense) adj. Imperceptible, invisible ; p. 91, l. 24.

H. अगोनी *agonī*, अगौनी *agaunī* f. The going or sending forward to meet a visitor with honor. अगौनी करना *agaunī karnā*, to advance to meet the bridegroom ; p. 9, l. 8.

s. अग्नि *agni* (s. अग्नि ; अङ्ग to mark) f. Fire ; p. 33, l. 5.

s. अग्नि बान *agni bān* (: s. अग्नि fire, बान arrow) m. Fiery arrows or darts ; p. 127, l. 16.

s. अग्नि संस्कार *agni saṅskār* (: s. अग्नि fire, *q.v.* संस्कार : सम implying perfection, कृ to make) m. Funeral ceremonies, burning a dead body ; p. 137, l. 14.

H. अघाना *aghānā*, v.n. To surfeit, to be satiated. 2. adj. Satiated.

s. अघासुर *aghāsur* (s. अघासुर : अघ sin, असुर a dæmon) m. A fiend sent by Kans to slay Krishṇ ; p. 26, l. 12.

H. अचंभा *achambhā*, Astonished, amazed ; ch. i. subst. A marvel, marvellous thing.

s. अचर *achar* (अचर : अ not, चर animate) adj. Inanimate ; p. 54, l. 6.

s. अचरज *achraj* (s. आश्चर्य) m. Wonder, marvel ; p. 12, l. 29. Astonishment.

s. अचल *achal* (s. अचल : अ not, चल that goes) adj. Immoveable, fixed ; p. 53, l. 12. 2. m. A mountain.

H. अचानक *achānak*, adv. Suddenly, unawares, unexpectedly; p. 6, l. 10.

s. अचाना *achānā* (s. आचमन : आङ्, चमु to eat) v.a. To rinse the mouth after eating; p. 66, l. 16.

s. अचार *achār* (s. आचार : आङ्, चर to go) m. Conduct, common practice, usage, a rule of conduct; p. 92, l. 17.

s. अचेत *achet* (s. अचेतन : अ not, चेतना consciousness) adj. Insensible; p. 14, l. 3.

s. अचेत होना *achet hona*, v.n. To be insensible. अचेत भयें *achet bhyeṅ*, were buried in slumber; p. 14, l. 3.

H. अचैन (: अ not, चैन ease) adj. Uneasy, disquieted; p. 164, l. 17.

H. अच्छना *achchhnā* } अछना *achhnā* } (; अस to be) v.n. To exist, to remain, to abide. अच्छत पति *achchhat pati*, while one's husband survives; p. 92, l. 19.

H. अच्छा *achchhā*, adj. Good, excellent, well, sound; p. 10, l. 11.

H. अछताना पछताना *achhtānā pachhtānā*, v.n. To regret, to rue. अछता पछता, regretful; p. 15, l. 7.

s. अज *aj* = आज, to day, *.q.v*; p. 153, l. 15. 2. A he-goat; p. 58, l. 12.

s. अज्गर *ajgar* (s. अजगर : अज a goat, गर who swallows) m. A boa-constrictor or large serpent; p. 26, l. 12.

s. अज्गुत *ajgut* = अद्भुत *q.v*

s. अज्हु *ajhu* (: आज to-day, हु for ही indeed) adv. To day truly; p. 76, l. 26.

s. अज्हू *ajhū* (: अज; s. अद्य to-day, हू an emphatic particle, or particle of identification.

s. अजान *ajān* = अज्ञान *q.v.*; p. 78, l. 6.

s. अजिन *ajin* (s. अजिन; अज to go) m. A hide used as a seat, bed, etc. by the religious student; generally the skin of an antelope.

s. अजीत *ajīt* (s. अजित : अ not, जित conquered; जि to conquer) adj. Invincible; p. 170, l. 18.

s. अजोध्या *Ajodhyā* (s. अयोध्य : अ not, युद्ध to war, *i.e.*, not to be warred against) m. The modern Oude; p. 136, l. 30; and city of King Duryodhan.

s. अज्ञा *agyā* (s. आज्ञा *q.v.*) f. command, order.

s. अज्ञाकारी *agyākārī* (s. आज्ञाकारी : आज्ञा order, कारी who acts) adj. Obedient, ministrant, one who executes orders; p. 98, l. 4.

s. अज्ञान *agyān* (: अ not, ज्ञान knowledge) Imprudent, unwise (ch. i.), ignorant, simple, innocent.

s. अज्ञानता *agyānatā* (s. अज्ञानता : अ not, ज्ञानता knowledge; ज्ञा to know) f. Ignorance, simplicity. 2. Innocence.

H. अट्कल *aṭkal*, m. Guess, conjecture; p. 19, l. 23.

s. अट्ना *aṭnā* (; s. अट to go) v.n. To be contained. 2. To be filled. 3. To wander, to perambulate, to walk about.

H. अट्पटी *aṭpaṭī*, adj. Inconsiderate, thoughtless; p. 22, l. 10. Irregular.

s. अटल *aṭal* (s. अटल : अ not, टल to be agitated) adj. Immoveable, fixed; p. 57, l. 23.

s. अटा *aṭā* (s. अट्ट; अट्ट to transcend) f. An upper room, a balcony. अटन *aṭan*, for अटाओं *aṭāoṅ*, on the balconies; p. 72, l. 3.

s. अट्ठासी *aṭṭhāsī* (; s. अष्ट eight) num. Eighty-eight; ch. i., p. 4.

s. अठ्तालीस *aṭhtālīs* (s. अष्टचत्वारिंशत) num. Forty-eight; p. 201, l. 7.

s. अठ्सठ *aṭhsaṭh*, card. n. Sixty-eight; p. 57, l. 24.

s. अठारह *aṭhārah* (s. अष्टादश : अष्ट eight, दशन् ten) num. Eighteen; ch. i., p. 5.

s. अठोतर सौ *aṭhotar sau* (s. अष्टोत्तरशत : अष्ट eight, उत्तर over, शत hundred) adj. One hundred and eight; p. 194, l. 3.

H. अड़ *aṛ*, f. Contention, contrariety, obstinacy.

H. अड़ा *aṛā*, adj. Across, oblique, in the way; p. 76, l. 20.

s. अडोल *adol* (: s. अ not, डुल् to throw up) adj. Immoveable, unshakeable; p. 59, l. 19.

s. अति *ati* (s. अति ; अत् to go) adv. Very, exceedingly; Preface.

s. अतिथ *atith* / अतिथि *atithi* (s. अतिथि ; अत् to go) m. A guest; p. 199, l. 17, 23.

s. अतिसार *atisār* (s. अतिसार : अति very, सार that goes, ; सृ to go) m. Diarrhœa, dysentery; p. 138, l. 4.

s. अतीत *atīt* (s. अतीत : अति very, इत gone) adj Past, elapsed.

s. अत्र *atr* (s. अत्र, त्र substituted for 7th case of इदम this) adv. In this place, herein.

s. अत्रि *Atri* (s. अत्रि ; अद् to eat) m. One of the seven Rishis or Saints born from the eye of Brahmā, married to Anāsuyā, daughter of Kerdama Muni, and father of Datta, Durvāsas and Chandra; p. 231, l. 11.

s. अथ *ath*, an inceptive particle which serves to introduce a remark, a question or affirmation; and corresponds to After, and, now (inceptive or premising), thus, so, further, moreover; Preface.

H. अथाईं *athāīṅ*, f. A place where people meet to converse and amuse themselves; p. 42, l. 10.

s. अदिति *Aditi* (s. अदिति : अ not, दा to give, *i.e.*, not giving pain) f. The daughter of Daksha, wife of Kashyap, and mother of the Gods, re-born in the person of Devakī; p. 11, l. 16.

s. अद्भुत *adbhut* (s. अत a particle of surprise, भू to be) adj. Surprising, marvellous; p. 43, l. 16.

s. अध *adh* (in comp.) Half; Preface.

s. अधजला *adhjalā* (: s. अध for अर्द्ध half, जला part. p. of जलना to burn) adj. Half burnt; p. 174, l. 17.

s. अधबर *adhbar* / अधवार *adhwār* (: s. अर्द्ध half) adj. In half, halved; p. 170, l. 14.

s. अधम *adham* (s. अधम ; अन् to preserve) adj. Mean, vile, wretched, contemptible; p. 31, l. 30.

s. अधर *adhar* (s. अधर : अ not, धृ to have) m. The lip; p. 36, l. 8.

H. अधर *adhar*, m. The space between heaven and earth, mid-air; p. 12, l. 27.

s. अधर्म्म *adharmm* (: अ not, धर्म्म virtue) m. Injustice, vice; chap. i.

s. अधर्म्मी *adharmmī* (; s. अधर्म्म *q.v.*) adj. Unjust, sinful, criminal; p. 6, l. 17.

s. अधरामृत *adharāmṛit* (s. अधरामृत : अधर lip, अमृत nectar) m. The moisture, nectar of the lips; p. 36, l. 8.

s. अधिक *adhik* (: अधि over, and क to sound) adj. Exceeding, more, in addition; Chap. i.

s. अधिकार *adhikār* (s. अधिकार : अधि over, कार what makes) m. A kingdom, government; p. 81, l. 5. A privilege, an inheritance.

s. अधिकारी *adhikārī* (s. अधिकारी ; अधिकार *q.v.*) adj. Possessing a right or title to; p. 177, l. 9. 2. m. A proprietor, one invested with power and authority; p. 208, l. 19.

s. अधिकाई *adhikāī* (s. आधिक्य ; अधिक more) f. Increase, augmentation. 2. Dignity, advancement; p. 36, l. 7.

s. अधिराज *adhirāj* (s. अधिराज ; अधि over, राज a king) A supreme king, a great sovereign, an emperor; p. 1, l. 7.

s. अधीन *adhīn* (s. अधीन : अधि upon, ईन a master) adj. Submissive; dependent; p. 10, l. 3.

s. अधीनता *adhīnatā* (s. अधीनता ; अधीन *q.v.*) f. Submission, obedience. 2. Servitude, subjection.

s. अधीर *adhīr* (s. अधीर : अ not, धीर firm) adj. Hasty, precipitate. 2. Irresolute, unsteady, p. 82, l. 30.

s. अधीर्ता *adhīrtā* (; अधीर *q.v.*) f. Haste, precipitation, irresolution; p. 54, l. 5.

H. अधूरा *adhūrā* (अध half) adj. Half ready, immature (a fœtus); p. 12, l. 5. अधूरा जाना *adhūrā jānā*, To miscarry (as a female).

s. अध्यक्ष *adhyaksh* (s. अध्यक्ष ; अधि over, अक्ष् to pervade) m. A master, a lord, a chief, a governor, a superintendent.

s. अध्याय *adhyāya* (: अधि over, इ to go, *i.e.* proper to be gone through) m. A chapter; p. 3, l. 1.

s. अन *an*, A particle signifying Not, as सुनी अन सुनी *sunī an sunī*, heard as though not heard; p. 74, l. 20.

s. अनंग *Anang* (s. अनङ्ग : अ not, अङ्ग body) m. A name of Kāma, the Hindū God of love, so called as having been reduced to ashes by the eye of Shiva for having disturbed his devotions by rendering him enamoured of Pārvatī. अनंग मद *anang mad*, the wine of love; p 141, l. 8.

s. अनंत *anant* (s. अनन्त : अन not, अन्त end) adj. Endless, infinite; p. 69, l. 17. 2. m. The chief of the Nāgas, or serpent race, that inhabit the infernal regions; the conch and constant attendant of Vishnu.

H. अनखाना *ankhānā*, v.n. To be angry or displease, to be peevish or fretful; p. 143, l. 25.

s. अनगनित *anganit* / अनगिनत *anginat* (: s. अन् not, गणित counted) adj. Uncounted, countless, innumerable; p. 20, l. 20; p. 9, l. 11

s. अनघ *anagh* (s. अनघ : अ not, अघ sin, guilt) adj. Sinless, innocent.

s. अनजाना *anjānā* (: अ not ज्ञा to know) adj. Unknowing, ignorant. अनजाने *anjāne*, adv. Unwittingly, ignorantly; p. 31, l. 30.

s. अनत *anat* (s. अन्यत्र : अन्य other, अत्र here) adv. Elsewhere, in another place; p. 128, l. 7, and p. 151, l. 15.

s. अनधन *andhan* (: s. अन्न food, धन wealth) m. Wealth both in grain and corn; p. 223, l. 21.

s. अन नाथा *an nāthā* (: s. अन् not, नाथना to insert a bullock's nose-string) adj. Without nose-string; p. 144, l. 25.

s. अनब्याहा *anbyāhā* (: s. अन् not, ब्याहा married, *q.v.*) adj. Unmarried; p. 150, l. 9.

s. अनमना *anmanā* (s. उन्मना : उत upset, मनस् the mind) adj. Agitated, thoughtful, displeased; p. 22, l. 22.

s. अनरस *anras* (: s. अन् not, रस taste, flavour) m. Coolness between friends, want of flavour or enjoyment, disagreement; p. 158, l. 13.

H. अनवट *anwaṭ*, m. A ring furnished with little bells, worn on the great toe; p. 152, l. 22

H. अन्सुनी कर्ना *ansunī karnā* (: अन्सुनी [: अन् not, सुनी p. part. of सुन्ना to hear] not heard, कर्ना to make) v.n. To pretend not to hear, to disregard ; p. 74, l. 20.

S. अनाचार *anāchār* (S. अनाचार : अन not, आचार moral rule) m. Improper conduct, neglect of moral or religious observance ; p. 235, l. 14.

S. अनाथ *anāth* (S. अनाथ : अ not, नाथ lord) adj. Without a master, protector or husband ; p. 50, l. 2.

S. अनिरुद्ध *Aniruddh* (S. अनिरुद्ध : अ not, निरुद्ध restrained) m. Aniruddh, son of Pradyumn, and husband of Ūshā, a re-birth of Satrughn, brother of Rāma ; p. 5, l. 26.

S. अनीति *anīti* (S. अनीति : अ not, नीति good conduct) f. Injustice ; p. 9, l. 2.

S. अनुग *anug* (S. अनुग : अनु after, ग who goes) m.f. A follower, a servant.

S. अनुग्रह *anugrah* (S. अनुग्रह : अनु after, ग्रह् to take) m. Favour, conferring benefits ; p. 233, l. 21.

S. अनुचित *anuchit* (S. अनुचित : अन not, उचित proper) adj. Improper, unbecoming ; p. 9, l. 23.

S. अनुज *anuj* (S. अनुज : अनु after, ज to be born) adj. Younger, junior.

S. अनुमान (S. अनुमान : अनु after, मा to measure) m. An inference, a guess, a hypothesis.

S. अनुराग *anurāg* (S. अनुराग : अनु with, रञ्ज् to colour) m. Love, affection ; p. 90, l. 19.

S. अनुराग्ना *anurāgnā* (; अनुराग *q.v.*) v.n. To shew affection or regard ; p. 230, l. 4.

S. अनुसर्ना *anusarnā* (S. अनुसरण custom, : अनु after, सृ to go) v.n. To follow a person, to succeed.

H. अनूठा *anūṭhā*, adj. Rare, wonderful ; p. 33, l. 18.

S. अनूप *anūp* (S. अनूपम: : अन not, उपमा comparison) adj. Incomparable ; p. 69, l. 19.

S. अनेक *anek* (S. अनेक : अन not, एक one) adj. Many, much, abundant ; p. 9, l. 10.

S. अन्न *ann* (S. अन्न ; अद् to eat) m. Boiled rice. 2. Food in general ; p. 41, l. 14.

S. अन्यथा *anyathā* (S. अन्यथा : अन्य other) adv. Otherwise, in different manner. 2. Inaccurately, untruly.

S. अन्यायी *anyāyī* (S. अन्यायी : अ not, न्यायी just) adj. Unjust, oppressive ; p. 159, l. 16.

H. अन्ह्वाना *anhwānā* (caus. of अन्हाना *q.v.*) v.a. To cause to bathe ; p. 66, l. 14.

H. अन्हाना *anhānā*, v.n. To wash, to bathe.

S. अपजस *apajas* (अपयशस : अप reverse, यश fame) m. Infamy, dishonour ; p. 12, l. 19.

H. अप्ना *apnā*, refl. pr. referring always to the nom. of the verb—Own, my, your, his own ; chap. i.

S. अपमान *apamān* (S. अपमान : अप reverse, मान respect) m. Dishonour, disgrace ; p. 46, l. 12.

S. अपरंपार *aparampār* (: S. अ not, पर other, पार limit) adj. Infinite, boundless ; p. 47, l. 25.

S. अपराध *aparādh* (S. अपराध : अप badly, राध् to accomplish) m. Offence, fault ; p. 28, l. 18.

S. अपराधी *aparādhī* (S. अपराधी ; अपराध *q.v.*, crime) m. A criminal, an offender.

S. अपवित्र *apavitr* (: S. अ not, पवित्र holy, *q.v.*) adj. Unclean, defiled, impure ; p. 93, l. 19.

S. अपशकुन *apshakun* (: S. अप bad, शकुन omen) m. Any unlucky or inauspicious object or omen, a portent.

S. अप्सरा *apsarā* (S. अप्सरा : अप water, सृ to go, as being fond of bathing) f. A heavenly nymph, a female dancer of Indr's heaven ; p. 13, l. 6.

s. अपार् *apār* (: s. अ not, पार् shore) adj. Boundless, immense, illimitable, shoreless; chap. i. 2. Excessively; p. 19, l. 26.

s. अपावन *apāwan* (: s. अ not, पावन purifying; पू to cleanse) adj. Defiling, polluting.

s. अपूत *apūt* (: अ not, पूत son, *q.v.*) adj. Childless; p. 7, l. 22.

s. अप्रतिष्ठा *apratishṭhā* (s. अप्रतिष्ठा : अ not, प्रतिष्ठा fame : प्रति, स्था to stay) f. Dishonour, disgrace; p. 208, l. 24.

s. अप्रसन्न *aprasanna* (: s. अ not, प्रसन्न pleased) adj. Displeased; p. 147, l. 26.

H. अब *ab*, Now; Preface.

s. अबनी *abanī* (s. अवनि ; अव् to preserve) f. The earth.

s. अबल *abal* (: s. अ not, बल strength) adj. Weak, powerless; p. 103, l. 14.

s. अबला *abalā* (s. अबला : अ priv., बल strong) adj. Weak, feeble; p. 10, l. 3. 2. f. A woman; ch. i.

s. अबली *abalī* (s. आवलि : आङ्, वल् to move) f. A row, a range, a continuous line.

s. अबाक *abāk* (: s. अ not, वाक् voice) adj. Dumb, silent; p. 88, l. 23.

s. अबिनासी *abināsī* (: s. अ not, विनशी destruction) adj. Imperishable, everlasting; p. 30, l. 16.

s. अबेर *aber* (: s. अ not, बेला time) f. Delay, lateness; p. 58, l. 10.

s. अभय *abhay* (s. अभय : अ not, भय fear) adj. Without fear, fearless.

s. अभरन *abharan* = आभरन *q.v.*

s. अभरम *abharam* (: s. अ not, भरम credit) adj. Without credit or character, disgraced. अभरम करना *abharam karnā*, to disgrace; p. 158, l. 18.

s. अभागा *abhāgā* (: s. अ not, भाग्य fortune) adj. Unfortunate, destitute. f. अभागी *abhāgī*, Unfortunate; p. 223, l. 26.

s. अभिप्राय *abhiprāya* (s. अभिप्राय : अभि wish, प्रिञ् to satisfy) m. Intention, design, purpose, wish; p. 201, l. 3.

s. अभिमान *abhimān* (s. अभिमान : अभि over, मन् to know) m. Pride; p. 46, l. 3.

s. अभिमानी *abhimānī* (; अभिमान *q.v.*) adj. Proud, haughty; ch. i.

s. अभिलाषा *abhilāshā* (s. अभिलाष : अभि over, लष् to like) f. Wish, desire; p. 40, l. 11.

s. अभिषेक *abhishek* (s. अभिषेक : अभि over, सिच् to sprinkle) m. Bathing, baptizing. 2. Installation, usually performed among the Hindūs by anointing.

H. अभी *abhī*, Now, this very time; ch. i.

s. अभेद *abhed* / अभेव *abhev* (s. अभेद : अ not, H. भेद a secret or s. भिद्य penetrable) adj. Indivisible, inseparable, impenetrable; p. 91, l. 24. 2. Known, public.

s. अभ्यास *abhyās* (s. अभ्यास : अभि over, अस् to go) m. Practice, exercise, study, the frequent repetition of a thing in order to fix it on the mind; p. 158, l. 28.

s. अमर *amar* (s. अमर : अ not, मर that dies) adj. Undying, immortal; p. 48, l. 26.

s. अमर्याद *amaryād* / अमर्यादा *amaryādā* (s. अमर्य्यादा : अ not, मर्य्यादा dignity) f. Disrespect, indignity; p. 170, l. 23.

s. अमित *amit* (s. अमित : अ not, मित measured) adj. Unmeasured.

s. अमी *amī* = अमृत *q.v.*

s. अमुक *amuk* (s. अमुक ; अद् for अदस this) ind. n. Such an one, a certain person ; p. 237, l. 24.

s. अमृत *amrit* (s. अमृत : अ not, मृत what is dead *lit.*, what is immortal or what make so) m. The water of life, nectar, ambrosia. अमृत समान *amrit samān*, like nectar ; p. 29, l. 20.

s. अमोघ *amogh* (s. अमोघ : अ not, मोघ vain, barren) adj. Productive, fruitful, effectual.

s. अयुक्त *ayukt* (s. अयुक्त : अ not, युक्त right, proper) m. Violence, oppression. 2. adj. Unfit.

s. अयाना *ayānā* (: s. अ not, ज्ञान knowledge) adj. Unknowing, witless, simple, ignorant ; p. 26, l. 25.

s. अयुत *ayut* (s. अयुत : अ not, युत counted) adj. Ten thousand.

H. अरझना *arajhnā*, v.n. To be entangled, involved (as the hair, and by met., the heart) ; p. 50, l. 5.

s. अराधा *arādhnā* (s. आराधन : आङ्, राध to finish) To worship, to practise ; p. 92, l. 16.

s. अरि *ari* | अरी *arī* (s. अरि ; ऋ to go) m. An enemy. अरि कंदन *ari kandan*, Extirpator of enemies ; p. 64, l. 22.

s. अरिष्ट *Arisht* (: अ not, रिष्ट good fortune) m. A dæmon, one of the ministers of Kans ; p. 61, l. 28.

H. अरु *aru*, conj. And ; p. 21, l. 20.

s. अरुनाई *arunāī* (s. अरुणता ; अरुण name of the sun ; ऋ to go) f. A dark red colour, the redness of dawn ; p. 168, l. 10, and p. 194, l. 17.

s. अरुन *arun* (s. अरुण ; ऋ to go) m. The sun: also his charioteer: or the dawn, personified as the son of Kasyapa by Vinatā. 2. adj. Dark red.

s. अरे *are*, interj. Holla ! ho ! you Sir ! ch. i.

s. अरघ *aragh* | अर्घ *argh* (s. अर्घ ; अर्ह to worship) m. An oblation of eight ingredients offered to a God or Brāhman ; p. 37, l. 4.

s. अर्क *ark* (s. अर्क ; अर्च् to worship, or अर्क् to heat) m. The sun. 2. The name of a plant (Calatrapos gigantea).

H. अर्गजा *argajā*, m. The name of a perfume of a yellowish colour, compounded of several scented ingredients.

s. अर्गाना *argānā* (; अर्गा *q.v.*) v.a. To separate, to put on one side. 2. v.n. To be separated, to step aside ; p. 92, l. 4.

s. अर्चि *archi* (s. अर्चि ; अर्च् to worship) m. Flame. 2. Light, splendour.

s. अर्जुन *Arjun* (; अर्ज् to gain) m. The third of the Pāndavas, the son of Indr, and friend of Krishn ; ch. i. 2. The name of a king with a thousand arms. 3. A tree—the Terminalia alata glabra (according to Price), the Pentaptera arjuna (Wilson) ; p. 24, l. 10.

s. अर्थ *arth* (s. अर्थ ; ऋ to go) m. Meaning, signification. 2. Cause, sake. 3. Intention, design, motive. 4. Wealth, property, substance ; p. 46, l. 22.

s. अर्द्ध *arddh* (s. अर्द्ध ; ऋध् to increase) adj. Half.

s. अर्द्धंग *arddhang* | अर्द्धांग *arddhāng* (s. अर्द्धाङ्ग half the body : अर्द्ध half, अङ्ग the body) m. Half the body ; p. 173, l. 25. Palsy afflicting one side, or the upper or lower parts of the body, hemiplegia ; p. 138, l. 4.

s. अर्ना *arnā* (; s. अरण्य a forest) m. A wild buffalo.

H. अर्ना *arnā*, v.n. To stop, to hesitate.

s. अर्न्ता *Arntā*, m. A country governed by King Rewat, whose daughter Rewatī became the wife of Balarām; p. 106, l. 9.

s. अर्पन कर्ना *arpan karnā* / अर्प्ना *arpnā* (s. अर्पण delivery; ऋ to go) v.a. To present an offering; p. 198, l. 14.

s. अर्ब *arb* (s. अर्बुद) adj. One hundred millions; p. 159, l. 4.

H. अर्बराना *arbarānā*, v.n. To hurry, to be confused, confounded, agitated; p. 154, l. 4.

s. अर्बाक *arbāk* (s. अर्बाक) adj. Low, inferior, vile. 2. adv. Former, prior.

s. अर्भक *arbhak* (s. अर्भक; ऋध् to grow) a child.

s. अलंकार *alankār* (s. अलङ्कार : अलम ornament, कार what makes) m. Ornament (of dress), trinkets; p. 9, l. 11.

s. अलंकृत *alankrit* (s. अलङ्कृत : अलम ornament, कृत made) adj. Adorned, ornamented; p. 227, l. 10.

s. अलक *alak* (s. अलक; अल् to adorn) f. A ringlet, a curl; p. 56, l. 15.

s. अलकावलि *alakāvali* (: s. अलक a curl, a ringlet, आवलि a row) f. A row of side curls; p. 153, l. 20.

s. अलख *alakh* (: s. अ not, लक्ष्य distinguishable) adj. Invisible, unseen; p. 12, l. 28.

s. अगा *argā* / अलग *alag* / अल्गा *algā* (s. अलग्न : अ not, लग्न attached) adj. Separate; p. 19, l. 19. Apart, distinct.

s. अलष *alash* = अलख; p. 185, l. 4.

s. अलाप *alāp* (s. आलाप : आङ्, लप् to speak) m. Prelude to singing.

s. अलाप्ना *alāpnā* / आलाप्ना *ālāpnā* (; अलाप *q.v.*) v.a. To tune the voice, to prelude, to run over the different notes previous to singing, to catch the proper key; p. 56, l. 11.

s. अल्प *alp* (s. अल्प; अल् to be able) adj. Little, small; p. 188, l. 12. Few, short.

s. अवंतिका *Avantikā* (s. अवन्तिका; अव् to preserve) f. The name of one of the seven sacred cities of the Hindūs, the modern Oujein; to die there secures eternal happiness; p. 84, l. 30.

s. अव्काश *awkāsh* (s. अवकाश : अव between, काश् to shine) m. Leisure, opportunity; p. 41, l. 8.

s. अवतर्ना *avatarnā* (s. अवतरण : अव down, तॄ to cross) v.a. To descend, especially as an incarnation of the Deity; p. 228, l. 6.

s. अवतार *avatār* = औतार *q.v.*

s. अवदीच *Avadich* (s. उदीचि the North, : उद् up, अञ्च् to go) The name of a tribe of Gujarātī Brāhmans; Preface.

s. अवध *awadh* (s. अवधि : अव off, धा to have) m. Agreement, engagement; p. 68, l. 28. 2. Time, period. 3. (s. अयोध्या) A name of the Province of Oude. 4. (s. अवध्य : अ not, वध्य fit to be killed) Sacred, inviolable.

s. अवलंब *avalamb* (s. अवलम्ब : अव off, लवि to go) m. Asylum, protection.

s. अवली *avalī* = आवलि *q.v.*; p. 173, l. 1.

s. अवलोकन *avalokan* (s. अवलोकन : अव, लोकृ to see) m. Looking, surveying.

s. अवश्य *avashya* (s. अवश्य : अ not, वश् to subdue) adv. Certainly, necessarily, positively; p. 61, l. 16.

s. अव्सर *awsar* (s. अव्सर : अव, सृ to go) m. Leisure, opportunity.

s. अवस्था *avasthā* (s. अवस्था : अव prefix, स्था to stand or stay) f. State, condition; p. 81, l. 7.

s. अविचल *avichal,* adj. Motionless, unshaken, resolute, firm; p. 236, l. 13.

s. अशुगुन *ashugun* (: s. अ not, शकुन good omen) m. Bad omen, portent; p. 130, l. 10.

s. अशुभ *ashubh* (s. अशुभ : अ not, शुभ well) adj. Inauspicious; p. 138, l. 19.

s. अश्वपति *ashvapati* (s. अश्वपति : अश्व a horse, पति lord) m. A person of rank attended by horsemen, a horseman; p. 98, l. 24.

s. अश्वमेद *ashvamed* / अश्वमेध *ashvamedh* (s. अश्वमेध : अश्व a horse, मेध sacrifice) m. The sacrifice of a horse; p. 124, l. 9.

s. अष्ट धात *asht dhāt* (: s. अष्ट eight, धातु metal) m. The eight metals, reckoned as follows by the Hindūs, Gold, silver, copper, brass, tin, bell-metal, lead, and iron; p. 71, l. 18.

s. अष्ट धाती *asht dhātī* (*vide* अष्ट धात) adj. Consisting of eight metals; p. 71, l. 18.

s. अष्टमी *ashtamī* (s. अष्टमी ; अष्ट eight) f. The eighth day of the lunar fortnight; p. 13, l. 7.

s. अष्ट सिद्धि *asht siddhi* (: s. अष्ट eight, सिद्धि an order of beings) m. The eight Siddhis, a superior order of beings, being the powers and laws of nature personified. When they are subjected to the will by holiness and austerities, whatever the fancy desires may be obtained. Universal sovereignty may be acquired, and implicit obedience to any command enforced; the magnitude or weight of the body may be increased *ad libitum,* and it may be rendered invisible and transported in an instant to any part of the universe; p. 219, l. 26.

s. अष्टांग प्रनाम *ashtang pranām* (: अष्ट eight, अङ्ग member, प्रनाम obeisance) m. Prostration in salutation or adoration, so as to touch the ground with the eight principal parts of man, viz., the hands, feet, thigh, breast, eyes, head, words, and mind; p. 104, l. 1.

s. असमंजस *asmanjas* (s. असमञ्जस : अ not, समञ्जस proper : सम together, अञ्जसा truly) m. Doubt, suspense, uncertainty.

s. असीस *asis* (s. आशिस्) m. Blessing, benediction, return of salutation from a superior; p. 16, l. 11.

s. असुर *Asur* (s. असुर : अ neg. सुर deity) m. An Asur or dæmon. The Asurs are children of Diti by Kashyapa; they are dæmons of the first order, and are in perpetual hostility with the Gods; p. 8, l. 7.

s. असुरन तें *asuran ten,* Braj form of असुरों से *asuron se,* abl. of असुर with postp. तें. From the Asurs; p. 31, l. 8.

s. असोक *asok* (s. अशोक : अ not, शोक sorrow) m. A tree (Jonesia Asoca); p. 52, l. 3. 2. m Ease, cheerfulness.

s. अस्त *ast* (s. अस्त ; अस् to obscure) m. Setting, as the sun.

s. अस्त *ast* / अस्थि *asthi* (s. अस्थि ; अस् to throw) m. A bone; p. 201, l. 18.

s. अस्तव्यस्त *astavyasta* (; s. अस् to throw) adj. Confused, scattered, topsy-turvy; p. 211, l. 2.

s. अस्तुति *astuti* = स्तुति *q.v.*; p. 79, l. 16.

s. अस्त्र *astr* (s. अस्त्र ; अस् to throw) m. A weapon, a missile; p. 75, l. 2.

s. अहंकार *ahankār* (s. अहङ्कार : अहम I, कार what makes) m. Pride, egotism; p. 24, l. 4. Self-consciousness; p. 69, l. 21.

s. अहंकारी *ahankārī* (s. अहङ्कारी ; अहङ्कार *q.v.*) adj. Arrogant, proud.

s. अहल्या *Ahalyā* / अहिल्या *Ahilyā* (s. अहल्य : अ not, हल् to plough) f. The wife of Gautama, a saint and philosopher; p. 65, l. 23.

s. अहार *ahār* (s. आहार : आङ्, हृ to convey) m. Aliment, food.

s. अहि *ahi* (s. अहि : आङ्, हन् to hurt) m. A snake or serpent.

s. अहित *ahit* (s. अहित : अ not, हित friendly) m. An enemy. 2. Enmity, want of affection.

s. अहीर *ahīr* (s. आभीर : आङ्, ईर् to send) m. A particular caste in India, whose business it is to attend on cows; a cowherd; p. 72, l. 25.

s. अहीरी *ahīrī* (fem. of अहीर *q.v.*) f. A cowherdess; p. 92, l. 26.

s. अहे *ahe* / अहो *aho* (s. हे ; हि to go) interj. O! the sign of the vocative.

H. अहेर *aher*, m. Hunting, the chase; p. 180, l. 3. 2. Prey, game.

H. अऊत *aūt*, m. One who has no offspring. 2. An unmarried man.

आ

s. आंक *āṅk* (s. अङ्क ; अङ्क् to go) m. A figure, a number. 2. A mark or spot.

H. आंख *āṅkh*, f. The eye; ch. i.

H. आंख डबडबाना *āṅkh ḍabḍabānā*, v.n. To have the eyes suffused with tears; p. 22, l. 22.

H. आंख मिचौली *āṅkh michaulī* (: आंख the eye, मिचौलना to cover) f. Blind-man's-buff; p. 64, l. 20.

s. आंग *āṅg* (s. अङ्ग) m. The body; p. 22, l. 24.

s. आंगन *āṅgan* / आंग्ना *āṅgnā* (s. अङ्गण ; आंग् to go) m. A yard, area, court, inclosed space adjoining a house; p. 19, l. 15.

s. आंचल *āṅchal* (s. अञ्चल ; अञ्च् to go) m. The end or hem of a cloth, veil, shawl, etc.; p. 22, l. 25.

H. आंधी *āṅdhī*, f. A storm, a tempest; p. 7, l. 4.

s. आंव *āṅw* (s. आम constipation, or passing unhealthy secretion ; अम् to be sick) m. Tenesmus, the glutinous whitish matter or mucus voided by those afflicted with that disease; p. 138, l. 4.

s. आक *āk* (s. अर्क ; अर्च् to worship) m. Curled flower, gigantic swallow-wort (Asclepias gigantea); p. 27, l. 4.

s. आकार *ākār* (s. आकार : आङ्, कृ to make) m. Form, appearance.

s. आकाश *ākāsh* (s. आकाश : आङ्, काश् to shine) m. The sky; p. 35, l. 22.

s. आकाशबानी *ākāshbānī* (: s. आकाश the sky, वाणी voice) f. A voice from heaven; ch. i., p. 5. Revelation.

s. आखत *ākhat* = अक्षत *q.v.*

s. आखेट *ākheṭ* (: आङ् and खिट् to alarm) m. The chase, hunting; ch. i.

s. आग *āg* (s. अग्नि ; अङ्ग् to mark) f. Fire; p. 9, l. 20.

s. आगम *āgam* (s. आगम : आङ्, गम to go) m. Futurity; p. 63, l. 14. आगम बांधना *āgam bāṅdhnā*, v.a. To determine the future, to prophesy, predict, foretell; p. 63, l. 14.

s. आगमन *āgaman* (s. आगमन : आङ्, गम to go) m. Coming, arrival; p. 115, l. 12.

H. आगरा *Āgarā*, m. Āgrā, a city of Hindūstān, where Akbar is buried; Preface.

H. आगरे वाला *āgare wālā* (: आगरा the city of Āgrā, वाला an affix added to nouns and infinitives, and which the compound the sense of possessor, agent, or resident) m. An inhabitant of Āgrā.

S. आग लगाय पानी को दौड़ना *āg lagāe pānī ko dauṛnā*, "To kindle a fire and then run for water,"—a proverb, spoken of one who excites a disturbance and then pretends to regret it, or to sympathise with the sufferer; p. 231, l. 4.

S. आगा घेर्ना *āgā ghernā* (: आगा in front, घेर्ना to surround) v.n. To intercept; p. 144, l. 5.

S. आगार् *āgār* (S. आगार् : अग a mountain, ऋ to go) m. A house.

S. आगू *āgū* (S. अग्रम्) adv. Forward; p. 114, l. 1.

S. आगे *āge* (S. अग्रे in front; अगि to go) adv. Before; in front; p. 25, l. 19. 2. Formerly. 3. Henceforward.

S. आचमन *āchaman* (S. आचमन : आङ्, चमु to eat) m. The act of sipping water from the palm of the hand, by way of purification; p. 69, l. 4.

S. आचरण *ācharaṇ* / आचरन *ācharan* (S. आचरण : आङ्, चर् to go) m. Manner of life, established rule of conduct, behaviour, custom, practice; p. 147, l. 8.

S. आचार् *āchār* = आचरन *q.v.*

S. आचारी *āchārī* (S. आचारी ; आचार् *q.v.*) adj. Following religious and established rites.

S. आछें *āchhen* / आछैं *āchhain* (; S. अच्छ clear) adj. pl. used adverbially. Well.

S. आज *āj* (अद्य ; इदम् this) adv. To-day; p. 6, l. 21.

S. आजीविका *ājīvikā* (S. आजीव : आङ्, जीव् to live) f. Means of supporting life, subsistence, livelihood.

S. आज्ञा *ājnā* pronounced *āgyā* (आज्ञा ; ज्ञा to know) f. An order, a command; p. 6, l. 5. जो आज्ञा *jo ājnā*, A form of assent, "As you will;" p. 87, l. 13.

S. आठवां *āṭhwāṅ* (; S. अष्ट eight) ordinal n. Eighth; ch. i., p. 5.

H. आड़ *āṛ*, f. A screen or shelter. 2. Prevention, stop, hindrance. 3. A horizontal line drawn across the forehead; p. 152, l. 19.

H. आड़ा *āṛā*, adj. Oblique, transverse, athwart; p. 24, l. 11.

H. आड़ी *āṛī* f. A tone in music; p. 56, l. 12.

H. आड़े आना *āṛe ānā*, v.n. To interpose, to protect, to become a protection; p. 115, l. 1.

S. आतंक *ātaṅk* / आतंग *ātaṅg* (S. आतङ्क : आङ्, तकि to live in distress) m. Fear, apprehension. 2. Affliction, pain. 3. Parade, ostentation, show, pomp.

S. आतप *ātap* (S. आतप : आङ्, तप् to heat) m. Sunbeams, sunshine.

S. आतुर *ātur* (S. आतुर diseased : आङ्, तुर् to hasten) adj. Agitated, restless, afflicted; p. 26, l. 22.

S. आत्मा *ātmā* (S. आत्मन् : आङ्, अत् to go) f. The soul, the mind, as धर्म्मात्मा *dharmmātmā*, Just of soul.

S. आद् अंत *ād-aṅt* (S. आद्यंत : आदि first, अन्त end) adj. From the first to the last, from the beginning to the end. 2. m. The beginning and the end.

S. आदर् *ādar*, m. Respect, reverence, act of treating with attention and deference, politeness.

S. आदर् मान *ādar mān* (: S. आदर् respect, मान honour; ch. i. p. 5.

S. आदि *ādi* (: S. आङ before, दा to give) adj.

First, prior. adv. (in comp.) Other, et cætera; ch. i., p. 4.

s. आदि पुरुष *ādi purush* (s. आदि पुरुष : आदि the first, पुरुष male) m. The First Male (a title of Vishnu); p. 13, l. 10.

s. आधा *ādhā* (; s. अर्ध) adj. Half. आधी रात *ādhī rāt*, Mid-night; p. 13, l. 7.

s. आधान *ādhān* (s. आधान : आङ्, धा to have) m. Pregnancy, conception; p. 11, l. 24. आधान से होना *ādhān se honā*, To be pregnant; p. 12, l. 10.

s. आधार *ādhār* (s. आधार : आङ्, धृ to hold or contain) m. A patron, supporter, one on whom dependence is placed for aid. 2. (s. आहार : आङ् हृ to convey) m. Food, aliment, victuals.

s. आधासीसी *ādhāsīsī* (: s. अर्द्ध half, शिर head) f. A pain affecting half the head, hemicrania; p. 138, l. 3.

s. आधीन *ādhīn* = अधीन *q.v.*

s. आधीनता *ādhīnatā* (s. अधीनता ; अधीन *q.v.*) f. Submission, obedience, obsequiousness; p. 39, l. 2.

s. आन *ān* (s. अन्य ; अन् to live) adj. Other.

s. आन *ān* (s. आज्ञा, ज्ञा to know) f. Order, command; p. 81, l. 18.

H. आन *ān*, f. Bashfulness, modesty, shame. 2. An oath.

H. आन *ān*, for आ *ā*, root of आना to come; ch. i., p. 4.

s. आनंद *ānand* (s. आनन्द : आङ्, नदि to be or make happy) m. Joy, happpiness; ch. i., p. 5.

s. आनक *ānak* (s. आनक : आङ्, अन् to sound) n. A kettle drum.

H. आना *ānā*, v.n., To come; ch. i.

s. आनिकै *ānikai*, past conj. part. of आन्ना to bring, a Braj form for आनके ; p. 61, l. 11.

H. आनिहौं *ānihaun*, 1st p. sing. fut. of आन्ना to bring—I will bring; p. 17, l. 16.

s. आन्ना *ānnā* (; s. आनयन bringing : आङ्, णी to lead) v.a. To bring; p. 24, l. 6.

s. आप *āp* (s. आप ; आप् to pervade) m. Water.

H. आप *āp*, pronoun used respectfully of the 2nd and and 3rd person, and reflexively of all three persons. Self; ch. i.

s. आपदा *āpadā* (s. आपदा : आङ्, पद् to go) f. Misfortune, calamity.

s. आपन्न *āpanna* (s. आपन्न : आङ्, पद् to go) adj. Unfortunate, afflicted. 2. Gained, obtained, acquired. 3. A refugee, one who comes for shelter or protection.

H. आपस *āpas*, pl. infl. of आप *q.v.*, Themselves; p. 12, l. 2.

H. आपस में *āpas men*, abl. pl. of आप *q.v.*, Among themselves; ch. i.

H. आप से आप *āp se āp* (: आप self, से from, आप self) adv. Of its own accord, spontaneously; p. 138, l. 17.

s. आपुन *āpun*, a Braj form of आप self, *q.v.*; p. 202, l. 11.

s. आपकाजी *āpkājī* (: s. आप self, कार्य्य business) adj. Attending to one's own business, engaged in one's own affairs, selfish; p. 237, l. 1.

H. आप्नौ *āpnau*, Braj form of अप्ना *apnā*, Own; p. 33, l. 22.

s. आफू *āphū* (s. अफेन : अ not, फेन foam) m. Opium.

s. आभरन *ābharan* (s. आङ्, भृज् to fill or nourish) m. Jewels, ornaments; p. 17, l. 17.

s. आभा *ābhā* (s. आभा : आङ्, भा to shine) f. Beauty, splendour.

s. आभूषण *ābhūṣhaṇ* (s. आभूषण ; भूष् to adorn) m. Ornaments ; p. 9, l. 11.

s. आमय *āmaya* (s. आमय : अम् to be sick) m. Sickness, disease.

s. आमिष *āmiṣh* (s. आमिष ; अम् to be sick or to go) m. Flesh.

s. आमोद *āmod* (s. आमोद : आङ्, मुद् to be pleased) m. Fragrance, odour.

s. आम्राई *āmrāī* (s. आम्रराजि : आम्र the mango-tree, राजि a row) f. A garden of mango trees.

s. आयत *āyat* (s. आयत : आङ्, यम् to cease) adj. Long, wide. 2. (H.) m. Sunbeam, sunshine.

H. आयस *āyasa* m. Order, command ; p. 81, l. 17.

s. आयु *āyu* (s. आय ; अय् to go) m. Age ; p. 20, l. 4.

s. आयुध *āyudh* (s. आधुध : आङ्, युध् to fight) m. A weapon in general ; p. 86, l. 5.

s. आरंभ *ārambh* (s. आरम्भ : आङ्, रभि to commence) m. A beginning, commencement ; Preface.

s. आरत *ārat* (s. आर्त्त ; ऋत् to hate) adj. Distressed, grieved, afflicted.

s. आरज *āraj* (s. आर्य्य) adj. Respectable, venerable.

s. आरस *āras* = आलस्य *q.v.*

s. आराति *ārāti* (s. आराति : आङ्, रा to take or receive) m. An enemy.

s. आराम *ārām* (s. आराम : आङ्, रम् to please) m. A pleasure garden. 2. P. (آرام), Ease, health, comfort.

s. आरूढ़ *ārūṛh* (s. आरोह : आङ्, रुह् to rise) adj. Mounted on a horse, etc.

s. आरोहन *ārohan* (s. आरोहन : आङ्, रुह् to rise) m. A ladder, a staircase.

s. आर्ता *ārtā* (s. आरात्रिक : आङ्, रात्रि night) m. A ceremony attending marriage. When the bridegroom first comes to the house of the bride, he is received by her relations, who present to him, and move circularly round his head, a platter painted and divided into several compartments ; in the middle of it is a lamp made with flour, filled with clarified butter, and having several wicks lighted ; p. 123, l. 7.

s. आर्ति *ārti* (s. आर्त्ति ; आरत *q.v.*) f. Pain, distress, affliction.

s. आर्चा *ārchā* (s. अर्चा ; अर्च् to worship) f. Worship. 2. An image.

s. आलय *ālay* (s. आलय : आङ्, लीङ् to enfold) m. A house, a habitation.

s. आलस्य *ālasya* (s. आलस्य ; अलस idle) m. Laziness, inactivity. आलस्य बान *ālasya bān*, m. The arrows of sloth ; p. 174, l. 20.

s. आला *ālā* (s. आलय a receptacle ; लीङ् to enfold) m. A small recess in a pillar or wall for holding a lamp, etc. ; p. 152, l. 15.

s. आलान *ālān* (s. आलान : आङ्, ला to take) m. The post to which an elephant is tied, or the rope that ties him.

s. आलाप *ālāp* (s. आलाप addressing : आङ्, लप् to speak) f. Prelude to singing = अलाप *q.v.*

s. आलिंगन *āliṅgan* (s. आलिङ्गन : आङ्, लिगि to approach) m. Embracing ; p. 164, l. 7.

s. आली *ālī* (s. आलि ; अल् to adorn) f. A woman's female friend ; p. 51, l. 17.

s. आल्बाल *ālbāl* (s. आल्बाल : आङ्, लू to cut or dig) m. A circular bason round the root of a tree for the purpose of watering it.

H. आवत *āwat*, pres. part. of आवनौं *āwanaun*, to come (a Hindī form), Coming ; Preface.

H. आवनौं *āwanaun*, v.n. (Hindī form of आना *ānā*) To come; p. 40, l. 11.

आवभक्ति *āwbhakti* / H. आवभगत *āwbhagat* / आवभगति *āwbhagati* (perhaps: आना to come, भक्ति service) f. A welcome, a civil reception, or salutation; p. 7, l. 9.

S. आवलि *āvali* (s. आवलि : आङ्, वल् to move) f. A row, a range, a continuous line; p. 153, l. 20.

S. आवर्दा *āwardā* (s. आयुर्द्दय) f. The allotted period of life, a life-time, an age.

S. आवाहन *āwāhan* (s. आवाहन : आङ्, ह्वे call) m. Calling, summons; p. 215, l. 22. Offering oblations by fire; p. 205, l. 18.

H. आवहु *āwhu* (2 p. pl. imp. of आवनौं *āwanaun*, to come, *q.v.*) Come ye! p. 104, l. 25.

S. आशक्त *āshakt* (s. आसक्त : आङ्, षञ्ज् to embrace) adj Fond, attached, enamoured; p. 160, l. 2. Overpowered; p. 235, l. 16.

S. आशीर्वाद *āshīrbād* (s. आशीर्व्वाद : आशिस् blessing, वाद speech) m. A benediction; p. 87, l. 20.

S. आश्चर्य्य *āshcharyya* (s. आश्चर्य्य : आङ्, चर् to go) adj. Astonishing, wonderful. 2. m. Amazement, surprise, astonishment; p. 107, l. 21.

S. आस *ās* / आशा *āshā* (s. आशा : आङ्, अशू to expand) f. Hope, dependence; ch. i., p. 5.

S. आसन *āsan* (; आस् to abide) m. A stool, a seat. 2. The inside or under part of the thigh. आसन मार्ना *āsan mārnā*, To sit—particularly in an attitude practised by Jogīs, or devotees; chap. i.

S. आसमन्तात *āsamantāt* (: s. आ, सम्, अन्त, end) adv. All round, on every side. 2. Wholly, altogether.

S. आसय *āsay* (s. आशय : आङ्, शीङ् to rest) m. An asylum, abode or retreat. 2. Meaning, intention.

S. आसव *āsav* (s. आसव : आङ्, षूञ् to be generated) m. Rum, spirit distilled from sugar or molasses.

S. आसिख *āsikh* (s. आशिस) m. A blessing, a benediction. 2. Instruction.

S. आस्पद *āspad* (s. आस्पद : आङ्, पद् to go) m. A place or situation. 2. Dignity, rank.

H. आहट *āhat*, f. Sound, noise of footsteps; p. 30, l. 24.

H. आहि *āhi*, 3 p. sin. pres. of होनौं to be (a Hindī form). Is; p. 20, l. 4.

S. आहुक *Āhuk*, m. A king of Mathurā; p. 6, l. 3.

S. आहुत *āhut* (s. आहुति : आङ्, हु to offer oblations) m. Offering oblations with fire to the Deities, a burnt-offering; p. 205. l. 19.

S. आह्निक *āhnik* (; s. अहन् a day) m. The constant or daily ceremonies of religion.

इ

S. इंदारा *indārā* (s. अन्धु a well ; अम् to go) m. A large well of masonry; p. 71, l. 14.

S. इंद्र *Indr* (s. इन्द्र ; इदि to possess supreme power) m. The sovereign of the Gods according to the Hindūs. The Deity of the atmosphere, or Indian Jove. According to the Vedanta the Supreme Being. His worship was abolished by Kṛishn (*vide* chap. xxv.); p 8. l. 2.

S. इंद्रदवन *Indradawan*, m. A king of Benāres, the father of Ambā (*vide* अंबा); p. 154, l. 24.

S. इंद्रानी *Indrānī* (s. इन्द्राणी ; इन्द्र *q.v.*) f. The wife of Indr; p. 148, l. 2. 2. Name of a medicine or plant.

s. इंद्रासन *Indrāsan* (: s. इन्द्र the God Indr, आसन seat) m. The throne of Indr; p. 8, l. 2.

s. इंद्री *indrī* (s. इन्द्रिय ; इन्द्र the soul) f. An organ of action or perception. The Hindūs reckon these as follows:—The organs of action are the hand, the foot, the voice, the organ of generation, and that of excretion. The organs of perception are the mind, the eye, the ear, the nose, the tongue, and the skin; p. 54, l. 12.

s. इंधन *indhan* / ईंधन *īndhan* (s. इन्धन् ; इन्ध् to kindle) m. Fuel, wood, grass, etc., used for fires; p. 219, l. 1.

s. इक *ik* (s. एक) adv. One. इकसार *iksār*, Alike, similar; p. 155, l. 20. इक संग *ik sang*, Together, massed; p. 153, l. 20. इक टक *ik ṭak*, adv. Fixedly looking at an object (See तक्का).

s. इक्छत राज *ikchhat rāj* (s. इक one. छत = s. छत्र umbrella, the ensign of royalty, राज goverment) m. An universal empire; p. 213, l. 7.

s. इकठा *ikaṭhā* (: s. एक one, स्थान place) adj. Collected, in one place; p. 18, l. 15.

s. इकठौरा *ikaṭhaurā* = इकठा *q.v.*

s. इक्कीस *ikkīs*, num. Twenty-one; p. 98. l. 22.

s. इच्वाक बंसी *ikshwāk bansī* (: s. इच्वाक Ikshwāk, वंश family) adj. Of the family of Ikshwāk; p. 103, l. 8. Ikshwāk was the son of the Menu Vaīvaswata, the son of Sūrya, or the Sun, and was the first prince of the Solar dynasty. He reigned at Ayodhyā, at the commencement of the second Yug or age.

s. इक्सठ *iksaṭh* (: इक for एक one, साठ sixty) num. Sixty-one; p. 155, l. 20.

s. इच्छा *ichchhā* (s. इच्छा ; इष् to desire) f. Wish, desire. इच्छा भोजन *ichchhā bhojan*, Desirable or delicious food; p. 117, l. 15.

s. इछन *ichhan* (s. ईच्चण) m. An eye. 2. Sight, seeing, vision.

s. इत *it* (s. अत्र) adv. Here, in this place; p. 19, l. 25.

s. इति *iti* (s. इति : इ to go) conj. A word usually written at the end of a chapter, letter, etc., signifying that it is finished: as زیادہ چه *ziyādah chih*, in Persian; تم *tum*, in Arabic; *Finis*, with us; p. 8, l. 27.

H. इतौ *itau*, Braj for इतना *itnā*, *q.v.* adj. Thus much, so much; p. 145, l. 10.

H. इनि *ini*, Braj form of इन्हों gen. pl. of यह, Of these; p. 50, l. 30.

H. इतना *itnā* (perhaps : इत here, आना to come) adj. Thus much, so many, so much, so great; chap. i इतने में *itne men* (suband. वक्त time) in the meanwhile. इतनी ठौर *itnī ṭhaur*, in so many places; chap. i.

H. इधर *idhar*, adv. Here; p. 9, l. 24. इधर उधर *idhar udhar*, Here and there.

s. इम्ली *imlī* (s. अम्लीका ; अम्ल sour) f. The Tamarind tree (Tamarindus Indica); p. 142, l. 7.

s. इम्रती *imratī* (; s. अमृत nectar) f. Nectareous. 2. A kind of sweetmeat; p. 42, l. 25. 3. A small drinking vessel. 4. A kind of cloth.

s. इलायची *ilāechī* (s. एला ; इल् to send) f. The large cardamom; p. 155, l. 11.

s. इष्ट *isht* (s. ईष्ट ; इष् to desire) adj. Desired, approved, reverenced, adored, respected, beloved. 2. m. A God, a Deity, a beloved person; p. 111, l. 21.

H. इस लिये *is liye* (: इस infl. of यह this, *q.v.*, and लिये postpos.) On this account; chap. i.

H. इसी *isī*): इस this, infl. of यह, and ई very) To or from this very; chap. i.

S. इह *ih*, pron. dem., This. इहि *ihi*, Braj for इस *is*. इहि ठां *ihi ṭhāṅ*, In this very place; p. 132, l. 1.

ई

S. ईंट *īṅṭ* (S. इष्टका ; इष् to wish) f. A brick; p. 29, l. 21.

H. ईंढुआ *īṅḍhuā*, m. A roll or round fold on which a burthen is carried on the head, it may be of cord, grass, or straw, etc., and is sometimes used as a stand on which to set vessels; p. 22, l. 18.

S. ईख *īkh* (S. इक्षु ; इष् to desire) f. Sugar-cane; p. 63, l. 26.

S. ईठ *īṭh* = इष्ट a lover, *q.v.*; p. 183, l. 17.

S. ईश्वर *Īshwar* (S. ईश्वर ; ईश् to rule) m. God; p. 39, l. 26. The supreme Ruler of the Universe, and hence applied to all divinities, but principally to Shiva. According to the Sānkhyas, Īshwar is the liberated spirit; finite according to Kapila; infinite according to Patanjali. In the Nyāya system, Īshwar is finite spirit, endowed with attributes; in the Vedānta, infinite and universal spirit, the cause and substance of creation.

S. ईश्वर्ता *īshwartā* (S. ईश्वरता ; ईश्वर God) f. Godhead, divinity; p. 92, l. 1.

S. ईस *Īs* (S. ईश ; ईश् to rule) m. God, Ruler; p. 46, l. 5. 2. A name of Shiva.

उ

S. उकत *ukat* / उक्ति *ukti* (S. उक्ति ; वच् to speak) f. Speech, voice, language; p. 1. l. 4. उकत बनाना *ukat banānā*, To make up a story, to invent, devise; p. 63, l. 5.

S. उखड़ना *ukhaṛnā* (: S. उत् up, खड् to break) v.n. To be torn up by the roots; p. 19, l. 17.

S. उखड़ाना *ukhaṛānā* / उखाड़ना *ukhāṛnā* (: S. उत् an expletive, खड् to break) v.a. (causal of उखड़ना *q.v.*) To root up, eradicate; p. 9, l. 15.

S. उखल *ukhal* / उलूखल *ulūkhal* (S. उलूखल : उद् up, ख empty, ल taking) m. A wooden mortar used for cleaning rice; p. 91, l. 11.

S. उगल्ना *ugalnā* (: S. उद् up, गॄ to vomit) v.a. To spit out, to vomit; p. 26, l. 5.

S. उग्रसेन *Ugrasen* (S. उग्रसेन : उग्र fierce, सेना army) A king of Mathurā, son of Āhuk, brother of Devak, and husband of Pavanrekhā, whose son Kans by the dæmon Drumalik usurped the throne of Ugrasen; p. 6, l. 4.

H. उघड़ना *ugharṇā*, intransitive of उघाड़ना *q.v.*

H. उघड़ना *ugharṇā*, v.n. To be opened; p. 14, l. 3.

H. उघाड़ना *ughāṛnā*, v.a. To unveil, to uncover, to open, to unclose; chap. i.

S. उचक्ना *uchaknā*, v.n. To rise, to be raised or lifted. 2. To leap or spring up; p. 31, l. 16.

S. उचकाना *uchkānā* (caus. of उचक्ना *q.v.*) v.a. To raise up; p. 74, l. 4

S. उचर्ना *ucharnā* / उच्चर्ना *uchcharnā* (S. उच्चरण : उत् up, चर् to go) v.n. To speak, to pronounce, to declare; p. 59, l. 14.

s. उचार्ना *uchārnā* = उचर्ना *q.v.*; p. 71, l. 28.

s. उचित *uchit* (s. उचित : वच् to speak) adj. Proper, suitable, convenient; chap. i.

s. उच्च *uchch* (s. उत् up, चि to gather) adj. High, tall, lofty; p. 51, l. 22.

s. उच्छिष्ट *uchchhisht* (s. उच्छिष्ट : उत् up, शिष् to leave as a residue) m. The remainder of food, orts, leavings; p. 193, l. 22.

s. उछर्ना *uchharnā* | उछल्ना *uchhalnā* } (: s. उत् up, चल् to move) v.n. To leap or bound. 2. To spring up (as water in a fountain), to spring or fly up; p. 79, l. 6.

H. उजागर *ujāgar*, adj. Famous, celebrated. 2. m. Light, as जगत उजागर *jagat ujāgar*, Light of the world; p. 49, l. 12.

s. उजाड़ना *ujārnā* (: s. उत् up, जटा a fibrous root so the dictionary, but it is more probably a Hindī word) v.a To waste, to desolate; p. 173, l. 13.

s. उजाला *ujālā* (: s. उत्, ज्वल् to shine) m. Light; p. 19, l. 28. Splendour.

s. उज्जल *ujjal* (s. उज्ज्वल : उत्, ज्वल् to shine) adj. Clean, clear, bright, luminous, splendid; p. 35, l. 22.

H. उझक्ना *ujhaknā*, v.a. To peep, to spy; p. 107, l. 25.

H. उठना *uṭhnā*, v.n. To rise up, to be raised; chap. i, p. 4.

H. उठाना *uṭhānā* (active of उठना *q.v.*) To raise, lift up; chap. i.

s. उड़ना *urnā* (: s. उत्, डी to fly) v.n. To fly. उड़ता हुआ *urtā hūā*, flying; p. 19, l. 5.

s. उड़ाना *urānā* (caus. of उड़ना *q.v.*) v.a. To cause to fly, to put an end to, to drive away; p. 52, l. 30, and p. 206, l. 29.

s. उढ़ाना *urhānā* (; s. ऊर्णु to cover) trans. of उढ़ना *q.v.*, v.a. To cover, clothe, cause to clothe; p. 16, l. 11.

s. उढ़ैया *urhaiyā* (; s. ऊर्णु to cover) m. A wearer or putter on of a dress; p. 72, l. 25.

H. उत *ut*, adv. There, thither (a Braj form).

s. उतरन होना *utaran honā* (s. उत्तीर्ण : उत् over, तीर्ण crossed) v.n. To be freed from debt; p. 115, l. 13. 2. To descend.

s. उतर्ना *utarnā* (s. उत्तरण : उत् over, तॄ to cross) v.n. To descend, to alight; p. 6, l. 10. To halt, dismount, disembark, to pass over, to cross; p. 14, l. 14.

s. उतार्ना *utārnā* (active of उतर्ना *q.v.*) v.a. To cause to alight or descend, to bring down, to take off, to lay aside; chap. 1. To convey over.

s. उत्तम *uttam* (s. उत्तम : उत् much, तम् to desire) adj. First, best, chief, principal; chap. i.

s. उत्तर *uttar* (s. उत्तर : उत् above, तर ; तॄ to pass) m. An answer; p. 20, l. 22. 2. The north; p. 198, l. 22. 3. adj. Northern.

s. उत्तरार्ध *uttarārdh* (: उत्तर subsequent, अर्ध half) m. Latter half; p. 97, l. 21.

H. उत्ना *utnā*, adj. As much as, as many as; p. 101, l. 8.

s. उत्पत्ति *utpatti* (s. उत्पत्ति : उत up, पद् to go) f. Birth, origin; p. 57, l. 18.

s. उत्पात *utpāt* (s. उत्पात) m. A portent, a monster. 2. Violence, injustice, mischief; p. 116, l. 5.

s. उत्सव *utsav* (s. उत्सव : उत् up, षू to bring forth, i.e., happiness is produced by it) m. A festival, rejoicings.

H. उथलना *uthalnā*, v.n. To overset, to overturn; p. 60, l. 9.

S. उदक *udak* (S. उदक ; उन्द् to wet) m. Water.

S. उदर *udar* (S. उदर : उत् up, ऋ to go) m. The belly; p. 77, l. 14.

S. उदास *udās* (S. उदास apathy, Stoicism : उद् up, आस who casts) m. Apathy, dejection. Adj. Apathetic, indifferent, dejected, sad; chap. i., and p. 48, l. 5.

S. उदासी *udāsī* (; S. उदास *q.v.*) adj. Dejected; p. 31, l. 10. Lonely. m. In popular acceptation a religious mendicant, one who is indifferent to pleasure, and insensible of emotion; p. 230, l. 11.

S. उदै होना *udai honā* (S. उदय v.n.) To rise, as the sun, etc.; chap. i., p. 5.

S. उद्दाल *Uddāl* (S उद्दाल : उद् high, दल् to pierce) m. A Muni who used to eat only once in every six months; p. 201, l. 10.

S. उद्धव *Uddhav* (S. उद्धव : उद् reverse, धु to feel pain) m. A friend and counsellor of Krishn; p. 223, l. 13.

S. उद्धार *uddhār* (S. उद्धार : उद् up, धृ to hold) m. Release, salvation, deliverance; p. 181, l. 11, and p. 23, l. 21.

S. उद्धार्ना *uddhārnā* (S. उद्धारण ; उद् up धृ to have) v.a. To liberate, to release.

H. उधर *udhar*, adv. There; p. 10, l. 1.

H. उधेर्नौं *udhernauṅ*, v.a. To undo, to unravel; p. 73. l. 14.

H. उनि *uni*, Braj for उन ने *un ne*. They; p. 67, l. 7.

S. उन्मेष *unmesh* (S. उन्मेष : उद् up, मिष् to scatter) m. Winking, twinkling of the eyelids.

H. उन्हार *unhār*, f. Manner, appearance; p. 127, l. 28. 2. adj. Like, resembling.

H. उपंग *upaṅg*, m. A kind of musical instrument; p. 184, l. 13.

S. उपकार *upakār* (S. उपकार : उप near or one, कृ to make) m. Favour, kindness, benefit, aid.

S. उपकारी *upakārī* (; S. उपकार *q.v.*) adj. Aiding, beneficent. पर उपकारी *par upakārī*, Bestowing benefits on others; p. 51, l. 23.

H. उपज *upaj*, f. Anything spoken or sung extempore; p. 56, l. 12.

S. उपज्ना *upajnā* (: S. उत् up, पत् to go) v.n. To spring up, to grow, to be produced, to be born; chap. i.; p. 5.

H. उपड़्ना *uparnā*, v.n. To be impressed or imprinted; p. 52, l. 13.

S. उपदेस *upades* (S. उपदेश : उप up, दिश् to shew) m. Advice, counsel.

S. उपद्रव *upadrav* (S. उपद्रव : उप over, द्रु to go) m. Violence, injury, injustice; p. 17, l. 7.

S. उपनंद *Upanaṅd* (S. उपनन्द : उप near, नन्द Nand) m. A relation or younger brother of Nand—Krishn's foster-father; p. 25, l. 9.

S. उपबन *upaban* (S. उपवन : उप like, वन a wood) m. A garden with trees, a grove; chap. i.

S. उपरांत *uparāṅt* (: S. उपरि over, अन्त end) adv. After, afterwards; p. 137, l. 12.

S. उपवेद *Upaved* (S. उपवेद : उप near, वेद the Vedas) m. A division of Hindū science deduced immediately from the Vedas. Four works are included under this title, viz., Āyush, Gandharva, Dhanush, Sthapatya. The first was given to mankind by Brahmā, Indr, Dharmvantarī, and five

other deities, and treats of disorders and medicines, with the treatment of diseases. The second or music, was invented and explained by Bharata. The third was composed by Vishwāmitr, on the fabrication and use of arms, as among the Kshatriyas. The 4th was revealed by Vishwakarma, on the sixty-four mechanical arts; p. 85, l. 6.

s. उपस्थित *upasthit* (s. उपस्थित : उप over, स्था to stay) adj. Ready, present; p. 147, l. 24.

s. उपहास *upahās* (s. उपहास : उप up, हस् to laugh) m. Ridicule; p. 211, l. 25.

s. उपाध *upādh* (s. उपाधि deception : उप implying excess, धा to have) f. Violence, injury, injustice; p. 7, l. 16.

s. उपाधी *upādhi* (: s. उपाध *q.v.*) adj. Violent, unjust; p. 158, l. 7.

H. उपाना *upānā*, v.a. To create, produce, p. 174, l. 14, where उपाई is probably either a misprint, or a corruption of उपजाई, which occurs in the next line, and is the common form.

s. उपाय *upāe* (s. उपाय : उप, आङ्, इण to go) m. A remedy, a plan; p. 63, l. 4.

s. उपास *upās* (s. उपवास : उप, वस् to abide) m. Fasting; p. 12, l. 18.

H. उप्जाना *upjānā* (caus. of उपजना *q.v.*) v.a. To create, to produce; p. 11, l. 15.

H. उप्राला *uprālā*, m. Aid, assistance. उप्राला कर्ना *uprālā karnā*, v.a. To take one's part, to protect, to come to the rescue.

H. उफन्ना *uphannā* / ऊफन्ना *ūphannā* } v.n. To boil over; p. 23, l. 8.

s. उबट्ना *ubaṭnā* (; उद्वर्त्तन v.a. To rub on the body a detergent application called उब्टन *ubṭan*, *q.v.*; p. 66, l. 14.

s. उबार्ना *ubārnā* (; s. उद्धार) v.a. To liberate; to release; p. 45, l. 17.

s. उब्टन *ubṭan* (s. उद्वर्त्तन) m. A paste for scouring the skin previous to bathing.

H. उभक *ubhak*, m. A bear.

s. उर *ur* (s. उरस ; ऋ to go) m. The breast, the bosom. उर लाना *ur lānā*, v.n. To caress, to fondle; p. 51, l. 7.

s. उर्ना *Urnā*, f. Name of the wife of the sage Marīchi; p. 228, l. 28.

s. उर्बसी *Urbasī* / उर्वसी *Urvasī* } (s. उर्व्वशी : उरु great, वश् to tame) f. The name of a beautiful celestial female dancer of Indr's heaven; p. 13, l. 6.

s. उरु *uru* = उर *q.v.*; p. 182, l. 22.

H. उलट्ना *ulaṭna*, v.a. To reverse, to turn back. उलत कर्ना *ulat karnā*, to throw back the charge; p. 21, l. 22. To return; p, 59, l. 24.

s. उलह्ना *ulahnā* (: s. उत्, रुह् to grow) v.n. To vegetate, to grow up; p. 50, l. 10.

H. उलाह्ना *ulāhnā*, m. A complaint, an accusation; p. 21, l. 15.

H. उल्टा *ulṭā*, part. or adj. Reversed, turned back. (Used adverbially); p. 10, l. 18. उल्टा पुल्टा *ulṭā pulṭā*, Upside down, in extreme disorder; p. 48, l. 18.

s. उल्मुक *ulmuk* (s. उल्मुक ; उष् to burn) m. A fire-board, wood burning or burnt to charcoal.

s. उषा *Ushā*, f. The wife of Aniruddh, the son of Kāmadeva (*vide* ऊषा); p. 160, l. 1.

s. उसर्ना *usarnā* (s. अपसरण : अप back, सरण going) v.n. To retreat, shrink, recede; p. 131, l. 28.

f

S. उसास *usās* (S. उच्छ्वास : उत् up, श्वस् breathe) f. Breath, a sigh; p. 49, l. 26.

H. उसी *usī*, That same. Inflection of वही *q.v.*; Preface.

H. उसका *uskā*, gen. of वह *wah*, *q.v.* Of him, her, or it; chap. i.

ऊ

S. ऊंच *ūnch* / ऊंचा *ūnchā* (S. उच्च : उत् up, चि to gather) adj. Tall, lofty; p. 63, l. 19. 2. Loud; p. 34, l. 16.

S. ऊंट *ūnṭ* / ऊट *ūṭ* (S. उष्ट्र) m. A camel; p. 104, l. 30.

H. ऊत *ūt*, m. One who dies without leaving issue. 2. An unmarried man (*vide* अऊत).

S. ऊतर *ūtar*, m. (*vide* उत्तर).

S. ऊधो *Ūdho*, m. A chief of the Yādavas and friend of Krishn, sent by him to the cowherds; p. 87, l. 10.

S. ऊपर *ūpar* (S. उपरि ; उप up) adv. Up, above; p. 21, l. 11.

S. ऊबट *ūbaṭ* (: S. अव priv. वाट road) adj. Impassable, steep, inaccessible; p. 41, l. 18.

S. ऊर्द्ध पुंड *ūrddh punḍ* (: S. ऊर्द्ध raised, पुण्ड्र line on the forehead, ; पुडि to rub) m. A perpendicular line delineated on the forehead by the Vaishnavas or worshippers of Vishnu; p. 166, l. 17.

S. ऊर्द्ध सांस *ūrddh sāns* (: S. ऊर्द्ध high, सांस breath) m. Deep inspiration, gasp, p. 153, l. 19.

S. ऊषा *Ūshā* (S. ऊषा ; ऊष the dawn) f. The daughter of Bānāsur and wife of Aniruddh; p. 160, l. 1. ऊषा हरन *Ūshā haran*, The rape of Ūshā (*ibid*). 2. The dawn. ऊषा काल *ūshā kāl*, Time of dawn; p. 168, l. 9.

ऋ

S. ऋचा *richā* (S. ऋच ; ऋच् to praise) f. A mystical prayer or hymn of the Vedas; p. 8, l. 23.

S. ऋण *riṇ* / ऋन *rin* (S. ऋण ; ऋ to go) m. Borrowing, debt; p. 55, l. 22.

S. ऋतु *ritu* (S. ऋतु ; ऋ to go) f. A season. The Hindū year is divided into six seasons, each consisting of two months, viz.: वसन्त *vasant*, spring; ग्रीष्म *grīshm*, hot season or summer (June, July); वर्षा *varshā*, the rains (Srāvan and Bhadr, or Bhadr and Aswin); सरद *sarad*, autumn or cool season (October, November); हिम *him*, winter (December, January); शिशिर *shishir*, vernal winter (February, March); p. 33, l. 11.

S. ऋद्धि *riddhi* (S. ऋद्धि ; ऋध् to grow) f. Increase, wealth, prosperity; p. 128, l. 19. ऋद्धि सिद्धि, Increase and success (*ibid*).

S. ऋनिया *riniyā* / ऋनी *rinī* (S. ऋणी ; ऋण *q.v.*) m. A debtor; p. 67, l. 7.

S. ऋषि *rishi* (; S. ऋष् to go—who goes beyond earthly life and wisdom) m. A saint or sanctified sage; chap. i. There are seven orders of Rishis,—the Shrutarshi, Kāndarshi, Paramershi, Maharshi, Rājarshi, Brahmarshi, and Devarshi. श्रुतर्षि, or, he by whom holy writ has been heard, not taught; काण्डर्षि, or, he who teaches a particular Kānda or section of the Vedas; परमर्षि, an order comprising the Muni Bhela and others; महर्षि, an order which includes Vyāsa, the author of the Bhagavat; राजर्षि, the order of military Saints, or that state of sanctification which a man of the

second caste may attain; ब्रह्मर्षि, or, Brahminical Saints, to which order Vashishṭha belongs; देवर्षि, celestial Saints, as Nārada, etc.

s. ऋषीश *Rishīsh* (s. ऋषीश : ऋषि a saint, ईश, lord) m. A chief of the Rishis or Saints.

ए

s. एक *ek* | ऐक *aik* (s. एक : इण to go) num. One. Used very frequently for the indefinite article, as एक समैं *ek samain*, On a time, once; Preface.

s. एक सर *ek sar*, adv. All at once.

s. एकांत *ekānt* (s. एका : एक one, अन्त end) adj. Alone, solitary (place); p. 52, l. 20.

s. एकाएकी *ekāekī* (; s. एक) adv. All at once, suddenly; p. 19, l. 16.

s. एकादशी *ekādashī* (s. एकादशी : एक one, दशन् ten) f. The eleventh day of the lunar fortnight, on which the Hindūs often fast; p. 46, l. 23.

H. एहा *ehā*, Braj for यह this, dem. pron.; p. 92, l. 20.

ऐ

H. ऐंठ *ainṭh*, f. A coil, a twist, a convolution.

s. ऐरावत *airāwat* (s. ऐरावन ; इरावत watery) m. Indr's elephant; p. 45, l. 21. (The etymology refers to the production of this vehicle of Indr, in other words "the lightning" from the clouds).

s. ऐश्वर्य्य *aishwaryya* (s. ऐश्वर्य्य ; ईश्वर lord) m. Grandeur, glory, pomp, wealth, majesty, state.

H. ऐसा *aisā* (: ईस this, सा like) adj. Such, so that, like, resembling; chap. i.

H. ऐहैं *aihain*, Braj for आवें *āwen*, 3 p. pl. aor. of आना *ānā*, to come; p. 132, l. 2.

ओ

H. ओंडा *onḍā*, adj. Deep; p. 61, l. 4.

H. ओंधा *ondhā*, adj. Upside down, overturned; p. 23, l. 9.

H. ओक *ok*, m. A house, a dwelling. 2. An asylum, a place of refuge.

s. ओखली *okhlī* (s. उलूखल) f. A wooden mortar; 24, l. 9.

s. ओघ *ogh* (s. ओघ ; उच्, to collect) m. A multitude, aggregate in general, a collection.

H. ओट *oṭ*, f. Protection, shade, shutter, screen; p. 23, l. 4; पल ओट *pal oṭ*, For an instant. Where पल is thought to be a contraction of पलक *palak*, an eyelid; p. 25, l. 19.

H. ओड़न *oṛan*, m. A shield, a target.

s. ओढ़ना *oṛhnā* (; s. ऊर्णु, to cover) v.a. To put on, to wear; p. 27, l. 9. 2. m. A sheet, mantle.

s. ओढ़नी *oṛhnī* (; ऊर्णु to cover) f. A small sheet, a veil or woman's mantle; p. 54, l. 23.

s. ओदा *odā* (s. आर्द्र ; अर्द् to go) adj. Wet, moist, damp.

s. ओधे *odhe*, *vide* अधिकारी.

H. ओप *op*, f. Beauty, elegance, brightness, polish; p. 150, l. 23.

H. ओर *or*, f. Boundary, limit. 2. Way, side, direction; p. 6, l. 9.

H. ओर्वाला *orwālā* (ओर side, वाला affix, denoting, agent) m. Partizan, party; p. 34, l. 2.

H. ओसीसा *osīsā*, m. The head of a bed or resting place. 2. A pillow, a cushion; p. 152, l. 13.

औ

H. औ *au* and और *aur*, conj. And; Preface.

H. औंगी *auṅgī*, f. Silence, dumbness.

H. औंडा *auṅḍā*, *vide* ओंडा

S. औंधाना *auṅdhānā*, v.a. To turn upside down, to overturn.

S. औगुण *augun* (s. अवगुण : अव prep., implying depreciation, and गुण quality) m. A defect, blemish; chap. i.

S. औघट *aughaṭ* (; s. अव, घट्ट to go) adj. Inaccessible, steep, unfrequented; p. 37, l. 9.

S. औतार *autār* (s. अवतार : अव down, तृ to cross) m. The descent or incarnation of a Deity, but especially applied to the ten incarnations of Vishnu; p. 8, l. 14.

S. औतारी *autārī* (; s. अवतार *q.v.*) adj. Descending as an Avatār; p. 44, l. 26.

S. औदात *audāt* (s. अवदात : अव, दै to cleanse) adj. White.

H. और *aur*, adj. More, other; p. 11, l. 12.

S. औसर *ausar* (s. अवसर : अव a prefix implying off, etc., and सृ to go) m. Time; p. 19, l. 5. Opportunity; chap. i. Leisure.

H. औसेर *auser*, f. anxiety; p. 27, l. 16.

क

S. कंकन *kaṅkan* (s. कङ्कण : कं happily, कण् to sound) m. A bracelet or ornament for the wrist; p. 152, l. 21.

S. कंकर *kaṅkar* (s. कर्कर) m. A nodule of lime stone; p. 53, l. 24.

S. कंघी *kaṅghi* (s. कङ्कती ; ककि to go) f. A comb; p. 95, l. 3.

S. कंचन *kaṅchan* (s. काञ्चन ; कचि to shine) m. Gold. कंचन खचित *kaṅchan khachit*, Inlaid with gold; p. 71, l. 18.

S. कंचु *kaṅchu* / कंचुकी *kaṅchukī* } (s. कंचुक ; कचि to bind) m. A bodice or jacket worn by women; p. 163, l. 21.

S. कंज *kaṅj* (s. कञ्ज : कं water, ज born) m. A lotus.

S. कंठ *kaṅṭh* (s. कण्ठ ; कण् to sound) m. The throat; chap. i. 2. The voice. कंठ से लगा लेना *kaṅṭh se lagā lenā*, To embrace; p. 19, l. 30.

S. कंठला *kaṅṭhlā* / कठ्ला *kaṭhlā* } (: s. कण्ठ throat, माला necklace) m. A necklace formed of gold, silver, etc., put on children to avert evil; p. 21, l. 3.

S. कंत *kaṅt* (s. कान्त ; कम् to desire) m. A husband; p. 17, l. 18. A sweetheart.

S. कंद *kaṅd* (s. कन्द ; कदि to wet, or : कं water, दा to give) m. A bulbous or tuberous root, a root of an esculent sort. आनंद कंद *ānand kaṅd*, Root of Joy, a common epithet of Kṛishṇ; p. 65, l. 18.

S. कंदरा *kandarā* (s. कन्दरा : कं water, दृ to divide) m. An artificial or natural cave, a chasm in a mountain; p. 26, l. 14.

S. कंध *kaṅdh* (s. स्कन्ध : क the head, धा to hold) m. The shoulder.

S. कंप्ना *kampnā* (s. कम्पन ; कपि to tremble) v.n. To tremble; p. 64, l. 23.

S. कंपाना *kampānā* (causal of कांपना *q.v.*) v.a. To shake, to agitate, to move about; p. 63, l. 19.

S. कंवल *kaṅwal* (s. कमल ; कम water, अल which adorns) m. A lotus. कंवल नैन *kaṅwal nain*,

Having eyes like the lotus (an epithet of Kṛishṇ); p. 13, l. 8. कंवल दह *kańwal dah*, m. Very deep water abounding with the lotus.

S. कंस *Kańs* (s. कंस : कम् to desire) m. A king of Mathurā, maternal uncle to Kṛishṇ, and his foe. After vainly endeavouring to destroy Kṛishṇ he was slain by him; chap. i., p. 5.

H. कका *kakā*, A paternal uncle; p. 67, l. 1.

H. कचौरी *kachaurī*, f. A dish made of wheaten bread and pulse; p. 42, l. 25.

S. कचनारि *kachnāri* (s. काञ्चनाल : काञ्चन gold, अल् to be like) f. A tree the flowers of which are a delicate vegetable (Bauhinia variegata); p. 52, l. 2.

S. कछ *kachh* (s. कच्छप ; कच्छ a morass, प who cherishes) m. A tortoise, the second incarnation of Vishṇu; p. 8, l. 13.

S. कछ लंपट *kachh lampaṭ* (: s. कच्छ, a cloth worn to conceal the privities, लंपट false) adj. Incontinent, lewd; p. 57, l. 9.

H. कछु *kachhu* / कछू *kachhū* neut. pron., Any, something, a few, some; p. 13, l. 18. The Hindī form of कुछ.

S. कट *kaṭ* = कटि *q.v.*; p. 163, l. 10.

S. कटक *kaṭak* (s. कटक : कट् to encompass) m. An army; p. 29, l. 15.

S. कट्रा *Kaṭrā* (s. कोट्टवी : कोट crookedness, वा to get) f. The mother of Bānāsur; p. 175, l. 7.

S. कटाच *kaṭāksh* (s. कटाक्ष : कट् to go, अक्षि the eye) m. Ogling, a leer, a side-glance; p. 56, l. 20.

S. कटार *kaṭār*, m. / कटारी *kaṭārī*, f. (s. कट्टार) A dagger; p. 173, l. 5.

S. कटि *kaṭi* (s. कटि the hip : कट् to go) f. The reins, the loins, the waist; p. 73, l. 7. कटि केहरी *kaṭi keharī*, Having a waist elegant as the lion's.

H. कटोरी *kaṭorī*, f. A small bowl or cup of metal; p. 73, l. 19.

S. कठंदर *kaṭhandar* (s. काष्ठोदर : काष्ठ wood, उदर belly, *i.e.*, the belly being as hard as wood) m. The wind dropsy or tympany; p. 138, l. 4.

S. कठिन *kaṭhin* (s. कठिन ; कठ् to be confounded) adj. Difficult; p. 14, l. 1.

S. कठोरता *kaṭhoratā* (s. कठोरता ; कठोर hard, ; कठ् to be distressed) f. Cruelty, relentlessness; p. 53, l. 15.

H. कड़क्ना *kaṛaknā*, v.n. To crack, to crackle; p. 7, l. 6.

H. कड़्खा *kaṛkhā*, m. Encouraging soldiers in battle by pointing out the good effects of steadiness and valour, and extolling the actions of former heroes, etc.: encouraging war songs; p. 119, l. 10.

H. कड़्खैत *kaṛkhait*, m. A kind of bard in Indian armies, whose office it is to encourage the soldiers by the exhortations called कड़्खा; p. 35, l. 9.

S. कड़ा *kaṛā*, m. A ring for the ankles; p. 163, l. 17.

H. कड़ा *kaṛā*, adj. Hard, stiff; p. 60, l. 5. 2. Harsh, obdurate.

H. कड़ी *kaṛī*, f. A ring used as a fetter; p. 204, l. 1.

S. कड़ोड़ *karoṛ* / कड़ोर *karor* / करोड़ *karoṛ* / करोर *karor* (s. कोटि) num. Ten millions; p. 10, l. 1.

H. कढ़ना *kaṛhnā*, v.n. To be extracted, drawn, pulled out; to escape, rise, slip; p. 77, l. 10. 2. To be drawn or painted.

S. कत *kat* (s. कुत्र ; कु for किं what?) adv. Where? whither? 2. (s. कथम् : किम् what) Why?

s. कतर्ना *katarnā* (s. कर्त्तन ; कृत् to cut) v.a. To clip, to cut with scissors, cut out, pare, shred ; p. 73, l. 14.

s. कथा *kathā* (s. कथा ; कथ् to tell) A story, tale. A fiction ; Preface.

s. कदन *kadan* (s. कदन ; कद् to kill) m. Killing, a slayer, a destroyer.

s. कदम (s. कदम्ब) m. A tree—the Nauclea Orientalis ; p. 27, l. 2.

s. कदापि *kadāpi* / कदाचित *kadāchit* } adv. Sometimes, perhaps ; p. 25, l. 3, and p. 55, l. 14.

s. कद्रू *Kadrū* (s. कद्रू ; कभ् to desire) f. The wife of the Saint Kashyapa and mother of the Nāgas, or serpent race inhabiting Pātāla ; p. 32, l. 15.

s. कब *kab* (s. कदा ; किम् what) adv. When ? ; p. 22, l. 7.

s. कबंध *kabandh* (s. कबन्ध : क the head, बध् to lop) v.a. Headless trunk, especially when retaining the powers of action ; p. 119, l. 13.

s. कबि *kabi* / कवि *kawi* } (s. कवि ; कु to sound, to celebrate) m. A poet. कबिन *kabin*, Braj for कबिओं *kabioṅ*, Of poets. Preface.

s. कब्रा *kabrā* (s. कर्बुर ; कब् to tinge, or कर्ब् to go) adj. Grey ; p. 178, l. 24. Dirty white, variegated.

H. कब्हू *kabhū* / कब्हूं *kabhūṅ* / कब्ही *kabhī* } adv. Even, at any time ; p. 9, l. 24. कब्ही नहीं *kabhī nahīṅ*, Never.

s. कन *kan* (s. कण ; कण् to contract) m. Grain, corn. 2. A grain, a minute particle ; p. 178, l. 15.

s. कनक *kanak* (s. कनक ; कन् to shine) m. Gold ; p. 56, l. 9.

s. कन्या *kanyā* (s. कन्या ; कन् to shine) f. A girl not above ten years of age ; p. 15, l. 1. 2. A daughter ; p. 9, l. 3. 3. A virgin. 4. The sign Virgo. कन्या दान *kanyā dān*, Giving a girl in marriage ; p. 9, l. 9, and p. 123, l. 21.

H. कन्हाई *Kanhāī*, m. A Braj name for Krishṇ ; p. 21, l. 25.

H. कन्हैया *Kanhaiyā*, m. A name of Krishṇ ; p. 21, l. 15.

s. कपट *kapaṭ* (s. कपट : क the head, पट a covering) m. adj. Insincere, fraudulent, treacherous. कपट रूप *kapaṭ rūp*, A deceitful form. 2. m. Fraud, deceit ; p. 10, l. 15.

s. कपटी *kapaṭī* (; s. कपट *q.v.*) adj. Insincere, false, deceitful ; p. 49, l. 18.

H. कपड़ों से होनौ *kapṛoṅ se honau*, v.n. To have the menses ; p. 6, l. 6. (*lit.* To be with cloths).

s. कपाट *kapāṭ* (; s. कपाट : क the head or loin, पट् to go) m. A shutter, the leaf of a door.

s. कपार *kapār* / कपाल *kapāl* } (s. कपाल : क the head, पाल what protects) m. The skull, the cranium. 2. The forehead ; p. 83, l. 26. 3. Fate, destiny.

s. कपि *kapi* (s. कपि ; कपि to tremble) m. A monkey ; p. 188, l. 1.

s. कपुत्र *kaputr* / कपूत *kapūt* } (s. कुपुत्र : कु bad, पुत्र son) m. A bad or degenerate son ; p. 7, l. 22.

s. कपूर *kapūr* (s. कर्पूर ; क्लृप् to be able) m. Camphor.

s. कपोत *kapot* (s. कपोत ; कब् to be of various hues) m. A pigeon or dove, especially the spotted-necked dove ; p. 6, l. 8.

s. कपोल *kapol* (s. कपोल ; कपि to quiver) m. The cheek ; p. 58, l. 19. कपोल गेंडुआ *kapol genḍuā*, m. A small pillow of a circular shape for the cheek to rest on ; p. 152, l. 13.

E. कप्तान जान उलियम टेलर् *Kaptān Jān Uliyam Telar,* Captain John William Taylor; Preface.

S. कमंडल *kamaṅḍal* (s. कमण्डलु : क Brahmā or water, मण्ड ornament or essence, ल from ला to get or receive) m. An earthen or wooden water pot, used by the ascetic and religious student.

S. कमल *kamal* = कंवल *q.v.*

S. कमला *Kamalā* (s. कमला : कम water, अल what adorns, or ; कम् to desire) f. A name of Lakshmī, wife of Vishnu ; p. 46, l. 7.

S. कमोदनी *kamodanī* / कमोदिनी *kamodinī* (s. कुमुदिनी : कु the earth, मुद् to be pleased) f. A sort of water-lily—described as expanding its petals during the night and closing them in the day-time (Menyanthus Indica or Cristata) ; p. 168, l. 10.

H. कमोरी *kamorī,* f. A small earthern pot ; p. 23, l. 8.

S. कर् *kar* (s. कर् ; कृञ to do) m. The hand ; p. 13, l. 25. 2. Tribute, tax, toll, fee, impost ; p. 200, l. 18.

S. कर् गह्ना *kar gahnā,* v.a. To take the hand, to espouse ; p: 114, l. 30.

S. करत *karat,* 3 p. pl. fem. pres. indef. of कर्नौ, Hindī form of कर्तीं, respectfully applied to Jasodā. Performs ; p. 18, l. 22.

S. करन *karan* (s. करण ; कृ to do) m. An astrological division of time, of which there are eleven—seven moveable and four fixed ; and two are equal to a lunar day, or the time during which the moon's motion to the sun = 6° ; p. 16, l. 7.

S. करन फूल *karn phūl* (s. कर्ण फूल : कर्ण the ear, फूल flower) m. A kind of ear-ring ; p. 152, l. 20.

S. करनी *karanī* (; कर्ना to do, *q.v.*) adj. f. Making ; p. 172, l. 25.

S. करम *karam* / कर्म *karm* (s. कर्म्मन् ; कृञ to do) m. Action, religious action—as sacrifice, ablution. 2. Fortune, fate, destiny ; chap. i.

S. करयौ *karayau,* 3 p. sin. past indef. of कर्नौ to do ; p. 13, l. 17 (where it is pl. ने being understood with जसोदा) Hindī form for किया, did. made.

S. करवीर् *karavīr* (s. करवीर : कर a root, वीर् to become evident) m. A fragrant plant (Nerium odorum) ; p. 52, l. 3.

H. करारा *karārā,* m. The perpendicular bank of a river, etc. Side, brink, band ; p. 60, l. 9.

S. करियो *kariyo,* 2 p. pl. resp. imperative of कर्ना to do ; used in Hindī for the Hindūstānī कीजीये *kījiye,* Please to make or employ ; p. 12, l. 6.

S. करि हैं *kari haiṅ,* (Braj form of करें *karen,* 1 p. pl. aor. of कर्नौं *karnauṅ,* to make.) We will perform ; p. 81, l. 17.

S. करुना *karunā* (s. करुणा ; कृ to send or cast) f. Tenderness, compassion ; p. 198, l. 1. करुना निधान *karunā nidhān* (a title of Kṛishṇ), Abode of mercy ; p. 79, l. 28.

S. करौं *karauṅ,* 1 p. sin. aor. of कर्नौ (Braj form), I will make ; p. 44, l. 7.

S. कर्कस *karkas* (s. कर्कश ; कृ to injure) adj. Harsh, obdurate ; p. 49, l. 29.

S. कर्ता *kartā* / कर्त्ता *karttā* (s. कर्त्ता ; कृ to do) m. A Maker, author, creator ; p. 7, l. 27. 2. A master. 3. A husband.

S. कर्ताल *kartāl* (s. कर्ताल : कर the hand, ताल musical time) m. A musical instrument, a kind of small cymbal ; p. 184, l. 13. The word may also imply beating time with the hand.

s. कर्तु है *kartu hai*, 3 p. sin. pres. of कर्नौ *karnau*, and the Braj form of कर्ता है *kartā hai*, He is doing; p. 21, l. 20.

s. कर्न *Karn* (s. कर्ण ; कर्ण् to hear) m. The king of Angades, elder brother by the mother's side to the Pāṇḍūs, being the son of Sūrya by Kuntī, before her marriage with Pāṇḍū. He was slain by Arjun; p. 189, l. 23.

s. कर्ना *karnā* (; s. कृ to do) v,a. To do, to make, to form, to perform; p. 2, l. 8. To execute, effect, act, administer. One of the six irregular verbs, making किया *kiyā* in the past part., कीजीये resp. imp.. but in Hindī generally these are regularly formed as करी, करिये; p. 11, l. 2.

s. कर्पूर *karpūr* / कपूर *kapūr* (s. कर्पूर ; कृप् to be able) m. Camphor; p. 152, l. 14, and p. 163, l. 11.

s. कराना *karānā* / करवाना *karwānā* causal of कर्ना *q.v.* To cause to make or do; p. 7, l. 8.

H. करहि *karhi*, 2 p. sin. imp. of कर्नौ *karnau*, to make, a Braj form for कर, make thou. भरोसौ करहि *bharosau karhi*, Place thy confidence; p. 63, l. 7.

करहु *karhu*, (Braj form of करो *karo*, 2 p. pl. imp. of कर्नौं *karnaun*, to make) Make ye; p. 81, l. 16.

s. कल *kal* (s. कल्य ; कल् to count) m. Yesterday; p. 21, l. 24.

s. कल (s कल्य) f. Ease, tranquillity; p. 12, l. 19.

s. कलंक *kalaṅk* (s. कलङ्क : क Brahmā or water, लकि to deface) m. Spot, stain; p. 15, l. 9. Calumny, reproach.

s. कलिंग *Kaliṅg* (*vide* कलिंगा) m. The king of Kaliṅgā, whose teeth were knocked out by Balarām; p. 158, l. 23.

s. कलश स्थापन *kalash sthāpan* / कलस स्थापन *kalas sthāpan* (s. कलस स्थापन : कलस a water-pot, स्थापन् placing) m. An offering of a jar of water made to any Deity: five twigs of the following sacred trees are previously placed in it, viz.:—The Ashwattha (Ficus religiosa); Vata (Ficus Indica); Udumbar (Ficus glomerata); Shamī (Mimosa albida); Amra or Mango; p. 205, l. 15.

s. कलस *kalas* (s. कलश् : क water, लश to labour) m. A water-pot; p. 71, l. 21. 2. A pinnacle, the spire or ornament on the top of a dome; p. 71, l. 19.

s. कलह *kalah* (s. कलह : कल a pleasing sound, ह that destroys) m. Strife, quarrel; p. 156, l. 12.

s. कला *kalā* (s. कला ; कल् to sort or count) f. A digit or $\frac{1}{16}$th of the moon's diameter; p. 107, l. 4. 2. A division of time about eight seconds. 3. A part, a portion. 4. Art, trick.

s. कलि *kali* (s. कलि ; कल् to count) f. A bud, an unblown blossom; p. 163, l. 10.

s. कलिंगा *Kaliṅgā* (s. कलिङ्गा : कलि strife, ग from गम् to go) f. Name of several districts, but especially of the country from Orissa to Madras; p. 157, l. 29.

s. कलियुग *Kaliyug* (: s. कलि the 4th age ; कल् to reckon, and युग age) m. The fourth age of the world according to the Hindūs, the Iron Age or that of vice: its commencement is placed 3,101 years before the Christian era; it is to last 432,000 years, at the end of which the world is be destroyed; chap. i. (See युग.)

s. कलेस *kales* (s. क्लेश ; क्लिश् to suffer or inflict pain)

m. Sickness, pain, trouble, affliction, vexation. 2. Quarrel, contention.

s. कलेऊ *kaleū* (s. कल्याहार : कल्य yesterday, आहार food) m. Cold meat, stale victuals, a luncheon, a breakfast; p. 22, l. 23.

s. कलोल *kalol* (s. कल्लोल ; कल्ल् to sound) f. Play, sport, the frolic of birds or animals in spring; p. 13, l. 3.

s. कल्सी *kalsī* (diminutive of कलस *q.v.*) f. A small pinnacle; p. 71, l. 19.

s. कल्ह *kalh* = कल, Yesterday, *q.v.*; p. 179, l. 5.

s. कल्प तरु *kalpa taru* | कल्प वृक्ष *kalpa vriksh* } (: s. कल्प a resolve or purpose, तरु or वृक्ष a tree) m. A fabulous tree in Indr's heaven, which yields to its possessor whatever is desired of it; p. 147, l. 20, and p. 151, l. 4.

H. कल्मलाना *kalmalānā*, v.n. To fidget, to writhe, to be uneasy; p. 163, l. 9.

s. कल्यान *kalyān* (s. कल्याण : कल्य healthy, अ to be) m. Welfare; p. 49, l. 20.

s. कवच *kavach* (s. कवच ; कु to sound) m. Armour; p. 211, l. 28.

s. कश्यप *Kashyap* (s. कश्यप) m. A Muni, or deified sage, the son of Marīchi, and father of the Gods, dæmons, animals, fishes, reptiles, etc., by the seventeen daughters of Daksha; p. 8, l. 14.

s. कष्ट *kasht* (s. कष्ट ; कष् to hurt) m. Affliction, pain; p. 12, l. 24. Penury.

s. कष्टी *kashtī* (; s. कष्ट *q.v.*) adj. Suffering, afflicted, in want.

H. कसक *kasak*, f. Pain, affliction, irritation; p. 158, l. 18.

H. कसक्ना *kasaknā*, v.n. To rankle; p. 53, l. 24.

s. कस्ना *kasnā* (; s. कृष् to draw) v.a. To tighten, to tie, to gird; p. 73, l. 7.

s. कस्वाना *kaswānā* (caus. of कस्ना *q.v.*) v.a. To cause to be fastened; p. 150, l. 18.

H. कहा *kahā*, inter. pr. What? p. 20, l. 4. Which? how? why?

H. कहां *kahāṅ*, interog. adv. Where? ch. i. कहां से *kahāṅ se*, Whence? कहां तक *kahāṅ tak*, How long?

s. कहाना *kahānā*, causal of कह्ना *q.v.*, To assume the name, to cause to be called; p. 6, l. 24.

s. कहावत *kahāwat* (s. कथावत् ; कथ् to speak) f. A proverb, an adage; p. 165, l. 25.

s. कहाव्ना *kahāwnā* (caus. of कह्ना *q.v.*) v.a. To assume the name; p. 60, l. 17.

s. कहीं *kahīṅ* (s. क्वापि) adv. Somewhere, anywhere, wherever. 2. Perhaps; p. 90, l. 8.

s. कहुं *kahuṅ*, adv. Anywhere; p. 52, l. 2.

s. कहे से *kahe se*, From the telling, at the bidding. The inflected past part. of कह्ना to say, is here used in place of the inf. as a noun with the postpos. से with; Preface.

s. कहै *kahai*, 3 p. sin. aor. of कह्ना (Hindī form of कहे) Says; p. 13, l. 25.

H. कह्ना *kahnā*, v.a. To say, tell, recount; chap. i. Used always with the abl. (*Vide* Gram., p. 74.)

H. का *kā*, A postposition marking the genitive and corresponding to the English "of" but used only when the noun on which the gen. depends is in the masc. sin. nominative; chap. i.

s. का सों *kā soṅ*, Braj form of किस से, With whom; p. 51,, l. 11.

s. कांक्षा *kāṅkshā* (; s. काङ्क्ष् to desire) f. A desire, wish; p. 199, l. 19.

s. कांख *kāṅkh* or काख *kākh* (s. कक्ष) f. The arm-pit; ch. i. p. 4.

s. कांटा *kāṅṭā* (s. कण्टक ; कटि to divide) m. A thorn; p. 53, l. 24.

s. कांधा *kāndhā* (s. स्कन्ध : क the head, धा to hold) m. The shoulder; p. 34, l. 2.

s. कांपना *kāmpnā* (; s. कम्प ; कपि to shake) v.n. To shake, to tremble; chap. i.

s. कांस *kāṅs* (s. काश ; कश् to sound or काश् to shine) m. A species of grass (Saccharum spontaneum); p. 34, l. 10.

s. काग *kāg* (s. काक ; क to sound, or क for कु ill, अक् to go) m. A crow; p. 100, l. 29.

s. काच *kāch* (s. काच ; कच् to shine) m. Glass; p. 83, l. 25.

H. काचा *kāchā*, adj. Unripe, raw. 2. Simple, unknowing. मन काचे *man kāche*, The mentally ignorant; p. 49, l. 4.

s. काछ *kāchh* (s. कच्छ) m. A cloth worn round the hips, passing between the legs and tucked in behind. 2. The upper part of the thigh.

s. काछना *kāchhnā* (; काछ *q.v.*) v.a. To bind on or tie up the काछ *kāchh*, or hip-cloth; p. 13. l. 8.

s. काछनी *kāchhnī*, f. A cloth worn over the काछ *q.v.*; p. 202, l. 14.

s. काज *kāj* (s. कार्य्य ; कृञ to do) m. Business, affair, use. काज आना *kāj ānā*, To be of use, to avail; p. 10, l. 2.

s. काजनि *kājani*, pl. infl. of काज *q.v.*, (governed at p. 35, l. 24, by लिये understood), "for their affairs."

s. काट्ना *kāṭnā* / काट देना *kāṭ denā* (s. कर्त्तन ; कृत् to cut) v.a. to cut; p. 15, l. 8. To pass time; p. 33, l. 2.

काठ *kāṭh* (s. काष्ठ) m. Wood. काठ्हि *kāṭhhi*, acc. sin.; p. 75, l. 18. काठ कबाड़ *kāṭh kabāṛ*, Wooden articles.

H. काढ़ना *kāṛhnā*, v.a. To draw forth; p. 22, l. 24. 2. To draw, to delineate.

s. कातर् *kātar* (s. कातर : का a little or badly, तर् that crosses) adj. Distressed, agitated, confused.

s. कातिक *Kātik* / कार्त्तिक *Kārttik* (s. कार्त्तिक ; कृत्तिका the Pleiades) m. Name of a Hindū month, the full moon of which is near the Pleiades (October-November); p. 29, l. 24.

s. कात्यायन *Kātyāyan*, m. The name of a celebrated sage and lawgiver; chap. i.

s. कादौं *kādauṅ* (s. कर्द्दम) m. Slime, mud, mire; p. 16, l. 15.

H. कान *kān*, f. Shame, modesty. कुल कान *kul kān*, The respect due to one's family; p. 48, l. 17. कान कर्ना *kān karnā*, to be ashamed.

s. कान *kān* (s. कर्ण ; कर्ण् to hear) m. The ear; p. 29, l. 24.

s. काना *kānā* (s. काण) adj. One-eyed, monoculous; p. 49, l. 19.

H. काने *kāne*, Braj for किस ने *kis ne*, Who? p. 103, l. 9.

H. कान्ह *Kānh* / कान्हर् *Kānhar* m. A name of Kṛishṇ; p. 17, l. 20.

s. काम (s. काम ; कम् to desire) m. Desire, wish, inclination; p. 24, l. 3. 2. The God of love, the Indian Cupid. 3. (s. कर्म्म) m. Business.

s. काम्केलि *kāmkeli* (s. काम्केलि : काम love, केलि play) f. Amorous dalliance, coition; p. 6, l. 13.

s. काम्देव *kāmdev* (s. काम्देव : काम love, देव God) m. The Hindū Cupid; p. 124, l 12.

s. काम्धेनु *Kāmdhenu* (: s. काम wish, धेनु cow) f. A cow belonging to Indr, which was of such a nature that whoever possessed it obtained all his wishes; p. 105, l. 21.

s. कामना *kāmanā* (s. कामना ; कम् to desire) f. Wish, desire, inclination; p. 234, l. 2.

s. कामातुर *kāmātur* (s. कामातुर : काम love, desire, आतुर affected) adj. Distracted with love or desire, lustful; p. 48, l. 17.

s. कामिनी *kāminī* (s. कामिनी ; कम् to desire) adj. Impassioned. 2. f. A loving or affectionate woman; p. 35, l. 15.

s. कामरि *kāmari* / कामरी *kāmarī* (s. कम्बल) f. A blanket; p. 72, l. 25.

s. कायक *kāyak* (s. कायिक ; काय the body) adj. bodily, personal.

s. कायर *kāyar* (s. कातर : का a little or badly, तर what crosses) adj. Timid, pusillanimous, coward; p. 41. l. 23.

s. कीर *kīr* (s. कीर : की bad, ईर् to send) m. A parrot; p. 6, l. 8.

s. कारज *kāraj* (s. कार्य्य) m. Business, action, affair, work, profession; chap. i.

s. कारण *kāraṇ* (s. कारण ; कृञ to do or act) m. Cause; chap. i. p. 5. Motive, origin, principle.

s. कारा *kārā* (s. काल) adj. Black (applied to the colour of a cow); p. 29, l. 10. Black, gloomy (applied to a tempest) ; p. 33, l. 4.

s. काल *kāl* (; कल् to reckon) m. Time, season; chap. i. 2. Death; p. 9, l. 13. 3. Famine. 4. adv. (s. कल्य) to-morrow.

s. काला *kālā* (s. काल) Black, of a dark hue, especially dark blue; chap. i.

s. कालिंदी *Kālindī*, f. A daughter of the Sun married to Krishṇ; p. 141, l. 16. The river Yamunā; p. 20, l. 19.

s. कालिंदी भेदन *Kālindī bhedan* (s. कालिन्दी भेदन : कालिन्दी the river Yamunā, भिद् to break) m. Turner of the river Kālindī, or Yamunā—a name of Balarām, elder brother of Krishṇ, who diverted the stream into a new and devious channel marked out by his ploughshare; p. 20, l. 19.

s. काली *Kālī* (s. कालिय ; काल time, death) m. The name of a serpent with one hundred and ten heads, which attacked Krishṇ while bathing in the Yamunā, and was vanquished by him; p. 30, l. 14.

s. कालीदह *Kālīdah* (: s. कालिय the name of a great serpent, द्रह very deep water) m. The name of a whirlpool in the river Yamunā, in which the great serpent Kālī lived; p. 30, l. 10.

s. काल्नेम *Kālnem*, m. The name of a dæmon afterwards called Drumalik, who begat Kans on Pawanrekhā; p. 6, l. 23.

s. काल्यमन *Kālyaman* / काल्यवन *Kālyavan* (s. काल्यवन : काल black, यवन a Yavana) m. An Asur slain by Krishṇ. The name is evidently Kālyavan; and the former reading, though occurring in all the editions, is a mistake; p. 98, l. 1.

s. काशी *Kāshī* / काशी पुरी *Kāshī purī* (s. काशि ; काश to shine) f. The sacred city of Benāres; p. 85, l. 1.

H. काह्न *kahū*, Braj inflec. of कोऊ *koū*, Some; p.

83, l. 20. Where it is for किसी को *kisī ko,* To one, to another.

H. काहे *kāhe* / काहे को *kāhe ko* } (infl. of कहा the Braj form of क्या what?) Why? p. 31, l. 10.

H. काई *kāī,* f. The green scum on the surface of stagnant pools, or the green mould that sticks to walls or pavements; p. 142, l. 15.

H. कि *ki,* conj. That, and, or; chap. i. With the relative pronoun it is often redundant, as कि जिसके सोंहीं *ki jiske sonhīn,* Before whom.

S. किंकिनी *kinkinī* (S. किङ्किणी : किं some, किण an imitative sound) f. A girdle of small bells worn by women as an ornament; p. 152, l. 22.

S. कित *kit* (S. कुत्र ; कु for किं what) adv. Where? whither? p. 51, l. 12.

S. किती *kitī* (S. कति) inter. pr. How much? How great? p. 20, l. 4.

S. कितना *kitnā* (S. कियत) How much? How many? कितने एक *kitne ek,* Some; chap. i.

H. किन *kin,* inter. pr. pl. infl. Who; which? p. 52, l. 5.

S. किन्नर *kinnar* (S. किन्नर : कि what? नर man, *i.e.,* what sort of man,—the Kinnar having a horse's head and a man's body) m. An attendant of Kuver, the God of riches, a celestial musician; p. 8, l. 22.

S. किम (S. किम् ; कै to sound) pron. inter. What? which? how? p. 105, l. 15.

H. किया *kiyā,* past. part. of करना *karnā,* to do. Done, made, performed; Preface.

S. किरन *kiran* (S किरण ; कृ to scatter light) f. A ray of light; p 56, l. 26.

S. किरीट *kirīt* (S. किरीट ; कॄ to scatter pearls) m. crest; p. 238, l. 10

S. किल्कारी *kilkārī* (S किलकिला ; किल् play, sport) f. According to the dictionary, a sound or cry expressing pleasure, but at p. 188, l. 19, Hollings translates किल्कारियं मारना *kilkāriyan mārnā,* "To utter angry cries," and the context proves that the word there means the snarling of a monkey.

S. किवाड़ *kiwāṛ* (S. कपाट : क the wind or head, पट् to go) m. The shutter or fold of a door; p. 14, l. 3, and p. 71, l. 18.

S. किशोर *kishor* (S. किशोर : किम what? used contemptuously, शृ to go) m. A child, a son, a lad in his fifteenth year. नंद किशोर *Nand kishor,* The son of Nand, Nand's boy; p. 39, l. 21.

S. किसान *kisān* (S. कृषिमान ; कृष् to plough) m. A husbandman; p. 119, l. 18.

S. किसू *kisū,* infl. of कौन inter. pr. किसू को *kisū ko,* To any one; p. 19, l. 3.

H. की *kī,* a postposition used with the genitive, but only when the noun on which the genitive depends is feminine.

H. कीच *kīch,* f. Dirt, mire; p. 23, l. 11.

S. कीट *kīṭ* (S. कीट) m. An insect, a worm, a reptile; p. 89, l. 6.

H. कीनी *kīnī,* 3 p. sin. f. perf. of करनौ *karnau,* to make, Made. बस कीनी *bas kīnī,* brought into subjection; Preface.

S. कीरत *kīrat* / कीर्त्ति *kīrtti* } (S. कीर्त्ति ; कृत to celebrate) f. Fame, renown; p. 64, l. 23.

S. कु *ku,* A particle of depreciation prefixed to nouns and implying, 1. Sin, guilt. 2. Reproach, contempt. 3. Diminution, littleness.

S. कुंचकी *kunchakī* (S. कंचुक ; कचि to bind) f. A bodice.

s. कुंज *kuñj* (s. कुञ्ज : कु the earth, ज produced) m. A bower, a place overgrown with creeping plants; p. 33, l. 14.

s. कुंड *kuṇḍ* (s. कुण्ड ; कुडि to preserve) m. A hole in the ground for receiving and preserving consecrated fire. 2. A pool, a well, a spring or basin of water, especially consecrated to some holy purpose or person; p. 61, l. 4.

s. कुंडल *kuṇḍal* (s. कुण्डल ; कुडि to preserve) m. An ear-ring: p. 34, l. 4. A circle, as that of the sun or the halo round it; p. 54, l. 18.

s. कुंडलपुर *Kuṇḍalpur*, m. The city of King Bhīshmak, father of Rukminī, first wife of Krishṇ; p. 106, l. 17.

s. कुंती *Kuntī* (s. कुन्ती : कु bad, अन्त end, *i.e.*, destroying or ending enemies) f. The eldest daughter of Sūrsen, paternal aunt of Krishṇ, wife of Pāṇḍu, and mother of the three elder Pāṇḍava princes by as many Gods; chap. i., p. 5.

H. कुंदन *kundan*, m. Pure gold.

s. कुंभ *kumbh* (s. कुम्भ : कु the earth, उम्भ् to fill) m. A water-pot; p. 192, l. 23.

s. कुंभकरण *Kumbhakaraṇ* (s. कुम्भकर्ण ; कुम्भ the frontal part of an elephant's head, कर्ण ear) m. The younger brother of Rāvan, a gigantic dæmon; p. 8, l. 3.

s. कुंवर *kunwar* (s. कुमार ; कुमार् to play as a child) m. A boy, a son; p. 21, l. 24. 2. The son of a Rājā, a prince.

s. कुंवरि *kunwari* (fem. of कुंवर *q.v.*) f. A virgin; p. 107, l. 26. 2. A princess; p. 168, l. 30.

s. कुच *kuch* (s. कुच ; कुच् to bind or confine) m. A breast, a pap, a bosom; p. 17, l. 17.

s. कुचंदन *kuchandan* / कुच चंदन *kuch chandan* (s. कुचन्दन : कु inferior, चन्दन sandal-wood) m. Red sanders (Pterocarpus santalinus), saffron or log-wood; p. 65, l. 21.

H. कुछ *kuchh*, indef. pr. Any, some, anything whatever, a little; chap. i. कुछ से कुछ होना *kuchh se kuchh honā*, To be entirely changed. कुछ न कुछ *kuchh na kuchh*, Some at least, something or other. कुछ नहीं *kuchh nahīn*, Nothing. कुछ हो *kuchh ho*, Come what may! आपस में कुछ न कहना *āpas men kuchh na kahnā*, Not to interfere with one another; chap. i.

s. कुजात *kujāt* (: कु bad, जात caste) adj. Base-born, low, vile; p. 76, l. 23.

s. कुटिल *kuṭil* (s. कुटिल ; कुट् to be crooked) adj. Crooked, bent, perverse; p. 68, l. 6.

s. कुटुंब *kuṭumb* / कुटुम *kuṭum* (s. कुटुम्ब ; कुटुम्ब् to support a family) m. Kin, family, tribe, relations; chap. i.

s. कुटुमी *kuṭumī* (s. कुटुम्बी ; कुटुम्ब) m. A householder, a *pater-familias*; p. 193, l. 10.

s.H. कुटेव *kuṭev* (: s. कु bad, H. टेव habit) f. Bad habit; p. 121, l. 21.

s. कुठार *kuṭhār* (s. कुठार : कुठ a tree, ऋ to go) m. An axe; p. 222, l. 23.

H. कुढ़ना *kuṛhnā*, v.n. To grieve, to mourn, to lament; p. 67, l. 26.

s. कुतूहल *kutūhal* (s. कुतूहल etym. doubtful) m. Sport, pastime; p. 26, l. 10. Festivity, a show, a spectacle.

s. कुत्ता *kuttā* (s. कुक्कुर ; कुक् to take) m. A dog; p. 14, l. 20.

s. कुदाल *kudāl* (s. कुद्दाल : कु the earth, दल to

divide) m. A kind of hoe or spade; p. 18, l. 14.

s. कुम्बा *kumbā* (s. कुटुम्ब *q.v.*) m. Tribe, cast, family, brotherhood; p. 86, l. 2.

s. कुब्जा *kubjā* / कुब्ड़ा *kubṛā* (s. कुब्ज : कु badly, उब्ज् to be straight) adj. Hump-backed; p. 73. l. 19.

s. कुबलिया *Kubaliyā* (: कु bad, बल strength) m. Name of an elephant belonging to Kans, possessed of the strength of 10,000 elephants, and slain by Kṛishṇ; p. 76, l. 13.

s. कुमत *kumat* (: s. कु bad, मति intellect) adj. Vicious; p. 49, l. 18.

s. कुमति *kumati* (: कु bad, मति mind) adj. Ill-minded, vicious, wicked, ill-disposed. subst. f. Wickedness, foolishness, stupidity, perverseness; chap. i.

s. कुमद *kumad* / कुमुद *kumud* (s. कुमुद् : कु the earth, मुद् to be pleased) m. A white esculent lotus that expands its petals during the night, and closes them in the day-time (Nymphæa Nelumbo); p. 48, l. 9.

s. कुमार *kumār* (s. कुमार ; कुमार् to play as a child) m. A boy; p. 71, l. 25.

H. कुम्हलाना *kumhlānā* / कुम्हलान्ना *kumhlānnā* v.n. To wither, to fade, to droop; p. 48, l. 10. कुम्हलाने *kumhlāne*, Have drooped, 3 p. pl. past tense.

s. कुरूप *kurūp* (s. कुरूप : कु bad, रूप form) adj. Deformed, ugly, ill-favoured; p. 49, l. 18, and p. 114, l. 28.

s. कुरक्षेत्र *Kurkshetr* / कुरुक्षेत्र *Kurukshetr* (s. कुरुक्षेत्र : कुरु the Kuru race, क्षेत्र a field) m. The country round Delhi, which was the scene of the great battle between the Kauravas and Pāṇḍavas; p. 214, l. 23.

s. कुल *kul* (: s. कु the earth, and ल who takes or possesses) m. Family, race, tribe; chap. i. कुल देवी *kul-devī*, Any female deity worshipped in particular by a family through successive generations; p. 124, l. 1.

s. कुल पूज *kul pūj* (: s. कुल family, पूज् to worship) m. The object of worship or of reverence to a family, patron-deity; chap. i., p. 5. Family-priest.

s. कुलवंती *kulawantī* (; s. कुल family *q.v.*) fem. adj. Chaste, of pure and noble descent; p. 49, l. 20.

s. कुलाहल *kulāhal* = कोलाहल *q.v.*; p. 192, l. 17.

s. कुलीन *kulīn* = कुलवान *q.v.*

s. कुलद्रोही *kuldrohī* (: s. कुल family, द्रोही injurer) m. One who brings disgrace or reproach upon his family; p. 222, l. 28.

s. कुल्वान *kulwān* (;s. कुल race) adj. Well-born, of good or noble family, of noble descent; p. 108, l. 9.

s. कुल्हाड़ी *kulhāṛī* (s. कुठार : कुठ a tree, ऋ to go) f. An axe; p. 18, l. 14.

s. कुवेर *Kuver* (s. कुवेर : कु bad, वेर body) m. Kuver, the Indian Plutus, son of Visravas by Iravira, Chief of the Yakshas; God of wealth, and Regent of the North; p. 23, l. 20. The etymology has reference to the deformity of the God, who is supposed to have three legs and but eight teeth.

s. कुशल *kushal* / कुशल क्षेम *kushal kshem* / कुशरात *kusharāt* / कुशलात *kushalāt* / कुस्रात *kusrāt* (s. कुशल : कु the earth, शल् to go) f. Health, happiness, welfare; p. 14, l. 14. Good-fortune; p. 18. l. 12.

कुस्रात occurs p. 66, l. 20, कुशलात at p. 67, l. 1.

s. कुसुंभा *kusumbhā* s. कुसुम्भ ; कुस् to shine) m. The red dye of safflower (Carthamus tinctorius); p. 35, l. 17.

H. कुहराम *kuhrām*, m. Lamentation ; p. 132, l. 18.

s. कुहासा *kuhāsā* (s. कुहेलिका : कु the earth, हेड् to surround) m. A fog, a mist; p. 211, l. 1.

s. कुहुक *kuhuk* (s. कुहूक ; कुह् to astonish) f. The note of the kokil, or Indian cuckoo ; p. 33, l. 15.

s. कुहुकना *kuhuknā* (; कुहुक *q.v.*) v.n. To make the cry of the cuckoo ; p. 33, l. 16.

s. कूकर *kūkar* (s. कुक्कुर ; कुक् to take) m. A dog ; p. 119, l. 16.

H. कूढ़ *kūṛh*, adj. Foolish, stupid, doltish; p. 49, l. 18.

s. कूदाना *kūdānā* (caus. of कूदना *q.v.*) v.a. To cause to leap or bound; p. 173, l. 4.

s. कूप *kūp* (s. कूप ; कु to sound (as frogs croak in a well) m. A well; p. 104, l. 15 and 16.

H. कूर *kūr*, adj. Foolish, doltish ; p. 212, l. 28.

s. कूवेर *Kūver* (; s. कुवेर *q.v.*) m. Kūver, the son of the God of Riches, who, with his brother Nal, was changed into a tree according to a curse pronounced on them by the Muni Nārad. Krishṇ released them and restored them to their original forms ; p. 23, l. 23.

s. कूष्मांड *Kūshbhāṅḍ* (s. कुष्माण्ड ; कु the earth, उष्म heat, अन् to exist) m. Name of the minister of Bānāsur ; p. 164, l. 23. It is also the name of a class of imps attendant on Shiva.

s. कूद्ना *kūdnā* (; s. कूर्द् to play) v.n. To leap; p. 30, l. 21.

s. कृत *krit* (s. कृत ; कृ to do) Done, made, performed ; Preface.

s. कृतघ्नी *kritaghnī* (s. कृतघ्न : कृत what has been done · घ्नी who kills or destroys) adj Ungrateful ; p. 55, l. 10.

s. कृतारथ *kritārath* (s. कृतार्थ : कृत done, अर्थ purpose) m. The granting of a supplication, the fulfilment of a request. 2. adj. Successful, having obtained one's purpose or accomplished one's design ; p. 86, l. 19.

s. कृतब्रमा *Kritbramā*, m. A Yādava who advised Satdhanwā to kill Satrājit ; p. 134, l. 18.

s. कृत्या *Krityā* f. A she-dæmon which issued from the altar erected by Sudaksh ; p. 187, l. 20.

s. कृपन *kripan* (s. कृपण ; कृप् to be able) adj. Miserly, avaricious ; p. 29, l. 75.

s. कृपा *kripā* (s. कृपा ; कृप् to be able) f. Favour, kindness, mercy. कृपा निधान *kripā nidhān*, The abode of mercy ; Preface: कृपा सिंधु *kripā sindhu* Ocean of grace or mercy.

s. कृपाचर्य *Kripācharya* m. One of Duryodhan's chieftains ; p. 205, l. 14.

s. कृपाल *kripāl* (s. कृपालु ; कृपा tenderness) Compassionate, tender ; Preface.

s. कृस्ता *kristā* (s. कृशता ; कृश् to make thin) f. Leanness, spareness, slenderness ; p. 163, l. 10.

s. कृष्ण *Krishṇ* (s. कृष्ण ; कृष् to tinge) Black or dark-blue. Krishṇ, the eighth and most celebrated incarnation of Vishnu. He was the son of Vasudev and Devakī, the sister of Kans, to save him from whose fury he was, when newly-born, conveyed to the house of Nand and Jasodā, who became his foster-parents. He passed his childhood in the forest of Brindāban, in company with his elder brother, (the third Rāma as Balarām, who

was an incarnation of the serpent-king Ananta), destroying many dæmons and monsters, and sporting with the Gopīs or cowherdesses. At last he put the tyrant Kans to death, and kindled the war described in the Mahābhārat. He has been called the Apollo of the Hindūs, and is supposed by Wilford to have lived 1300 years B.C. It is, however, more probable that the whole story of Krishṇ is a corruption of some spurious Gospel. Thus the miraculous conception of Balarām and Krishṇ would represent that of John the Baptist and our Saviour; the slaughter of the infants by Kans, the similar act of cruelty perpetrated by Herod; the flight to Gokul, that to Egypt; the assaults of various dæmons in the forest of Brindāban, the temptation in the wilderness; the destruction of Kans and the installation of a new king in his place, might be supposed to shadow forth the change wrought in the religion and government of the world by our Saviour's advent; while the victory achieved over Death in the cave; the temporary success and final overthrow of Jurāsindhu, the prince of dæmons; and the great sacrifice at which Krishṇ washes the feet of the guests, and at which all are satisfied but he who carried the bag; are too obviously borrowed to require comment.

s. कृष्ण कुंड *Krishṇ kuṅḍ* (; कृष्ण Krishṇ *q.v.*, कुण्ड a pool) m. A pool made by Krishṇ at the foot of Gobardhan, and filled with consecrated water; p. 61, l. 7.

s. कृष्णचंद्र *Krishṇchaṅdr* (: s. कृष्ण Name of the Deity, *q.v.*, चन्द्र *chandr*, the moon) The Moon-like Krishṇ,—a name of Krishṇ.

s. कृष्ण मय *Krishṅ maya* (: s. कृष्ण the Deity so called, मय composed of, or full of) adj. Full of Krishṇ; p. 52, l. 9.

s. कृष्णावतार *Krishṅāvatār* (: s. कृष्ण the Deity so called, अवतार incarnation) m. The incarnation of the God Vishnu in the form of Krishṇ.

s. कृष्णरूप *Krishṇrūp* (: s. कृष्ण *q.v.*, रूप *q.v.*) m. In the form of Krishṇ,—or it may be—dark in blue form; p. 20, 19.

h. के *ke*, A postposition marking the genitive case, and corresponding to the English "of" but used only when the noun on which the genitive depends is masculine, and in the inflexion singular, or in the plural number. Sometimes used for को as पुत्र देवकी के हुआ *putr Devakī ke hūā*, A son was born to Devakī; p. 10, l. 13.

s. केकय *Keky*, m. A country governed by the father of Bhadrā, one of the wives of Krishṇ; p. 145, l. 14.

s. केतिक *ketik*, adj. Some, a few, a little.

s. केला *kelā* (s. कदली; क water, air, दल् to divide) m. A plaintain tree or its fruit (Musa sapientum); p. 50, l. 14.

s. केलि *keli* (s. केलि; किल् to sport) f. Play, sport; p. 50, l. 9. where it is in the ablative governed by a postposition understood.

s. केवल *kewal* (s. केवल; केव् to sprinkle) adv. Only, merely; p. 48, l. 23.

s. केस *kes* (s. केश; क्लिश् to bind) m. The hair of the head; p. 69, l. 20.

s. केसर *kesar* (s. केशर: के on the head, शृ to go) m. Saffron (Crocus sativus); p. 37, l. 16.

s. केसरिया *kesariyā* (s. केसरीय ; केसर *q.v.*) m. Saffron-coloured.

s. केसी *Kesī* (s. केश) m. A dæmon sent by Kans to destroy Krishn in Brindāban, which object he attempted in the shape of a gigantic horse ; p. 61, l 24.

s. केहरी *keharī* (s. केहरी ; केसर a mane) m. A lion ; p. 141, l. 8.

s. कै *kai* (s. कति) inter. pron. How many? 2. Several ; p. 22, l. 22.

H. कै *kai*, disj. conj. Or, either ; p. 10, l. 7. 2. As. देव कै, As a God ; p. 44, l. 5.

s. कै हौं *kai haun*, Braj for करूं *karūn*, I will make, 1 p. sin. aor. (or according to Price—future) of करनौं *karnaun*, to make ; p. 147, l. 11.

s. कैंचली *kainchlī* (s. कंचुक ; कचि to bind or shine) f. The slough or skin of a snake ; p. 163, l. 5.

s. कैलास *kailās* (s. कैलास : कैल pleasure, आस् to abide) m. A mountain placed by the Hindūs among the Himālaya range on the North of the Mānasa lake. It is said to be the residence of Kuver, and the favourite haunt of Shiva ; p. 23, l. 23.

H. कैसौ *kaisau*, pron. adj. How? what sort? p. 44, l. 27.

H. को *ko*, a postposition governing the dative or accusative, and corresponding to the English "to." With the accusative it frequently requires not to be translated, as कथा को किया *kathā ko kiyā*, Rendered the story ; Preface.

H. को *ko*, Braj for कौन inter. pr. Who? which ; what? p. 92, l. 6.

H. कों *kon* / कौं *kaun* } postp. To, for ; p. 28, l. 23.

s. कोक *Kok*, m. Scientia modorum diversorum coeundi a quodam Kok pandit explicata, unde nomen ; p. 85, l .7. 2. The ruddy goose.

s. कोकिल *kokil* (s. कोकिल ; कुक् to seize (the heart) m. The black or Indian cuckoo (Cuculus). The kokil is frequently introduced in Hindū poetry in describing enchanting scenery. Its musical cry is supposed to inspire pleasing and tender emotions. Hence कोकिल बैनी *kokil bainī*, Voiced like the kokil, *i.e.*, melodious, sweet-voiced.

s. कोख *kokh* (s. कुक्षि ; कुषि to extract) f. The womb ; p. 6, l. 21. The abdomen.

s. कोख बंद *kokh band* (: कोख ; s. कुक्षि the womb, बंध ; बंध्या barren) adj. Barren.

s. कोट *kot* (s. कोट्ट ; कुट् to cut or divide) m. A fort, a castle ; p. 71, l. 17.

s. कोठा *kothā* (s. कोष्ठ ; कुष् to issue) m. A house built of burnt bricks. 2. An apartment ; p. 12, story of a house.

s. कोठरी *kothrī* (s. कोष्ठ ; कुष् to issue) f. A room, a chamber ; p. 61, l. 24.

s. कोढ़ *korh* (s. कुष्ठ : कुष् to extract, or : कु bad, स्थ staying) m. Leprosy, of which eighteen kinds are enumerated, seven severe, and eleven of less violence ; p. 138, l. 3.

s. कोढ़ी *korhī* (s. कुष्ठी but ; कोढ़ *q.v.*) adj. Leprous ; p. 49, l. 18.

s. कोना *konā* (s. कोण ; कुण to sound) m. A corner ; p. 167, l. 16.

s. कोप *kop* (s. कोप ; कुप्) to be angry) m. Wrath ; p. 214, l. 2, and p. 222, l. 24.

s. कोपियेगा *kopiyegā*, 2 p. pl. resp. imperative of कोप्ना *q.v.*, Will be pleased to be angry ; p. 15, l. 21.

s. कोपिकै *kopikai*, past conj. part. (Braj form) from कोपना *kopnā*, to rage, *q.v.*, Being enraged; p. 43, l. 22.

s. कोपना *kopnā* (; s. कुप् to be angry) v.n. To be angry, to be wrath, to rage; p. 7, l. 26.

s. कोमल *komal* (s. कोमल ; कम् to desire) adj. Soft; p. 45, l. 12.

s. कोमलता *komaltā* / कोमलताई *komaltāī* (s. कोमलता ; कोमल, soft *q.v.*) f. Softness; p. 163, l. 9.

s. कोयल *koyal* (s. कोकिल ; कुक् to seize the heart—as inspiring pleasing emotions) m. The Indian cuckoo (Cuculus Indicus); p. 33, l. 15.

H. कोर् *kor*, f. Point; p. 163, l. 10. 2. (s. क्रोड) Edge, border; p. 163, l. 20. Margin, side (which according to Hollings, is the meaning in the passage; p. 163, l. 10). 3. (s. कोटि) m. Ten millions.

H. कोरा *korā*, adj. New, unused, fresh; p. 22, l. 18. (Applied chiefly to clothes, earthen vessels, and paper).

s. कोलाहल *kolāhal* (s. कोलाहल : कोल accumulation, हल् to make) m. A confused and mingled sound, a noise made by many, an uproar; p. 35, l. 16.

s. कोस *kos* (s. क्रोश ; क्रुश् to call) m. A measure of distance, 4000 cubits, or, according to some, 8000 cubits. It is generally considered to be two miles, but varies in almost every province of India; p. 18, l. 3.

s. कोई *koī*, indef. pron. Any, any-one, somebody. (Used for indefinite article). Inflec. किसी; chap. i.

s. कोऊ *koū* (s. कोपि), Hindī form of कोई *q.v.*, indef. pron. Any, any-one; p. 27, l. 16.

H. कौ *kau*, Braj for का *kā*, *q.v.*; p. 34, l. 27.

s. कौंता *kauṅtā*, Braj form of कुंती *kuṅtī*, *q.v.*; p. 140, l. 10.

s. कौंला *kauṅlā* / कौला *kaulā* (s. कमला) m. A kind of orange-tree; p. 142, l. 8.

H. कौड़ी *kauṛī* (s. कपर्द्द : क water, पृ nourishing, द from दा to give) f. A small shell used as a coin (Cypræa moneta); p. 16, l. 23. कौड़ी कौड़ी *kauṛī kauṛī*, Every farthing.

s. कौन *kaun* (s. किम्) inter. pron. Who? p. 2, l. 10 and p. 17, l. 5. Which? What? At p. 6, l. 1, occurs कौन रीति से *kaun rīti se*—In what manner?—instead of the more correct किस रीति से *kis rīti se*.

s. कौर *kaur* (s. कवल) m. A mouthful; p. 27, l. 7.

s. कौरव *Kaurav* (s. कौरव ; कुरु *Kuru*, a prince of the lunar race, son of Samvarana by Tapati, sovereign of the north-west of India) m. The Kaurava princes who fought with the Pāṇḍavs; p. 96, l. 21.

s. कौरपंडु *Kaurpaṅḍu* (s. कौरव पाण्डव) m. The Kauravas and the Pāṇḍavas, two families descended from Kuru by their respective fathers—Dhṛitarāshtr and Pāṇḍu; p. 216, l. 8.

s. कौशल *Kaushal* (s. कौशल perhaps the same as कौश, *kanya kubja*) m. A country of which Nagnajit—the father of Satyā, Krishṇ's wife—was king; p. 144, l. 13.

s. कौशिकी *kaushikī*, f. Name of a river; p. 3, l. 24.

s. क्रांति *krāṅti* (s. कान्ति ; कम् to desire, to be desired), f. Splendour, lustre; p. 129, l. 21.

s. क्रिया *kriyā* (s. क्रिया ; कृ to act), f. Deed, an act. 2. A religious act. 3. Obsequies; p. 208, l. 3. क्रिया कर्म्म *kriya karmm*, Performance of obsequies. 4. A verb.

s. क्रीड़ी *krīṛī* (s. क्रीड़ी ; क्रीड़ to play), f. Play,

game, pastime; p. 37, l. 10. जल क्रीड़ी *jal krīṛī,* Sport in the water; (*ibid*).

s. क्रूर *krūr* (s. क्रूर; कृत् to cut) adj. Cruel, pitiless, hard-hearted; p. 68, l. 3.

s. क्रोध *krodh* (; s. क्रुध् to be angry) m. Anger, wrath. क्रोध कर्ना *krodh karnā,* To be angry; p. 3, l. 5.

s. क्रोधी *krodhī* / क्रोध्वान *krodhwān* (s. क्रोधिन्; क्रोध anger) adj. Angry, passionate; p. 58, l. 27.

H. क्या *kyā,* inter. pron. What? adv. How? why? chap. i.

s. क्यारी *kyārī* (s. केदार: क water, दृ to tear or rend) f. A flower-bed, garden-bed; p. 71, l. 14.

H. क्यूं *kyūṅ* / क्यौं *kyauṅ* adv. Why? wherefore? how? p. 31, l. 8.

H. क्यों *kyoṅ,* adv. Why? wherefore? p. 22, l. 6.

H. क्योंकि *kyoṅki* (: क्यों *q.v.* and कि that) conj. Because that; chap. i.

H. क्योंरे *kyoṅre* (: क्यों why, रे voc. part., *q.v.*) adv. How now, sirrah! p. 22, l. 3.

s. क्षत्री *kshatrī* (s. क्षत्रिय; क्षद् to divide or eat) m. A man of the second or military tribe of Hindūs; p. 8, l. 14. 2. adj. Of or belonging to such a man; p. 199, l. 24.

s. क्षन *kshan* (s. क्षण) m. A moment. क्षन भर *kshan bhar,* In a single instant; p. 33, l. 7.

s. क्षमा *kshamā* (s. क्षमा; क्षम् to endure) f. Patience. 2. Pardon; p. 9, l. 18.

s. क्षम्ना *kshamnā* (; s. क्षम् to bear or endure) v.a. To pardon, to forgive.

s. क्षय *kshay* / क्षई *kshaī* (s. क्षय; क्षि to waste) f. Pulmonary disease, consumption; p. 138, l. 3.

s. क्षित *kshit* / क्षिति *kshiti* (s. क्षिति; क्षि to dwell) f. The earth; p. 54, l. 28.

s. क्षीर *kshīr* (s, क्षीर: घस् to eat) m. Milk. क्षीर समुद्र *kshīr samudr,* The ocean of milk, where Nārāyan dwells; p. 8, l. 10.

s. क्षुधा *kshudhā* (s. क्षुधा; क्षुध् to be hungry) f. Hunger; p. 39, l. 14.

s. क्षेत्र *kshetr* (s. क्षेत्र; क्षि to dwell) m. A field; p. 223, l. 3.

s. क्षेम *kshem* (s. क्षेम; क्षि to remove) m. Health, happiness, welfare.

s. क्षौर *kshaur* (s. क्षौर; क्षुर a razor) m. Shaving of the head or beard; p. 204, l. 1.

ख

s. खंजन *khañjan* (s. खञ्जन; खजि to go lamely) m. A wagtail (motacilla alba); p. 163, l. 6.

s. खंड *khaṅḍ* (s. खण्ड; खन् to tear) m. A piece, a part, a fragment, a portion, a division or region; chap. i, p. 5. 2. A chapter or section. 3. Coarse sugar.

s. खंभ *khambh* (s. स्तंभ; ष्टभि to stop) m. A post or pillar; p. 50, l. 14.

H. खंम *khaṅm,* m. The arm; p. 126, l. 4.

H. खंम ठोक्ना *khaṅm ṭhoknā,* v.a. To strike the hands against the arms, preparatory to wrestling, as a challenge. 2. To challenge as wrestlers do; p. 127, l. 4.

s. खग *khag* (s. खग: ख the sky, ग that goes) m. A bird.

s. खचित *khachit* (s. खचित; खच् to fasten) adj. Set as a jewel, inlaid. कंचन खचित *kañchan khachit,* Inlaid with gold; p. 71, l. 18.

S. खज्लाहट *khajlāhaṭ* (; s. खर्ज्) f. Itching ; p. 161. l. 8.

H. खटक्ना *khaṭaknā*, v.n. To rankle as a thorn ; p. 62, l. 1. To pierce. 2. To be apprehensive.

H. खट्का *khaṭkā*, f. Doubt, apprehension ; p. 62, l. 12. 2. Sound of footsteps.

S. खट छप्पर *khaṭ chhappar* (: s. खट्वा a bedstead, H. छप्पर a roof) m. A bedstead with curtains ; p. 111, l. 23.

H. खटपट *khaṭpaṭ*, f. Wrangling, contention. 2. Clashing of weapons ; p. 202, l. 23.

S. खटीक *khaṭīk* (s. खट्टिक ; खट्ट् to screen) m. A hunter, one who lives by killing and selling game ; p. 66, l. 22.

H. खट्टा *khaṭṭā*, adj. Acid, sour ; p. 27, l. 10.

H. खड़क *khaṛak* / खरक *kharak* } f. A cowhouse or cowshed ; p. 29, l. 4.

S. खड़ग *khaṛag* (s. खड्ग ; खड् to tear or rend) m. A sword ; p. 9, l. 15.

H. खड़ा *khaṛā*, Erect, upright, steep, standing. 2. Genuine, pure when it = खरा *kharā*. खड़ी बोली *khaṛī bolī*, The true genuine language, *i.e.*, the pure Hindī ; Preface. खड़ा होना *khaṛā honā*, To stand still, to stop ; p. 2, l. 13.

S. खड़ी *khaṛī* (s. खटिका ; खट् to seek or wish) f. Chalk ; p. 26, l. 9.

S. खन *khan* (*vide* खंड) m. A division of a house, a story, a flight of rooms.

S. खप्पर *khappar* (s. खप्पर) m. The skull, the cranium ; p. 100, l. 29. 2. An earthen cup used by Jogīs.

H. खरा *kharā*, adj. Pure, prime, best sort, genuine. 2. Honest, candid, sincere.

H. खर्बर *kharbar* / खल्बल *khalbal* } f. Sound of a horse's feet in galloping. 2. Hurry, bustle, commotion, tumult ; p. 214, l. 1.

H. खसोट्ना *khasoṭnā*, v.a. To pull, to pluck, to pull the hair, to scratch, to tear ; p. 222, l. 19.

S. खांडा *khāṅḍā* (s. खड्ग ; खड् to tear or rend) m. A straight double-edged sword ; p. 79, l, 7.

S. खांसी *khāṅsī* (s. कास ; कास् to sound) f. A cough, catarrh ; p. 138, l. 4.

S. खाज *khāj* (s. खर्ज्जू ; खर्जि to give pain) f. The itch ; p. 138, l. 3.

H. खाजा *khājā*, m. Name of a sweetmeat like piecrust ; p. 42, l. 25.

S. खा जाना *khā jānā*, intens. v. To eat up ; p. 32, l. 3.

S. खान *khān* / खानि *khānī* } (s. खनि ; खन् to dig) f. A mine : p. 107, l. 14.

S. खाना *khānā* (; s. खाद् to eat) v.a. To eat ; p. 11, l. 8. 2. To embezzle. 3. To get, suffer, take. 4. m. Food, dinner.

S. खानेवाली *khānewālī* (: खाने infl. infin. of खाना to eat, वाली fem. of वाला denoting the agent) f. An eater ; p. 18, l. 18.

S. खाई *khāī* (s. खात ; खन् to dig) f. A ditch, a moat ; p. 71, l. 17.

S. खिजाना *khijānā* / खिज्लाना *khijlānā* } (act. of खीजना *q.v.*) v.a. To disturb, vex. 2. v.n. To be vexed, to be ashamed and irritated ; p. 60, l. 20.

S. खिर्नी *khirnī* (s. क्षीरिका ; क्षीर milk) f. Name of a fruit and tree (Mimusops kauki) ; p. 142, l. 8.

S. खिलाना *khilānā* (caus. of खाना) *q.v.*) To give to eat, to feed ; p. 9, l. 8. 2. (caus. of खेल्ना *q.v.*) v.a. To cause to play ; p. 65, l. 2.

s. खिलौना *khilonā* } (; खेल play) m. A plaything,
खिलौना *khilaunā* } a toy; p. 21, l. 3.

H. खिलना *khilnā*, v.n. To blow, as a flower; p. 71, l. 11. To be pleased, to be delighted.

H. खिसलना *khisalnā*, v.n. To slip; p. 56, l. 14.

H. खिसाय रहना *khisāe rahnā*, v.n. To draw back, to be abashed; p. 163, l. 6.

s. खीजना *khījnā* (: s. खिद् to pain) v.n. To be angry, to be vexed.

H खुंसाना *khuṅsānā* (; खुंस to spite) v.n. To be angry; p. 7, l. 28.

s. खुदाना *khudvānā* (caus. of खोदना *q.v.*) v.a. To cause to be dug; p. 61, l. 4.

s. खुर *khur* (s. खुर : खुर् to cut) A hoof; p. 16, l. 10.

H. खुर्मा *khurmā* (perhaps ; خرما a date) m. A sweetmeat (perhaps made of dates); p. 42, l. 24.

s. खुलना *khulnā* (; perhaps खुद् to divide) v.n. To be open, to be unloosed; p. 14, l. 2, and p. 26, l. 16.

s. खूंदना *khūṅdnā* (: s. चुद् to bruise) v.a. To tear up the earth with the feet, to dig up; p. 29, l. 24.

s. खेत *khet* (s. चेत्र ; चि to dwell) m. A field, a field of battle; p. 35, l. 11.

s. खेती *khetī* (; खेत a field, *q.v.*) f. Agriculture; p. 42, l. 2. 1. A crop; p. 148, l. 30.

s. खेद (s. खेद ; खिद् to be distressed) m. Sorrow, grief, affliction; p. 80, l. 20.

s. खेल *khel* (s. खेला ; खेल् to shake) m. Play, sport; p. 65, l. 3.

s. खेलना *khelnā* (; s. खेल् to shake or move) v.n. To play, to sport; p. 3, l. 25.

H. खेंचना *kheṅchnā* } v.a. To pull, draw. खेंच
खैंचना *khaiṅchnā* } लेना *kheṅch lenā*, to draw, pull towards; p. 6, l. 15.

H. खोज *khoj*, m. Search; p. 81, l. 22. 2. Trace, mark; p. 130, l. 3.

H. खोजना *khojnā*, v.a. To search; p. 11, l. 10, and p. 52, l. 12.

s. खोदना *khodnā* = खूंदना *q.v.*; p. 60, l. 9.

s. खोना *khonā* (; चै to waste) v.a. To lose or cause to be lost, to waste, to destroy; p. 44, l. 7. खो देना *kho denā*, To destroy; p. 6. l. 18.

s. खोलना *kholnā* (caus. of खुलना *q.v.*) v.a. To unloose, to open; p. 22, l. 10.

H. खोह *khoh*, m.f. A cavern, an abyss, a pit; p. 7, l. 17.

H. खौड़ *khaur*, f. The mark which Hindūs make on their foreheads with sandal-wood, saffron, etc.; p. 117, l. 16.

H. खौलना *khaulnā*, v.n. To boil, to be agitated with heat; p. 30, l. 14.

s. ख्याल *khyāl* (s. खेला) m. Sport, fun, pastime; p. 77, l. 11.

ग

s. गंगा *Gaṅgā* (s. गङ्गा ; गम् to go) f. The river Ganges, held sacred by the Hindūs; so that those who die on its banks are certain of beatitude; p. 4, l. 22.

s. गंगाजमुनी *gaṅgājamunī* (perhaps : गंगा the Ganges, जमुना the Yamunā) f. A kind of ear-ring. 2. White and black trappings for horses, bullocks, etc.; p. 150, l. 22. (Perhaps so called from the different colours of the streams.)

s. गंगाधर *Gaṅgādhar* (s. गङ्गाधर : गङ्गा the Ganges, धर who possesses or receives) m. Ganges-

Receiver—a name of Shiva, because the Ganges first alighted on his head, and was lost for some time in his matted hair; p. 233, l. 16.

s. गंठ जोड़ा बांधना *ganth jorā bāndhnā* (s. ग्रन्थिबन्धन : ग्रन्थि knot, बन्धन tying) v.a. To tie together the skirts of the mantles of the bride and bridegroom—a ceremony performed at marriage by the Purohit or officiating priest. It was also performed at the Rājsū yagya, or royal sacrifice performed by Yudhishthir; p. 205, l. 13.

s. गंडा *gaṅḍā* (s. गण्ड a knot) m. A ring, a circle, a kind of horse-collar; p. 173, l. 3. 2. A knotted string tied round the neck of children, etc, as a preservative against evil; p. 21, l. 2.

H. गंडासा *gaṅḍāsā*, m. A pole-axe; p. 173, l. 6.

s. गंडे पट्टेवाले *gaṅḍe paṭṭewāle* (sc. घोड़े) (: गंडे pl. of गंड a horse-collar, पट्टे pl. of पट्टा belt, वाले pl. of वाला implying possession) pl. m. Possessing or wearing collars and girths; p. 173, l. 3.

s. गंधर्व *Gaṅdharb* / गंधर्ब्ब *Gaṅdharbb* / गंधर्व *Gaṅdharv* (s. गन्धर्ब्ब : गन्ध small, अर्ब्ब् to go) m. A celestial musician of a class inhabiting Indr's heaven, and forming the orchestra at the banquet of the principal deities; p. 8, l. 22.

s. गंधारी *Gaṅdhārī* (s. गान्धारी ; गान्धार the country of Ḳandahār) f. The daughter of the king of Ḳandahār, wife of Dhṛitarāshtr and mother of Duryodhan; p. 134, l. 11.

s. गंभीर *gambhīr* (s. गम्भीर ; गम् to go) adj. Deep, as water, but applied metaphorically to sound, etc.; p. 153, l. 28.

H. गंवाना *gaṅwānā*, v.a. To lose, throw away, waste, consume; p. 12, l. 23.

s. गंवार *gaṅwār* (; गांव a village) m. A villager, a rustic (used opprobiously), a boor; p. 74, l. 19.

s. गंवारि *gaṅwāri* (fem. of गंवार *q.v.*) f. A female villager; p. 92, l. 27.

s. गज *gaj* (s. गज ; गज् to sound) m. An elephant; p. 12, l. 20. गज गमनी *gaj-gamanī* or गज गौनी *gaj-gaunī*, Moving stately like an elephant—an epithet applied to the graceful gait of a female; p. 117, l. 18, and p. 141, l. 8.

s. गजगाह *gajgāh* (: s. गज an elephant, गाह perhaps for गहना ornament) m. A string composed of tassels made of the hair of a kind of ox, suspended from an elephant's neck as an ornament, or tied to a horse's ears extending on both sides to the saddle; p. 173, l. 3.

s. गजपति *gajpati* (s. गजपति : गज an elephant, पति lord) m. The master or rider of an elephant, a warrior fighting on an elephant; p. 98, l. 23.

s. गजपाल *gajpāl* (: s. गज elephant, पाल who keeps) m. An elephant-driver or keeper; p. 76, l. 14.

s. गजमनि *gajmani* / गजमन्हि *gajmanhi* (: गज elephant, मणि gem) f. A pearl supposed to be found in the head of an elephant; p. 173, l. 29.

s. गजमोती *gajmotī* (; s. गज an elephant, मुक्तिका a pearl) f. An elephant-pearl. It is a popular idea of the Hindūs that the finest pearls are to be found in the heads of elephants; p. 117, l. 1.

H. गजरा *gajrā*, m. An ornament for the wrist, a bracelet.

s. गठड़ी *gaṭhṛī* (s. ग्रन्थि : ग्रंथ् to connect) f. A bundle; p. 37, l. 13.

H. गड़गूदड़ *gaṛgūdaṛ*, m. Old tattered clothes, rags and tatters; p. 105, l 16.

s. **गड़ना** *garnā* (; s. **गर्त्त** a hole) v.n. To be driven into the earth, as a stake, etc. ; to enter, to penetrate, to be buried.

H. **गढ़** *garh*, m. A fort or castle ; p. 99, l. 12.

s. **गढ़ा** *garhā* (s. **गर्त्त** ; **गृ** to drop) m. A hole, a pit ; p. 18, l. 14.

H. **गढ़ी** *garhī*, f. A small fort or castle ; p. 173, l. 13.

H. **गढ़ना** *garhnā*, v.n. To be made or fashioned ; p. 36, l. 10. v.a. To form by hammering, to malleate.

s. **गणेशाय** *Ganeshāya* (dat. of **गणेश** *Ganesh* : **गण** a troop of deities attendant on Shiva, and **ईश** lord) The deity of wisdom and remover of obstacles, who is accordingly invoked at the commencement of all undertakings. Preface.

s. **गत** *gat* / **गति** *gati* (s. **गति** ; **गम्** to go) f. Motion, procedure, march, pace, gait. 2. State, condition ; p. 7, l. 1. 3. Funeral rites. **गति करना** *gati karnā*, To perform funeral rites ; p. 80, l. 5. 4. Salvation ; p. 15, l. 9.

s. **गदा** *gadā* (s. **गदा**) f. A club, the mace of Vishnu ; p. 13, l. 9.

s. **गदाधर** *Gadādhar* (s. **गदाधर** : **गदा** a mace, **धर** who holds) m. Mace-holder. A title of Vishnu or Krishn, who is represented at Gaya holding that weapon ; p. 137, l. 27.

H. **गद्दी** *gaddī* / **गादी** *gādī* f. A cushion, pad, or anything stuffed. 2. A seat. 3. A royal throne ; p. 81, l. 14.

s. **गधा** *gadhā* (s. **गर्द्दभ** ; **गर्द्** to sound) m. An ass ; p. 29, l. 20.

s. **गन** *gan* (s. **गण** ; **गण्** to count) m. Inferior deities considered as attendants on Shiva, Varuna and the other principal divinities ; p. 47, l. 11. They are under the especial superintendence of Ganesh. 2. A troop, a flock, a multitude.

s. **गन्ना** *gannā* (s. **गणन** ; **गण्** to count) v.a. To count, to number ; p. 162, l. 3.

s. **गमन** *gaman* (s. **गमन** ; **गम्** to go) m. Going.

s. **गया** *Gayā* (s. **गया** ; **गै** to sing) f. A city in Bahār still so called and a place of pilgrimage, the capital of the Saint of that name. It was made holy by Vishnu on account of the piety of Gayā, the Rājarshi, or by reason of Gayā, the Asura, who was here overwhelmed by the Gods with rocks. Sacrifices should be offered at Gayā once, at least, in the life of every Hindū, to his progenitors ; p. 137, l. 25.

s. **गयाली** *Gayālī* (s. **गयालय** : **गया** the city Gayā, **आलय** abode) m. A class of Gayā Brāhmans who assist pilgrims in performing their devotions at Gayā ; p. 137, l. 26.

s. **गये** *gaye*, 3 p. pl. past tense irreg. of **जाना** *jānā*, to go, *q.v.* They went ; p. 2, l. 7.

s. **गरज्ना** *garajnā* (; s. **गर्ज्** to give a grumbling sound) v.n. To bellow, to roar, to thunder ; p. 7, l. 6.

s. **गरा** *garā*, m. Throat, neck. (Braj form of **गला** *q.v.*) ; p. 51, l. 7.

s. **गरुड़** *Garur* (s. **गरुड** : **गरुत्** a wing, **डी** to fly) m. The bird and vehicle of Vishnu. He is generally represented as a being between a man and a bird, and considered as sovereign of the feathered race ; p. 30, l. 17.

s. **गर्ग** *Garg* (s. **गर्ग** ; **गृ** to sprinkle) m. One of the ten principal Munis or Saints. 2. The family-priest of Vasudev ; p. 20, l. 1

S. गर्जन *garjan* (S. गर्जन ; गर्ज् to grumble or roar) m. Bellowing, roaring. 2. Thunder.

H. गर्ना *garnā*, v.n. To be joined or arranged together, to be tied or knotted together: p. 27, l. 8. To wear anything knotted together; p. 43, l. 5.

S. गर्ब *garb* / गर्व *garv* m. Pride; p. 8, l. 3.

S. गर्भ *garbh* (S. गर्भ ; गृ to drop, or गॄ to swallow) m. A fœtus or embryo, pregnancy; chap. i., p. 5.

S. गर्भ्वती *garbhwatī* (; S. गर्भ *q.v.*) adj. Pregnant; p. 16, l. 26.

S. गल *gal* (S. गल ; गल् to eat, or गॄ to swallow) m. The throat, the neck. गलबहियां *galbahiyāṅ*, pl. of गलबही *galbahī* (: गल neck, बाहु arm) f. Throwing the arms round the neck; p. 23, l. 25.

S. गला *galā* (S. गल) m. The neck; p. 3, l. 16.

H. गली *galī*, f. A narrow lane or gully; p. 11, l. 10.

S. गलना *galnā* (S. गल् to ooze) v.n, To melt, to dissolve, to incur dissolution; p. 2, l. 7.

S. गवन *gawan* (S. गमन ; गम् to go) m. Going, moving; p. 183, l. 28.

E. गवरनर जनरल *Gavarnar janaral*, The English words Governor-General. Preface.

H. गहिवे *gahiwe*, inflec. inf. of गह्ना to seize, A Braj form. गहिवे कौं भई *gahiwe kauṅ bhaī*, I was on the point of seizing; p. 164, l. 15.

H. गह्ना *gahnā* / गाह्ना *gāhnā* v.a. To inquire, to search, to lay hold of, to seize; p. 37, l. 24.

H. गह्ना *gahnā*, m. Ornaments; p. 26, l. 9. Jewels.

S. गांठ्ना *gāṅṭhnā* (S. ग्रन्थन ; ग्रन्थ् to connect) v.a. To knot, to tie or gather up into a knot; p. 145, l. 1.

H. गांडा *gāṅḍā*, m. Sugar-cane; p. 74, l. 22.

S. गांडीव *Gāṅḍiv* (S. गाण्डीव ; गाण्डि what affects the cheek) m. The bow of Arjun; p. 142, l. 28.

S. गाग्री *gagrī* (S. गर्गरी ; गर्ग an imitative sound) f. A water vessel, a guglet; p. 90, l. 1.

S. गाज्ना *gājnā* (; S. गर्ज् to grumble) v.n. To make a hollow roaring sound, to thunder; p. 36. l. 9.

S. गाड़ा *gāṛā* (S. गंत्री ; गम् to go) m. A cart, a carriage; p. 16, l. 22.

S. गाड़्ना *gāṛnā* (S. गर्त्त a hole ; गॄ to drop) v.a. To infix; p. 110, l. 7. To fasten in the ground, to bury, to inter; d. 18, l. 14.

S. गात *gāt* (S. गात्र ; गम् to go) m. The body; p. 57, l. 11.

S. गादिन्का *Gādinkā*, f. Name of the daughter of the king of Kāshī, wife of Suphalak, and mother of Akrūr; p. 138, l. 28.

S. गाना *gānā* (; S. गै to sing) v.a. To sing; p. 16, l. 13. To rehearse; chap. i., p. 5.

S. गाम *gām* / गांव *gāṅw* (S. ग्राम ; गम् to go) m. A village, a hamlet, abode; p. 11, l. 10, and p. 165, l. 21.

S. गारि *gāri* = गाली *q.v.*, A Braj form; p. 187, l. 28.

S. गारी *gārī* (S. गालि ; गल् (in the causal form) to cause to drop) f. Abuse.

S. गायक *gāyak* (S. गायक ; गै to sing) m. A singer; p. 16, l. 13.

S. गाली *gālī* (S. गालि a curse ; गल् to cause to drop) f. Abuse, p. 144, l. 6.

S. गाहक *gāhak* (S. ग्राहक ; ग्रह् to take) m. A chapman, a purchaser.

H. गाह्ना *gāhna*, v.a., To calk, thrash, tread. 2. To inquire, to search diligently. गाहि गाहि *gāhi gāhi*, past. part., Having searched. Preface.

H. गाउं *gāuṅ*, The Hindī form of गांव *q.v.*; p. 17, l. 15.

S. गाय *gāe* (S. गौः) f. A cow; p. 2, l. 9.

H. गिड़गिड़ाना *giṛgiṛānā*, v.a. To beseech, to implore; p. 3, l. 6.

S. गिद्ध *giddh* } गीध *gīdh* } (S. गृध्र; गृध् to desire) m. A vulture; p. 100, l. 29.

S. गिन्ती *gintī* (S. गणित; गण् to count) f. Counting, reckoning; p. 10, l. 21. Number; p. 55, l. 12.

S. गिन्वाना *ginwānā* (caus. of गिन्ना *q.v.*) v.a. To cause to count; p. 10, l. 20.

S. गिरधर *girdhar* } गिरिधारी *giridhārī* } (: S. गिरि hill, धर or धारी who sustains) m. Mountain-holder or supporter, a name of Kṛishṇ, from his supporting the mountain Gobardhan on his finger to shelter the cowherds; p. 194, l. 3.

H. गिराना *girānā* (caus. of गिर्ना *q.v.*) v.a. To cause to fall, to cast down, to overthrow; p. 34, l. 7.

S. गिर *gir* } गिरि *giri* } (S. गिरि) m. A hill or mountain. गिरि धारन कर्ना *giri dhāran karnā*, To uphold a mountain; p. 8, l. 13.

S. गिरिजा *Girijā* (S. गिरिजा: गिरि mountain, जा born) f. A name of the goddess Pārvatī, who is said to be the daughter of the Himālaya mountain—mountain-born; p. 162, l. 18.

S. गिरि राज *Giri rāj* (: S. गिरि mountain, राज king) m. Mountain-king,—a name of the hill Gobardhan; p. 43, l. 7: and also of Kṛishṇ.

H. गिर्गिट *girgiṭ*, m. A lizard; p. 178, l. 17. 2. A chameleon.

H. गिर्ना *girnā*, v.n. To fall, to drop, to sink, to tumble down; p. 7, l. 6.

E. गिल्बर्ट लार्ड मिंटो *Gilbarṭ Lārḍ Minṭo*, Gilbert, Lord Minto; Preface.

S. गीत *gīt* (S. गीत; गॄ to sing) f. A song, singing; p. 19, l. 2. 2. A name often applied to books, as the Shiva-Gītā, Bhāgavad-Gītā; which last is often called "Gītā" only.

H. गीदड़ *gīdaṛ*, m. A jackal; p. 100, l. 29.

S. गुंज *guṅj* (S. गुञ्ज; गुजि to sound) f. The seed of the *Abrus precatorius*, or the shrub itself. गुंज हार *guṅj hār*, A necklace of the Gunjā seed; p. 164, l. 2.

H. गुंजर्ना *guṅjarnā*, v.n. To roar as a wild beast; p. 14, l. 5.

S. गुजराती *Gujarātī*, A native of Gujarāt; Preface.

S. गुण *guṇ* } गुन *gun* } (S. गुण; गुण् to address or advise) m. A quality or attribute in general (but especially, of excellence). 2. A property of all created things; three are particularized—the Satwa, Raja, and Tama, or principles of truth or existence, passion or fondness, and darkness or ignorance. 3. A string or rope. 4. A favour or kindness; p. 55, l. 5. गुन निधान *gun nidhān*, Receptacle of good qualities; Preface. गुन कर्ना *gun karnā*, To benefit. गुन का पल्टा देना *gun kā palṭā denā*, To repay a benefit. गुन छांड्ना *gun chhāṅḍnā*, To pass over a person's good qualities. गुन मान्ना *gun mānnā*, To acknowledge a favour; p. 196, l. 12.

S. गुणी *guṇī* } गुनी *gunī* } (S. गुणी; गुण skill) adj. Possessed of any quality or art—virtuous, skilful, dextrous. 2. (H.) m. One who charms snakes, a sorcerer; p. 18, l. 5.

H. गुद्दा *guddā*, m. A bough, a branch; p. 176, l. 14.

s. गुनियन *guniyan* / गुन्वान *gunwān* (possessed of गुन *q.v.*) Virtuous talented; Preface.

s. गुन्खान *gunkhān* (: गुन *q.v.*, खान a mine) m. Mine of excellence; Preface.

s. h. गुन्गाहक *gungāhak* (: गुन *q.v.*, and गाहक a taker or purchaser) m. A discerner of merit, a patron of learning; Preface.

s. गुप्ती *guptī* (; s. गुप्त hidden ; गुप् to defend) f. A hidden sword, a swordstick; p. 173, l. 6.

s. गुफा *guphā* (गुहा ; गुह् to conceal) f. A cave; p. 12, l. 18.

s. गुराई *gurāī* (; s. गोर fair) f. Fairness, whiteness; p. 163, l. 11.

s. गुरु *guru* (s. गुरु ; गॄ to speak) m. A spiritual parent from whom the youth receives the initiatory *mantra* or prayer, and who conducts the ceremonies necessary at various seasons of infancy and youth, up to the period of investiture with the characteristic thread; this person may be the natural parent or religious preceptor. 2 A religious teacher, one who explains the Law and religion to his pupil. A spiritual pastor; p. 6, l. 18.

s. गुरु भाई *guru bhāī* (: s. गुरु spiritual preceptor, भाई brother) m. One who has been taught by the same spiritual preceptor, a fellow-disciple; p. 217, l. 17.

s. गुरु मुख होना *guru mukh honā* (: s. गुरु spiritual preceptor, मुख mouth, होना to be) v.n. To receive from a Guru the initiatory *mantra* or mystical prayer peculiar to the deity adopted for worship in particular, and who is thence called the *ishṭa devata* or chosen God. To become a scholar.

p. गुलाब *gulāb* (: p. گل rose, آب water) m. Rose-water; p. 115, l. 27. (p. گلاب) m. A rose-tree; p. 163, l. 9.

h. गुलाल *gulāl*, m. A farinaceous powder dyed red, which the Hindūs throw at each other during the Holī.

s. गुलाई *gulāī* (s. गोलता ; गोल round) f. Roundness, rotundity; p. 163, l. 9.

s. गुहनौं *guhnauṅ* / गूथना *gūthnā* (; s. गुम्फ to tie) v.a. To thread, to string. 2. To plait, to braid; p. 52, l. 17.

s. गू *gū* / गूह *gūh* (s. गूथ fœces, ordure ; गू to void by stool) f. Ordure; p. 188, l. 11.

s. गूंजना *gūṅjnā* (s. गुञ्जन buzzing ; गुजि to sound) v.n. To resound, to hum; p. 33, l. 15. To buzz.

h. गूंझा *gūṅjhā*, A sort of sweetmeat; p. 42, l. 25.

s. गूजर *Gūjar* (s. गुर्ज्जर) m. Name of an inferior caste among Hindūs, so denominated as being originally from Gujarāt.

h. गूजरी *gūjrī*, f. An ornament worn on the wrists or the feet; p. 163, l. 17.

s. गृह *grih* (s. गृह ; गृह् to receive) m. A house. गृह काज *grih kāj*, Household business; p. 48, l. 18.

s. गृहस्थ *grihasth* (s. गृहस्थ : गृह house, स्थ who stays) m. A householder, a man of the second class, who, after finishing his studies and being invested with the sacred thread, performs the duties of the master of a house and father of a family; p. 239, l. 29.

s. गृहस्थाश्रम *grihasthāshram* / ग्रहस्थाश्रम *grahasthāshram* (s. गृहस्थाश्रम : गृहस्थ a householder, आश्रम an order or religious state) m.

The profession or condition of a householder or married man; p. 122, l. 15.

s. गेंद *gend* (s. गेण्ड; गा to go) f. A ball (to play with); p. 30, l. 13. गेंद तड़ी *gend taṛī*, (तड़ी; तड़, an imitative sound) f. A game at ball; p. 30, l. 13.

s. गेंडा *gendā* (s. गण्ड; गम् to go) m. A rhinoceros; p. 141, l. 2.

s. गेरू *gerū* (s. गैरिक; गिरि a mountain) m. Red earth, ochre, ruddle; p. 26, l. 9.

s. गेह *geh* / ग्रेह *greh* (s. गेह; ग a name of Ganesh, ईह to desire, that deity being generally invoked on laying the foundations of a house) m. A house; p. 11, l. 22.

s. गेहु *gehu*, Braj form of गेह, *q.v.*; p. 70, l. 16.

s. गैया *gaiyā* (s. गौः; गम् to go) f. A cow; p. 34, l. 12.

H. गैल *gail*, f. A road.

s. गोकुल *Gokul* (s. गोकुल : गो a cow, कुल assemblage) m. A village and district on the Yamunā, where Nand resided and Krishṇ passed his childhood; p. 6, l. 2.

H. गोड़ *goṛ*, m. The leg, the foot; p 18, l. 14.

H. गोद *god*, f. The lap; p. 13, l. 22. गोद पसार्ना *god pasārnā*, To ask, to beg; p. 121, l. 11. गोद लेना *god lenā*, To adopt.

s. गोप *gop* (s. गोप : गो a cow, प who preserves) m. A cowherd, a herdsman; p. 8, l. 23.

s. गोपाल *Gopāl* / गोपालक *Gopālak* (s. गोपाल : गो the earth or a cow, पाल who preserves) m. Cow-keeper, a name of Krishṇ; p. 139, l. 6.

s. गोपिन *gopin*, abl. of गोपी *gopī*, a cowherdess (Braj form), for गोपियों. गोपिन सहित *gopin sahit*, With the cowherdesses; p. 48, l. 2.

s. गोपी *gopī* (fem. of गोप *q.v.*) f. A cowherdess; p. 8, l. 24.

s. गोपीनाथ *gopīnāth* (: s. गोपी *q.v.*, नाथ *q.v.*) m. Lord of cowherdesses, a title of Krishṇ; p. 16, l. 9.

s. गोबर *gobar* (s. गोमय; गो a cow) m. Cow-dung; p. 60, l. 7.

s. गोवर्धन *Gobardhan* / गोवर्धन *Govardhan* (s. गोवर्द्धन : गो a cow, वर्द्धन increasing, pasturing cattle) m. A celebrated hill in Brindāban, it was upheld by Krishṇ on one finger, to shelter the cowherds from a storm excited by Indr as a test of Krishṇ's divinity; p. 41, l. 1.

s. गोबिंद *Gobind* / गोविंद *Govind* (s. गोविन्द : गो language, here the language of the Vedas especially, विन्द who knows; विद् to know, or from गो heaven, a cow, विद् to obtain, one by whom heaven is obtained, or who obtains it by protecting kine). A very common name of Krishṇ, first given him by Indr after his defending the inhabitants of Braj from the rain of that deity by upholding the mountain Gobardhan; p. 46, l. 14.

s. गोम्ती *Gomtī* (s. गोम्ती : गो a cow or water) f. A river in Oude; p. 181, l. 10.

s. गोरस *goras* (: गो a cow, रस juice) m. Milk, butter-milk, curdled milk; p. 19, l. 10.

s. गोरा *gorā* (s. गौर) adj. White, p. 29, l. 10.

s. गोवना *gowanā* (; s. गोपन concealing; गुप to hide) v.a. To conceal, to hide, p. 239, l. 18. (Or perhaps, here—to call out mournfully—as Hollings translates it, from गोना to sing).

s. गौ *gau* (s. गो) f. A cow; p. 4, l. 16.

s. गौतम *Gautam*, m. Name of a mountain to which Kṛishṇ and Balarām fled from Jurāsindhu; p. 105, l. 12.

s. गौर *Gaur*, गौरा *Gaurā*, गौरी *Gāurī*, गवरी *Gawarī* (s. गौर) f. A name of the goddess Pārvatī (lit. virgin); p. 37, l. 4.

s. ग्रह *grah* (s. गृह; गृह् to receive) m. A house, a dwelling. 2. (s. ग्रह; ग्रह् to take) m. A planet; p. 125, l. 6.

s. ग्रहन *grahan* (s. ग्रहण; ग्रह् to take) m. An eclipse; p. 221, l. 4. 2. Seizing, taking.

s. ग्रह स्थान *grah sthān*, ग्रह स्थापन *grah sthāpan* (: ग्रह planet, स्थान place, or स्थापन placing) m. Invoking the presence of the nine planets; p. 205, l. 15.

s. ग्राह *grāh* (s. ग्राह; ग्रह् to take) m. A shark, or —according to some—the Gangetic alligator.

s. ग्रीवा *grībā* (s. ग्रीवा; गॄ to swallow) f. The neck; p. 53, l. 22.

s. ग्रीषम *grīsham*, ग्रीष्म *grīshm* (s. ग्रीष्म; ग्रस् to take) m. The name of the fourth of the six seasons from the 15th of Baisākh to the 15th of Ashāṛh (June-July). Summer; p. 33, l. 12.

s. ग्यारह *gyārah* (s. एकादशन्) num. Eleven; p. 105, l. 12.

s. ग्वाल *gwāl* (s. गोपाल *q.v.*) f. A cowherd; p. 16, l. 13.

s. ग्वालनि *gwālani* (; s. ग्वाल *q.v.*) f. A cowherdess.

H. ग्वेंडा *gweṅḍā*, ग्वैंडा *gwaiṅḍā* m. Suburb, vicinage; p. 88, l. 5. 2. adv. Near.

घ

s. घंटाली *ghaṅṭālī* (; s. घण्टा a bell) f. A small bell; p. 43, l. 18.

H. घट *ghaṭ*, m. The body; p. 25, l. 28.

s. घटा *ghaṭā* (s. घटा) f. The gathering of clouds; p. 29, l. 12. Cloudiness; a cloud.

H. घटाटोप *ghaṭāṭop*, m. A covering of a pālkī or carriage; p. 150, l. 23.

H. घटना *ghaṭnā*, v.n. To abate, to decrease; p. 67, l. 30.

s. घड़ा *ghaṛā* (s. घट) m. A water-pot; p. 188, l. 24.

H. घड़ियाल *ghaṛiyāl*, m. A crocodile; p. 176, l. 15.

s. घड़ी *ghaṛī* (s. घटिका) f. The space of twenty-four minutes; p. 12, l. 22.

s. घन *ghan* (s. घन; हन् to strike or be struck) m. gathering of the clouds, clouds; p. 34, l. 9.

s. घन श्याम *ghan shyām* (: घन clouds, *q.v.*, श्याम dark blue, *q.v.*) adj. Of the dark blue hue of clouds—an epithet of Kṛishṇ; p. 34, l. 9.

s. घना *ghanā* (s. घन; हन् to strike) adj. Solid, thick, dense; p. 6, l. 7. Confused, numerous, many.

s. घन तन बरन *ghan tan baran* (: s. घन clouds, body, वर्ण colour) adj. Whose body is of the hue of clouds—an epithet of Kṛishṇ.

s. घन्घोर *ghanghor* (: s. घन cloud, घोर frightful) adj. Loud-sounding; p. 169, l. 22. 2. m. Thunder, any loud noise.

H. घब्राना *ghabrānā*, v.n. To be confused, to be confounded or perplexed, to lose one's presence of mind; p. 7, l. 3.

H. घमंड *ghamaṅḍ*, m. Pride, haughtiness, insolence; p. 3, l. 15.

S. घर *ghar* (S. ग्रह) m. A house or habitation; p. 3, l. 9.

S. घरी *gharī* (S. घटिका; घटी a clock) f. An hour, or rather the space of twenty-four minutes. 2. (H.) A fold, a plait. घरी बनाना *gharī banānā*, To fold up; p. 72, l. 23.

S. घर्बार *gharbār* (; घर a house, *q.v.*) m. Family, household goods.

S. घर्वाला *gharwālā* (: घर house, वाला sign of the agent) m. A person dwelling in the same house with another, inmates of a house; p. 57, l. 5.

S. घसीट्ना *ghasīṭnā* (; घृष् to rub) v.a. To trail, to drag; p. 24, l. 10.

S. घस्ना *ghasnā* / घिस्ना *ghisnā* (S. घर्षण; घृष् to grind) v.a. To rub; p. p. 112, l. 20.

H. घह्राना *ghahrānā*, v.n. To thunder; p. 142, l. 14. (met.) to roar; p. 118, l. 10.

H. घाघ्रा *ghāghrā*, m. A petticoat; p. 152, l. 18.

S. घाट *ghāṭ* (S. घट्ट) m. A landing place, a quay, a ferry, pass, bathing-place on a river side; p. 37, l. 9. 2. (H.) Want, abatement, deficiency.

H. घात *ghāt*, f. Aim, snare, ambuscade; p. 25, l. 27. घात ताक्ना *ghāt tāknā*, To watch an opportunity. घात लगाना *ghāt lagānā*, To lay a snare; p. 25, l. 29.

S. घातक *ghātak* (; S. हन् to kill) m. A murderer, a maimer, an enemy.

S. घातुक *ghātuk* (घातुक; हन् to kill) adj. Mischievous, injurious, murderous, cruel.

S. घाम *ghām* (S. घर्म; घृ to sprinkle) f. Heat, sunshine; p. 36, l. 16.

H. घायल *ghāyal*, adj. Wounded; p. 119, l. 12.

H. घाल्ना *ghālnā*, v.a To desolate, to ruin. 2. To thrust in, to throw; p. 148, l. 14.

H. घाव *ghāv*, m. A wound; p. 100, l. 27.

H. घिर्ना *ghirnā*, v.n. To be surrounded or enclosed. 2. To gather (as the clouds); p. 34, l. 8.

S. घिस्ना *ghisnā* (; S. घृष् to grind) v.a. To rub; p. 73, l. 22.

S. घी *ghī* (S. घृत; घृ to sprinkle) m. Butter clarified by boiling and straining; p. 105, l. 17.

H. घुंघ्ची *ghuṅghchī* / घूंघ्ची *ghūṅghchī* f. A small red and black seed (Abrus precatorius).

H. घुट्ना *ghuṭnā*, m. The knee, घुट्नों (*sc.* पर) चल्ना *ghuṭnoṅ chalnā*, To crawl about on the knees as a child; p. 21, l. 3.

S. घुड्चढ़ा *ghuṛchaṛhā* (: S. घुड् contracted from घोड़ा for घोटक, चढ़्ना to mount) m. A horseman; p. 114, l. 15.

H. घुड्बहल *ghuṛbahal* (: घुड् contraction of घोड़ा; S. घोटक a horse, H. बहल a two-wheeled car for riding in, not for baggage) f. A car for riding in drawn by horses; p. 150, l. 17.

S. घुन *ghun* (S. घुण; घुण् to turn round) m. An insect destructive to wood, meal, grain, and flour. A weevil; p. 75, l. 18.

S. घुमाना *ghumānā* (causal of घूम्ना *q.v.*) v.a. To swing round; p. 77, l. 2.

H. घुरक्ना *ghuraknā*, v.a. To browbeat, to frown at, to reprimand, to menace, to try to intimidate; p. 188, l. 19.

H. घूंघरू *ghūṅghrū*, m. An ornament for the ancles, with bells attached to it; p. 43, l. 18.

S. घूंघट *ghūṅghaṭ* (S. जवनिका; जवनी a screen) f.

A veil, the act of veiling; p. 95, l. 5. घूंघट कर्ना *ghūṅghaṭ karnā*, To veil.

H. घूंसा *ghūṅsā* / घूसा *ghūsā* m. A blow of the fist; p. 34, l. 7, and p. 64, l. 11.

S. घूम्घुमाला *ghūmghumālā*, adj. Loose (as a robe), full; p. 152, l. 18.

S. घूम्ना *ghūmnā* (; s. घूर्ण् to roll) v.n. To go round, to turn, to roll, to wheel.

H. घेर् *gher*, m. Circuit, circumference; p. 163, l. 20. 2. adj. Round, surrounding, enclosing. 3. Loose (as a robe).

H. घेर्ना *ghernā*, v.n. To surround; p. 11, l. 8. घेर् लेना *gher lenā*, To collect; p. 26, l. 6.

H. घेवर् *ghewar*, f. A kind of sweetmeat; p. 42, l. 24.

H. घोंट्ना *ghoṅṭnā*, v.a. To strangle; p. 7, l. 18, and p. 65, l. 11.

S. घोड़ा *ghoṛā* (s. घोटक; घुट् to spurn (the ground) m. A horse; p. 9, l. 10.

S. घोर् *ghor* (s. घोर; घुर् to be frightful) adj. Frightful, horrible. 2. Profound; p. 28, l. 2. घोर् निद्रा *ghor nidrā*, A deep sleep; (*ibid*).

H. घोल्ना *gholnā*, v.a. To mix with a liquid, to dissolve; p. 96, l. 19.

च

S. चंचल *chañchal* (s. चञ्चल : चल् to go (repeated) adj. Trembling, tremulous. 2. Restless, wanton, playful; p. 68, l. 8.

S. चंचलाई *chañchalāī* (s. चञ्चलता ; चञ्चल *q.v.*) f. Restlessness, playfulness; p. 163, l. 6. 2. Perishableness.

S. चंडाल *chaṅḍāl* (s. चण्डाल : चण्ड angry, अल able) m. A man of the lowest mixed tribe, born of a Sūdr father and Brāhmanī mother; p. 200, l. 13. (Met.) A wretch; p. 6, l. 17.

H. चंडोल *chaṅḍol*, m. A sort of sedan; p. 150, l. 18.

S. चंद् *chaṅd* / चंद्र *chandr* (s. चन्द् ; चदि to shine) m. The moon. चंद् मुख *chaṅd mukh*, or चंद् मुखी *chaṅd mukhī*, Moon-faced, having a face beautiful as the moon; p. 13, l. 8. चंद्र बदनी *chaṅdr badanī*, Moon-faced.

S. चंदन *chaṅdan* (s. चन्दन ; चदि to gladden) m. The sandal tree or its wood (Sirium myrtifolium); p. 37. l. 4.

S. चंदेरी *Chaṅderī*, f. A country of which Sisupāl was king; p. 108, l. 13, and p. 153, l. 4.

S. चंद्र कला *chaṅdr kalā* (: s. चन्द्र the moon, कला a degree) f. A digit, or $\frac{1}{16}$th of the moon's diameter; p. 107, l. 4.

S. चंद्र बंसी *chaṅdr baṅsī* (s. चंद्र वंशी : चन्द्र the moon, चदि to shine, वंश race) adj. Descended from the moon. 2. A race of Kshatriyas who claim descent from the moon.

S. चंद्रमा *chaṅdrmā* (s. चन्द्रमा : चन्द्र camphor, मा to mete) m. The moon. So called as rendering all objects white like camphor; p. 25, l. 12.

S. चंद्रहार् *chaṅdrahār* (s. चन्द्रहार : चन्द्र the moon, हार् a necklace) m. A necklace composed of circular pieces of gold and silver in shape resembling the moon; p. 152, l. 20.

S. चंद्रिका *chaṅdrikā* (s. चन्द्रिका ; चन्द्र the moon) f. Moonlight, moonbeams.

S. चंपक *champak* / चंपा *champā* (s. चम्पक ; चपि to shine) m. A tree bearing a fragrant yellow flower (Michelia Champaca); p. 52, l. 3. चंपक

बर्नी *champak barnī*, Of the colour of the champā flower, *i e.*, gold-coloured (epithet of a beauty); p. 107, l. 7.

s. चंवर *chaṅwar* (s. चमर or चामर the Yak or Bos grunniens) m. The tail of the Yak, used to whisk off flies, and which is so used in the presence and for the comfort of royal persons and other great dignitaries; p. 81, l. 25.

s. चकित *chakit* (s. चकित ; चक् to repel) adj. Astonished; p. 141, l. 9.

s. चकोर *chakor* (s. चकोर ; चक् to be satisfied, *i.e.*, with the moonbeams on which this bird is said to subsist) m. The Bartavelle or Greek partridge; said to be enamoured of the full moon and to feed on its rays (Perdix rufa); p. 48, l. 9.

s. चक्र *chakr*, m. A lucky mark in the hand, the possessor of which gets four pieces of corn for every one he gives away; p. 209, l. 2. 2. (s. चक्र ; कृ to do or make, or चक् to repel) m. A discus or quoit, a circular missile weapon, and one of the emblems of Vishnu; p. 69, l. 12.

s. चक्रपाणि *Chakrpāṇi* (s चक्रपाणि : चक्र the quoit. पाणि the hand) m. Quoit-holder, a name of Vishnu; p. 233, l. 15.

s. चक्रित *chakrit* (s. चकित ; चक् to repel) adj. Timid, frightened. 2. Astonished; p. 143, l. 2.

s. चकवा *chakwā* (s. चक्रवाक : चक्र an imitative sound, वाक् speech) m. The ruddy goose (Anas casarca); p. 239, l. 17.

s. चकवी *chakwī* / चकई *chakaī* (s. चक्रवाकी : चक्र an imitative sound, वाक् speech) f. The female of the चकवा *chakwā*, or ruddy goose (Anas casarca); p. 48, l. 10.

s. चख *chakh* (s. चक्षुस ; चक्ष् to speak) m. The eye.

H. चचा *chachā*, m. Father's brother, paternal uncle; p. 69, l. 2.

H. चचोर्ना *chachornā*, v.a. To suck, particularly a dry substance from which nothing can be obtained, but p. 104, l. 13 रुधिर चचोर्ना *rudhir chachornā*, To suck blood.

H. चट *chaṭ*, adv. Quickly; p. 14, l. 13.

H. चटक *chaṭak*, f. Glitter, splendour; p. 53. l. 22. 2. adj. Intelligent, quick.

H. चटक्ना *chaṭaknā*, v.n. To crackle, as wood in the fire; p. 142, l. 10. To crack. 2. To split.

H. चट्काना *chaṭkānā* (caus. of चटक्ना *chaṭaknā*) v.a. To snap the fingers in rejoicing; p. 45, l. 13. To crack.

H. चट्कीला *chaṭkīlā*, adj. Glittering, splendid.

H. चट्वाना *chaṭwānā* (caus. of चाट्ना *q.v.*) v.a. To cause to lick or be licked; p. 201, l. 17.

s. चट्साल *chaṭsāl* (: s. चटु a boy, शाला house) m. A school, an academy; p. 240, l. 2.

H. चड़्चड़ाना *chaṛchaṛānā*, v.n. To crack, to creak; p. 19, l. 8.

H. चढ़ाना *chaṛhānā* (caus. of चढ़्ना *q.v.*) v.a. To cause to ascend; p. 7, l. 3. 2. To string a bow; p. 74, l. 21. 3. To present or offer to a deity; p. 37, l. 5.

H. चढ़्ना *chaṛhnā*, v.n. To ascend, mount, advance, attack, embark, board, rise, climb, soar, swell, spread, ride, to be strung (a bow), to be braced (a drum), to be offered (an oblation). Preface.

s. चतुर *chatur* (s. चतुर ; चत् to ask) adj. Cunning, sly; p. 68, l. 8. Shrewd, knowing.

s. चतुराई *chaturāī* (; s. चतुर sly, *q.v.*) f. Slyness.

Cleverness. चतुराई कर *chaturāī kar*, Archly; p. 78, l. 1.

s. चतुर्थ *chaturth* (s. चतुर्थ ; चतुर् four) num. Fourth.

s. चतुर्दशी *chaturdashī* (s. चतुर्दशी : चतुर् four, दशन् ten) f. The fourteenth day of the moon's age.

s. चतुर्भुज मिश्र *Chaturbhuj Mishr*, A Brāhman who translated the 10th chapter of the Shrī Bhāgavat Purāna into Braj-bhākhā. चतुर्भुज signifies "four-armed" and is a title of Vishnu, and मिश्र signifies "an elephant" and is added to proper names as a title, in the same way as सिंह *sinh*, "lion," is assumed by Rājputs; Preface. 2. Title of Vishnu "the four-armed;" p. 13, l. 9. 3. Four-armed; p. 28, l. 5.

s. चपल *chapal* (s. चपल ; चप् to go) adj. Tremulous; p. 115, l. 30. 2. Wanton, careless, volatile.

s. चपला *chapalā* (s. चपला ; चप् to go) f. Lightning.

H. चप्ना *chapnā*, v.n. To submit, to stoop, to be abashed; p. 163, l. 12. 2. To be crushed or squeezed.

s. चबाना *chabānā* (s. चर्वण ; चर्व् to chew) v.a. To chew, to bite; p. 61, l. 21.

H. चमक *chamak*, f. Glitter, flash; p. 35, l. 9.

H. चमक्ना *chamaknā*, v.n. To glitter, to flash; p. 34, l. 5.

H. चम्चमाना *chamchamānā*, v.n. To sparkle, to shine, to glitter; p. 152, l. 18.

s. चर *char* (s. चर ; चर् to go) adj. Moveable, animate, an animated being; p. 54, l. 6.

s. चरच *charach* (s. चर्चा) f. Fragrant unguents or perfumes; p. 233, l. 17.

s. चरच्ना *charachnā* (; s. चरचा cleaning the person with fragrant unguents) v.a. To anoint the body with sandal and other perfumes; p. 74, l. 2.

s. चरण *charaṇ* (s. चरण ; चर् to go) m. A foot; Preface.

s. चरन चिन्ह *charan chinh* (: s. चरन foot, चिन्ह point) m. Marks of feet. Hindū deities are supposed to have certain marks on the soles of their feet attesting their divinity. Thus Kṛishṇ has the lotus, barley, flag and elephant-goad; p. 52, l. 10.

s. चरनामृत *charanāmṛit* (s. चरणामृत : चरण foot, अमृत nectar, ambrosia : अ not, मृ to die) m. The water with which an Idol's or a Brāhman's feet have been washed; p. 20, l. 8.

s. चरनोदक *charanodak* (s. चरणोदक : चरण foot, उदक water) m. The water with which an Idol's or a Brāhman's feet have been washed (*vide* चरनामृत); p. 177, l. 21.

s. चराना *charānā* / चरावना *charāwnā* (s. चारण ; चर् to go, caus. of चर्ना *q.v.*) v.a. To cause to graze; p. 25, l. 17.

s. चरित *charit* / चरित्र *charitr* (s. चरित्र ; चर् to go) m. Nature, disposition, conduct, behaviour, actions, exploits; p. 28, l. 15.

H. चरुआ *charuā*, m. A large pot; p. 21, l. 18.

s. चर्चा *charchā* (s. चर्चा ; चर्च् to read) f. Recapitulation, mention; p. 12, l. 11.

s. चर्ना *charnā* (; s. चर् to go) v.n. To graze; p. 26, l. 9.

H. चर्परा *charparā*, adj. Acrid, hot (as pepper). 2. Smart in conversation.

s. चर्म *charm* (s. चर्मन ; चर् to obstruct) m. A skin or hide; p. 173, l. 26.

S. चलित्तर *chalittar* = S. चरित्र *q.v.*

S. चलना *chalnā* (S. चल्) To go, move, proceed. To pass (as coin). चला जाना *chalā jānā*, To depart. चला आना *chalā ānā*, To advance; p. 2, l. 9.

S. चहुंचक्क *chahunchakk* (S. चतुश्चक्र : चतुर four, चक्र a realm or region) adv. On all sides.

S. चहुंचक्र *chahunchakr* (: चहु four, चक्र district) All around, in the four directions; Preface.

S. चहुंदिस *chahundis* (S. चतुर्दिश : चतुर four, दिश region) adv. All around, on all sides.

H. चहचहाना *chahchahānā*, v.n. To sing, to whistle, to warble as birds.

S. चहुं *chahun* (S. चतुर) adj. Four. चहुं ओर *chahun or*, On four sides, *i.e.*, on all sides; p. 71, l. 17.

S. चांद *chānd* (S. चन्द्र ; चदि to shine) m, The moon; p. 34, l. 4.

S. चांदना *chāndnā* (S. चान्द्री ; चन्द्र the moon) m. Light.

S. चांदनी *chāndnī* (S. चान्द्री ; चन्द्र the moon) f. The moonlight; p. 49, l. 22. 2. A white cloth spread over a carpet. 3. Anything white or shining. 4. adj. Moonlight. चांदनी रात *chāndnī rāt*, A moonlight night; p. 59, l. 1.

H. चांवल *chānwal* / चावल *chāwal* m. Rice cleaned of the husk and not dressed; p. 218, l. 2.

S. चाखना *chākhnā* (; S. चष to taste) v.a. To taste, to relish, to taste; p. 27, l. 10. चाख्यौ *chākhyau*, 2 p. sin. past tense, A Braj form. You have tasted; p. 83, l. 25.

H. चाचा *chāchā*, m. Paternal uncle, father's brother; p. 9, l. 2.

S. चातक *chātak* (S. चातक ; चत् to beg, *i.e.*, begging water from the clouds, whence alone this bird is thought to drink) m. A bird (the Cuculus Melanoleucos); p. 35, l. 16.

S. चातुर *chātur* (S. चतुर् *q.v.*) adj. Clever, sly, shrewd, wise; p. 87, l. 11.

S. चानूर *Chānūr*, m. A dæmon, minister of Kans, and a mighty wrestler; p. 61, l. 28.

S. चाम *chām* (S. चर्म्म) m. Hide, skin, leather; p. 18, l. 15.

S. चार *chār* (S. चत्वारः) num. Four; p. 3, l. 3.

S. चारण *chāraṇ* / चारन *chāran* (S. चारण ; चर् to cause to go, to diffuse (fame) m. A bard, a panegyrist; p. 13, l. 6.

S. चारु *chāru* (S. चारु ; चर् to go) adj. Beautiful, elegant, agreeable, pleasing; p. 18, l. 22.

S. चारुमति *Chārumati* (S: चारुमति : चारु good, मति intellect) f. The daughter of Rukm, who was at first betrothed to Kritbranmā, but afterwards married Pradyumn, and by him had Aniruddh; p. 156, l. 2.

H. चाय *chāe* / चाव *chāw* m. Eagerness, pleasure; p. 126, l. 10. Taste.

S. चाल *chāl* (; S. चल् to go) f. Gait, custom, habit, conduct. चाल निकालना *chāl nikālnā*, To begin a new line of conduct; p. 22, l. 25.

H. चाहिये *chāhiye*, properly the respectful imperative of चाह्ना *chāhnā*, to wish (*q.v.*), but used impersonally in the sense of "it is necessary," "one must;" p. 6, l. 12.

H. चाहीता *chāhītā* (; H. चाह्ना to love) adj. Agreeable, beloved. 2. m. A sweetheart; p. 166, l. 4.

H. चाह्ना *chāhnā*, v.a., To love, to like, to desire, to need, to require; p. 6, l. 12. 2. To see. चाह

रहनौं *chāh rahnaun*, v.a. and n., To watch, to observe; p. 68, l. 16.

s. चिंघाड़ *chinghāṛ* / चिंघाड़ा *chinghāṛā* (s. चित्कार : चित imitative sound, कार making) m. A scream, screech (especially of the elephant); p. 77, l. 2.

s. चिंघाड़ना *chinghāṛnā* (; s. चित्कार : चित् imitative sound, कार making) v.n. To scream, to utter a shrill cry (applied properly to the elephant); p. 14, l. 19.

s. चिंता *chintā* (चिन्ता ; चिंति to reflect) f. Thought, consideration, reflection, anxiety; p. 6, l. 21.

s. चिंतित *chintit* (s. चिन्तित ; चिन्ता thought ; चिंति to think) adj. Thoughtful, reflective, anxious.

H. चिट्ठी *chiṭṭhī* / चीठी *chīṭhī* f. A note, a letter; p. 111, l. 17.

s. चिकनाई *chikanāī* (s. चिक्कणता ; चिक्कण unctuous) f. Glossiness, polish; p. 163, l. 11.

H. चिड़िया *chiṛiyā*, f. A small bird; p. 37, l. 15. 2. A sparrow.

s. चिड़ी *chiṛī* (s. चटक ; चट् to break) f. A sparrow; p. 168, l. 10.

s. चित *chit* / चित्त *chitt* (s. चित् ; चित् to remember) m. Mind, soul, life, heart, memory; Preface. एक चित होना *ek chit honā*, To be of one mind, to be steadfast; p. 5, l. 10.

s. चिता *chitā* (s. चिता ; चि to collect) f. A funeral pile; p. 200, l. 23.

s. चिताना *chitānā* (s. चतन ; चित् to know) v.a. To caution, to warn or apprize; p. 125, l. 12.

H. चितैनौं *chitainaun*, v.a. To see, to look at, to gaze; p. 49, l. 26.

s. चित्चाय *chitchāe* (: चित mind, चाय pleasure) Pleasing to the mind, satisfactory. adv. Desirably. Note.—The य is here pronounced like ए as it always is when it is the final letter of past participles, चाय being in fact the past part. of an obsolete verb चाना *chānā*, To desire; Preface.

s. चित्र *chitr* (s. चित the mind, त्र what preserves) m. A picture. चित्र सो *chitr so*, Like a picture; p. 28, l. 7, where the earlier editions read चित्र कौ *chitr kau*. चित्र शाला *chitr-shālā*, A picture-gallery; p. 95, l. 1, and p. 164, l. 23.

s. चित्रकूट *Chitrakūṭ* (s. चित्रकूट : चित्र wondrous, कूट peak) m. Name of a mountain in Bandalkhand, the modern Komptah, and first habitation of Rāma in his exile; p. 212, l. 11.

s. चित्र विचित्र *chitr bichitr* (: s. चित्र painting, विचित्र various) adj. Of various colours.

s. चित्ररेखा *Chitrrekhā* (s. चित्रलेखा : चित्र painting, लेखा line) f. A friend of Ūshā, possessed of magical powers; p. 160, l. 3.

H. चितवन *chitwan*, f. Sight; a look, a glance; p 53, l. 22.

H. चितवना *chitwanā* / चितौंना *chitaunā* v.a. To see, to look. चितवै चहुं ओर *chitwai chahun or*, She gazes on all sides; p. 114, l. 22.

s. चिन्ह *chinh* (s. चिन्ह) m. A mark, a spot, a scar, a token by which anything is known; p. 32, l. 5.

s. चिर *chir*, adv. A long time; p. 45, l. 16.

s. चिरंजी *chiranjī* / चिरंजीव *chiranjīv* (s. चिरजीविन् : चिर long, जीवि living) adj. Long-lived; p. 113, l. 3.

H. चिरोंजी *chironjī* / चिरौंजी *chiraunjī* f. A tree (Chironjia sapida); p. 142, l. 8. The nut of that tree.

H. चिर्वाना *chirwānā* (caus. of चीर्ना) v.a. To cause to tear or be torn; p. 62, l. 14.

S. चीतल *chītal* (s. चित्रल : चित्र painting, ल what produces) adj. Spotted, variegated. 2. The spotted antelope or deer (Cervus axis): p. 129, l. 21.

S. चीता *chītā* (s. चेतना ; चित् to reflect) m. Wish; p. 63, l. 13. Understanding.

S. चीत्ना *chītnā* (; s. चित्र a painting : चित the mind, त्र what preserves) v.a. To paint; p. 26, l. 9. 2. To wish; p. 164, l. 29.

S. चीन्हौं *chīnhauṅ* (; s. चिन्ह् to mark) v.a. To know, to recognise.

H. चीनी *chīnī* (: चीन China, whence it was imported) f. Coarse sugar; p. 187, l. 18.

S. चीर *chīr* (s. चीर ; चि to collect) m. Clothes, attire; p. 37, l. 9.

S. चीर्ना *chīrnā* (; s. चीर a strip of clothes) v.a. To split; p. 26, l. 6. To rend, to tear, to ripple, p. 34, l. 17.

S. चुआन *chuān* (; चून्ना to leak ; च्यु to move) f. reservoir, a cistern. चुआन खाई *chuān khāī*, f. A deep ditch with water springing at the bottom; p. 71, l. 17.

S. चुकाना *chukānā* (caus. of चुक्ना *q.v.*) v.a. To finish, complete, settle; p. 16, l. 23.

H. चुक्ना *chuknā*, v.n. To be finished, to be ended; p. 8, l. 1.

H. चुचुहाना *chuchuhānā*, v.n. To warble, to chirp; p. 168, l. 10.

H. चुट्की *chuṭkī*, f. A pinch. 2. Snapping of the fingers; p. 24, l. 24.

H. चुन्ना *chunnā*, v.a, To pick, to gather, to choose, to select. 2. To pick up food (as birds). 3. To place in order; p. 42, l. 26.

H. चुप्चाप *chupchāp*, adv. Silently; p. 20, l. 15.

H. चुप्चुपाना *chupchupānā*. v.n. To keep silence. चुप्चुपाते *chupchupāte*, pres. part. pl. used adverbially: Silently; p. 20, l, 24.

H. चुपर्नौं *chuparnauṅ*, v.n. To varnish, to cover, to anoint; p. 66, l. 14.

H. चुभ्की *chubhkī*, f. A plunge in the water, a dip, a dive; p. 69, l. 5.

H. चुभ्ना *chubhnā*, v.n. To pierce, to stick into; p. 104, l, 13.

S. चुम्बन *chumban* (s. चुम्बन ; चुबि to kiss) m. Kissing; p. 164, l. 7.

S. चुराना *churānā* (s. चुर् to steal) v.a. To steal; p. 21, l. 14.

S. चुरी *churī* (s. चूड़ा) f. A kind of bracelet; p. 59, l. 17.

S. चुल्लू *chullū* (s. चुलुक ; चुल् to dip into) m. The palm of the hand contracted so as to hold water: p. 3, l. 30.

H. चुवनौं *chuwanauṅ* / चूवनौं *chūwanauṅ* (; s. च्यवन) v.n. To drop, to leak, to exude; p. 104, l. 14.

H. चुहचुहा *chuhchuhā*, adj. Deeply-coloured.

H. चुहचुहाना *chuhchuhānā*, v.n. To glow as a colour, to dye a deep colour.

S. चूंची *chūṅchī* (s. चूचुक ; चूष् to suck) f. Breast, nipple; p. 17, l. 22.

H. चूक *chūk*, f. An error, fault, inadvertence; p. 215, l. 7. Blunder, mistake.

S. चूड़ी *chūṛī* (s. चूडा ; चूल् to elevate) f. A bracelet; p. 152, l. 22.

S. चूम्ना *chūmnā* / चूंम्ना *chūmbnā* (S. चुम्बन ; चुबि to kiss) v.a. To kiss; p. 18, l. 4, and p. 126, l. 11.

S. चूर *chūr* (S. चूर्ण ; चूर्ण् to pound) m. Powder, atom. चूर कर्ना *chūr karnā,* v.a. To bruise to powder; p. 161, l. 7. चूर होना *chūr honā,* To be crushed; p. 19, l. 9.

S. चूल्हा *chūlhā* (S. चुल्लि) m. A fireplace; p. 23, l. 6.

S. चेत *chet* (; S. चित् to reflect) m. Memory, remembrance, thought, perception, consciousness; p. 54, l. 11.

S. चेत्ना *chetnā* (S. चेतन ; चित् to reflect) v.a. To remember, to think of, to reflect. 2. v.n. To recover the senses; p. 68, l. 28.

S. चेरा *cherā* / चेरौ *cherau* (S. चेड ; चिट् to serve) m. A slave brought up in the house; p. 121, l. 1. A pupil.

S. चेरी *cherī* (S. चेड़ी ; चिट् to serve) f.. A slave-girl; p. 53, l. 14.

S. चेला *chelā* (S. चेड ; चिट् to serve) m. A pupil, a disciple; p. 4, l. 9.

S. चेष्टा *cheshṭā* (S. चेष्टा ; चेष्ट् to act) f. Motion, bodily function, endeavour; p. 153, l. 25.

S. चैतन्य *chaitanya* (; S. चेतन intellect) m. Reason, understanding, perception, the possession of the proper use of the faculties. adj. Awake, in possession of one's faculties, attentive, aware, sentient; p.4, l.3. 2. m. An animal or sentient being; p 51, l. 20.

S. चैत्र *chaitr* (S. चैत्र ; चित्रा a star, or चित्र wonderful) m. The month (March - April); p. 184, l. 21.

H. चैन *chain,* m. Ease, relief, repose; p. 25, l. 15.

H. चोआ *choā* / चोवा *chowā* m. Name of a perfume; p. 72, l. 12. 2. The pod or skin of any kind of pulse.

S. चोंच *choṅch* (S. चञ्चु ; चञ्चु to eat) f. A beak, the bill of a bird; p. 26, l. 2.

H. चोखा *chokhā,* adj. Pure, unadulterated, genuine, good. 2. Sharp; p. 56, l. 11.

H. चोट *choṭ,* f. A blow; p. 149, l. 11, and p. 79, l. 9.

S. चोटी *choṭī* (S. चूडा ; चूल् to elevate) f. A lock of hair left on the top of the head, the hair plaited behind; p. 52, l. 17.

S. चोर *chor* (S. चोर ; चुर् to steal) m. A thief; p. 21, l. 15.

S. चोरी *chorī* (S. चौर्य ; चोर a thief ; चुर् to steal) f. Theft; p. 21, l. 8. चोरी लगाना *chorī lagānā,* To accuse of theft; p. 128, l. 10.

S. चोला *cholā* (S. चोली ; चुल् to elevate) m. A bodice, a woman's jacket; p. 117, l. 3. (According to Price, a garment worn by a bride at her marriage; but the ordinary dress is of the same shape, though of less rich materials).

H. चौंतरा *chauṅtarā* (P. چبوتره *chabūtarah*) m. A terrace or mound to sit and converse upon; p. 50, l. 13.

S. चौंसठ *chauṅsaṭh* (S. चतुर् : षष्टि) num. Sixty-four; p. 12, l. 22.

H. चौक *chauk,* m. A market place; 2. A small square place filled with colored meal, perfumes, sweetness, etc., on occasions of rejoicing. चौक भर्ना *chauk bharnā,* पूर्ना *pūrnā* or पुराना *purānā,* To fill a square in the above manner; p. 41, l. 3.

H. चौंकना *chaunknā*, v.n. To start up, to be startled. चौंक पड़ना *chaunk parṇā,* To start up from sleep; p. 33, l. 6.

H. चौकस *chaukas,* adj. Cautious, watchful, diligent, active, clever, intelligent. 2. Full weight.

H. चौकसी *chaukasī,* f. Vigilance; p. 12, l. 6.

H. चौका *chaukā,* m. The space in which Hindūs dress their victuals; p. 66, l. 15. 2. A square slab of marble, a square space of ground. 3. The four front teeth.

H. चौकी *chaukī,* f. A frame to sit on, a bench, stool or chair; p. 22, l. 18, and p. 117, l. 1. 2. A guard or watch; p. 46, l. 27, and p. 12, l. 14.

S. चौगुना *chaugunā* (S. चतुर्गुण : चतुर् four, गुण form) adj. Four-fold; p. 50, l. 17.

H. चौड़ा *chauṛā,* adj. Wide; p. 71, l. 17.

S. चौथ *chauth* (S. चतुर्थी ; चतुर् four) f. The fourth lunar day; p. 133, l. 21.

S. चौथा *chauthā* (S. चतुर्थ ; चतुर्) ord. n. Fourth; p. 55, l. 6.

S. चौदस *chaudas* (S. चतुर्दशी : चतुर् four, दशन् ten) f. The fourteenth day of the lunar fortnight; p. 11, l. 25.

S.P. चौदानी *chaudānī* (: S. चौ four, دانه *dānah,* a grain or single pearl) f. An ornament composed of four pearls, worn in the ears; p. 163, l. 17.

S. चौपाई *chaupāī* (S. चतुष्पदी) f. A sort of metre consisting of four padas or lines. Preface.

S. चौबार (S. चतुष्पाटिका) m. A summer-house or pavilion, an assembly-room; p. 123, l. 7.

S. चौमासा *chaumāsā* (S. चतुर्मास : चतुर् four, मास month) m. The rainy season of four months from Asāṛh to Kū'ār; p. 49, l. 13.

S. चौमुखा *chaumukhā* (S. चतुर्मुख ; चतुर् four, मुख face) m. A lamp-stand with four partitions or burners; p. 123, l. 3.

S. चौमुखी *chaumukhī* (: S. चतुर् four, मुख face) f. One of the names of Durgā—the four-faced; p. 28, l. 8.

S. चौहटा *chauhaṭā* (; चौ four roads, हट्ट a market) m. A market where four roads meet; p. 72, l. 12.

छ

S. छओं *chhaoṅ* (inflection of छः six) card. num. All six; p. 7, l. 14.

H. छकड़ा *chhakṛā,* m. A cart; p. 19, l. 4.

H. छकना *chhaknā,* v.n. To be content, satiated, gratified. 2. To be harassed. 3. To be astonished; p. 6, l. 11.

S. छटा *chhaṭā* (S. छटा) f. Lustre, brilliancy; p. 163, l. 23.

H. छड़ा *chhaṛā,* m. An ornament made of pearls worn in the ear.

H. छड़ी *chhaṛī,* f. A switch, a cane; p. 22, l. 4.

S. छत्र *chhatr* (S. छत्र ; छद् to cover) m. An umbrella, a canopy; p. 59, l. 21.

H. छनाक *chhanāk,* m. The sound of a drop of water falling on a hot plate, a hissing noise; p. 44, l. 29.

S. छप्पन *chhappan* (S. षट्पञ्चाशत) num. Fifty-six; p. 114, l. 12.

H. छप्पर *chhappar,* m. A thatched roof, the thatch of a roof; p. 19, l. 18.

H. छपना *chhapnā,* v.n. To be printed. छपा अध छपा *chhapā adh chhapā* (*lit.* printed half printed) Unfinished; Preface.

H. छपवाना *chhapwānā* (caus. of छपना *q.v.*) To cause to be printed; Preface.

S. छब *chhab* (s. छवि *q.v.*) m. Shape, posture; p. 27. l. 8.

S. छवि *chhabi* / छवि *chhavi* (s. छवि; छो to divide (darkness) f. Brilliancy, splendour, beauty; p. 6, l. 11.

S. छल *chhal* (s. छल्; छो to cut) m. Fraud, trick, deception, stratagem, p. 6, l. 16. छल बल कर *chhal bal kar*, By force or fraud; p. 15, l. 30.

H. छल्ला *chhallā*, m. An ornamental ring; p. 152, l. 22.

S. छली *chhallī* (; छल् deceit, *q.v.*) adj. Deceitful, fraudulent, artful, treacherous; p. 116, l. 17.

S. छलना *chhalnā* (; s. छल् to cheat) v.a. To deceive, to cheat; p. 8, l. 14.

S. छसट *chhasaṭ* / छसठ *chhasaṭh* (s. षट्षष्टि) num. Sixty-six; p. 98, l. 24.

H. छांटना *chhāṅṭnā*, v.a. To clip, to prune, to lop, to trim, to dress, to select. 2. To separate the husk from grain by pounding it in a mortar.

H. छांडना *chhāṅḍnā*, v.a. To let go, release, loose. 2. To abandon; p. 31, l. 7.

S. छांह *chhāṅh* (s. छाया; छो to cut, *i.e.*, to intercept the light) f. Shade; p. 9, l. 22. An umbra or ghost; p. 75, l. 22.

H छाक *chhāk*, m. Prepared food carried out by labourers and husbandmen, when they proceed to their daily work, luncheon; p. 26, l. 8, but fem. p. 206, l. 23.

S. छाजना *chhājnā* (s. छादन covering; छद् to cover) v.a. To thatch, to cover, to spread; p. 184, l. 7. 2. To befit, to become.

S. छात *chhāt* (s. छत्र; छद् to cover) f. A roof. छात सी *chhāt sī*, Like a roof; p. 99, l. 4.

H. छाती *chhātī*, f. The breast; p. 7, 18. छाती फटनी *chhātī phaṭnī*, To break the heart with grief or pity. छाती पीटनी *chhātī pīṭnī*, To beat the breast, to lament. छाती लगाना *chhātī lagānā*, or छाती से लगाना *chhātī se lagānā*, To clasp to the breast, to embrace, to fondle; p. 19, l. 11.

S. छाना *chhānā* (; s. छद् to cover) v.a. To thatch, to cover, to spread; p. 52, l. 28. To shade.

H. छाप *chhāp*, f. A seal-ring; p. 152, l. 22.

H. छापा *chhāpā*, m. Sectarial marks representing a lotus, trident, etc., delineated on the body by the Vaishnavas or worshippers of Vishnu; p. 49, l. 3, and p. 166, l. 17. 2. Print, stamp, impression.

S. छार *chhār* (s. क्षार; क्षर् to drop or distil) f. Ashes; p. 103, l. 28.

S. छाया *chhāyā* (s. छाया; छो to cut) m. Shade. 2. Awning; p. 76, l. 1.

H. छिंगुली *chhiṅgulī*, f. The little finger; p. 44, l. 24.

H. छिटकना *chhiṭaknā*, v.n. To be scattered or dissipated, to be spread over; p. 48, l. 12.

S. छिटकाना *chhiṭkānā* (caus. of छिटकना *q.v.*) v.a. To dissipate, to scatter, to leave; p. 51, l. 6.

H. छिड़कना *chhiṛaknā*, v.a. To sprinkle; p. 42, l. 24.

H. छिड़कवाना *chhiṛakwānā* (caus. of छिड़कना *q.v.*) v.a. To cause to sprinkle; p. 75, l. 28.

S. छिती *chhitī* = क्षिति (*q.v.*) The earth. छिती छान *chhitī chhān*, Covering the earth, prostrate on the ground. छिती छान होना *chhitī chhān honā*, To be dispersed or scattered; p. 144, l. 10.

S. छिन *chhin* (s. क्षण *q.v.*) m. A moment, an instant; p. 68, l. 4.

H. छिनाना *chhinānā* (caus. of छीन्ना *q.v.*) v.a. To cause to seize. 2. To snatch; p. 146, l. 18.

H. छिपाना *chhipānā* (; छिप्ना *q.v.*) v.a. To conceal, to hide ; p. 7, l. 19.

H. छिप्ना *chhipnā*, v.n. To be concealed, to be hidden, to hide ; p. 37, l. 12, and p. 102, l. 24.

S. छींक *chhīṅk* (S. छिक्का ; छिक imitative sound, क that utters) f. Sneezing, a sneeze ; p. 120, l. 4.

S. छींका *chhīṅkā* (S. शिक्य ; शि for भ्रंश to fall) m. A net-work of cords or strings on which anything is suspended ; p. 21, l. 10. 2. The cords of a Bahangī.

S. छीन *chhīn* (S. क्षीण ; क्षि to waste) adj. Emaciated, wasted ; p. 83, l. 7. Thin, slender.

H. छीन्ना *chhīnnā* / छीन लेना *chhīn lenā* } v.a. To snatch away ; p. 15, l. 1. To take away ; p. 72, l. 17.

H. छुट्ना *chhuṭnā* = छूट्ना (*q.v.*)

S. छुरी *chhurī* (S. छुरी ; छुर् to cut) f. A knife ; p. 173, l. 5.

H. छूट्ना *chhūṭnā*, v.n. To be adrift, let go or let off, to be left or abandoned, to be obliterated ; p. 15, l. 9. To slip from, to escape ; p. 4, l. 13. To be liberated, loosened or dishevelled. छूटे बालों (suband. से) with dishevelled hair ; p. 14, l. 24.

H. छेक्ना *chheknā*, v.a. To stop, detain, prevent, restrain, bar ; p. 56, l. 18.

S. छेरी *chherī* (S. छागी ; छो to cut) f. A goat. छेरीन *chherīn*, Braj for छेरियों *chheriyoṅ* ; p. 66, l. 22.

H. छोक्रा *chhokrā*, m. A boy, a lad ; p. 3, l. 25.

S. छोटा *chhoṭā* (S. क्षुद्र ; क्षुद् to bruise or pound) adj. Small, little ; p. 7, l. 16. Young.

H. छोड़ना *chhoṛnā*, v.a. To let go, emit, forgive, forsake, leave, quit, release, free, abstain ; Preface.

ज

S. जंतु *jaṅtu* (S. जन्तु ; जन् to be born) m. An animal, a sentient being, a living creature ; p. 35, l. 6.

S. जंत्र *jaṅtr* (S. यन्त्र) m. An amulet ; p. 85, l. 6. 2. A musical instrument. 3. An instrument in general.

H. जकड़ना *jakaṛnā*, v.a. To tighten, to draw tight (as a knot), to bind, to fasten, to tie, to pinion.

S. जग *jag* / जगत *jagat* } (S. जगत् ; गम् to go) m. The world, the universe. जगत उजागर *jagat ujāgar*, Light of the universe, world-enlightening ; p. 49, l. 12. जग माता *jag-mātā*, World's mother. Preface. जगत पिता *jagat pitā*, World's father ; p. 46, l. 7.

S. जगदीश *Jagadīsh* / जगदीस *Jagadīs* } (S. जगदीश : जगत् the world, ईश lord) m. Lord of the Universe (an appellation of Vishnu and of Shiva) ; p. 46, l. .

S. जगाना *jagānā* (causal. of जाग्ना *q.v.*) v.a. To awaken ; p. 22, l. 16.

S. जगबंधु *jagbaṅdhu* (: S. जग world, बंधु brother) m. World's brother, a title of Krishṇ ; p. 140, l. 1.

H. जगमगाना *jagmagānā*, v.n. To glitter, to shine ; p. 52, l. 11.

H. जगमगा *jagmagā*, adj. Glittering, splendid.

S. जजाति *Jajāti*, m. Name of a king—father of Yadu—who declared that the sovereignty should never pass into the line of Yadu ; p. 81, l. 6.

S. जज्ञ *jagya* = यज्ञ *q.v.*

s. जटा *jaṭā* (s. जटा ; जट् to entangle) f. Matted hair. जटाजूट *jaṭājūṭ*, The matted hair of Shiva rolled on his head; p. 173, l. 25. जटाधारी *jaṭādhārī*, adj. Wearing matted hair.

s. जटित *jaṭit*, pass. part. used adjectively. Set, studded (with jewels); p. 9, l. 11.

s. जड़ *jaṛ* (s. जड़ dull ; जल् to heap) m. An inanimate body, whatever is devoid of life; p. 51, l. 20. 2. A dolt. 3. (s. जटा) A root; p. 9, l. 15.

H. जड़ना *jaṛnā*, v.a. To stud with jewels; p. 50, l. 14. To inlay.

H. जड़ाऊ *jaṛāū*, adj. Studded with gems; p. 52, l. 14.

s. जतन *jatan* = यत्न *q.v.*.

H. जताना *jatānā*, v.a To inform, to caution, to remind, to admonish; p. 4, l. 9.

s. जती *jatī* (s. यति : यत् to endeavour) m. A sage whose passions are completely subdued; p. 15, l. 27.

s. जथा *jathā* (s. यथा *q.v.*) adv. As, so, like, in the manner of, according to, to the utmost of. जथार्थ *jathārth*, adv. In fact, exactly, truly. जथा जोग्य *jathā jogya*, In a proper manner, suitably, properly.

s. जद *jad*, *vide* जब *jab*.

s. जन *jan* (s. जन ; जन् to be born) m. Man individually or collectively, a man, mankind; p. 3. l. 20.

s. जननी *jananī* (s. जननी ; जन् to bear or be born) f. A mother.

s. जनमेजय *Janamejai* (: s. जन the world, एज् to shine) m. Name of a king—the son of Parīkshit —who, in revenge for his father's death, destroyed all the Nāgas, or snake-inhabitants of Pātāla; p. 4, l. 15.

s. जनाना *janānā* (caus. of जान्ना *q.v.*) v.a. To inform, to point out; p. 17, l. 6. To shew; p. 57, l. 18. (But little used, except in Braj, जताना being commonly employed).

s. जनेऊ *janeū* | जनो *jano* } (s. यज्ञोपवीत : यज्ञ sacrifice, उपवीत thread) m. The sacrificial cord originally worn by the three principal castes of Hindūs; at present—from the loss of the pure Kshatriya and Vaishya castes in Bengāl—confined to the Brāhmanical order; p. 84, l. 22.

H. जनो *jano*, adv. As, like as; p. 28, l. 8.

s. जन्ना *jannā* (; s. जन् to be born) v.n. To bear young, to be delivered of a child; p. 6, l. 19.

s. जन्बासा *janbāsā* | जन्वासा *janwāsā* } (: s. जन्य bridegroom's friend, वास abode) m. The place at the bride's house where the bridegroom and his train are received; p. 9, l. 8.

s. जन्म *janm*, m. Birth, production. जन्म लेना *janm lenā*, To be born; p. 5, l. 24. जन्म दिन *janm din*, Birth-day; p. 25, l. 6. जन्म पत्री *janm patrī* (: s. जन्म birth, पत्र leaf of a book) f. A horoscope; p. 84, l. 25. जन्म पत्री की बिधि मिलना *janm patrī kī bidhi milnā*, To meet one's fate. जन्म भूमि *janm bhūmi*, f. Birth-place.

s. जन्मोत्सव *janmotsav* (: s. जन्म birth, उत्सव a festival) m. A festival commemorating the birth of Krishṇ.

s. जप *jap* (; s. जप् to mutter) m. Muttering prayers, repeating inaudibly passages from the Scriptures,

s. जन्लोक *janlok* (s. जन्लोक : जन man, लोक world) m. One of the seven Loks or divisions of the world, being the region inhabited by pious men after their decease.; p. 232, l. 9.

s. जप *jap* (; s. जप् to mutter) m. Muttering prayers, repeating inaudibly passages from the Scriptures, or charms, or names of a deity; counting silently the beads of a rosary; p. 7, l. 27.

s. जपत *japat* (s. जप् to repeat inaudibly) pres. part. of जप्नौं *japnaun*, *q.v.* Muttering invocations; p. 1, l. 4.

s. जप्नौं *japnaun* (; s. जप *q.v.*) v.n. To count one's beads, to repeat the name of God internally, to recite the bead-roll, to make mention; p. 49, l. 7.

s. जब *jab* / जद् *jad* (s. यदा ; यद् what) adv. used antecedently. When, as soon as; p. 2, l. 6. जब तक *jab-tak* or जब तलक *jab-talak*, Till when, until. जब तब *jab-tab*, Now and then. जब जब *jab-jab*, Whenever. जब का तब *jab-kā-tab*, At the time, when, at the proper moment. जब न तब *jab-na-tab*, Now and then; p. 228, l. 18.

H. जबै *jabai*, adv. As soon as: p. 33, l. 5.

s. जम *Jam*, *vide* यम्.

s. जम्धर *jamdhar* (: s. यम death, धार sharp edge) m. A dagger: p. 173, l. 5.

s. जमाना *jamānā* (trans. of जम्ना *q.v.*) v.a. To collect. 2. To sum up. 3. To freeze or coagulate. 4. To pace in the manège; p. 173, l. 3.

s. जमुना *Jamunā* = यमुना (*q.v.*)

s. जम्ना *jamnā* (s. जन्म) v.n. To grow; p. 24, l. 25. To be frozen or retarded; p. 164, l. 16.

s. जर *jar* (s. जटा) f. A root.

s. जरै *jarai*, (Braj for जले 3 p. sin. aor. of जर्ना for जल्ना to burn), It will burn; p. 57, l. 12.

s. जय *jay* = जै (*q.v.*)

s. जल *jal* (; जल् to hide) m. Water; p. 3, l. 30.

s. जलंदर *jalandar* (s. जलोदर : जल water, उदर belly) m. Water in the belly, dropsy; p. 138, l. 4.

s. जल क्रीड़ा *jal krīṛā* (: s. जल water, क्रीड़ा play) f. Playing in the water; p. 56, l. 29.

s. जल बल *jal bal*, past conj. part. of जल्ना *jalnā*, with बल added, Being consumed; p. 103, l. 25.

s. जल बान *jal bān* (: s. जल water, बान arrow) m. Watery arrows; p. 127, l. 17.

s. जलाकार *jalākār* (s. जलाकार : जल water, आकार shape) m. Appearance or semblance of water; p. 232, l. 16.

s. जलाना *jalānā* (caus. or जल्ना *jalnā*, *q.v.*) v.a. To burn, to consume with fire; p. 11, l. 9.

H. जलेबी *jalebī*, f. A kind of sweetmeat; p. 42, l. 24.

s. जलचर *jalchar* (s. जलचर : जल water, चर what goes) adj. Moving in water, aquatic; p. 86, l. 8. 2. m. An aquatic animal.

s. जलथल *jalthal* (: s. जल water, स्थल dry ground) m. Ground half covered with water, marshy ground.

s. जलधारा *jaldhārā* (: जल water, *q.v.*, धारा stream, *q.v.*) f. A stream of water; p. 49, l. 27.

s. जव *jav* (s. यव ; यु to join or mix) m. Barley; p. 52, l. 11.

s. जस *jas* (s. यशस् glory : अश् to pervade) m. Celebrity, reputation, fame; p. 5, l. 22.

s. जसी *jasī* (s. यशस्वी ; यशस् renown) adj. Famous, celebrated, renowned; p. 96, l. 27, and p. 108, l. 24.

s. जसुदा *Jasudā* / जसुमति *Jasumati* / जसोदा *Jasodā* / जसोमति *Jasomatī* (s. यशोदा) f. The wife of Nand and foster-mother of Krishṇ; p. 13, l. 17.

H. जहां *jahān*, adv. Where, in what place; p. 3, l. 14

s. जांघ *jāṅgh* (s. जङ्घा ; जन् to be born) f. The thigh ; p. 29, l. 14.

s. जांउं *jāūṅ* (1 p. sin. aor. of जानौं) I will go ; p. 17, l. 16.

s. जागरन *jāgaran* (s. जागरण ; जागृ to be awake) m. Vigils ; p. 46, l. 24. Waking, watching (in a religious ceremony or prayer).

s. जाग्ना *jāgnā* (s. जागृ to be awake) v.n. To be awake ; p. 11, l. 8. To be vigilant, on one's guard. जाग पड़ना *jāg paṛnā,* To start up from sleep ; p. 12, l. 2.

s. जाचक *jāchak* (s. याचक ; याच् to ask) m. A beggar or mendicant, one who asks charity ; p. 107, l. 18.

s. जाच्ना *jāchnā* (s. याच्), v.a. To want, to require, to beg ; p. 200, l. 11.

H. जाड़ *jāṛ,* m. Cold, rigour ; p. 36, l. 21.

s. जात *jāt* / जाति *jāti* (s. जाति ; जन् to be born) f. Class, tribe, sect, race ; p. 32, l. 1. 2. Birth, production (A. ذات).

s. जाती *jātī* (s. जाती ; जन् to be born) f. Great-flowered jasmine (Jasminum grandiflorum) ; p. 52, l. 6.

s. जात्पांत *jātpāṅt* / जात्पांति *jātpāṅti* (: जात a race, पांति) f. A pedigree ; p. 109, l. 5.

s. जात्भाई *jātbhāī* (: s. जात caste, भाई brother) m. One of the same caste, brotherhood ; p. 82, l. 5.

s. जात कर्म *jāt karm* (: s. जात birth ; जन् to be born, कर्म्म an act) m. A sacrificial ceremony performed at the birth of a child ; p. 84, l. 21.

s. जान *jān* (s. ज्ञानी *q.v.*) adj. Wise. महाजान *mahājān,* Very wise and intelligent ; p. 1, l. 7.

E. जान गिल्किरिस्त *Jān Gilkirist,* John Gilchrist, sometime Professor of Hindūstānī in the College of Fort William ; and afterwards holding the same appointment in the College at Haileybury, in 1806 : the father of Urdū literature ; Preface.

s. जाना *jānā* / जानौं *jānauṅ* (s. या) v.n. To go, pass, reach, depart ; p. 2, l. 7. 2. To be, but only when used as the auxiliary to form the passive voice ; p. 1, l. 15. Note.—This is one of the six irregular verbs, making गया *gayā* in its perfect, instead of जाया *jāyā.*

s. जाना *jānā* (trans. of जन्ना to be born, *q.v.*) v.a. To bear a child ; p. 155, l. 18.

s. जाने *jāne,* part. of जान्ना *jānnā* to know (used (adverbially) Wittingly, intentionally ; p. 103, l. 25.

H. जान्ना *jānnā* (; s. ज्ञा to know) v.a. To know, understand, comprehend, think ; p. 3, l. 20. जान कर *jān kar,* जान बुझ कर *jān bujh kar,* Having known, wittingly.

s. जान्यौं *jānyoṅ* (1 p. sin. past t. of जान्नौं to know, to perceive) I have seen or known (a Braj form), p. 35, l. 21.

s. जाप *jāp* = जप (*q.v.*)

s. जाम *jām* (s. याम ; या to go, or यम् to restrain) m. The eighth part of a day, a watch of three hours.

s. जामन *jāman* (s. जम्बु ; जम् to eat) m. A tree, (Eugenia Jambolana) ; p. 142, l. 8.

s. जामिनी *jāminī* (s. यामिनी ; याम a watch of three hours) f. Night ; p. 48, l. 9.

s. जाम्वंत *Jāmwaṅt* (s. जाम्ववत ; जाम्व a tree, the rose-apple (Eugenia Jambolana) m. Name of a bear, the friend of Rāma and father-in-law of Krishṇ ; p. 129, l. 26.

S. जाम्वती *Jāmwatī*, f. A daughter of the bear Jāmwant, married to Krishṇ; p. 132, l. 8.

S. जार् *jār* (; जॄ to grow infirm (P. يار) m. A paramour, a gallant, as weakening the love of wives for their husbands.

H. जारनौं *jārnaun* (Price derives it from S. ज्वालन) v.a. To burn, to kindle; p. 112, l. 20. To inflame, to light.

S. जायफल *jāephal* (S. जातिफल : जाति mace, फल fruit) m. Nutmeg; p. 155, l. 11.

S. जाल *jāl* (S. जाल ; जल् to encompass) m. A net; p. 125, l. 29.

S. जालब *Jālab*, m. A Daitya, son of Lab, slain by Balarām; p. 215, l. 19.

S. जाली *jālī* (S. जाल ; जल् to hide) f. Lattice, trellis-work; p. 71, l. 20.

S. जावित्री *jāwitrī* / जायपत्री *jāepatrī* (S. जातीपत्री : जाती mace, पत्री a leaf) f. Mace (the spice so called); p. 155, l. 11.

H. जासु *jāsu*, pron. From or of whom. Braj form of जिसके *jiske*, genitive of जौन *jaun*. Whose; p. 39, l. 27.

S. जाहु *jāhu* (Hindī form of the Hindūstānī जाओ) 2 p. pl. imperative of जाना to go; p. 17, l. 7.

S. जित *jit* (S. यत्र) adv. Where; p. 139, l. 5.

S. जिताना *jitānā* (caus. of जीतना *q.v.*) v.a. To cause to win; but, at p. 159, l. 6, To say that a person has won.

S. जितेंद्री *jitendrī* (S. जितेंद्रिय : जित conquered, इंद्रिय an organ of sense) m. One who has completely subdued his passions, a sage, an ascetic; p. 160, l. 9.

H. जितना *jitnā* / जित्ता *jittā* adj. As much as, as many as; p. 28, l. 4 and 5. जितने में *jitne men*, While.

H. जिन *jin*, inf. pl. relative pron., Whom, what. 2. A prohibitive particle, Don't!; p. 27, l. 16. Braj for जिस ने *jis ne*, Who?; p. 67, l. 3.

S. जिधर *jidhar* (S. यत्र where ; यद् what) adv. Where. जिधर तिधर *jidhar tidhar*, Here and there, in different directions; p. 25, l. 25.

S. जिमाना *jimānā* (; जेमन) v.a. To feed, to entertain; p. 58, l. 10.

H. जिये *jie*, adv. As, like; p. 173, l. 11.

S. जिवाना *jiwānā* (caus. of जीना to live) v.a. To resuscitate, to give life to; p. 30, l. 12.

H. जिहिं *jihin*, abl. sing. of relative pron. जौन, and Hindī form of जिस, In which. जिहिं नक्षत्र *jihin nakshatr*, That asterism in which; p. 18, l. 21.

S. जी *jī* (; S. जीव् to live) m. Life; p. 18, l. 1. Soul, existence. जी देना *jī denā*, To yield up the ghost, to die; p. 4, l. 18. जी में आना *jī men ānā*, To come into the mind; p. 25, l. 1. To recur. जी निकलना *jī nikalnā*, To die. जी हर्ना *jī harnā*, To lose heart, to be discouraged An honorary appellation as गर्ग जी *Garg jī*, My lord Garg; p. 20, l. 16

S. जीत *jīt* (; जि to conquer) f. Victory; p. 70, l. 2.

S. जीतब *jītab* (; S. जीव् to live) m. Life, existence; p. 16, l. 4.

S. जीतना *jītnā* (; S. जि to overcome) v.a. To win, conquer, subdue; p. 5, l. 22.

S. जीभ *jībh* (S. जिह्वा ; लिह् to lick) f. The tongue; p. 31, l. 19, and p. 81, l. 29.

S. जीमना *jīmnā* / जेवना *jewnā* (S. जेमन eating ; जमु to eat) v.a. To eat; p. 25, l. 7.

H. जील *jīl*, f. A high note or tone in music, treble; p. 56, l. 17. (Said to be for the Persian زير but this is doubtful).

s. जीव *jīw* / जीवन *jīwan* (s. जीव ; जीव् to live) m. An animal, an animated being; p. 35, l. 6. 2. Soul, life; p. 40, l. 12. 2. A sweetheart, a lover. 4. interj. Bravo!

s. जीवत रह्ना *jīwat rahnā* (s. जीवत living, रह्ना to remain), v.a. To restore to life (in Braj only); p. 117, l. 30.

s. जीवन *jīwan* (s. जीवन ; जीव् to live) m. Living, life; p. 17, l. 2. जीवन मूल *jīwan mūl* (: s. जीवन life, मूल root) m. Root of life (an endearing expression); p. 90, l. 10.

s. जीव्ना *jīwnā* (; s. जीव life) v.n. To live. जीवौ *jīwau*, May he live; p. 45, l. 16.

s. जीव्हु *jīwhu* (Braj imperative 2 p. pl. of जीव्नौं *jīwnauṅ*, to live) Live thou; 93, l. 18.

s. जी हार्ना *jī hārnā* (: जी life, हार्ना to lose) v.n. To be discouraged, to be depressed, to despair.

H. जु *ju*. adv. As, like; p. 50, l. 9. (Braj form for जो) rel. pron. Who; p. 61, l. 18.

s. जुआरी *juārī* (s. द्यूतकारी : द्यूत gaming, कार who makes) m. A gambler; p. 83, l. 19.

s. जुग *jug* = युग (*q.v.*) जुगान जुग *jugān jug*, From age to age; p. 24, l. 25. जुग जुग *jug jug*, Perpetually.

H. जुग्नी *jugnī*, f. A fire-fly. 2. An ornament worn round the neck; p. 163, l. 17.

s. जुझाऊ बाज्ना *jujhāū bājnā* (: जुझाऊ ; युद्ध battle, बाज्ना to sound) v.n. To sound martial music in battle; p. 174, l. 8.

s. जुट्ना *juṭnā* (; s. युक्त joined ; युज् to join) v.n.) To close with, to engage in close fight, to close; p. 174, l. 11.

s. जुरा *jurā* (properly partic. of जुड़्ना to join) m. A pair, associate; p. 158, l. 11.

s. जुरासिंधु *Jurāsindhu*, properly *Jarāsindhu* (s. जरासन्ध : जरा a female dæmon, सन्ध union) m. The celebrated King of Magadha, father-in-law of Kans and foe of Krishṇ. When born, his body was in two halves, which were united by the female dæmon Jarā, and it was fated that he could not be slain but by being split up: in this manner Bhīm slew him; p. 7, l. 24.

s. जुर्नौं *jurnauṅ* (; s. युज् to unite) v.n. To be joined or united; p. 115, l. 24.

s. जुवती *juvatī* (*vide* युवती), A damsel.

H. जुहार *juhār*, f. Hindū salutation, shout; p. 16, l. 23.

s. जुही *juhī* / जूही *jūhī* (s. यूथी ; यु to mix) f. A kind of jasmine (Jasminum auriculatum); p. 52, l. 6.

H. जू *jū*, m. Lord, master; p. 183, l. 26. Braj for जी *jī*, a title of respect, *q.v.* My lord! Dear sir!; p. 81, l. 1. नाना जू *nānā jū*, Dear grandfather!

H. जूआ *jūā*, m. Dice, gaming; p. 3, l. 9.

s. जूट *jūṭ* (s. जूट ; जट् to collect). Matted hair; p. 173, l. 20.

s. जेठ *jeṭh* / जेष्ठ *jeshṭh* / ज्येष्ठा *jyeshṭhā* (s. ज्येष्ठ ; ज्या to grow old) m. Husband's elder brother; p. 122, l. 7. 2. A Hindū month, the full moon of which is near the asterism Jyeshṭh (June-July). 3. adj. Older, elder, first-born.

H. जेव्री *jewrī*, f. A string, a cord: p. 17, l. 23.

H. जेहर तेहर *jehar tehar* f. Ornaments for the ankle, anklets; p. 152, l. 22.

H. जै *jai*, adj. As many as; p. 68, l. 20.

S. जै *jai* (s. जय ; जि to conquer) f. Conquest, victory, triumph. Bravo! huzza! all hail! जै जै कार *jai jai kār*, Cries of victory, rejoicings, triumph; p. 78, l. 25. जै माल *jai māl* (: जै victory, माला wreath) Garland of the victor; p. 156, l. 22.

S. जै है *jai hai*, a Braj form of जावे *jāwe*, Will go; p. 76, l. 25.

S. जै हौ *jai hau*, 2 p. pl. aor. or imp. of जानौं *jānauṅ*, To go, Braj for जाओ *jāo*, Ye will go, or go ye; p. 140, l. 20.

S. जैंद्रथ *Jaiṅdrath*, m. Name of the father of King Jurāsindhu; p. 199, l. 4.

H. जो *jo*, rel. pron. Who, which, what; p. 2, l. 11. 2. conj. If, when, that; p. 4. l. 9.

H. जों *joṅ*, adv. As. जों का तों *joṅ kā toṅ*, Exactly, just as it occurred; p. 25, l. 2. जों के तों *joṅ ke toṅ*, Exactly; p. 28, l. 3.

H. जोंहीं *joṅhīṅ*, adv. As soon as, just as; p. 15, l. 4.

S. जोग *jog* = योग (*q.v.*)

S. जोगिनी *joginī* = योगिनी (*q.v.*)

S. जोगेश्वर *jogeshwar* (s. योगेश्वर : योग devotion, ईश्वर a chief) m. A name of Shiva. 2. A devotee, an adorer; p. 198, l. 6.

S. जोग्माया *jogmāyā* (: s. योग penance, माया illusion) f. A deceptive power which Jogīs are supposed to possess; p. 56, l. 1.

S. जोड़ा *joṛā* (; s. जुड् to join) m. A suit of clothes; p. 35, l. 17.

H. जोड़ना *joṛnā*, v.a. To join, to clasp; p. 8, l. 11. कटक जोड़ने *kaṭak joṛne*, To enlist forces; p. 140, l. 25. हाथ जोड़ *hāth joṛ*, Joining the hands in supplication; p. 8, l. 11.

S. जोति *joti* (s. ज्योतिस् ; द्युत् to shine) f. Brilliancy, lustre, light; p. 52, l. 28. 2. The sunbeams, the flame of a candle. 3. Vision. जोती स्वरूप *jotī swarūp*, adj. Luminous (an epithet of God); p. 149, l. 21.

S. जोतिष *jotish* (s. ज्योतिष ; ज्योतिस् light of the heavenly bodies) m. Astronomy or astrology; p. 85, l. 7.

S. जोतिषी *jotishī* / जोतषी *jotashī* (s. ज्योतिषिक ; ज्योतिस् a star) m. An astronomer, an astrologer; p. 7, l. 8.

S. जोत्ना *jotnā* (; s. युज् to join) v.a. To join, to yoke; p. 113, l. 7, and p. 239. l. 3.

S. जोधा *jodhā* (s. योद्धा ; युध् to fight) m. A warrior; p. 7, l. 24.

S. जोबन *joban* / जोवन *jowan* (s. यौवन : युवन young ; यु to mix or mix or asssociate) m. Puberty, youth; p. 6, l. 11. 2. (met.) Breast.

S. जोरी *jorī* (; s. युज् to unite) f. A couple; p. 115, l. 24.

H. जोवत *jowat* (pres. part. of जोवनौं *jowanauṅ*, to see) Seeing; Preface.

H. जोवनौं *jowanauṅ*, v.a. To see, to look at, to regard.

S. ज्ञान *gyān* (; s. ज्ञा to know) m. Understanding, intelligence, perception; p. 3, l. 17. Knowledge. Knowledge of a specific and religious kind, which tends to exempt the soul from further transmigration; p. 5, l. 2.

S. ज्ञानी *gyānī* (; ज्ञान *q.v.*) adj. Wise, intelligent;

p. 15, l. 12. A sage possessing religious knowledge or ज्ञान.

S. ज्ञान्वान *gyānwān* (; s. ज्ञान knowledge, *q.v.*) adj. Intelligent; p. 84, l. 30.

S. ज्याना *jyānā* (caus. of जीना *q.v.*) v.a. To cause to live, to resuscitate; p. 54, l. 16.

H. ज्वार् *jwār*, f. The name of a grain, Indian corn (Holcus Sorghum); p. 148, l. 30.

S. ज्वाला *jwālā* (s. ज्वाल ; ज्वल् to blaze) f. Flame; p. 112, l. 20.

झ

H. झंखना *jhaṅkhnā* } झंखनौं *jhaṅkhnauṅ* } v.n. To rave, to chatter, to lament; p. 64, l. 23.

H. झंगा *jhaṅgā*, m. An upper garment or vest; p. 73, l. 7.

H. झकोर्नौं *jhakornauṅ*, v.a. To shake; p. 78, l. 17. 2. To drive, as wind and rain in a squall.

S. झकना *jhaknā*, v.n. To prattle, to talk idly; p. 52, l. 21.

H. झगड़ा *jhagṛā*, m. Wrangling, quarrel, strife; p. 113, l. 3.

H. झगड़ालू *jhagaṛālū* } झगड़ालू *jhagṛālū* } adj. Quarrelsome, wrangling, litigant; p. 179, l. 12.

H. झगड़ना *jhagaṛnā*, v.n. To wrangle, quarrel; p. 179, l. 7.

H. झगुला *jhagulā*, m. A frock; p. 21, l. 2. A shirt.

S. झट *jhaṭ* (s. झटिति ; झट् to be entangled) adv. Quickly, hastily; p. 7, l. 3. 2. adj. Quick. झट से *jhaṭ se*, or झट पट *jhaṭ paṭ*, adv. Hastily; p. 14, l. 4.

H. झटकना *jhaṭaknā*, v.a. To twitch, to pull; p. 103, l. 5. झटक लेना *jhaṭak lenā*, To snatch off. 2. v.n. To become lean.

H. झट्का *jhaṭkā*, m. A jerk; p. 24, l. 11.

H. झड़ी *jhaṛī*, f. Continued rain, showers, sleet; p. 35, l. 10.

H. झड़वाना *jhaṛwānā* (caus. of झाड़ना) v.a. To cause to sweep; p. 75, l. 28.

H. झपट्ना *jhapaṭnā*, v.n. To snatch, to spring, to attack suddenly, to spring or pounce upon; p. 65, l. 10.

H. झम्झम *jhamjham*, adv. (Raining) heavily and during the whole day.

H. झम्झमाना *jhamjhamānā*, v.n. To sparkle, to shine, to glitter; p. 114, l. 16.

H. झर् *jhar*, f. Heavy rain. 2. The heat of a fire; p. 33, l. 5, where it is the ablative governed by postposition तें understood.

H. झरप्ना *jharapnā* } झरफ्ना *jharaphnā* } v.n. To spar, to fight; p. p. 202, l. 22.

H. झराखा *jharākhā* (the dictionaries would derive this word from the s. गवाच्च, bull's-eye!!) m. A Window, a grating; p. 71, l. 20.

S. झर्ना *jharnā* (; चर् to distil) m. A spring, a cascade; p. 100, l. 27. 2. v.n. To spring forth (as water), to fall (as leaves from trees).

H. झल *jhal*, f. Passion, anger, jealousy. 2. The heat from a fire.

S. झलाबोर् *jhalābor* (; s. झला glistening light) f. Splendour; p. 150, l. 18. 2. adj. Splendid, shining, covered with jewels and ornaments.

H. झल्झलाना *jhaljhalānā*, v.u. To glitter; p. 152, l. 19. 2. To be in a passion.

H. झांकना *jhāṅknā*, v.a. To peep, to spy; p. 180, l. 4.

H. झाड़खंड *jhārkhand*, m. A forest, the forest of Baijnāth; p. 142, l. 16. 2. adj. Bushy.

H. झार फूंक *jhār phūṅk*, f. Juggling, conjuring, exorcism; p. 18, l. 5. (*lit.*, Sweeping and blowing).

H. झाड़ना *jhāṛnā*, v.a. To sweep, to brush, to clean; p. 22, l. 17. To knock off, to shake down; p. 29. l. 22. To discharge, to rain forth; p. 29. l. 24.

S. झारी *jhārī* (; S. झर a cascade ; झॄ to waste or decay) f. A pitcher with a long neck and a spout to it, used by the Hindūs in their ablutions; p. 46, l. 25. 2. Brushwood, underwood.

H. झाल *jhāl*, m. A large basket; p. 42, l. 21.

H. झालर *jhālar*, f. Fringe; p. 150, l. 24.

H. झिलम *jhilam*, f. Armour, a coat of mail; p. 79, l. 6. 2. The visor of a helmet.

H. झुंझुलाना *jhuṅjhulānā*, v.n. To be incensed peevish or fretful, to chafe; p. 2, l. 10.

H. झुंड *jhuṅḍ*, m. A swarm (as of bees); p. 33, l. 15. A flock, a herd (as of deer). झुंड के झुंड *jhuṅḍ ke jhuṅḍ*, Crowds, swarm upon swarm; p. 33, l. 15.

H. झुकाना *jhukānā* (active of झुकना), To stoop, bend, incline; p. 2, l. 17, and p. 8, l. 7.

H. झुकना *jhuknā*, v.n. and a. To bow. To be bent, to stoop (especially downwards, as the bough of a tree); p. 29, l. 9.

H. झुलसना *jhulasnā*, To be scorched or seared; p. 30, l. 15.

H. झूट *jhūṭ* / झूठ *jhūṭh* } adj. False, lying. m. subs. A lie; p. 3, l. 9. झूठ मूठ *jhūṭh mūṭh*, Falsehood; p. 22, l. 1.

H. झूठा *jhūṭhā*, adj. False, lying; p. 15, l. 9.

H. झूमना *jhūmnā*, v.n. To wave as branches; p. 35, l. 16. To move the head up and down, to nod, to move loose. 2. To gather, (as clouds).

A. झूल *jhūl* (A. جل) f. Body-clothes of cattle, housings; p. 150, l. 22.

S. झूला *jhūlā* (; S. दोल ; दुल् to throw up) m. A swing, the rope on which people swing; p. 35, l. 17.

S. झूलना *jhūlnā* (S. दोलन ; दुल् to throw up) v.a. To swing (for exercise); p. 35, l. 17. 2. To swing, to dangle. 3. m. A kind of poem.

S. झोंटा *jhoṅṭā* (S. जटा ; जट् to be entangled (this derivation is doubtful) m. The hair of the back part of the head. झोंटी *jhoṅṭī*, f.; p. 9, l. 14. 2. The motion of a swing.

S. झोंपड़ी *jhompṛī*, f. A cottage, a hut; p. 220, l. 12.

H. झोंरा *jhoṅrā* / झौंरा *jhauṅrā* } m A bunch, a cluster of fruit; p. 113, l. 17.

H. झोका *jhokā*, m, A blow, a contact or collision. 2. A gust of wind; p. 142, l. 15.

S. झोठा *jhoṭhā* (S. जुष्ट ; जुष् to please, or उच्छिष्ट : उत् up, शिष् to leave) adj. Refuse, defiled; p. 206, l. 23. 2. Leavings of food, orts; p. 208, l. 21.

H. झोला *jholā*, m. / झोली *jholī*, f. } A knapsack, a wallet; p. 29, l. 16.

H. झोला *jholā*, m. Paralysis; p. 138, l. 4.

ट

H. टंकना *ṭaṅknā* / टकना *ṭaknā* } v.n. To be sewed or stitched; p. 152, l. 18.

H टकोर *ṭakor*, f. Sound of a drum. 2. A fillip, a tap. 3. Household drudgery; p. 194, l. 20.

H. टटोलना *ṭaṭolnā*, v.n. To feel for, to grope; p. 19, l. 23.

H. टट्का *ṭaṭkā*, adj. Fresh, new, recent; p, 22, l. 19.

H. टर्ना *ṭarnā* / टल्ना *ṭalnā* v.n. To give away, to shrink from. 2. To pass away; p. 10, l. 7.

H. टसक्ना *ṭasaknā*, v.n. To move; p. 180, l. 10. 2. To be pained.

H. टहल *ṭahal* / टहल टकोर *ṭahal ṭakor* f. Housewifery, housekeeping, household duty, service; p. 19, l. 2. टहल टकोर कर्ना *ṭahal ṭakor karnā*, To serve, to drudge.

H. टहलुआ *ṭahluā*, m. A manager of household concerns, a servant, a drudge; p. 73, l. 3.

S. टांग *ṭāṅg* (s. टङ्गा ; टकि to bind) f. The leg; p. 29, l. 25.

H. टाप *ṭāp*, f. A stroke with the fore-foot of a horse. 2. The sound of a horse's foot in travelling.

H. टापू *ṭāpū*, m. An island; p. 119, l. 14.

H. टाप्ना *ṭāpnā*, v.n. To paw with the fore-feet (as an impatient horse): p. 63, l. 19.

H. टार्ना *ṭārnā* / टाल्ना *ṭālnā* v.a. To evade, to prevaricate, to put off, to put aside; p. 42, l. 12. 2. To drive out of the way (टार्ना); p. 174, l. 14.

S. टीका *ṭīkā* (s. तिलक ; तिल sesamum, or तिल् to be unctuous) m. A mark or marks made with colored earths or unguents upon the forehead and between the eye-brows, either as an ornament or as a sectarial distinction. 2. An ornament worn on the forehead; p. 152, l. 20. 3. The nuptial gifts presented on contracting a marriage. टीका भेज्ना *ṭīkā bhejnā*, To send the gifts which are presented by the relatives of the bride to the bridegroom; p. 9. l. 5. टीका लेना *ṭīkā lenā*, To accept such gifts.

H. टीड़ी *ṭīṛī*, f. A locust; p. 173, l. 7.

H. टीला *ṭīlā*, m. A rising ground, a hillock; p. 29, l. 10.

H. टुंडियां चढ़ाना *ṭuṅḍiyāṅ charhānā*, or बांध्ना *bāṅdhnā*, or कस्ना *kasnā*, v.a. To tie the hands behind the back; p. 121, l. 15. (This word is said to be allied to the s. तुन्दी the navel, but this appears erroneous.)

S. टुक *ṭuk* (s. स्तोक ; ष्टुच् to be clear) adj. A little.

S. टुकड़ा *ṭukṛā* (s. स्तोक ; ष्टुच् to be clear) m. A piece, a fragment; p. 149, l. 6.

S. टूक *ṭūk* (s. स्तोक) m. A piece, a little, a fragment. टूक टूक होना *ṭūk ṭūk honā*, To be broken into fragments; p. 19, l. 9.

S. टूट्ना *ṭūṭnā* (s. त्रोटन ; त्रुट् to cut) v.n. To break, to burst; p. 7, l. 5. To break forth, to assault, to attack, to change; p. 100, l. 4. To be broken (as slumber); p. 111, l. 27.

H. टेक *ṭek*, f. A prop, a pillar. Reliance. हठ की टेक पर होना *haṭh kī ṭek par honā*, To be dogged, to be obstinate; p. 10, l. 4. टेक रह्ना *ṭek rahnā*, To lean upon. 2. A promise, vow.

H. टेक्ना *ṭeknā*, v.a. To support, to prop. 2. To lean upon; p. 38, l. 19.

H. टेढ़ा *ṭeṛhā*, adj. Crooked, bent, sinuous; p. 184, l. 28.

H. टेर्ना *ṭernā*, v.n. To bawl out, to exclaim, to shout aloud; p. 19, l. 26.

H. टेव *ṭew*, f. Habit, custom; p. 75, l. 9.

H. टेह्ला *ṭehlā*, m. The rites or customs of the marriage ceremony; p. 100, l. 6.

H. टोप *ṭop* / टोपा *ṭopā* m. A helmet; p. 79, l. 6, and p. 103, l. 14. A hat, a cap.

H. टोल *ṭol*, m. / टोली *ṭolī*, f. A company, a band; p. 29, l. 18. A society.

ठ

H. ठई *ṭhaī* (3 p. sing. past tense of ठान्ना *ṭhānnā*, to fix, to resolve on) You have determined (तुम ने *tum ne*, understood); p. 38, l. 7. and He has determined; p. 56, l. 1.

H. ठंडा *ṭhaṅḍā* / ठंढा *ṭhaṅḍhā* adj. Cool; p. 6, l. 8. Cold, refreshing. ठंडा कर्ना *ṭhaṅḍā karnā*, v.a. To cool, to comfort, to assuage, pacify, appease.

S. ठकुराई *ṭhakurāī* (s. ठक्कुरता; ठक्कुर an idol) f. Divinity. 2. Chief-ship, rule; p. 93, l. 18.

H. ठग *ṭhag*, m. A cheat, a deceiver; p. 49, l. 28. An impostor, a robber.

H. ठगौरी *ṭhagaurī*, f. A cheat, a trick; p. 38, l. 7.

H. ठग्ना *ṭhagnā*, v.a. To cheat, to deceive. ठगी मृगी *ṭhagī mṛigī*, A fascinated deer; p. 68, l. 17.

H. ठग्नी *ṭhagnī*, f. A female robber or cheat: p. 220, l. 24.

H. ठट्ठ *ṭhaṭṭh*, m. A throng; p. 111, l. 2.

H. ठनक्ना *ṭhanaknā*, v.n. To throb (*vide* माथा), to shoot (as the pain of a headache); p. 120, l. 10. 2. To jingle, to clink.

H. ठये *ṭhaye*. 3. p. pl. m. perf. of ठान्ना, *q.v.*

H. ठह्राना *ṭhahrānā*, v.a. To fix, determine, settle; p. 9, l. 5. 2. To stop; p. 173, l. 3. 3. To support; p. 44, l. 27.

S. ठां *ṭhāṅ* / ठांव *ṭhāṅw* (s. स्थान *q.v.*) m. Place, residence. ठांव ठांव *ṭhāṅw ṭhāṅw*, From place to place; p. 35, l. 17.

H. ठाढ़ौ *ṭhāṛhau*, adj. Standing, erect; p. 50, l. 9.

H. ठान्ना *ṭhānnā*, v.a. To resolve, fix, determine, be intent on, decide, hold; p. 6, l. 12. कुमति ठानि *kumati ṭhāni*, Holding this wicked opinion.

H. ठीक *ṭhīk*, adj. Exact, even. ठीक ठाक *ṭhīk ṭhāk*, adj. Exact, fit, proper, accurate; p. 73, l. 14. ठीक ठाक कर्ना *ṭhīk ṭhāk karnā*, v.a. To put to rights, to correct, to adjust (*ibid*).

H. ठुसक्ना *ṭhusaknā*, To weep but not aloud; p. 22, l. 22.

S. ठोंठ *ṭhoṅṭh* (s. चोटि : चुट् to cut) f. The beak or bill of a bird; p. 26, l. 6.

H. ठोक्ना *ṭhoknā*, v.a. To strike, to beat. खंम ठोक्ना *khaṁm ṭhoknā*, To strike the arms in defiance; p. 127, l. 4. ताल ठोक्ना *tāl ṭhoknā*, To slap the arms—which is the signal of defiance to combat among the Hindū athletes; p. 60, l. 19.

H. ठोकर *ṭhokar* / ठोंकर *ṭhoṅkar* f. Tripping or striking the foot against anything, a stumble. ठोकर खाना *ṭhokar khānā*, To trip, to stumble; p. 19, l. 23.

H. ठोढ़ी *ṭhoṛhī*, f. The chin; p. 74, l. 3.

H. ठौर *ṭhaur*, f. A place, residence; p. 3, l. 9.

H. ठौर्ना *ṭhaurnā* (: ठौर *q.v.*) v.a. To bring into place, to settle, tranquillize; p. 153, l. 30.

ड

H. डंक *ḍaṅk*, f. The sting of a reptile, particularly of a scorpion. डंक मार्ना *ḍaṅk mārnā*, v.a. To sting.

S. डंका *ḍaṅkā* (s. ढक्का : ढक imitative sound, क that utters) m. A double drum, a kettle-drum; p. 101, l. 22.

H. डकार्ना *ḍakārnā*, v.n. To low, to bellow; p. 60.

l. 7. डकार्तु *ḍakārtu*, a Braj form for डकर्ता *ḍakartā*, pres. part. (*ibid*).

H. डग्मगाना *ḍagmagānā*, v.n. To totter, to stagger; p. 113, l. 30.

H. डफ *ḍaph* (P. دف *daf*) m. A tambourine; p. 29, l. 16.

H. डबोना *ḍabonā* (caus. of डूबना) v.a. To drown (literally or figuratively); p. 11, l. 9.

H. डबडबाना *ḍabḍabānā*. v.a. To fill with water or tears (the eyes.) आंखैं (or) आंसू डबडबाना *āṅkhaiṅ* (or) *āṅsū ḍabḍabānā*, To be on the point of shedding tears; p. 22, l. 22.

S. डमरू *ḍamrū* (S. डमरु : डम imitative sound, ऋ to go *or* get) m. A sort of small drum shaped like an hour-glass, held in one hand and beaten with the fingers; p. 160, l. 11.

S. डर *ḍar* (; दृ to fear) m.f. Fear; p. 8, l. 8.

S. डरावना *ḍarāwanā* (caus. of डर्ना) To frighten, to terrify.

H. डराउना *ḍarāunā*, adj. Frightful, terrible; p. 131, l. 19.

S. डर्ना *ḍarnā* / डरपना *ḍarapnā* (; S. दृ to fear) v.n. To fear, to dread; p. 2, l. 13. डरपना; p. 77, l. 9.

H. डला *ḍalā*, m. A large basket; p. 42, l. 21.

H. डल्वाना *ḍalwānā* (caus. of डाल्ना, *q.v.*) v.a. To cause to be thrown or placed; p. 135, l. 8.

S. डस्ना *ḍasnā* (; S. दंश to bite) v.a. To bite or sting (as a venomous animal); p. 3, l. 30.

H. डहडहा *ḍahḍahā*, adj. Flourishing, blooming; p. 48, l. 8.

S. डाकिनी *ḍākinī*, f. A kind of female imp attendant on Shiva; p. 173, l. 27.

S. डाभ *ḍabh* (S. दर्भ ; दृभि to collect) m. The name of a grass used in sacrifices (Poa cynosuroides); p. 34, l. 10.

H. डार *ḍār* / डाल *ḍāl* / डाली *ḍālī* f. A branch, a bough; p. 33, l. 15.

H. डार्ना *ḍārnā* = डाल्ना *q.v.*; p. 60, l. 9. (A Braj form.)

H. डाल्ना *ḍālnā*, v.a. To throw, cast, fling, hurl; p. 3, l. 16.

H. डिग्ना *ḍignā*, v.n. To shake, to violate, to tremble; p. 222, l. 22.

H. डुबकी *ḍubkī*, A dip, a dive; p. 69, l. 5.

S. डुलाना *ḍulānā* / डोलाना *ḍolānā* (; S. दोलन ; दुल् to shake) v.a. To agitate; p. 155, l. 13. To shake; p. 119, l. 20. To swing.

H. डूबना *ḍūbnā*, v.n. To sink, be immersed; p. 3, l. 22. To be bathed; p. 14, l. 24.

H. डेढ़ *ḍeṛh*, num. One and a half. डेढ़ पहर *ḍeṛh pahar*, A watch and a half; p. 164, l. 21.

H. डेरा *ḍerā*, m. A dwelling, a tent; p. 70, l. 12.

H. डेल *ḍel* / डेला *ḍelā* m. A lump of earth, a clod; p. 29, l. 21, and p. 188, l. 23.

H. डोंडी *ḍoṅḍī* / डोंडि *ḍoṅḍi* f. Proclamation by beat of drum; p. 7, l. 29.

H. डोढ़ी *ḍoṛhī* / डौढ़ी *ḍauṛhī* f. A threshold, a door, an antichamber. 2. adj. f. Half as much again, raised one half-tone higher (in music); p. 56, l. 12.

H. डोर *ḍor*, f. String, cord, rope; p. 218, l. 2.

S. डोला *ḍolā* (S. दोल ; दुल् to swing) m. A kind of litter. दासियों के डोले *dāsiyoṅ ke ḍole*, Sedans carrying slave-girls; p. 123, l. 21.

s. डोली *ḍolī* (*vide* डोला) p. 150, l. 18.

s. डोलना *ḍolnā* (; s. दुल् to shake) v.n. To shake; p. 7, l. 5. To move, to roam, to wander. डोलैं *ḍolaiṅ*. They wandered—3 p. pl. aor.; p. 19, l. 25

ढ

H. ढंढोरा *ḍhaṅḍhorā*, m. Proclamation by beat of drum; p. 42, l. 18.

H. ढंढोरिया *ḍhaṅḍhoriyā*, m. A crier, a proclaimer by beat of drum.

H. ढक्ना *ḍhaknā*, v.a. To cover; p. 21, l. 10. To conceal. 2. m. A lid, a cover.

H. ढब *ḍhab*, m. Manner, way, style; p. 55, l. 23.

H. ढवाना *ḍhawānā*, v.a. To cause to be knocked down, or razed; p. 105, l. 23.

H. ढाक *ḍhāk*, m. A tree (Butea frondosa); p. 27, l. 4.

H. ढाड़िन *ḍhāṛhin* (fem. of ढाड़ी *q.v.*) f. A female musician; p. 16, l. 13.

H. ढाड़ी *ḍhāṛhī*, m. A kind of musician, a singer; p. 16, l. 13.

H. ढाना *ḍhānā*, v.n. To break, to knock down, to raze, to demolish; p. 148, l. 6.

s. ढिग *ḍhig* (s. दिक् side) m. and f. Side. 2. adv. Near; p. 14, l. 13.

s. ढीठ *ḍhīṭh* (s. धृष्ट ; धृष् to be confident) adj. Bold; p. 63, l. 7. Confident.

s. ढुंढ्ना *ḍhuṅḍhnā* | ढूंढ्ना *ḍhūṅḍhnā* (s. ढुण्ढन ; ढुढि to search) v.a. To search, to seek for; p. 11, l. 7. ढूंढत *ḍhūṅḍhat*, pres. part. pl. Searching; p. 19, l. 25.

H. ढेंड़ी *ḍheṅṛī*, f. An ornament for the ear; p. 163, l. 15.

H. ढेढ़ी *ḍheṛhī*, f. An ornament worn in the ear; p. 152, l. 20.

H. ढेर *ḍher*, m. A heap; p. 148, l. 28. 2. adj. Much, abundant, enough.

H. ढोर *ḍhor*, m. Cattle; p. 33, l. 5.

H. ढोल *ḍhol*, m. A drum fourteen inches long and eight in diameter—both ends covered with leather, and beaten with the hand; p. 13, l. 6.

त

तऊ *taū*, adv. Even then, still; p. 139, l. 6. (A Braj form.)

s. तंत्र *taṅtr* (s. तन्त्र ; तन् to spread *or* extend) m. The name of a religious treatise teaching peculiar and mystical formulæ and rites for the worship of the deities, or the attainment of superhuman power. It is mostly in the form of a dialogue, between Shiva and Durga—who are the peculiar deities of the Tantrikas; p. 85, l. 6. Charm, enchantment.

H. तक *tak* | तकि *taki* adv. or postposition. To; p. 35, l. 24. Up to, till. लड़के से बूढ़े तक *laṛke se būṛhe tak*, From young to old; p. 15, l. 28. adv. Till, toward.

s. तक्ना *taknā* (; s. तर्क् to strive, to investigate) v.a. To look at, to observe, to aim at, to watch. 2. v.n. To be looked at, to be stared at.

s. तच्छक *takshak* (s. तक्षक which in its first sense signifies a carpenter ; तक्ष् to chip) m. One of the principal serpents of Pātāla. A snake of a middle size and of a red color, whose bite is mortal; p. 4, l. 12.

s. तज्ना *tajnā* (s. त्यज् to resign) v.a. To abandon, quit, leave, forsake; p. 4, l. 20.

s. तट *taṭ* (तट् to rise or be high) m. A shore; p. 30, l. 16.

s. तड़ाग *taṛāg* (s. तडाग ; तड् to heat) m. A pond, a deep pool; p. 218, l. 9.

H. तड़का *taṛkā*, m. Dawn of day. तड़के, At dawn; p. 30, l. 9.

H. तड़फड़ाना *taṛphaṛānā*, v.n. To flutter, to palpitate; p. 68, l. 28.

s. तत्काल *tatkāl* (s. तत्काल : तत् that, काल time) adv. At that time, then; p. 134, l. 7.

s. तत्क्षण *tatkshaṇ* (: s. तत that, क्षण moment) adv. That instant; p. 33, l. 22.

s. तत्ता *tattā* (s. तप्त ; तप् to heat) adj. Hot; p. 26, l. 5. Fiery, passionate; p. 77, l. 6.

s. तद् *tad*, *vide* तब *tab*.

s. तधी *tadhī* (s. तदाहि) adv. At that very time.

s. तन *tan* (s. तनु ; तन् to stretch) m. The body; p. 26, l. 9.

s. तनक *tanak* or तनुक *tanuk* (s. तनु ; तन् to spread) adj. Small, slight, minute; p. 4, l. 6. 2. adv. Slightly.

s. तनी *tanī* (s. तनया ; तन् to spread (the family) f. A daughter; p. 141, l. 15. 2. H. A string for tying garments.

s. तन्ना *tannā* (; s. तन् to stretch) v.n. To be stretched; p. 113, l. 19.

P. तप *tap*, f. Fever (probably the same as the s. तप् *tap*, heat); p. 138, l. 3.

s. तप *tap* (; s. तप् to be hot) Heat, warmth. 2. (s. तपः ; तप् to heat) Religious austerity, penance, mortification, the practice of mental or personal self-denial, or the infliction of bodily tortures; p 3, l. 14. Virtue, moral merit. Duty—as for a Brāhman, sacred learning; for a Kshatriya, the protection of subjects; for a Vaishya, almsgiving to Brāhmans; for a Shudra, the service of Brāhmans; and for a Rishi, the feeding upon roots or herbs; p. 3, l. 1.

s. तपत *tapat* (s. तप्त ; तप् to heat) f. Heat, burning; p. 26, l. 24. 2. adj. Hot, warm, fesvent.

s. तपस्या *tapasyā* (s. तपस्य) f. Devout austerity, religious penance; p. 100, l. 19.

s. तपाना *tapānā* (; s. तप् to heat) v.a. To heat, to warm; p, 33, l. 13.

s. तपी *tapī* = तप्सी (*q.v.*); p. 84, l. 15.

s. तप्सी *tapsī* (s. तपस्वी ; तपस् austerity) m. An ascetic, a performer of austere devotion; p. 15, l. 27.

s. तब *tab* } तद् *tad* } (s. तदा ; तद् that) adv. rel. Then, at that time; p. 2, l. 6. तब तक *tab-tak*, Till then.

s. तम *tam* (s. तम ; तम् to be disturbed) m. The third of the qualities incident to humanity, the *Tama-Gun* or property of darkness, whence proceed folly, ignorance, mental blindness, worldly delusion; p. 199, l. 14. 2. Darkness, gloom.

s. तमाल *tamāl* (s. तमाल ; तम् to be dark) m. A tree with dark blossoms (Xanthocymus pictorius); p. 142, l. 8.

s. तमोगुन *tamogun* (*vide* तम); p. 236, l. 2.

s. तर *tar* } तरे *tare* } (s. तल ; तल् to fix) adv. Below, underneath; p. 50, l. 10.

s. तरंग *taraṅg* (s. तरङ्ग ; तॄ to pass over) m. A wave; p. 34, l. 17. 2. Whim, conceit.

s. तरण *taraṇ* (; s. तॄ to cross) m. Passing over, escaping. One who is saved or delivered; p. 5, l. 3.

H. तरफना *taraphnā* | तलफना *talaphnā* v.n. To flutter, to palpitate, to be agitated; p. 124, l. 16.

S. तरव *tarav* (S. तरु; तृ to proceed) m. A tree; p. 206, l. 4.

S. तरसना *tarasnā* (; S. तर्ष् thirst) v.n. To long, to desire anxiously; p. 164, l. 17. 2. To pity.

S. तरु *taru* (S. तरु; तृ to proceed) m. A tree; p. 24, l. 18.

S. तरुन *tarun* (S. तरुण; तृ to pass away) adj. Young, juvenile; p. 81, l. 7.

S. तरुनाई *tarunāī* (S. तरुणता; तरुण = तरुन *q.v.*) f. Youth: p. 81, l. 12.

S. तर्ना *tarnā* (S. तरण passing; तृ to cross) v.n. To cross over, to be ferried, to escape; p. 194, l. 5.

S. तर्पन *tarpan* (S. तर्पण; तृप् to satisfy) m. A libation of water to the manes of deceased ancestors; p. 69, l. 5. Satisfaction.

S. तर्वर *tarwar* (: S. तरु a tree, वर excellent) m. Any large tree; p. 24, l. 10.

S. तर्वार *tarwār* | तल्वार *talwār* (S. तरवारि: तर passing, वृ to effect) f. A sword; p. 9, l. 19.

S. तले *tale* (; S. तल bottom) adv. Below. 2. postposition. Underneath; p. 9, l. 22.

H. तवा *tawā*, m. The iron plate on which bread is baked. तवे की बूंद (सी understood) *tawe kī būṅd*, Like a drop falling on a hot iron plate; p. 44, l. 30.

H. तहां *tahāṅ*, adv. There; p. 3, l. 23.

H. ता *tā* = ताहि (*q.v.*) To him; p. 20, l. 4.

S. तांडव *tāṅḍav* (S. ताण्डव; तण्डु the Muni who first taught it, or तडि to beat) m. Dancing with violent gesticulations, especially the frantic dance of Shiva and his votaries; p. 162, l. 21.

S. तांता *tāṅtā* (S. तति a line; तन् to spread) m. A string of camels, horses, etc.; p. 114, l. 16. A drove. 2. A row, a range, a series.

S. तांबा *tāmbā* (S. ताम्र; तम् to desire) m. Copper; p. 16, l. 10, and p. 71, l. 17.

H. ताकौ *tākau*, Braj form of उस को *us ko*, To him; dative of वह *wah*; p. 39, l. 27.

S. ताक्ना *tāknā* (S. तर्क?) v.a. To stare at, to see, to spy, to watch; p. 202, l. 21.

S. ताड़ *tāṛ* | ताल *tāl* (S. ताल; तल् to fix, or तन् to spread) m. The palm tree (Borassus flabelliformis); p. 29, l. 19. ताल बन *tāl ban*, A grove of palm trees.

S. तात *tāt* (S. तात; तन् to extend (his race or power) m. Father: p. 67, l. 17. 2. (S. तप्त) adj. Hot, warm.

H. ताते *tāte*, pron. inflec. From him, her, that or it.

H. तातें *tāteṅ* (Braj for उस से *us se*, ablative of वह) pron. dem. From that or this; p. 133, l. 22.

H. तात्नी *tātnī* | तात्नौ *tātnau* inflec. of तो *to* (a Braj form) Of him. भरोसौ तात्नौ *bharosau tātnau*, Confidence in him; p. 63, l. 7, where, however, ता *tā* may be the oblique case of तो *to* for ता कौ *tā kau*, and तनौ *tanau* may be the possessive of तू *tū*, when तनौ भरोसौ *tanau bharosau* will be—Thy confidence, ता *tā*—in him.

S. तान *tān* (S. तान; तन् to extend) f. A tune, the key-note in music; p. 56, l. 12.

S. तान्ना *tānnā* (; S. तन् to stretch) v.a. To extend, to stretch, to expand; p. 42, l. 27.

S. तामस *tāmas* (S. तामस; तमस् the third of the qualities incident to the state of humanity; the *Tama-Guna* or property of darkness—whence proceed folly, ignorance, mental blindness, worldly

delusion, etc. ; तम् to be disturbed) m. Mental darkness or ignorance ; p. 46, l. 3.

s. तामसी *tāmasī* (; s. तामस् *q.v.*) adj. Dark. Irascible, vindictive ; p. 179, l. 14.

s. तारण *tāraṇ* (s. तारण ; तॄ to cross) m. One that sets free or delivers. The act of freeing, salvation, deliverance. तारण तरण *tāraṇ taraṇ*, The Saviour of the saved ; p. 5, l. 3.

s. तारा *tārā* (s. तारा ; तॄ to pass or proceed) m. A star ; p. 7, l. 5.

s. तारि *tāri*, (; s. तड् to beat) f. Beating time, musical cadence or measure ; p. 31, l. 18, where it is—the clapping the hands—in the ablative with तें understood ; in the accusative with the same meaning at p. 77, l. 10.

s. तार्ना *tārnā* (तारण ; तॄ to cross) v.a. To free, to rid, to exempt from further transmigration ; p. 57, l. 26.

s. ताल *tāl* (s. ताल ; तड् to beat) m. Beating time in music, musical time or measure. 2. Slapping or clapping the hands together or against the arms. ताल ठोक्ना (or) मार्ना *tāl ṭhoknā* (or) *mārnā*, v.a. To strike the hand against the arms preparatory to wrestling ; p. 60, l. 19.

s. ताला *tālā* (s. ताल ; तल् to fix) m. A lock ; p. 12, l. 16.

s. ताली *tālī* (; s. ताल a lock) f. A key. 2. Clapping of the hands together ; p. 24, l. 24.

s.p. ताव *tāw* (s. ताप or p. تاب) f. Heat. 2. Passion, rage. 3. Strength, power. 4. Splendour, dignity. 5. Twist, coil, contortion. ताव पेच खाना *tāw pech khānā*, v.n. To be heated. 2. To be angry ; p. 231, l. 5.

h. तासु *tāsu* (: ता inflec. of सो he, that, सु with), With him, her, or it,—but at p. 141, l. 10, तासु के संग *tāsu ke saṅg*, With her (here the entire word तासु appears to be the inflection of सो).

h. तासों *tāsoṅ*, Braj form of उस से, ablative of वह he, With him ; p. 55, l. 2.

h. ताहि *tāhi*, dative of सो, Hindī form of तिसे to her, To him, her, or it ; p. 20, l. 3.

h. ताइत *tāit*, m. An amulet, a charm ; p. 21, l. 2.

s. तिगन *tigan* (s. त्रिगुण : त्रि three, गुण quality) adj. Threefold. Raised two tones (in music) ; p. 56, l. 12.

s. तिजारी *tijārī* (s. त्रितीयज्वर : त्रितीय third, ज्वर fever) f. A tertian fever ; p. 138, l. 3.

s. तित *tit* (s. तत्र) adv. Thither, there ; p. 139, l. 5.

s. तिथ *tith* / तिथि *tithi* (s. तिथि ; अथ् to go *or* proceed) f. A lunar day ; p. 16, l. 6.

h. तिन्के *tinke*, gen. pl. of सो *q.v.* Of them ; p. 2, l. 9

s. तिन *tin* / तिन्हें *tinheṅ* dative pl. of तौन *q.v.* To them ; p. 18, l. 24.

s. तिबारा *tibārā* (; s. त्रि three, वार door) m. A hall or room with three doors ; p. 33, l. 11. 2. adj. Thrice.

s. तिर्छा *tirchhā* (s. तिर्य्यच ; तिरस् crookedly, अञ्च् to go) adj. Crooked, across, bent. तिर्छा हाथ कर *tirchhā hāth kar*, Striking obliquely ; p. 59, l. 10.

s. तिय *tiya* (s. स्त्री *q.v.*) f. A woman ; p. 60, l. 10.

s. तिल *til* (s. तिल ; तिल् to be unctuous) m. A plant from which oil is expressed ; p. 163, l. 7.

s. तिलक *tilak* (s. तिलक ; तिल् to be unctuous) m. A mark or marks made with colored earths or unguents upon the forehead and between the eye-

brows, either as an ornament or a sectarial distinction; p. 16, l. 17.

H. तिस्से *tisse*, ablative of तो *q.v.* From this; p. 7, l. 24.

S. तिहत्तर *tihattar*, num. Seventy-three; p. 145, l. 4.

H. तिहरे *tihare*, m. / तिहारी *tihārī*, f. / तिहारे *tihāre*, m. / तिहारौ *tihārau*, m. — the Hindī form of तुम्हारे, etc. pron., 2 p. Your; p. 13, l. 26.

H. तिहूं *tihūṅ*, adj. Three.

S. तिहरा *tihrā* (; s. त्रीणि three) adj. Triple; p. 152, l. 21.

S. तीक्षण *tīkshaṇ* / तीछन *tīchhan* (s. तीक्ष्ण; तिज् to sharpen) adj. Sharp; p. 60, l. 6.

S. तीखा *tīkhā* (s. तीक्ष्ण : तिज् to sharpen) adj. Pungent, hot. 2. Angry, passionate. 3. Sharp, penetrating. 4. Sharp (in music); p. 56, l. 11.

S. तीता *tītā* (s. तिक्त ; तिज् to sharpen) adj. Bitter. 2. Pungent, hot; p. 27, l. 10.

S. तीन *tīn* (; s. त्रि three), Three; p. 3, l. 7.

S. तीर *tīr*, m. The bank of a river, the shore of the sea; p. 3, l. 24.

S. तीरथ *tīrath* (s. तीर्थ ; तॄ to pass over) m. A place of pilgrimage; p. 57, l. 24.

S. तीय *tīya* (*vide* तिय); p. 171, l. 22.

S. तीयल *tīyal* (; s. तीय a woman) f. A suit of female clothes; p. 117, l. 15.

S. तीसरा *tīsrā* (s. तृतीय : त्रि three) ord. n. Third; p. 55, l. 5.

S. तुंग *tuṅg* (s. तुङ्ग ; तुजि to guard) adj. High, tall; p. 34, l. 17.

H. तुझे *tujhe*, acc. of तू *tū*, pron. 2 p. Thee; p. 6, l. 18.

H. तुत्राना *tutrānā*, v.n. To lisp, to speak imperfectly (as a child); p. 21, l. 28.

H. तुतलाना *tutlānā* = तुत्राना *q.v.*; p. 22, l. 22.

S. तुपक *tupak*, m. A matchlock; p. 14, l. 19. तुपक छोड़ने *tupak chhoṛne*, To fire a matchlock. (This is here a strange anachronism.)

H. तुम *tum*, pl. nom. of तू *tū*, pron. 2 p. Ye or you; p. 6, l. 14.

H. तुम्हतनौ *tumtanau* (a Braj pl. inflection of तू thou) Of you, your; p. 111, l. 28.

H. तुम्हें *tumheṅ*, dative pl. of तू *tū*, thou, *q.v.* To you; p. 4, l. 10.

H. तुम्हरी *tumhrī* (Braj form of तुम्हारी *tumhārī*, gen. pl. of तुम pron. 2 p.) Your; p. 46, l. 6.

S. तुरंग *turaṅg* (s. तुरङ्ग : त्वर् speed, ग that goes, व being changed to उ) m. A horse; p. 131, l. 6.

S. तुरंत *turaṅt* / तुरत *turat* (s. त्वरित : त्वर् to make haste) adv. Quickly, instantly, directly; p. 6, l. 12.

H. तुरही *turhī*, f. A trumpet, a clarion; p. 29, l. 16.

S. तुल *tul* (s. तुल्य ; तुल् to resemble) adj. Alike, like. तुल कर खड़े रहना *tul kar khaṛe rahnā*, v.n. To stand front to front ready for battle; p. 174, l. 7.

S. तुलसी *tulsī* (s. तुलसी : तुला resemblance, षो to destroy, *i.e.*, unparalleled) f. A small shrub held in veneration by the Hindūs—holy basil (Ocymum sanctum). Tulsī or Tulasī was a nymph beloved by Krishṇ and by him metamorphosed into the plant so called; p. 52, l. 4. तुलसी का हीरा *tulsī kā hīrā*, f. Beads made of the wood of the Tulsī plant.

S. तुसाल *Tusāl*, m. Name of a dæmon, one of the ministers of Kans; p. 61, l. 28.

H. तू *tū*, pron. 2 p. Thou; p. 2, l. 10.

s. तृण *triṇ* / तृन *triṇ* (s. तृण ; तृह् to hurt, *i.e.*, by cattle) m. Grass ; p. 25, l. 9.

s. तृनावर्त *Triṇāwart* (perhaps from तृह् to hurt) m. A dæmon who flew away with Krishṇ, and endeavoured to slay him ; but was dashed in pieces by him ; p. 19, l. 15.

s. तृषावंत *trishāwañt* (; s. तृष् to thirst) adj. Thirsty ; p. 201, l. 7.

s. तृन्वत *triṇwat* (s. तृण grass, वत् like) adj. Like grass, like a stone. Worthless ; p. 219, l. 20.

s. ते *te*, pron. They, those.

H. तें *teṅ* / ते *te* postp. From ; p. 31, l. 8. By, with, in, then.

s. तेईस *teīs*, num. Twenty-three ; p. 98, l. 22.

s. तेज *tej* (s. तेजस् ; तिज् to sharpen) m. Ardour, splendour, glory, strength, energy. 2. Fiery heat ; p. 30, l. 23.

s. तेज्मान *tejmān* / तेज्वंत *tejwañt* / तेजस्वी *tejaswī* (s. तेजस्विन् ; तेजस् renown) Glorious, splendid, famous ; Preface, and p. 57, l. 11.

s. तेरस *teras* (s. त्रयोदशी : त्रयस् for त्रि three, दशन् ten) f. The thirteenth day of the lunar fortnight ; p. 7, l. 7.

s. तेल *tel* (s. तैल ; तिल sesamum) m. Oil ; p. 105, l. 18. तेल चढ़ाना *tel charhānā*, v.a. To anoint the head, shoulders, hands, and feet of the bride and bridegroom with oil mixed with turmeric during the marriage ceremony.

H. तेह *teh*, m. Anger, passion ; p. 44, l. 9.

H. तेहर *tehar* (*vide* जेहर) ; p. 152, l. 22.

H. तै *tai*, adj. So many ; p. 68, l. 20.

H. तैं *taiṅ*, pr. 2 p. (older form of तू *tū*) Thou ; p. 2, l. 11.

H. तो *to* / तौ *tau* pron. 3 p. He, she, it, this. Genitive pl. तिन्के *tinke*, Of them ; p. 2, l. 9.

s. तो *to* (s. तु) A correlative particle introducing the answer to a conditional proposition, as—जो तू आवेगा तो पावेगा *jo tū āwegā to pāwegā*, If thou wilt come *then* thou shalt receive. An emphatic adverb, as—मैं तो आता था, पर उस्ने आने न दिया *maiṅ to ātā thā, par usne āne na diyā*, I *indeed* was coming but he would not suffer me ; p. 2, l. 6.

H. तोंहीं *toṅhīṅ*, adv. Just then ; p. 15, l. 4.

s. तोख *Tokh*, m. Name of a comrade of Krishṇ, the only cowherd whose name is given ; p. 26, l. 17. (Perhaps from तोक, A son).

s. तोड़ना *toṛnā* (s. त्रोटन) v.a. To break, to tear, to rend, to gather (as leaves) ; p. 29, l. 16.

H. तोतला *totlā*, adj. Lisping, stuttering, speaking imperfectly (as a child) ; p. 21, l. 4.

s. तोरन *toran* (s. तोरण ; तुर् to hasten, *i.e.*, by which people pass) m. Strings of flowers suspended across gateways on public festivals ; p. 71, l. 22.

H. तोहि *tohi*, dative sin. of pron. 2 p. तें *teṅ*. To thee ; Preface.

H. तौलों *tauloṅ* (: तौ *q.v.*, लों *q.v.*) adv. So long, meanwhile ; p. 34, l. 10.

H. तौहू *tauhū*, adv. Even then ; p. 31, l. 7. (Braj form of तो भी *to bhī*).

s. त्रास *trās* (s. त्रास ; त्रस् to fear) m. Fear, terror ; p. 60, l. 10.

s. त्राह *trāh* / त्राहि *trāhi* (s. त्राहि) interj. Mercy ! Save ! त्राह कार *trāh kār*, Cry for mercy ; p. 174, l. 17. त्राहि त्राहि कर्ना *trāhi trāhi karnā*,

v.a. To cry out for mercy; p. 138, l. 8.

s. त्रिपुंड *tripuṇḍ* (s. त्रिपुण्ड्र : त्रि three, पुण्ड्र a line on the forehead ; पुण्डि to rub) m. Three horizontal lines drawn on the forehead by the Shaivas and Shaktas, or followers of Shiva and Shakti, respectively ; p. 199, l. 13.

s. त्रिबेनी *tribenī* } त्रिवेनी *trivenī* } (s. त्रिवेणी : त्रि three, वेणी a braid of hair ; वी to go) f. The confluence of three sacred rivers, especially that of the Gangā, Yamunā, and Saraswatī,—which latter is supposed to join the other two under ground, at Allāhabād ; p. 137, l. 24.

s. त्रिभंगी *tribhangī* (: s. त्रि three, भङ्ग broken) adj. Standing with legs, loins, and neck bent ; p. 27, l. 8.

s. त्रिभुवन *tribhuwan* (s. त्रिभुवन : त्रि three, भुवन world) m.n. The three worlds, *viz.*, heaven, earth, and hell ; the universe. त्रिभुवन पति *tribhuwan pati*, Lord of the three worlds—a name of Krishṇ ; p. 76, l. 18.

s. त्रिया *triyā* (s. स्त्री) f. A woman or female in general ; p. 93, l. 5.

s. त्रियोदशी *triyodashī* (: s. त्रि three, दशन् ten) f. The thirteenth day of the lunar fortnight ; p. 65, l. 13.

s त्रिलोक *trilok* (: त्रि three, लोक world) m. The three worlds. *Vide* त्रिभुवन.

s. त्रिलोकी *trilokī* (s. त्रिलोकी : त्रि three, लोक world) f. The aggregate of the three worlds,—or heaven, earth, and hell collectively. The universe ; p. 22, l. 12. त्रिलोकी नाथ *trilokī nāth*, Lord of the universe ; p. 17, l. 23. (Epithet of Krishṇ.)

s. त्रिलोचन *trilochan* (s. त्रिलोचन : त्रि three, लोचन eye) adj. Tri-ocular, three-eyed ; p. 175, l. 16.

s. त्रिशूल *trishūl* (s. त्रिशूल : त्रि three, शूल a dart) m. A trident, a three-pointed pike or spear, borne especially by Shiva ; p. 148, l. 13.

s. त्रिशूल पाणि *trishūl pāṇi* (: s. त्रिशूल trident, पाणि hand) m. One in whose hand is the trident. Grasper of the trident—a title of Shiva ; p. 161, l. 13.

s त्रेता *tretā* (: त्रै to preserve, इत obtained) f. The second, or Silver Age (*see* युग) ; p. 3, l. 2.

s त्याग *tyāg* (s. त्याग ; त्यज् to abandon) m. Abandonment, leaving, forsaking, renouncing.

s. त्यागी *tyāgī* (s. त्यागी ; त्याग *q.v.*) m. An abandoner. One who relinquishes ; but chiefly applied to the religious ascetic, or one who abandons sublunary objects, passions, etc. ; p. 219, l. 16.

s. त्याग्ना *tyāgnā* (; त्याग abandoning ; त्यज् to forsake) v.a. To leave, to forsake, to abandon, to desert ; p. 130, l. 3.

थ

s. थंभ *thambh* } थांभ *thāmbh* } (s. स्तंभ ; ष्टभि to stop) m. A post, a pillar.

s. थंभ्ना *thambnā* (s. स्तम्भ ; ष्टभि to stop) v.n. To cease ; p. 19, l. 23. To be restrained, to stop. 2. To be supported.

s. थकित *thakit* (s. स्थगित ; स्थग् to cover) adj. Wearied. Stopped, motionless, astonished ; p. 46, l. 26.

s. थक्ना *thaknā* (s. स्थग्न so given in dictionaries, but most doubtful) v.n. To be wearied or fatigued ; p. 33, l. 2. To be fascinated ; p. 59, l. 16.

H. थपेड़ा *thapeṛā*, m. A slap, a box, a buffet; p. 77, l. 2.

थर्थराना *thartharānā* } v n. To tremble, to quiver,
H. थर्हर्ना *tharharnā* } to shiver, to shake with
थर्हराना *tharharānā* } rage or fear. थर्थर कांप्ना *tharthar kāmpnā*, To shake with rage or fear; p. 7, l. 2.

S. थल *thal* (s. स्थल ; स्थल् to be firm) m. A place. 2. Firm or dry ground; p. 138, l. 7.

S. थल्चर *thalchar* (: s. स्थल dry ground, चर moving) m. A terrestrial animal; p. 138, l. 7.

S. थांभ्ना *thāmbhnā* (trans. of थंभ्ना *q.v.*) v.a. To support, to prop. 2. To shield, to protect. 3. To withhold, to restrain; p. 31, l. 6. 4. To strip, to pull up.

S. थाना *thānā* (s. स्थान *q.v.*) m. A station, a guard; p. 105, l. 22.

S. थाम्ना *thāmnā* (*see* थांभ्ना); p. 148, l. 6.

थार *thār* } (s. स्थाल a caldron, स्था to stand) m.
S. थाल *thāl* } A large flat dish; p. 9, l. 11.

H. थाह *thāh*, f. A ford, bottom. थाह होना *thāh honā*, To become fordable; p. 14, l. 10.

S. थिर *thir* (s. स्थिर ; स्था to stay) adj. Fixed, stable, settled; p. 193, l. 12.

H. थेई थेई *theī theī*, f. Merry-making. थेई थेई कर्ना *theī theī karnā*, To make merry; p. 184, l. 13.

H. थोड़ा *thoṛā*, adj. A little, small, few, scanty, seldom, less; p. 5, l. 8.

द

S. दई *daī*, Braj form of दी, past. part. f. of देना, to give. तुम्हरी दई *tumhrī daī*, Given by you; p. 46, l. 6.

S. दए *dae* (At p. 62, l. 10, probably the 3 p. pl. past tense, of देनौ *denau*, to give, ने *ne* being omitted, as is usual in Braj). Gave.

S. दंड *daṅḍ* (s. दण्ड ; दम् to tame) m A stick, a staff. 2. Punishment by amercement, a putting to death, fine, penalty; p. 81, l. 18.

S. दंड्वत *daṅḍwat* (s. दण्डवत् ; दण्ड a stick) f. Hindū salutation, bow, obeisance; p. 5, l. 6.

S. दंतबक्र *Daṅtabakr* = बक्रदंत *q.v.*; p. 214, l. 16.

S. दंतीला *daṅtīlā* (s. दन्तुर ; दन्त a tooth) adj. Having large or prominent tusks (an elephant, bear, etc.); p. 172, l. 25.

H. दंद्ना *daṅdnā*, v.n. To be dispelled; p. 189, l. 7.

S. दक्षन *dakshan* (s. दक्षिण ; दक्ष् to prosper m. The south; p. 198, l. 21. 2. adj. Southern.

दक्षिना *dakshinā* } (s. दक्षिणा ; दक्ष् to prosper)
S. दछ्ना *dachhnā* } f. Presents to Brāhmans upon solemn or sacrificial occasions, fee; p. 16, l. 11.

H. दड़क्ना *daṛaknā*, v.n. To split, to be rent or torn, to crack; p. 163, l. 8.

S. दधि *dadhi* (s. दधि ; धा to have) m. Sour thick milk, coagulated milk; p. 16, l. 15. दधिकादौं *dadhikādauṅ* (s. दधिकर्द्दम : दधि milk, कर्द्दम clay) m. Coagulated milk and clay—thrown by people at each other in sport on the festival of Krishṇ's birth-day; p. 16. l. 15.

S. दधीच *Dadhīch*, m. A Muni who devoted himself to death that the Gods might arm themselves with a weapon made from his thigh-bone—to slay the dæmon Vṛita who was otherwise invulnerable; p. 201, l. 14.

H. दपट्ना *dapaṭnā*, v.n. To rush or spring upon;

p. 127, l. 16. 2. v.a. To gallop; p.129. l. 22. 3. To rebuke.

H. दपटाना *dapṭānā* (caus. of दपटना *q.v.*) v.a. To gallop.

H. दबाना *dabānā* (caus. of दबना *q.v.*) v.a. To press down; p. 26, l. 6. To check, to curb. आंख दबाना *āṅkh dabānā*, To wink the eye; p.142, l.29.

H. दबना *dabnā*, v.n. To be pressed down, to be crushed; p. 18, l. 13. 2. To give way, to be awed. 3. To be concealed. दबे पांव *dabe pāṅw* (: दबे past. part. pl. abl. of दबना, पांव foot) With silent steps, softly, gently; p. 169, l. 13.

H. दमक *damak*, f. Glitter; p. 34, l. 5. 2. Ardour.

S. दमघोष *Damaghosh*, m. Name of the father of Sisupāl; p. 207, l. 15.

H. दमामा *damāmā* (P دمامه) m. A large kettle-drum; p. 13, l. 6.

S. दरस *daras* (S. दर्श ; दृश् to see) m. Sight; p. 47, l. 8. 2. Conjunction of sun or moon, or day of new moon.

S. दरिद्री *daridrī* (; S. दरिद्र *q.v.*) m. Poor, wretched, indigent; p. 49, l. 19.

S. दरिद्र *daridr* (S. दारिद्र ; दरिद्रा to be poor) adj. Poverty, indigence; p. 44, l. 4.

S. दर्पन *darpan* (S. दर्पण ; दृप् to excite, to shine) m. A mirror; p. 52, l. 15.

H. दर्राना *darrānā*, v.n. To go straight and quickly without fear or delay, to go straight forwards; p. 31, l. 5, where दर्राने would be more grammatical.

S. दर्शन *darshan* / दर्सन *darsan* (S. दर्शन ; दृश् to see) m. Sight, appearance, interview; p. 13, l. 10.

S. दया *dayā* (S. दय compassion ; दय् to preserve) f. Tenderness, compassion, clemency. दया सागर *dayā sāgar*, Sea of compassion; Preface.

S. दयायुत *dayāyut*, Endowed with दया *q.v.*. Clement.

S. दयाल *dayāl* (S. दयालु ; दया compassion) Tender, compassionate, merciful; Preface.

S. दयावंत *dayāwant* (S. दयावत् ; दया *q.v.*) adj. Merciful, compassionate; p. 39, l. 12.

S. दयौ *dayau*, Braj form of दिया *diyā*, 3 p. sin. past tense of देनौं *denauṅ*, to give, Has given; p. 86, l. 1.

S. दल *dal* (; S. दल् to divide) m. A leaf. 2. A heap. 3. A large army; p. 8, l. 1.

S. दलन *dalan* (S. दलन ; दल् to divide) adj. Dividing, tearing asunder, splitting; p. 103, l. 11.

S. दल बादल *dal bādal* (: दल mass, बारिद a cloud) m. A mass of clouds.

S. दलिद्री *dalidrī* = दरिद्री (*q.v.*); p. 218, l. 27.

S. दलना *dalnā* (; S. दलन *q.v.*) v.a. To grind coarsely, to split pulse.

S. दशम *dasham* (S. दशम ; दशन् ten) ord. n. Tenth.

S. दशमी *dashamī* (; दशम *q.v.*) f. The tenth day of the lunar fortnight.

S. दशा *dashā* / दसा *dasā* (S. दशा ; दश् to divide) f. State, condition; p. 12, l. 24.

S. दसन *dasan* (S. दशन ; दंश् to bite) m. A tooth; p. 77, l. 10.

S. दसम *dasam* (S. दशम ; दशन् ten) The tenth; Preface.

S. दसों द्वार *dasoṅ dwār* (: दशन् ten, द्वार gate) m. The ten passages for the actions of the faculties, viz.—the eyes, ears, nostrils, mouth, penis, anus,

and crown of the head. The last, however, is not acknowledged in any Sanskrit works of authority; p. 64, l. 4.

s. दह *dah* (s. ह्रद) m. Very deep water, an abyss or profound pool. काली दह *Kālī dah,* The pool of the Serpent Kālī; p. 30, l. 10. कंवल दह *kanwal dah,* A deep pool abounding in water-lilies.

H. दहड़ दहड़ *dahaṛ dahaṛ,* m. A furious conflagration; p. 34, l. 18. दहड़ दहड़ जल्ना *dahaṛ dahaṛ jalnā,* v.n. To burn furiously; p. 34, l. 18.

H. दहाड़्ना *dahāṛnā,* v.n. To roar as a lion or tiger; p. 14, l. 20.

s. दही *dahī* (s. दधि ; धा to have) m. Sour milk, coagulated milk; p. 16, l. 15. (This is one of the exceptions to the feminine terminations in ي. Europeans in India wrongly pronounce the word making it "*dye.*"

s. दहेंडी *daheṅḍī* / दहैंडी *dahaiṅḍī* (: दही ; s. दधि, हण्डी a vessel) f. A vessel in which sour milk is kept; p. 16, l. 14.

s. दह्नौं *dahnauṅ* (s. दहन ; दह् to burn) v.a. To burn. दह्यौ *dahyau,* 3 p. sin. past tense, He burned; p. 124, l. 15. 2. To remove; p. 140, l. 12.

s. दह्यौ *dahyau,* m. The Braj form of दही (*q.v.*), Thick sour milk; p. 21, l. 19.

s. दाइक *dāik* / दाई *dāī* (s. दायक ; दा to give) m. A donor. बर दाई *bar dāī,* Bestower of boons; p. 199, l. 25.

H. दाऊ *dāū,* m. An appellation of a father or elder brother. A contracted form of Baladev—Krishn's brother; p. 29, l. 8.

s. दांत *dāṅt* (s. दंत ; दम् to subdue) m. A tooth. दांत पीस्ना *dāṅt pīsnā,* To gnash the teeth; p. 3, l. 27.

H. दांव *dāṅw* / दाव *dāw* m. Ambuscade, ambush, snare. 2. Time, turn, opportunity; p. 134, l. 19. Vicissitude. 3. Twist in wrestling. दाव चल्ना *dāw chalnā,* To succeed in a wrestling trick or twist; p. 131, l. 25. दाव चलाना *dāw chalānā,* v.n. To take advantage, to use an artifice. दाव पकड़्ना *dāw pakaṛnā,* To wrestle. दाव बैठ्ना *dāw baiṭhnā,* To lie in ambush, to lurk.

E. दाक्तर उलियम हंटर *Dāktar Uliyam Hanṭar,* Doctor William Hunter.

s. दाख *dākh* (s. द्राक्षा ; द्राक्ष् to desire) f. A raisin, a grape. 2. A vine; p. 142, l. 8.

s. दाड़िम *dāṛim* (s. दाड़िम ; दल् to divide) m. A pomegranate (Punica Granatum); p. 163, l. 8.

s. दाढ़ी *dāṛhī* (s. दाढिका ; दाढा a tooth, कन near, *i.e.,* near the teeth) f. A beard; p. 121, l. 15.

s. दातन *dātan* (s. दंन्तधावन : दन्त a tooth, धाव् to clean) f. A tooth-brush; p. 203, l. 6.

s. दाता *dātā* (s. दाता ; दा to give) m. A bestower; p. 41, l. 11. 2. adj. Liberal.

s. दाद *dād* (दद्रु) m. Ringworm, herpes; p. 138, l. 3.

s. दादुर *dādur* (s. दर्दुर ; दॄ to tear) m. A frog; p. 35, l. 9.

s. दान *dān* (s. दान ; दा to give) m. Gift, giving, donation, alms; Preface.

s. दानव *dānav* (s. दानव ; दनु mother of these beings) m. A dæmon, a giant; p. 45, l. 17.

s. दानी *dānī* (; s. दा to give) adj. Giving, bestowing, liberal; *e.g.,* सुख दानी *sukh dānī,* Bestowing ease; p. 2, l. 2. दुख दानी *dukh dānī,* Giving pain; p. 3, l. 29.

H. दाब्ना *dābnā* (caus. of दब्ना) v.a. To press, to shampoo; p. 46, l. 13.

s. दाम *dām* (s. दामन : दो to cut or divide) f. A rope, a cord, a string.

s. दामिनी *dāminī* (s. सौदामिनी lightning ; सुदामन a cloud) f. Lightning ; p. 52, l. 27.

s. दारक *Dārak* (s. दारक ; दॄ to tear) m. The charioteer of Vishnu ; p. 113, l. 7.

s. दारा *dārā* (s. दार ; दॄ to take, to tear (a husband) f. A wife ; p. 41, l. 25.

s. दायक *dāyak* (s. दायक ; दा to give) m. A giver ; *vide* सुख दायक *sukh dāyak*.

H. दायजा *dāejā* / दायजौ *dāejau* m. A dowry or wife's portion ; p. 145, l. 10.

s. दावा अग्नि *dāwā agni* / दावाग्नि *dāwāgni* (s. दावाग्नि : दाव a forest ; दु to run, अग्नि fire) The conflagration of a forest kindled by a tempest or other cause ; p. 33, l. 5.

s. दावानल *dāwānal* (: दाव a forest, अनल a fire) f. The conflagration of a forest (*vide* दावाग्नि).

s. दास *dās* (s. दास ; दा to give, *i.e.*, to whom wages are given) m. A slave, p. 9, l. 10. दासी *dāsī* (fem. of दास) A female slave ; p. 9, l. 10.

s. दाह *dāh* (s. दाह ; दह् to burn) f. Burning, heat. दाह देना *dāh denā*, To light the funeral pile (according to Price, but here दाह is rather the root of the v. दाह्ना *dāhnā*, To burn, *q.v.*); p. 137, l. 14.

s. दाह्ना *dāhnā* (s. दक्षिण : दक्ष् to prosper) adj. Right, not left ; p. 65, l. 25. दाह्ना (दाहन ; दह् to burn) v.a. To burn, to vex ; p. 68, l. 6.

s. दिखाई *dikhāī* (: दिखाना to shew, *q.v.*) f. Sight, appearance ; p. 68, l. 27.

s. दिखारावौ *dikhārāwau*, 2 p. pl. imperative of दिखाराना *dikhārāwnā*, To shew. Shew ye ; p. 70, l. 16.

s. दिखाना *dikhānā* (causal of देखना *q.v.*) v.a. To shew ; p. 22, l. 10.

s. दिग *dig* (s. दिश्) m. Quarter, region, track, side, way-wards—as उत्तर दिग *uttar dig*, North-wards. The Hindūs reckon ten *digs* (*vide* दिगपाल *digpāl*). 2. Point of the compass.

s. दिगंबर *digambar* (: s. दिग् inflec. of दिश् space, अंबर vestment ; *lit.*, Whose only garment is the atmosphere) adj. Naked. 2. m. An order of Hindū ascetics, worshippers of Shiva, who go naked ; p. 4, l. 26.

s. दिगपाल *digpāl* (s. दिक्पाल : दिश् quarter, पाल who protects) m. A guardian deity of the quarters of the world, of which there are ten:—Brahmā presides over the Zenith, Ananta over the Nadir, Indr over the east, Agni over the south-east, Yama over the south, Nairṛit over the south-west, Varuna over the west, Pavan over the north-west, Kuver over the north, and Shiva over the north-east ; p. 13, l. 4.

s. दिन *din* (s. दिन ; दी to waste, or दो to destroy (darkness) m. A day ; Preface. दिन दिन *din din*, Day by day ; p. 21, l. 1.

s. दिया *diyā* (s. दीप *q.v.*) m. A lamp.

H. दिल्ली *Dillī*, f. Name of a city, Delhi the metropolis of Hindūstān ; Preface.

s. दिवस *divas* (s. दिवस ; दिव् to fly) m. A day ; p. 41, l. 5.

s. दिशाशूल *dishāshul* / दिसासूल *disāsūl* (: s. दिशा quarter, शूल thorn) m. A quarter to which it is deemed unlucky to travel on particular days ; p. 25, l. 12.

s. दिस *dis* = दिसा, *q.v.* ; p. 104, l. 19.

s. दिसा *disā* (s. दिशा ; दिश् to shew) f. Side, quarter, point of the compass. दसों दिसा *dasoṅ disā,* The ten regions or quarters of the world, *viz.,* the zenith, the nadir, the east, the south-east, the south, the south-west, the west, the north-west, the north, and the north-east; p. 13, l. 4.

s. दीठ *dīṭh* / दीठि *dīṭhi* (s. दृष्टि ; दृश् to see) f. Sight, a look, a glance ; p. 23, l. 5.

s. दीठ बचाना *dīṭh bachānā* (: s. दीठ sight, बचाना to avoid) v.n. To avoid the sight, to do a thing clandestinely ; p. 230, l. 8.

s. दीन *dīn* (; s. दी to waste or decay), Poor, needy, indigent ; p. 5, l. 18. दीन दयाल *dīn dayāl,* Merciful to the poor; p. 4, l. 18 : दीना नाथ *dīnā nāth,* Lord of the poor ; p. 24, l. 15 : and दीन बंधु *dīn bandhu,* Friend of the poor—are epithets of the Deity ; but also sometimes addressed to holy or illustrious men.

s. दीनता *dīnatā* / दीन्ता *dīntā* (s. दीनता ; दीन poor) f. Poverty. 2. Humility ; p. 47, l. 12.

s. दीना *dīnā,* the Braj form of दिया 3 p. sing. past tense of देना *denā,* To give : Gave ; p. 23, l. 2.

s. दीनौ *dīnau,* 3 p. sing. past tense of देनौ to give, (a Braj form for दिया *diyā*) Gave ; p. 70, l. 7.

s. दीप *dīp* (s. दीप : दीप् to shine) m. A lamp ; p. 32, l. 6. दीप *dīp* (s. द्वीप : द्वि two, *i.e.,* on both sides, आप् water) m. An island, any land surrounded by water. Hence the seven grand divisions of the terrestrial world, each of these being separated from the other by a circumambient sea. The seven Dwīpas, reckoning from the central one, are :—Jambu, Kusa, Plaksha, Sālmalī, Krauncha, Sāka, and Pushkara; p. 32, l. 2.

s. दीसना *dīsnā* (; s. दृश् to see) v.a. To look, to see. 2. v.n. To appear.

s. दुंदुभी *dundubhī* (s. दुन्दुभी : दुन्दु imitative sound, भा to utter) f. A large kettle-drum ; p. 79, l. 17.

s. दुख *dukh* (s. दुःख), Pain, distress, grief ; p. 3, l. 29. Difficulty, trouble. Fatigue. Annoyance. दुख पाना *dukh pānā,* To suffer grief. दुख दानी *dukh dānī,* Inflicting pain ; p. 3, l. 29. दुख दाई *dukh dāī,* Pain-inflicting ; p. 31, l. 13.

s. दुखारी *dukhārī* / दुखियारी *dukhiyārī* / दुखी *dukhī* (; s. दुःख *q.v.*) adj. Afflicted, in distress or pain ; p. 17, l. 4.

s. दुखित *dukhit* (; दुख *q.v.*) adj. Pained, distressed ; p. 19, l. 27.

s. दुखिया *dukhiyā* (; s. दुःख grief) adj. Grieved, distressed ; p. 124, l. 18.

s. दुखी *dukhī* (; s. दुःख pain) adj. Pained, distressed, afflicted ; p. 4, l. 4.

s. दुगन *dugan* (s. द्विगुण : द्वि two, गुण quality) adj. Twofold. Raised a full tone higher (in music) ; p. 56, l. 12.

s. दुति *duti* (s. द्युति ; द्युत् to shine) f. Splendour, light, beauty. दुति छीन *duti chhīn,* Of dim aspect, wan ; p. 83, l. 7.

s. दुपट्टा *dupaṭṭā* (: दु for दो two, पट cloth) m. A cloth thrown over the shoulders usually of two breadths sewn together—whence the name ; p. 29, l. 10.

s. दुबिद *Dubid,* m. Name of a monkey slain by Balarām ; p. 188, l. 2. 2. The chief minister of the Daitya Sālav—who struck down Pradyumn but was afterwards slain by him ; p. 211, l. 6.

s. दुब्धा *dubdhā* (s. द्वैविध्य : द्वि two, विध sort) f. Doubt, suspense, uncertainty; p. 41, l. 8.

s. दुर् *dur* (s. दुर्) A depreciative particle implying 1. Pain, trouble (bad, difficult, ill). 2. Inferiority (bad, vile, contemptible).

H. दुराना *durānā*, v.a. To conceal, to hide; p. 168, l. 13.

H. दुर्ना *durnā*, v.n. To be hidden, to be absent, to disappear, to lurk.

s. दुर्भिक्ष *durbhiksh* (s. दुर्भिक्ष : दुर् difficult, भिक्ष begging) m. A famine, a scarcity of food; p. 138, l. 25.

s. दुर्योधन *Duryodhan* (s. दुर्योधन : दुर् bad, युध to war, *i.e.*, the author of an unjust war) m. The eldest of the Kuru princes, and leader in the war against his cousins—the Pāṇḍus and Krishn—which is described in the Mahābhārat; p. 95, l. 18.

s. दुर्लभ *durlabh* (: दुर् difficult, लभ् to obtain) adj. Difficult to be obtained, hard to be acquired, rare.

H. दुलत्ती *dulattī* (: दो two, लात kick) f. A kick with the two hind legs of a quadruped; p. 29, l. 23.

H. दुल्हन *dulhan*, f. A bride; p. 120, l. 11.

s. दुवार *duwār* = द्वार (*q.v.*); p. 72, l. 4. (A Braj form).

s. दुष्कर्मी *dushkarmī* (: दुर् bad, कर्मी a doer) m. A sinner, a criminal.

s. दुष्ट *dusht* (s. दुष्ट ; दुष् to be corrupt) adj. Vile, wicked; p. 6, l. 19.

s. दुहाई *duhāī* (: s. द्वौ two, हाहा alas!) f. Crying out for justice, explanation. 2. An oath. नंद दुहाई *Nand duhāī*, An oath by Nand, *or* I swear by Nand; p. 37, l. 21. दुहाई तिहाई कर्ना *duhāī tihāī karnā*, To make reiterated complaints.

s. दुहूं *duhūṅ* (s. द्वौ) num. (a Braj form) The two; p. 77, l. 10.

s. दुहरा *duhrā* (; s. द्वौ two) adj. Double; p. 152, l. 21.

s. दूत *dūt* (s. दूत ; दु to go) m. A messenger, an ambassador; p. 17, l. 23. यम दूत *Yam-dūt*, The messenger of death; p. 64, l. 24.

s. दूध (s. दुग्ध ; दुह् to milk) m. Milk; p. 16, l. 22. दूधा भाती *dūdhā bhātī*, f. A ceremony performed the fourth day after marriage, wherein the bride and bridegroom eat milk, boiled rice and sugar together; p. 124, l. 2.

s. दूना *dūnā* (s. द्विगुण) adj. Double; p. 107, l. 12.

s. दूर *dūr* (s. दूर् : दुर् with difficulty, इण to go) m. Distance; p. 29, l. 19. adj. Distant, remote. adv. Far, aloof; p. 2, l. 11. दूर कर्ना *dūr karnā* To remove; p. 12, l. 26.

s. दूसासन *Dūsāsan*, m. A Kaurava whose arm was torn out by Bhīm; p. 216, l. 15.

s. दूसरा *dūsrā* (s. द्वौ) ord. num. Second; p. 6, l. 4.

s. दूहूं *dūhūṅ*, irreg. fut. 1 p. of देना *denā*, to give. I will give; p. 3, l. 29.

s. दृग *drig* (; s. दृश् to see) m. The eye; p. 34, l. 23.

s. दृढ़ *drirh* (s. दृढ़ ; दृह् to increase) adj. Firm, strong.

s. दृढ़ाना *drirhānā* (; s. दृढ़ strong) v.a. To strengthen; p. 131, l. 21.

s. दृढ़ता *drirhtā* (s. दृढ़ता ; दृढ़ firm ; दृह् to increase) f. Firmness, strength; p. 91, l. 4.

s. दृष्ट कूट *drisht kūt* (: दृष्ट obvious or seen, कूट illusion) m. An enigma, a riddle.

s. दृष्टांत *drishtānt* (: s. दृष्ट seen, अंत end) m. A parable, a simile, an example.

s. दृष्टि *drishti* (s. दृष्टि ; दृश् to see) f. Sight, vision ; p. 12, l. 22. 2. The eye.

s. दे *de* (s. दा) 2 p. sin. imperative of देना *denā*, to give, Give thou ; also past conj. part. of the same root, Having given ; p. 4, l. 16.

s. देउ *deu* (Braj for दे) 2 p. sin. imperative of देना *denā*, to give, Give thou ; p. 67, l. 18.

s. देंय *deṅe*, the Hindī form of देवें, 3 p. pl. aorist of देना, to give ; p. 21, l. 9.

s. देखा देखी *dekhā dekhī* (; देखना *q.v.*) f. Looking on, gazing ; p. 43, l. 8.

s. देखि *dekhi*, past conj. part. of देखना (*q.v.*) इ is often inserted in the past part. in Braj ; p. 14, l. 6.

s. देखोंगो *dekhoṅgau*, A Braj form of देखूंगा *dekhūṅgā*, 1 p. sing. future tense of देखना *dekhnā*, to see. I shall see ; p. 65, l. 24.

s. देखना *dekhnā* (; s. दृश् to see) v.a. To see, perceive, observe, mark, suspect ; p. 2, l. 8. देखि *dekhi*, Braj for देख, Having seen ; p. 30, l. 1.

s. देख्यौ *dekhyau* (Hindī form of देखा) past part. of देखना *q.v.* देख्यौ चाहत *dekhyau chāhat*, They desire to see ; p. 13, l. 18.

s. देखहिं *dekhhiṅ*, Braj form of देखें, 1 p. pl. imperative of देखनौ *dekhnau*, Let us see ; p. 71, l. 29.

s. देना *denā* (; s. दा to give) v.a. To give, to bestow ; p. 3, l. 30. It is much used in composition with the root of another verb which is rendered more forcible, as—डाल देना *ḍāl denā*, To fling away, to cast with contempt.

H. दे पटकना *de paṭaknā* (: देना to give, पटकना to dash) v.a. To dash down ; p. 29, l. 23.

H. डेरा *ḍerā*, m. A dwelling, a tent ; p. 72, l. 14.

s. देव *dev* (; s. देव ; दिव् to play (in heaven) m. A God. देव लोक *dev lok*, The world of the Gods ; p. 8, l. 6.

s. देवक *Devak* (s. देवक ; दिव् to play) m. The son of Āhuk, king of Mathurā and maternal grandfather of Krishṇ ; p. 6, l. 4.

s. देवकी *Devakī* (s. देवकी ; देवक a king of that name) f. The wife of Vasudev and mother of Krishṇ ; p. 5, l. 28.

s. देवन *dewan*, Braj form of देवों, gen. pl. of देव, A god of gods ; p. 44, l. 26.

s. देवा *dewā*, m. A giver ; p. 150, l. 7.

s. देवी *devī* (s. देवी ; दिव् to sport (in heaven) f. A goddess ; p. 8, l. 19. 2. A title very commonly given—*par excellence*—to the Goddess Durgā ; p. 28, l. 8.

s. देवता *devtā* (s. देवता ; देव divine) m. A god, a deity, a divine being ; p. 5, l. 25.

s. देवस्तुति *devstuti* (: s. देव a god, *q.v.*, स्तुति praise, *q.v.*) f. Praise of the deity ; p. 8, l. 12.

s. देश *desh* / देस *des* (s. देश ; दिश् to shew) A region, a country whether inhabited or not ; p. 7, l. 24.

s. देह *deh* (; s. दिह् to collect) f. The body ; p. 19, l. 28. देह संभालना *deh sambhālnā*, To keep up one's spirits, to be firm, to recover one's-self, as—तुम अपनी देह संभालो *tum apnī deh sambhālo*, Cheer up ! ; p. 4, l. 2. देह दुराना *deh durānā*, Pudenda obtegere ; p. 38, l. 3.

s. देहिंगे *dehiṅge*, 3 p. pl. future tense of देना *denā* to give, *q.v.* An irregular or Hindī form of देंग ; p. 4, l. 10.

s. देऊ *dehu*, A Braj form for दो 2 p. pl. imperative of देनौ *denau*, to give. Give ye ; p. 70, l. 16.

s. दैत्य *daitya* (s. दैत्य ; दिति wife of Kashyap and mother of the dæmons ; दो to cut) m. A Titan, a dæmon or giant ; p. 8, l. 15.

s. दैत्यनि *daityani*, Braj form of दैत्यों *daityoṅ*, case of the agent of दैत्य. The giants ; p. 31, l. 7.

s. दैवी *daiwī* (; s. दैव destiny, fate) adv. By chance, fortuitously ; p. 37, l. 11.

s. दै हौ *dai hau*, 2 p. pl. aorist or imperative of देनौं to give. Braj for दो *do*. You will give or give ye ; p. 140, l. 20, and p. 81, l. 17.

s. दै हौं *dai hauṅ*, Braj for दू I will give, 1 p. sin. aorist of देनौं *denauṅ*, to give ; p. 147, l. 11.

s. दो *do* (s. द्वौ) num. Two ; p. 16, l. 10.

s. दोउ *dou* (s. द्वौ) a Braj form, Two ; p. 60, l. 6.

H. दोना *donā*, m. Leaves folded up in the shape of a cup for holding betel, flowers, sweetmeats ; p. 27, l. 5. 2. (s. दमन्) Name of a flower, a species of Artemisia.

s. दोनों *donoṅ* (; s. द्वौ two) adj. Both, the two ; p. 24, l. 11, and p. 48, l. 9.

s. दोष *dosh* (दोष ; दुष् to be defective) m. A crime, a fault ; p. 4, l. 10.

s. दोहा *dohā* (s. द्विपद्य) m. A couplet ; Preface.

s. दोहता *dohtā* (s. दौहित्र ; दुहितृ a daughter) m. Son-in-law, daughter's son ; p. 157, l. 16.

s. दोह्ना *dohnā* (s. दोहन ; दुह् to milk) v.a. To milk ; p. 89, l. 28.

s. दोह्नी *dohnī* (s. दोह्ना ; दुह् to milk) f. A vessel for holding milk, a milk-pail ; p. 21, l. 30.

s. दौड़ना *dauṛnā* (s. धोर् to be alert) v.n. To run ; p. 2, l. 9. To rush, gallop, assault.

s. द्यौरानी *dyaurānī* (; s. देवर husband's younger brother) f. Husband's younger brother's wife ; p. 79, l. 25.

s. द्रव्य *dravya* (s. द्रव्य ; द्रु a tree) m. Wealth, property ; p. 139, l. 19. 2. Substance, matter, a thing.

s. द्राविड़ *Draviṛ* (s. द्राविड ; द्रविड a name of an outcast tribe descended from a degraded Kshatriya) m. Name of a country which terminates the peninsula of India ; its northern limits appear to lie between the twelfth and thirteenth degree of north latitude ; p. 217, l. 13.

s. द्रुम *drum* (s. द्रुम ; द्रु to go) m. A tree in general ; p. 52, l. 8.

s. द्रुमलिक *Drumalik*, m. A dæmon whose first name was काल्नेम *Kālnem*, and who was the father of Kans by Pawanrekhā, the wife of Ugrasen ; p. 6. l. 10.

s. द्रोनाचार्य *Dronāchārya* (s. द्रोणाचार्य्य : द्रोण Drona, आचार्य्य a preceptor) m. Drona, the son of Bharadwājā, and the Āchārya or teacher of the Pāṇḍava princes ; p. 134, l. 10.

s. द्रोह *droh* (s. द्रोह ; द्रुह् to hurt) m. Spite, malice, hatred.

s. द्रोहिया *drohiyā*, द्रोही *drohī* (; s. द्रोह malice ; द्रुह् to hurt) adj. Spiteful, malicious ; p. 61, l. 18.

s. द्रौपदी *Draupadī* (s. द्रौपदी ; द्रुपद Drupad her father) f. Name of the daughter of Drupad, king of Panchāla, and common wife of the five Pāṇḍava princes ; p. 140, l. 6.

s. द्वादश *dwādash* (s. द्वादश : द्वा for द्वि two, दशन् ten) num. Twelve.

s. द्वादशी *dwādashī* (s. द्वादशी : द्वा for द्वि two,

दशन् ten) f. The twelfth day of the lunar fortnight; p. 46, l. 25.

s. द्वापर *dwāpar* (; s. द्वा for द्वि two, पर् after) m. The third Yug or Age of the Hindūs, comprising 864,000 years; p. 3, l. 2.

s. द्वार *dwār* (s. द्वार ; द्वृ to cover or hold) m. A door. द्वारे *dwāre*, adv. At the door; p. 21, l. 30. राज द्वार *rāj dwār*, m Royal gate, gate of a palace; p. 74, l. 20

s. द्वार पाल *dwār pāl* (s. द्वारपाल : द्वार a gate, पाल who protects) m. A door-keeper, a warder; p. 74, l. 20.

s. द्वारिका *Dwārikā* (s. द्वारिका ; द्वार a door) f. The name of a city sacred among the Hindūs, on the coast of Kattiawāṛ, to which Krishṇ removed from Mathurā. द्वारिका नाथ *Dwārikā nāth*, Lord of Dwārikā (an epithet of Krishṇ); p. 97, l. 22.

s. द्विज *dwij* (s. द्विज : द्वि twice, ज born) m. A man of either of the first three classes, who are said to be twice-born. A regenerate man. The Brāhmans, Kshatris, and Vaishyas are initiated into their respective castes by investiture with the sacred thread, which is called a second birth. द्विजन *dwijan*, Braj for द्विजों *dwijoṅ*; p. 157, l. 10.

s. द्वितीय *dwitīya* (s. द्वितीय ; द्वि two) ord. num. Second.

s. द्वीप *dwīp* (*vide* द्वीप); p. 166, l. 1.

s. द्वेष *dwesh* (s. द्वेष ; द्विष् to hate) m. Enmity, hatred; p. 208, l. 10.

s. द्वै *dwai* (s. द्वौ) adj. Two; p. 56, l. 5.

ध

H. धकधकाना *dhakdhakānā*, v.n. To palpitate; p. 163, l. 6.

H. धकेल *dhakel*, m. Shove, push, thrust; p. 64, l. 2.

s. धज *dhaj* (s. ध्वज ; ध्वज् to go) f. Shape, form; p. 163, l. 21. 2. Attitude, posture. धज पलटना *dhaj palaṭnā*, To change one's attitude (in sword-playing, etc.); p. 202, l. 15.

H. धड़ *dhaṛ* / धर *dhar* (the Braj form) } m. The body, headless trunk; p. 75, l. 22.

H. धड़क *dhaṛak*, verbal noun, f. Palpitation, fear.

H. धड़का *dhaṛkā*, m. Fear, doubt, suspense. 2. Palpitation.

H. धड़कना *dhaṛaknā*, v.n. To palpitate; p. 18, l. 6

s. धतूरा *dhatūrā* (s. धत्तूर ; धेट् to drink) m. Thorn-apple (Datura fastuosa); p. 15, l. 23.

s. धन *dhan*, m. Riches, wealth, property of any description; p. 3, l. 28.

s. धनि *dhani* (s. धन्य) interj. An expression of felicitation, Worthy of greatness or glory! Fortunate! Well done! p. 74, l. 14.

s. धनंजय *dhanañjay* (: s. धनं riches, जय conquering) m. Wealth-winning, a name of Arjun; p. 237, l. 7. 2. Fire or its deity.

s. धनांध *dhanāndh* (: s. धन wealth, अन्ध blind) adj. Blinded by wealth, purse-proud; p. 137, l. 17.

s. धनी *dhanī* (s. धनी ; धन riches) adj. Rich, wealthy, fortunate. 2. m. Owner, proprietor.

s. धनुर्धर *dhanurdhar* (s. धनुर्धा : धनुष a bow, धर who holds) m. An archer, a name of Arjun, bow-holder, bowman; p. 236, l. 30.

s. धनुष *dhanush* (s. धनुस् ; धन् to throw forth) m.

A bow. धनुष धरा *dhanush dharā*, A ceremony in honour of Shiva—which consists in breaking a bow of extraordinary strength; p. 63, l. 2. Thus Krishṇ breaks a bow before he slays Kans—an incident apparently copied from the Rāmāyaṇa, where Rāma, by breaking a bow, obtains the hand of Sīta. *See* "Vishṇu Purāna," p. 384.

s. धनुष बिद्या *dhanush bidyā* (: s. धनुष bow, बिद्या science) f. Science of the bow, archery; p. 126, l. 25.

s. धन्मान *dhanmān* / धन्वान *dhanwān* (; s. धन *q.v.*) adj. Wealthy, rich; p. 23, l. 24.

s. धन्य *dhanya* (s. धन्य : धन् to produce) adj. Fortunate; p. 39, l. 23. Bravo!

H. धमार *dhamār* / धमाल *dhamāl* m. in Dictionary, but at p. 174, l. 29, f. A song or chaunt sung at the Holī, to which the chaunting of the bards in the battle between Mahādev and Krishṇ is compared.

H. धम्का *dhamkā*, m. Noise produced by the fall of any heavy body, thump; p. 18, l. 5.

H. धम्काना *dhamkānā*, v.a. To threaten, menace, snub, chide; p. 116, l. 7.

s. धर्णी *dharṇī* (s. धर्णी ; धृ to be contained, *i.e.*, animals) f. The earth; p. 3, l. 3.

s. धर्ती *dhartī* (s. धरित्री ; धृ to contain) f. The earth: p. 7, l. 5.

H. धर्धमक्ना *dhardhamaknā*, v.n. To proceed with tumultuous rapidity, to hurtle, to move violently, to rush; p. 210, l. 13.

s. धर्ना *dharnā* (s. धरण ; धृ to hold) v.a. To place, to put down, to assume, to put on. 2. To give in charge. 3. To seize, to catch, to hold; Preface. धर्ना देना या बैठ्ना *dharnā denā yā baiṭhnā*, A mode of extorting payment of a debt by sitting at the debtor's door. See *Asiatic Researches, vol. iv., Art.* 22.

s. धर्नीधर *dharnīdhar* (: s. धर्णी the earth, धर that holds) m. Earth-supporter, a name of Vishṇu; p. 233, l. 16.

s. धर्म *dharm* / धर्म्म *dharmm* (s. धर्म्म ; धृ to maintain) m. Virtue, religion, justice, or those attributes personified. The observance of the rites of caste, duty especially, as inculcated by the Vedas; p. 3, l. 1. धर्म राज *dharm rāj*, A just or righteous rule; p. 3, l. 11.

s. धर्म मूर्त्त *dharm mūrtt* (: धर्म्म justice, मूर्त्त form) m. Form of Justice! a title by which kings are addressed; p. 200, l. 8.

s. धर्म्मराज *dharmmrāj* (s. धर्म्मराज : धर्म्म justice, राज who shines, or राज a king) m. The just king—a name of Yam, Regent of the dead; p. 86, l. 16. 2. (for धर्म राज्य *dharm rājya*) A kingdom where justice is administered, धर्म्राज कर्ना *dharmrāj karnā*, To govern justly; p. 3, l. 11.

s. धरमात्मा *dharamātmā* / धर्मात्मा *dharmātmā* (s. धर्म्मात्मा ; धर्म्म *q.v.*, आत्मन् self) adj. Virtuous, pious; p. 39, l. 12.

s. धर्म्मावतार *dharmmāwatār* (s. धर्म्मावतार : धर्म्म *q.v.*, and अवतार descent : अव and तॄ to cross) m. An incarnation of Justice, or धर्म्म Dharmma. This term is used as a respectful address to kings or other great personages; as to Parīkshit; p. 3, l. 3.

s. धर्मिष्ट *dharmishṭ* (s. धर्म्मिष्ठ ; धर्म्म piety) adj. Virtuous, inclined to the performance of duty.

H. धस्ना *dhasnā*, v.n. To enter, to penetrate; p. 14, l. 11.

H. धांधल *dhāndhal*, f. Wrangling, cheating; p. 159, l. 2.

S. धाना *dhānā* (; S. धाव् to go) v.n. To run, to hasten; p. 18, l. 3.

S. धाम *dhām* (S. धामन ; धा to contain) m. A dwelling, a house; p. 103, l. 19. A place. सुख धाम *sūkh dhām*, Abode of pleasure (an epithet of Balarām); p. 115, l. 16.

S. धाय *dhāe* (S. धात्री ; धा to have or nourish) f. A nurse; p. 147, l. 3.

H. धाय *dhāe* / धाह *dhāh* f. A cry or noise. धाय मार रोना *dhāe mār ronā*, To weep bitterly; p. 135, l. 15.

S. धार *dhār* (S. धारा ; धृ to pull) f. Stream; p. 31, l. 20. Current. 2. Sharp edge of a sword. 3. A line, lineament.

S. धारण *dhāraṇ* / धारन *dhāran* (S. धारण ; धृ to hold) m. (a verbal noun) Holding, sustaining, upholding, supporting; p 8, l. 13.

S. धारा *dhārā* (S. धारा ; धृ to fall) f. A stream. जल धारा *jal dhārā*, f. A stream of water; p. 44, l. 7.

S. धारि है *dhāri hai*, Braj form of धरा है 3 p. sin. past tense of धार्ना, to assume. Has taken; p. 33, l. 22.

S. धारी *dhārī* (; S. धारण holding) adj. Holding, wearing; p. 169, l. 30.

S. धार्ना *dhārnā* (; S. धृ to hold or bear) v.a. To hold, to bear, to have, to keep, to assume; p. 33, l. 22. To sustain.

S. धावना *dhāwnā*, v.n. To range, to run, to roam. 2. To run at; p. 60, l. 18. 3. (S. धावन) To worship.

S. धिक्कार *dhikkār* (S. धिक्कार : धिक fie, कार making) m. Curse, anathema. adv. Fie! p. 6, l. 18

S. धीमर *dhīmar* (S. धीवर ; धी to hold or gain) m. A fisherman; p. 125, l. 29.

S. धीर *dhīr* (S. धीर : धी understanding, रा to possess) adj. Resolute, firm, patient, sedate. 2. m. Resolution, firmness: p. 13, l. 19.

S. धीरज *dhīraj* (S. धैर्य्य ; धीर firm) m. Resolution, firmness, patience, courage; p. 6, l. 26.

S. धुआं *dhuāṅ* / धूंआं *dhūāṅ* / धूम *dhūm* (S. धूम ; धूम् to agitate) m. Smoke; p. 36, l. 16, and p. 142, l. 11.

H. धुकधुकी *dhukdhukī*, f. An ornament for the breast, a brooch; p. 152, l. 21. 2. Perturbation, anxiety, consideration, reflection.

S. धुकुड़ पुकुड़ *dhukuṛ pukuṛ* / धुकड़ पुकड़ *dhukaṛ pukaṛ* f. Palpitation, panting with emotion; p. 14, l. 24.

S. धुन *dhun* = धुनि (*q.v.*) Sound; p. 14, l. 19. (S. ध्यान) f. Inclination, propensity, application, diligence, perseverance, ardour, ambition.

S. धुनि *dhuni* (S. ध्वान sound, ध्वन् to sound) f. Sound; p. 19, l, 26. Chaunt; p. 12, l. 29.

S. धुलवाना *dhulwānā* (caus. of धोना *q.v.*) v.a. To cause to wash; p. 65, l. 12.

S. धूप *dhūp* (S. धूप ; धूप् to heat) f. A perfume burnt by Hindūs at the time of worship; p. 32, l. 6.

H. धूम *dhūm*, f. A tumult, broil; p. 71, l. 25.

H. धूम धाम *dhūm dhām*, f. Pomp, parade, tumult, bustle; p. 9, l. 5.

S. धूम्रा *dhūmrā* (S. धूम्र : धूम smoke, रा to get) adj. Purple, compounded of black and red, the colour of smoke; p. 29, l. 10.

s. धूलि *dhūli* (s. धूलि ; धू to agitate) f. Dust; p. 68, l. 26.

s. धृतराष्ट्र *Dhritarāshtr* (s. धृतराष्ट्र : धृत possessed, cherished, राष्ट्र region) m. The father of Duryodhan, and uncle of the Pāndava princes; p. 96, l. 18.

s. धेनु *dhenu* (s. धेनु ; धे to drink) f. A cow, a milch-cow, one that has lately calved; p. 36, l. 2.

s. धेनुक *Dhenuk* (s. धेनुक : धेनु a cow) m. A dæmon in the form of an ass, guardian of an orchard, who attacked Balarām while gathering fruit there, and was slain by him; p. 29, l. 22.

H. धोखा *dhokhā*, m. Deceit, deception. धोखा देना *dhokhā denā*, To deceive; p. 105, l. 25. धोखा खाना *dhokhā khānā*, To be deceived. 2. Disappointment. 3. Doubt, hesitation. 4. A scare-crow. 5. Anything imaginary, a vapour resembling water at a distance, the mirage.

s. धोती *dhotī* (s. धौत्र) f. A cloth worn round the waist, passing between the legs and tucked in behind; p. 46, l. 25.

H. धोप *dhop*, f. A kind of sword; p. 173, l. 5.

s. धोबी *dhobī* (: धोना to wash, *q.v.*) m. A washer-man; p. 72, l. 15.

H. धौंसा *dhaunsā*, m. A large kettle-drum; p. 35, l. 7.

s. धौरा *dhaurā* / धौला *dhaulā* (s. धवल ; धाव् to be clean or pure) adj. White; p. 29, l. 10.

s. धौलागिरि *Dhaulāgiri* (s. धवलगिरि : धवल white ; धाव् to be clean or pure, गिरि mountain) m. The white mountain—where Muchkund was set to sleep by the Gods, and, on awaking, consumed Kālyaman with a glance of his eyes; p. 103, l. 24.

s. ध्यान *dhyān* (: s. ध्यै to meditate) m. Meditation, reflection, but especially that profound abstraction which brings its object fully and undisturbedly before the mind; p. 3, l. 14.

s. ध्यानौं *dhyānaun* / ध्यावनौं *dhyāwnaun* (; s. ध्यान *q.v.*) v.a. To meditate on, to think on, to adore; p. 31, l. 25.

s. ध्वजा *dwajā* (s. ध्वज ; ध्वज् to go) m. A flag, a banner; p. 35, l. 9.

s. ध्वनि *dhwani* (s. ध्वनि ; ध्वन् to sound) f. Sound, musical sound.

न

H. न *na*, adv. of neg. No, not; p. 2, l. 12.

s. नंग *nang* / नंगा *nangā* / नगन *nagan* / नग्न *nagn* (s. नग्न ; नज् to be ashamed) adj. Naked; p. 23, l. 25. 2. Shameless. नंगा मुंगा *nangā mungā*, or नंग मुनंगा *nang munangā*, adj. Naked.

s. नंद *Nand*, m. Name of the foster-father of Krishn, a chief of herdsmen; p. 13, l. 25.

s. नंदन *Nandan* (s. नन्दन ; नदि to make happy) m. Indra's Elysium, garden and grove; p. 151, l. 15. 2. A son. नंद नंदन *Nand nandan*, The son of Nand, *i.e.*, Krishn; p. 54, l. 9.

s. नंद लाल *Nand lāl* (s. नन्द Nand, लाल dear ; लड् to sport) m. The darling of Nand, *i.e.*, Krishn; p. 43, l. 4.

s. नकुल *Nakul* (s. नकुल : न not, कुल race) m. The fourth of the Pāndava princes; p. 96, l. 16.

s. नक्षत्र *Nakshatr* (s. नक्षत्र ; णक्ष to go) m. (at p. 18, l. 21, f.) A lunar mansion or constellation in the moon's path, a star or asterism. The Hindūs

—besides the common division of the zodiac into twelve signs—divide it into twenty-seven Nakshatrs, two and a quarter of which are included in each sign. Each has its appropriate name; p. 16, l. 6.

s. नक्षत्री *nakshatrī* (; s. नक्षत्र a star or asterism ; क्षर् to drop or क्षी to waste, with the neg. pref.) Born under a fortunate planet, fortunate; Preface.

s. नख *nakh* (s. नख : न not, ख sense, or नह् to bind) m. A finger-nail; p. 42, l. 29. नख सिख से *nakh sikh se*, From top to toe, throughout (*lit.*, From the toe nails to the hair on the crown of the head); p. 42, l. 29.

s. नग *nag* (s. नग : न not, गम् to go) m. A mountain. H. A jewel, a gem, a precious stone.

s. नगर *nagar*, m. A town, a city; p. 3, l. 11.

s. नगर्नारी *nagarnārī* (: s. नगर a city, नारी a woman) f. A courtesan.

s. नग्नजित *Nagnajit* (s. नग्नजित *Nagnajit* : नग्न *Bauddha*, जित who conquers) m. A King of Kausal, father of Satyā—one of Krishn's wives; p. 144, l. 14.

s. नचाव्ना *nachāwnā* (caus. of नाच्ना *q.v.*) v.a. To cause to dance or move up and down; p. 59, l. 19.

नट *naṭ*
नट्बर् *naṭbar*
s. नट्वर् *naṭwar*
नटुआ *naṭuā*
नटुवा *naṭuwā*

(s. नट्वर a chief dancer : नट a dancer, वर best) m. A juggler, a tumbler, one of a tribe who are jugglers, rope-dancers, etc.; p. 49, l. 14.

s. नट माया *naṭ māyā* (: s. नट a juggler, माया deception) f. The tricks of a juggler, deceptive power; p. 70, l. 1.

s. नथ *nath* (s. नाथ *q.v.*) f. A large ring worn in the nose by women, and the sign of the married state; p. 152, l. 20. 2. A rope passed through the nose of a draught ox.

s. नथ्ना *nathnā*, m. A nostril; p 63, l. 20. A ring for the nose. 2. v.n. To have the nose pierced (a bullock). नथ्ने चढ़ाना *nathne charhānā*, To be angry or displeased.

s. नदी *nadī* (; s. नद् to sound) f. A river; p. 3, l. 24.

s. ननद् *nanad* (s. ननन्दा : न not, नन्द् to please) f. A sister-in-law, a husband's sister; p. 156, l. 4.

s. नपुंसक *napuṅsak* (s. नपुंसक : न not, पुंसक a male ; पुंस male) m. A eunuch. 2. adj. Unmanly, cowardly, effeminate; p. 174, l. 8.

s. नभ *nabh* (s. नभः ; नह् to bind) m. The sky or atmosphere.

s. नभ्चर् *nabhchar* (s. नभश्चर : नभः sky, चर् to go) m. That which moves in the sky, aerial, a bird; p. 138, l. 7.

s. नमः *namah* (s. नमस् ; नम् to bend) aptote noun, Reverence; Preface.

s. नयन *nayan* (s. नयन ;णी to guide) The eye.

s. नर *nar* (s. नर ; नृ to lead or guide) m. Man, individually or collectively, a man, a male, mankind; p. 6, l. 19.

s. नरक *narak*
नर्क *nark*

(s. नरक ; नृ to guide, *i.e.*, where the wicked are conducted) m. Hell, in which are included various regions of torment suited to degrees of guilt; p. 6, l. 20.

s. नरकासुर *Narakāsur* (: नरक hell, असुर dæmon) m. Name of a fiend, friend of Kans; p. 62, l. 29: also called Bhaumāsur, as being son of the Earth; p. 146, l. 15.

s. नरेश *naresh* / नरेस *nares* (s. नरेश : नर a man, ईश master) m. A king ; p. 5, l. 27.

s. नर्त्तक *narttak* (s. नर्त्तक ; नृत् to dance) m. An actor, a dancer ; p. 16, l. 13.

s. नर्नारायण *Narnārāyaṇ*, m. dual. Two sages incarnations of Vishṇu, and born again as Krishṇ and Arjun ; p. 232, l. 5.

s. नर्पुर *narpur* (: s. नर man, पुर city) m. One of the three Loks or regions of the universe,—the abode of man, the earth ; p. 8, l. 8.

s. नर्पति *narpati* (: s. नर man, पति lord) m. King of men, a ruler, prince ; p. 2, l. 13.

s. नर्सिंगा *narsingā* (s. नलशृङ्ग : नल a reed, शृङ्ग a horn) m. A horn, a wind instrument ; p. 173, l. 8.

s. नल *Nal*, m. A son of Kuver, the God of riches, changed into a tree by a curse of the Muni Nārad ; p. 23, l. 23.

s. नव जोबना *naw jobanā* (s. नवयौवना : नव fresh, यौवन youth, आ fem. affix) f. A girl just grown up to puberty ; p. 141, l. 7.

s. नव निधि *nava nidhi* (s. नव निधि : नव nine, निधि treasure) f. The treasure of Kuver the God of riches, consisting of nine fabulous gems or masses of wealth ; p. 219, l. 26.

s. नव बाला *naw bālā* (: s. नव fresh, बाला young female) f. A girl just arrived at puberty.

s. नव रतन *naw ratan* (s. नवरत्न : नव nine, रत्न gem) m. A bracelet of nine gems—pearl, ruby, topaz, diamond, emerald, lapis lazuli, coral, sapphire, and one called Goméda ; p. 152, l. 21.

s. नवम *navam* (s. नवम ; नव nine) ord. n. Ninth.

s. नवाड़ा *nawāṛā* (; s. नौ :) m. A boat ; p. 176, l. 16.

s. नसाना *nasānā* (s. नाशन ; णश् to perish) v.a. To destroy, to annihilate, to spoil, to squander. 2. v.n. To be destroyed or annihilated ; p. 217, l. 10.

s. नहि *nahi*, Braj form of नहीं not (*q.v.*) ; p. 20, l. 3.

s. नहीं *nahīṅ* (s. नहि) adv. of negation, No, not ; p. 2, l. 12. नहीं तो *nahīṅ to*, Otherwise ; p. 25, l. 20.

s. नांदिया *Nāṅdiyā* (s. नन्दि ; नदि to make happy) The bull or vehicle of Shiva ; p. 173, l. 27.

s.P. नांव *nāṅw* (corruption of नाम or نام) m. Name.

s. नाक *nāk* (s. नासिका ; णस् to sound) f. The nose : p. 14, l. 9, and p. 163, l. 7.

s. नाग *nāg* (s. नाग ; नग a mountain, as living or produced there) m. A Nāga or demi-god so called, having a human face with the tail of a serpent and the expanded neck of the Coluber Nāga. The race of these beings is said to have sprung from Kadru—the wife of Kasyapa—in order to people Pātāla, or the regions below the earth ;—hence नाग लोक *nāg-lok*, Pātāla—or the world of serpents. 2. A serpent in general, or specially the spectacle-snake or cobra capella (Coluber Nāga) ; p. 31, l. 22. नाग पत्नी *nāg patnī*, (: नाग *q.v.*, पत्नी a wife) The serpent's wife—as the wife of Kālī is called ; *ibid.*

s. नागनी *nāganī* (s. नागनी fem. of नाग *q.v.*) f. A female serpent ; p. 32, l. 15.

s. नाग पास *nāg pās* / नाग फांस *nāg phāṅs* (s. नाग पाश : नाग a snake, according to Price —an elephant, according to Wilson, पाश binding) m. A weapon of Varuna, a sort of noose used in battle to entangle an enemy ; p. 47, l. 3.

H. नाच्ना *nāchnā* (नाच = s. नाट्य) v.n. To dance ;

p. 13, l. 7. To strut, to move proudly; p. 33, l. 16. To play antics, to fatigue one's self; p. 49, l. 4.

s. नाथ *nāth* (नाथ ; नाथ् to ask, *i.e.*, from whom we ask things) m. A lord, a master; p. 8, l. 16. A husband. 2. f. A cord, a rope passed through the nose of a draught ox.

s. नाथ्ना *nāthnā* (; s. नाथ *q.v.*) v.a. To bore a bullock's nose and insert a cord for the purpose of guiding him; p. 144, l. 25.

s. नातर् *nātar* (नान्यतर् or नान्यथा) adv. If not (then), otherwise; p. 76, l. 16.

s. नाती *nātī* (s. नप्ता : न not, पत् to fall, *i.e.*, propping the family) m. Grandson, daughter's son.

H. नाना *nānā*, m. Maternal grandfather; p. 81, l. 1. 2. (; s. नम् to bow) v.a. To bend or bow; p. 37, l. 5. नयौ *nayau*, He bent; p. 206, l. 18. 3. (s. नाना) adj. Various; p. 192, l. 15. नाना प्रकार् *nānā prakār*, Various modes.

s. नाभि *nābhi* (s. नाभि ; नह् to bind) f. The navel; p. 69, l. 20.

s. नाम *nām* (; णम् to call) m. Name, appellation, character, fame; p. 6, l. 3.

s. नाम करन *nām karan* (: नाम name, *q.v.*, करन for कर्ना to make) m. The naming a child; p. 157, l. 7.

s. नारद *Nārad* (s. नारद ; नार men, दा to give (instruction) m. A son of Brahmā, one of the ten divine Rishis or Munis; p. 5, l, 9. A friend of Krishn, and a celebrated legislator and inventor of the Vina or lute.

s. नारायण *Nārāyaṇ* / नारायन *Nārāyan* (s. नारायण ; नारा the primeval waters derived from नर the Spirit of God—whence they originated, अयन place of coming or going) m. A name of Vishnu considered as the deity who was before all worlds; p. 8, l. 10.

s. नारायनी बान *Nārāyanī bān* (: s. नारायण the primeval deity, बान arrow) m. A weapon of mystical nature and undefined powers which Mahādev declined to use in his battle with Krishn; p. 174, l. 18.

s. नारियल *nāriyal* (s. नारिकेल : नारिक watery place, ईर् to grow) m. A cocoa-nut, either the tree or the fruit; p. 106, l. 8.

s. नारी *nārī* (s. नारी ; नर a man) f. A woman; p. 4, l. 17. 2. (s. नाडि) The pulse.

H. नाला *nālā*, m. A rivulet, brook, canal, watercourse; p. 13, l. 3.

H. नाल्की *nālkī*, f. A sedan or litter used by people of rank; p. 150, l. 18.

s. नाव *nāw* (s. नौः ; नुद् to send) f. A boat, ship, or vessel.

s. नाव्ना *nāwnā* (; s. नमन bowing) v.a. To bend downwards, to bow; p. 206, l. 2. 2. To cause to submit.

s. नाश *nāsh* / नास *nās* (s. नाश ; णश् to cease to be) m. Non-existence, annihilation, death; p. 11, l. 6.

H. नाहर् *nāhar*, m. A lion or tiger; p. 131, l. 13.

s. नाहीं *nāhīṅ* = नहीं *q.v.* Not; p. 31, l. 11.

s. निंदा *nindā* (s. निन्दा ; णिद् to blame) f. Censure, reproach; p. 211, l. 16.

s. निःसंकोच *nihsaṅkoch* (: s. नि without, सकोच show) adv. Boldly, shamelessly; p. 206, l. 20.

s. निकंटक *nikaṇṭak* (: s. नि without, कण्टक a thorn)

adj. Without enmity and opposition; p. 62, l. 28. 2. Plain, easy.

s. निकंद *nikand* (: s. नि not, कन्द root) adj. Eradicated, extirpated; p. 60, l. 18. दुख निकंद *dukh nikand*, Extirpating grief; p. 138, l. 9.

s. निकट *nikaṭ* (s. निकट : नि, कट् to go to) post. gov. genitive, To, towards; p. 8, l. 10. adv. Near, close to, about; p. 2, l. 14.

s. निकल्वाना *nikalwānā* (caus. of निकाल्ना *q.v.*) v.a. To cause to be taken out; p. 104, l. 30.

H. निकर्ना *nikarnā* / निकल्ना *nikalnā* } v.n. To issue, to be extracted, to be drawn or taken out, to come out, to turn out, to escape, rise, slip, spring.

H. निकस्ना *nikasnā* / निकलस्ना *nikalasnā* } v.n. To come out = निकल्ना (*q.v.*); p. 31, l. 8, and p. 52, l. 6.

H. निकाल्ना *nikālnā* (caus. of निकल्ना *q.v.*) v.a. To take or bring out, to cause to issue. 2. To introduce; p. 41, l. 16.

s. निखंग *nikhang* (s. निखङ्ग : नि certainly, खञ्ज् to embrace) f. A quiver; p. 144, l. 10.

s. निगम (s. निगम : नि affirmation, गम् to go) m. A town. 2. Holy writ, the Vedas collectively; p. 46, l. 7.

s. निगम निवासी *nigam niwāsī* (: s. निगम the Vedas, *q.v.*, निवासी an inhabitant ; निवास a dwelling : नि in, वस् to abide) m. Dwelling in the Vedas (an epithet of Brahmā, Vishnu, etc.); p. 46, l. 7.

s. निगल्ना *nigalnā* (: s. नि, and गल् to eat or गृ to swallow) v.a. To swallow, to gulp down; p. 58, l. 12, and p. 64, l. 6.

s. निचंत *nichant* / निचिंत *nichint* } (s. निश्चिंत : निर् not, चिन्ता thought) adj. Free from thought or care, unconcerned. बधाई से निचिंत हो *badhāī se nichint ho*, At leisure from the ceremonies of congratulation; p. 16, l. 19.

s. निचंताई *nichantāī* / निचिंताई *nichintāī* } (s. निश्चिंता : निः not, चिन्ता anxiety) f. Carelessness, fearlessness; p. 101, l. 4. Thoughtlessness, unconcern, leisure.

H. निचोड़्ना *nichoṛnā*, v.a. To wring; p. 60, l. 23. To squeeze, to press, to express.

H. निछावर *nichhāwar*, f. A propitiatory offering, sacrifice, victim; p. 56, l. 21.

s. निज *nij* (s. निज : नि implying continuance, ज what is produced) adj. Perpetual. 2. Own; p. 12, l. 17. निज का *nij kā*, adj. Own, peculiar.

s. निठुर *niṭhur* (s. निष्ठुर : नि, स्था to be, to be firm) adj. Harsh, obdurate, relentless; p. 68, l. 14.

s. निठुराई *niṭhurāī* (s. निष्ठुरता ; निष्ठुर cruel) f. Cruelty, obduracy; p. 82, l. 14.

s. निडर *niḍar* (s. निर्दर : निर् without, दर fear) adj. Fearless. 2. adv. Without fear, fearlessly; p. 171, l. 10.

s. निढाल *niḍhāl* / निढोल *niḍhol* } (: s. निर् without, ढोल that swings) adj. Still, motionless; p. 164, l. 24.

s. नित *nit* (s. नित्य ; नि implying perpetuity) adv. Perpetually; p. 12, l. 16.

s. नित प्रति *nit prati* (s. प्रतिनित्य : प्रति to, नित्य always) adv. Always, continually; p. 178, l. 23.

s. नित्य कर्म *nitya karm* (s. नित्यकर्म्म : नित्य always, कर्म्म act) m. The constant or daily ceremonies of religion, the religious duties which are of constant recurrence; p. 163, l. 28.

s. निदान *nidān* (s. निदान : नि always or certainly, दा to give) adv. At last, at length, finally; p. 7, l. 12.

s. निद्रा *nidrā* (s. निद्रा : नि, द्रै to sleep) f. Sleep; p. 28, l. 2.

s. निधड़क *nidhaṛak*, adj. Fearless. 2. (; निर्दर without fear) adv. Fearlessly; p. 21, l. 21.

s. निधान *nidhān* (s. निधान : नि in or on, धा to possess) m. A place or receptacle in which anything is collected or deposited; Preface.

H. निपट *nipaṭ*, adv. Very, exceedingly; Preface.

s. निपुण *nipuṇ* / निपुन *nipun* (s. निपुण : नि, पुण् to be pure) adj. Skilled, perfectly conversant; p. 126, l. 25.

s. निबड़ना *nibaṛnā* (s. निर्व्वाण extinction : निर् signifying negation, वाण् to blow) v.n. To be spent, to be ended; p. 22, l. 23.

s. निबाह *nibāh* (s. निर्व्वाह : निर् certainly, वह् to bear) m. Accomplishment, performance, sufficiency, supply; p. 177, l. 12. 2. Performing an engagement; *ibid.*

s. निबाना *nibānā* / निवाना *niwānā* / निवान्ना *niwāwnā* (; s. नम् to bow) v.a. To bend downwards, to bow; p. 31, l. 22. To cause to stoop.

s. निबाह्ना *nibāhnā* (s. निर्व्वहन : निर् out, वह to bear) v.a. To accomplish, to keep faith; p. 196, l. 19. 2. To protect, to guard. 3. To behave.

s. निबेड़ना *nibeṛnā* (s. निवर्त्तन : नि, वृत् to be) v.a. To put an end to, to perform, to spend.

s. निबेड़ा *nibeṛā* / निवेड़ा *niweṛā* (s. निवर्त्तन : नि, वृत् to be) m. End, completion; p. 13, l. 12.

s. निमित्त *nimitt* (s. निमित्त : नि, मि to measure) m. Cause, motive; p. 64, l. 14. (met.) Fortune.

निमित्ती or निमित्त मान *nimittī* or *nimitta mān*, adj. Prosperous.

s. निरंकार *niraṅkār* / निराकार *nirākār* (s. निराकार : निर् without, आकार shape) adj. Without form, (epithet of the Deity) incorporeal; p. 232, l. 8.

s. निरंतर *nirantar* (s. निरन्तर : निर् without, अन्तर interval) adj. or adv. Without interval, incessantly; p. 74, l. 9.

s. निरखना *nirakhnā* (s. निरीक्षण : निर् certainly, ईक्षण seeing; ईक्ष् to see) v.a. To look at, to gaze upon; p. 50, l. 8.

s. निरष्ना *niraṣhnā* = निरखना *q.v.*; p. 124, l. 3.

s. निरादर *nirādar* (: s. निर् without, आदर respect) adj. Disgraced; p. 151, l. 11.

H. निराला *nirālā*, adj. Pure, mere, simple, unmixed, unalloyed. 2. Rare, strange, odd. 3. Separate, apart; p. 29, l. 18. निराले में *nirāle meṅ*, Apart, in private.

s. निरास *nirās* (s. निराश : निर् without, आश hope) adj. Hopeless, despairing; p. 39, l. 10.

s. निरूप *nirūp* (s. नीरूप : निर् not, रूप form) adj. Incorporeal, without form; p. 92, l. 8.

s. निर्गुण *nirguṇ* / निर्गुन *nirgun* (s. निर्गुण : निर् without, गुण quality) adj. Without passions or human qualities (an epithet of the Deity); p. 35, l. 22. 2. Without estimable qualities. 3. Unstrung (as a necklace).

s. निर्जन *nirjan* (s. निर्जन : निर् without, जन people) adj. Unattended, deserted, without followers; p. 200, l. 8.

s. निर्दई *nirdaī* (s. निर्दय : निर् without, दया pity) adj. Merciless; p. 49, l. 29. 2. f. Mercilessness,

s. निर्धन *nirdhan* (s. निर्धन : निर् without, धन wealth) adj. Without wealth, poor; p. 24, l. 4.

s. निर्द्वंद *nirdwand* (s. निर्द्वंद्व : निर् without, द्वन्द्व strife) adj. Without quarrel, peaceably; p. 144, l. 11.

s. निर्धार *nirdhār* (s. निर्धार : निर् certainly, धृ to hold or have) m. Ascertaining, settling or fixing with accuracy.

s. निर्बंस *nirbans* (: s. निर् without, वंश race) adj. Without offspring, childless. 2. Extinct (as a race or family); p. 98, l. 19.

s. निर्भय *nirbhay* (s. निर्भय : निर् not, भय fear) adj. Fearless: p. 9, l. 16.

s. निर्मल *nirmal* (s. निर्म्मल : निर् without, मल filth, sin) adj. Pure, limpid; p. 48, l. 8.

s. निर्मान *nirmān* (s. निर्म्माण : निर् certainly, मा to measure) m. Manufacture, produce. 2. Pith, object; p. 199, l. 26. 3. Propriety, fitness.

s. निर्मोही *nirmohī* (s. निर्मोही : निर् without, मोह worldly fascination) adj. Not fascinated, free from delusion, divested of affection, unkind, insensible; p. 4, l. 20.

s. निर्लोभी *nirlobhī* (: निर् without, लोभ avarice) adj. Free from covetousness; p. 214, l. 30.

s. निर्वान *nirwān* (s. निर्व्वाण : निर् without, वाण् to blow) adj. Extinguished, extinct. 2. m. Beatitude, emancipation from matter, and re-union with the Deity; p. 234, l. 1.

s. निवार्ना *niwārnā* (s. निवारण : नि, वृ to screen) v.a. To prevent, to hinder. दुख निवारन *dukh niwāran*, Preventing grief; p. 237, l. 1.

s. निवास *niwās* (s. निवास : नि in, वस् to dwell) m. A dwelling.

s. निवासी *niwāsī* (: s. निवास *q.v.*) m. An inhabitant; p. 46, l. 7.

s. निशि *nishi* = निस *nis* (*q.v.*) Night; p. 35, l. 22.

s. निश्चय *nishchay* / निहचै *nihchai* (s. निश्चय : निर् affirmative particle, चि to collect) m. Certainty or ascertainment. Trust, belief, faith; p. 12, l. 30, and p. 80, l. 9. 2. adj. Actual, real. 3. adv. Actually, certainly, indubitably.

s. निस *nis* / निसि *nisi* (s. निशा ; निश् to meditate) f. Night; p. 21, l. 14.

s. निसंक *nisank* (s. निःशंक : नि not, शंक् doubt) adj. Free from doubt or fear, sure; p. 74, l. 24.

s. निस्चर *nischar* (: s. निशा night, चर् to go) m. A dæmon. 2. A robber, a thief. 3. A nocturnal animal, an animal that prowls by night; p. 173, l. 11.

s. निसर्ना *nisarnā* (s. निःसरण) v.n. To issue, to go forth, to come out; p. 65, l. 23.

s. निसास *nisās* (s. निःश्वास) m. Breath; p. 114, l. 25. निसास लेना *nisās lenā*, To sigh.

s. निसेनी *nisenī* (s. निःश्रेणी?) f. A wooden ladder, a ladder; p. 177, l. 25.

s. निस्कपट *niskapaṭ* (s. निष्कपट : नि for निर् without, कपट fraud, deceit) adj. Without fraud, open, artless, honest, sincere; p. 177, l. 11.

s. निस्तार *nistār* (s. निस्तार : निर् certainly, तॄ to cross) m. Release, salvation, beatitude; p. 228, l. 8.

s. निस्तार्ना *nistārnā* (s. निस्तारण : निर्, तॄ to cross) v.a. To release, to acquit, to beatify or exempt the soul from further transmigration.

s. निस्संदेह *nissandeh* / निःसन्देह *nihsandeh* (: s. नि for निर् without, सन्देह doubt) adj. Free

from doubt; p. 25, l. 12. 2. adv. Doubtless; p. 48, l. 25.

H. निहारनौं *nihārnauṅ*, v.a. To look at, to spy; p. 34, l. 23.

S. नीकर्ना *nīkarnā* = निकलना *q.v.* (a Braj form); p. 211, l. 20.

H. नीकौ *nīkau* (P. نیک good) adj. Good, beautiful; p. 33, l. 25. Well (in health); p. 67, l. 2.

S. नीच *nīch* (S. नीच : न primitive, ई good fortune, चि to obtain) adj. Low, base; p. 17, l. 8. 2. 2. Below, beneath.

S. नीचे *nīche* (; S. नीच : न not, ई good fortune, चि to obtain) adv. Down, below; p. 6, l, 9.

S. नींद *nīṅd* / नीद *nīd* (S. निद्रा ; द्रै to sleep) f. Sleep; p. 14, l. 3.

S. नीबू *nībū* (S. निम्बूक) m. The common lime (Citrus acida); p. 142, l. 8.

S. नीमषार *Nīmashār*, m. Name of a city where Balarām slew a holy man named Sūt; p. 214, l. 24.

S. नीर *nīr* (S. नीर ; नी to obtain) m. Water; p. 37, l. 10, and p. 46, l. 27.

S. नीलंबर *nīlambar* (S. नीलाम्बर : नील blue, अम्बर clothing) m. A dark blue garment.

S. नीला *nīlā* (S. नील ; नील् to dye or tinge) adj. Dark-blue; p. 21, l. 2.

S. नीलगिरि *Nīlgiri* (: S. नील blue, गिरि mountain) m. A blue mountain; p. 50, l. 10.

S. नीलमनि *nīlmani* (S. नीलमणि : नील blue, मणि gem) m. A gem of a blue colour, the sapphire; p. 56, l. 9.

S. नीसर्ना *nīsarnā* / नीसरनौं *nīsarnauṅ* v.n. = निसर्ना *q.v.*

S. नूपुर *nūpur* (S. नू, र : नू an ornament, पुर to precede) f. A ring or ornament for the ankles and toes; p. 89, l. 21.

S. नृग *Nṛig* (S. नृग) m. A king of the race of Ikshwāk, who was changed into a lizard for bestowing a cow which he had already given to one Brāhman on another. Krishn released him and restored him to his original form; p. 178, l. 14.

S. नृत्य *nṛitya* (S. नृत्य ; नृत् to dance) m. The dance, dancing; p. 209, l. 11. नृत्यक *nṛityak* and नृत्य कारी *nṛitya kārī*, m. and f. A dancer.

S. नृप *nṛip* (S. नृप : नृ man, प who preserves) m. A king; p. 35, l. 5.

S. नृपति *nṛipati* (S. नृपति : नृ man, पति lord) m. A king, a prince; p. 72, l. 27.

S. नृसिंह *Nṛisiṅh* (S. नृसिंह : नृ a man, सिंह a lion) m. Man-lion, the fourth incarnation of Vishnu—in which he destroyed Hiranakasyap; p. 208, l. 6.

H. ने *ne*, a postposition signifying "by," used in Hindī and Hindūstānī with the nominative to transitive verbs in the past tense, to express the agent or instrument in a very idiomatic way; Preface. (Vide *Grammar*, sec. 52.)

H. नेक *nek* / नैक *naik* adj. A little; p. 189, l. 3.

S. नेती *netī* (S. नेत्र ; णी to guide) f. A cord used for whirling the churn-staff round; p. 22, l. 18.

S. नेत्र *netr* (S. नेत्र , णी to guide) m. The eye; p. 207, l. 15.

S. नेम *nem* (S. नियम : नि, यम् to refrain) m. A vow, compact, agreement. Any religious observance voluntarily practised. Piety; p. 5, l. 16.

H. नेरौ *nerau*, adv. Near; p. 44, l. 4.

s. नेह *neh* (s. नेह ; ष्णिह् to be unctuous) m. Affection, friendship: p. 24, l. 5.

s. नैआ *naiā* (s. नव) adj. New; p. 27, l. 24. नई रीति निकाल्ना *naī rīti nikālnā*, To introduce new habits; p. 41, l. 16.

H. नैक *naik* = नेक *nek*, *q.v.*

s. नैन *nain* (s. नयन ; णी to guide) m. The eye. नैन मूंदे *nain mūṅde*, With closed eyes; p. 3, l. 14.

s. नैवेद्य *naivedya* (s. नैवेद्य ; निवेद् presenting) m. Food offered to the deity—especially to Vishṇu,—which may afterwards be distributed to the priests or worshippers; p. 32, l. 6.

s. नोता *notā* / नौता *nautā* (s. निमन्त्रण : नि affirmative, मन्त्रण advising) m. An invitation; p. 18, l. 23.

s. नोत्ना *notnā* / नौत्ना *nautnā* (s. निमन्त्रण) v.a. To invite; p. 25, l. 6.

s. नौ *nau*, num. Nine; p. 5, l. 29.

s. नौ खंड *nau khaṅḍ* (; s. नौ nine, खंड part) m. Nine regions; p. 5, l. 29.

s. नौ खंड पृथ्वी *nau khaṅḍ prithwī* (: नौ nine, खंड portion, पृथ्वी earth) The nine climes or divisions of the earth; they are usually denominated the nine Dwīpas (islands), or Varshas (countries) which constitute Jambu Dwīp, the centrical portion of the world, or the known world; p. 166, l. 1.

s. नौगरी *naugarī*, f. An ornament for the wrist; p. 152, l. 22.

H. नौछावर *nauchhāwar*, m. A propitiatory offering, a sacrifice, a victim.

s. नौढ़ना *naurhnā* (; s. नम् to bend) v.n. To bend. 2. To incline downwards. 3. To stoop, to be obedient.

s. नौढ़ाना *naurhānā* (caus. of नौढ़ना *q.v.*) v.a. To bow, to bend; p. 38, l. 4.

s. नियाय *niyāya* / न्याय *nyāya* (s. न्याय : नि certainly, इन to go) m. Justice, equity; p. 131, l. 19. 2. Reason, argument, disputation, sophistry, logic. न्याय कर्ना *nyāya karnā*, To judge, to administer justly, to decide.

H. न्यारा *nyārā*, adj. Distinct, different, separate; p. 29, l. 15. Apart, aloof; p. 6, l. 9. Extraordinary, uncommon.

s. न्हाना *nhānā* (; s. स्नान bathing : ष्णा to bathe) v.n. To bathe, to wash the body (धोना *dhonā* generally means washing clothes); p. 12, l. 10.

s. न्हिलाना *nhilānā* (caus. of न्हाना *q.v.*) v.a. To cause to be washed; p. 111, l. 21.

प

s. पंखा *paṅkhā* (; s. पक्ष a wing) m. A fan; p. 153, l. 23.

s. पंचक *paṅchak* (s. प्रत्यञ्चा) f. A bow-string.

s. पंचखन *paṅchkhan* / पंचखना *paṅchkhanā* (: s. पञ्च five, खण्ड a part or division) adj. Consisting of five floors or stories; p. 71, l. 19.

s. पंच तत्व *paṅch tatwa* (: s. पञ्च five, तत्व element) m. The five elements or principles, according to the Hindūs, viz., Earth, Water, Fire, Air, and Space or Æther; p. 101, l. 3.

s. पंचम *paṅcham* (s. पञ्चम ; पञ्चन् five) ord. num. Fifth.

s. पंचमी *paṅchamī* (; पंचम *q.v.*) f. The fifth day of the lunar fortnight.

s.H. पंच्लड़ी *paṅchlaṛī* (: s. पञ्च five, H. लड़ row) f. A necklace of five strings or rows; p. 152, l. 21.

s. पंचाध्याई *panchādhyāī* (s. पञ्चाध्यायी : पञ्च five, अध्याय a chapter or section, ई in the sense of aggregation) f. The aggregate of five chapters of the *Shrī Bhāgavat*, comprising a detail of the exploits of Krishṇ with the Gopīs, contained in the 30th, 31st, 32nd, 33rd, and 34th chapters of the *Prem Sāgar;* p. 48, l. 3.

s. पंछी *panchhī* (s. पक्षी ; पक्ष a wing) m. A bird; p. 4, l. 4.

s. पंडित *paṅḍit* (s. पण्डित ; पण्डा learning) m. A teacher, a learned Brāhman or one deeply read in sacred science and teaching it to his disciples; Preface.

s. पंडु *Paṅḍu* (s. पाण्डु ; पडि to go) m. The name of a king of ancient Delhi, husband of Kuntī, and nominal father of Yudhishṭhir and the four other Pāṇḍava princes; p. 2, l. 12.

s. पंद्रह *paṅdrah* (s. पञ्चदश) ord. num. Fifteen; p. 9, l. 10.

s. पंथ *paṅth* (s. पथ ; प्रथ् to go) m. A road, a path; p. 14, l. 13.

H. पकड़ना *pakaṛnā*, v.a. To seize, catch, grasp, lay hold of; p. 6, l. 15.

H. पकड़ाना *pakṛānā* (causal of पकड़ना *q.v.*) v.a. To cause to seize, to cause to hold; p. 21, l. 30.

s. पकौड़ी *pakauṛī* (s. पक्ववटी) f. A dish made of pease-meal; p. 42, l. 25.

s. पक्का *pakkā* (; s. पच् to cook) adj. Ripe, cooked. 2. Made of baked bricks; p. 71, l. 17.

s. पक्वान *pakwān* (s. पक्वान्न : पक्व cooked, अन्न food) m. Sweetmeats, victuals fried in melted butter or oil; p. 41, l. 3.

s. पक्ष *paksh* (s. पक्ष ; पक्ष् to take) m. A wing, a feather. 2. The half of a lunar month. 3. Side, party; p. 136, l. 14.

s. पक्षी *pakshī* (; s. पक्ष *q.v.*) adj. Partizan; p. 96, l. 28.

H. पखावज *pakhāwaj*, f. A kind of drum, also a timbrel; p. 50, l. 22.

s. पग *pag* (s. पद् ; पद् to go) m. The foot. पग पट *pag paṭ*, The sound of the falling foot; p. 31, l. 18. पग धारना *pag dhārnā*, To travel.

H. पगड़ी *pagṛī*, f. A turband. पगड़ी उतारना *pagṛī utārnā*, To take off a turband; p. 121, l. 15.

s. पच्छिम *pachchhim* (s. पश्चिम ; पश्चात् behind, as the Hindūs turn their backs to it in prayer) m. The region of Varuna, the west; p. 198, l. 21. adj. Western.

s. पचना *pachnā* (s. पचन) v.n. To be digested. 2. To rot. 3. To be consumed, to take pains, to labour.

H. पछाड़ना *pachhāṛnā*, v.a. To throw down; p. 59, l. 10. 2. To abase, to conquer.

s. पछताना *pachhtānā* (s. पश्चातापन : पश्चात् afterwards, ताप pain) v.a. To regret, to repent; p. 6, l. 17.

s. पछतावा *pachhtāwā* (s. पश्चाताप ; पश्चात् after, ताप pain) m. Regret, penitence, sorrow; p. 40, l. 5.

H. पछाड़ *pachhāṛ* (; पछाड़ना to throw down) v.n. A fall. पछाड़ खाना *pachhāṛ khānā*, To reel backward and fall; p. 18, l. 1.

s. पट *paṭ* (s. पट ; पट् to surround) m. Cloth; p. 27, l. 9. 2. (s. पटत) The sound of falling or beating; p. 31, l. 18. 3. (H.) The valve of a folding door. 4. adj. Upside-down.

H. **पटक्ना** *paṭaknā*, v.a. To dash against anything with violence; p. 11, l. 9. To throw down, to knock. 2. v.n. To crackle; p. 142, l. 10.

S. **पट्ड़ा** *paṭṛā* (s. **पट्ट**; **पट्** to surround) m. A plank, a plank to sit on; p. 21, l. 11. A plank on which a washerman beats clothes. **पट्ड़ा कर देना** *paṭṛā kar denā*, To deprive one of his power or strength, to convict an adversary and leave him without reply.

S. **पटा** *paṭā* (s. **पट्ट**: **पट्** to surround) m. A board on which Hindūs sit while eating their meals or or performing religious ceremonies; p. 66, l. 15. 2. (s. **पट्टिश**) A foil, a wooden scimitar for the sword-exercise. A kind of axe; p. 173, l. 5.

H. **पट्काना** *paṭkānā* / **पट्कार्ना** *paṭkārnā* v.a. To dash against anything; p. 202, l. 23.

H.S. **पट्टा** *paṭṭā*, m. A collar. 2. Harness for a horse; p. 173, l. 3. 3. A lock of hair. 4. (s. **पट्ट**) A deed. particularly a title-deed to land, or a deed of lease.

S. **पट्रानी** *paṭrānī* (: s. **पट्ट** a throne, **रानी** a queen) f. A queen who is installed or consecrated with the king; p. 5, l. 27.

H. **पठाना** *paṭhānā* / **पठौना** *paṭhaunā* v.n. To send; p. 19, l. 15.

H. **पड़ना** *paṛnā*, v.n. To fall, to lie; p. 3, l. 16.

S. **पढ़ना** *paṛhnā* (; s. **पठ्** to read) v.a. To read, repeat, recite: Preface.

S. **पढ़्वाना** (caus. of **पढ़ना** *q.v.*) v.a To cause to read; p. 85, l. 5.

S. **पढ़ाना** *paṛhānā* (; s. **पठ्** to read) c.v. To cause or teach to read, to instruct; p. 5, l. 15.

S. **पत** *pat* (s. **पद**) f. Good name, honour; p. 116, l. 18. 2. (for s. **पति**) m. A lord, a master. a husband.

S. **पतंग** *pataṅg* (s. **पतङ्ग** a grasshopper: **पत** falling. **गम्** to proceed) m. A moth; p. 63, l. 24. 2. A child's kite. 3. The sun.

S. **पताका** *patākā* (s. **पताका**; **पत्** to go) f. A banner or flag; p. 71, l. 20.

S. **पति** *pati* (s. **पति**; **पा** to nourish) m. A lord, a master, a husband; p. 4, l. 19. 2. (s. **पद**) f. Good name; p. 37, l. 29.

S. **पतित** *patit* ((s. **पतित**: **पत्** to go) adj. Fallen, guilty. **पतित पावन** *patit pāwan*, Purifying the guilty (an epithet of the Deity); p 132, l. 8.

S. **पतिब्रता** *patibratā* (s. **पतिव्रता**: **पति** a husband. **व्रत** a religious obligation) f. A chaste woman; p. 6, l 5.

S. **पतियाना** *patiyānā* (; s. **प्रत्यय** trust: **प्रति** again. **इण** to go) v.a. To confide in, to trust; p. 21, l. 28.

S. **पत्तल** *pattal* (s. **पत्रावली**: **पत्र** a leaf, **आवली** a row) f. A plate or trencher formed of leaves; p. 27, l. 5.

S. **पत्थर** *patthar* (s. **प्रस्तर**: **प्र** forth, **स्तृ** to spread) m. A stone; p. 15, l. 4.

S. **पत्नी** *patnī* (s. **पत्नी**; **पति** a husband) f. A wife; p. 31, l. 12.

S. **पत्रा** *patrā* (s. **पत्र**) m. An almanac, an ephemeris; p. 16, l. 5.

S. **पथ** *path* = **पंथ** (*q.v.*), A road, a path.

S. **पद** *pad* (s. **पद**; **पद्** to go) m. A foot; p. 31. l. 25. 2. Footstep, step. 3. Rank, dignity. 4. place, station. 5. (in grammar) A word.

S. **पद नख** *pad nakh* (: s. **पद** foot, **नख** nail) m. Nail of the foot, toe-nail; p. 49, l. 26.

s. पद्‌म *padam* | पद्म *padm* (s. पद्म ; पद् to go) m. A lotus (Nelumbum speciosum); p. 13, l. 9. 2. Ten billions.

s. पद्वी *padwi* (s. पद्वी ; पद् to go) f. Rank ; p. 163, l. 12. Character. 2. Title, surname, patronymic. 3. A road or path.

s. पदारथ *padārath* | पदार्थ *padārth* (s. पदार्थ : पद word or thing, अर्थ meaning) m. Thing ; p. 49, l. 1. Substantial or material form of being, a rarity, a good, a blessing ; p. 46, l. 22. A delicacy. 2. The meaning of a word. 3. A category or predicament in logic of which seven are enumerated, viz., substance, quality, action, identity, variety, relation, non-existence.

s. पधार्ना *padhārnā* (: s. पद the foot, धारण placing) v.n. To go, to proceed, to depart ; p. 102, l. 4.

H. पन *pan*, An affix to nouns answering to the English -ship, -hood, -ness. कुंवारपन *kuṅwārpan*, Bachelorship. लरकपन *larakpan*, Childhood. See *Gilchrist's Grammar, p.* 170.

s. पन *pan* (s. पण a pledge ; पण् to do business) m. A vow, a promise ; p. 110, l. 12.

s. पनच *panach* (s. प्रत्यञ्चा to bind) f. The string of a bow.

s. पनच्ना *panachnā* (; s. पनच a bow-string, *q.v.*) v.a. To string a bow ; p. 117, l. 29.

s. पन्घट *panghaṭ* (: s. पानीय water, घट्ट a quay or landing place) m. A passage to a river, a stair or quay for drawing water ; p. 110, l. 2.

s. पन्नग *pannag* (s. पन्नग : पन्न fallen, ग who goes or पद् foot, न not, ग who goes) m. A snake ; p. 82, l. 29.

s. पन्वारा *panwārā* (s. पर्णावलि : पर्ण a leaf, आवलि a row) m. A plate or dish made of leaves ; p. 27, l. 10.

s. पन्वाड़ी *panwāṛī* (s. पर्णवाटी : पर्ण betel, वाटी garden) f. A betel-garden ; p. 71, l. 13.

s. पन्हारी *panhārī* (s. पानीयहारिनी : पानीय water, हारिनी taking) f. A woman who carries water on her head ; p. 112, l. 2.

H. पपिहा *papihā* | पपीहा *papīhā* m. A sparrow-hawk (Falco nisus); p. 169, l. 23.

s. पय *pay* (s. पयस् ; पय् to go) m. Milk ; p. 126, l. 15.

s. पर *par*, conj. But ; Preface. adj. (s. पर ; पृ to fill) Distant, other, strange, foreign. पर देस *par des*, A foreign country, abroad. पर उपकारी *pār upkārī*, Assisting others ; p. 61, l. 22. adv. and postp. Over, above, through, after, at, by. 3. (s. उपरि) On, upon, at ; p. 51, l. 22.

s. परंतु *parantu*, conj. But ; p. 130, l. 17.

s. पर पुरुष *par purush* (: s. पर foreign, पुरुष man, *q.v.*) m. A strange man (any man but a woman's own husband); p. 42, l. 7.

s. परम (s. परम : पर best, मा to mete) adj. First, excellent, supreme, best ; p, 11, l. 13. परम मित्र *param mitr*, Chief friend. परमानंद *param ānand*, m. Great pleasure ; p. 75, l. 16. परम गति *param gati*, f. Supreme felicity, heavenly bliss. परम धाम *param dhām*, m. Supreme abode, paradise. परम पद *param pad*, m. Chief place, heaven, beatitude ; p. 52, l. 23.

s. परमार्थ *paramārth* (s. परमार्थ : परम chief, अर्थ object) m. The chief or best end ; p. 167, l. 7. Virtue, merit.

s. परमार्थी *paramārthī* (; s. परमार्थ *q.v.*) adj.

Religious, seeking the best end ; p. 214, l. 30.

s. परमेश्वर *Parameshwar* (s. परमेश्वर : परम chief, ईश्वर Lord) m. The first and supreme lord, the Almighty ; p. 41, l. 22.

s. परम्परा *paramparā*, परंपरा *paramparā* (s. परम्पर : पर subsequent, repeated) f. Communication from one to another in succession, tradition ; p. 41, l. 4.

s. परम्सुजान *paramsujān* (: परम very, सुजान intelligent) Highly intellectual ; Preface.

s. परस्ना *parasnā* (s. स्पर्शन ; स्पृश् to touch ; p. 24, l. 15. 2. (from P. پرستیدن) To worship.

s. परस्पर *paraspar* (परस्पर : पर another, पर another) adv. Mutually, reciprocally ; p. 34, l. 13.

s. पराक्रम *parākram* (s. पराक्रम : परा supremacy, opposition, क्रम going) m. Strength, power, prowess ; p. 125, l. 6.

s. पराक्रमी *parākramī* (s. पराक्रमी : पराक्रम strength, *q.v.*) adj. Powerful, puissant ; p. 161, l. 15.

H. परात *parāt*, f. A large plate ; p. 42, l. 21.

s. पराधीन *parādhīn* (s. पराधीन : पर another, अधीन dependent) adj. Dependent on another ; p. 119, l. 26.

s. पराया *parāyā* (; s. पर abroad) adj. Strange, foreign ; p. 35, l. 24. (From this word the Anglicised *Pariah* is derived—signifying " An outcast.")

s. पराशर *Parāshar* (: s. पर best, शृ to complete) m. The father of Vyāsa ; p. 4, l. 23.

s. परिक्रमा *parikramā* (s. परिक्रम : परि around, क्रम going) f. Circumambulation to the right by way of adoration ; p. 43, l. 16.

s. परिहर्ना *pariharnā* (s. परिहरण : परि, हृ to take) v.a. To leave, to forsake. 2. To remove ; p. 59, l. 17, where the verb is divided into परहि and हर, each part being included in a separate hemistich. To dispel ; p. 44, l. 7.

s. परि हौं *pari haun* (a Braj form for पड़ूंगा or पड़ूं) 1 p. sin. fut., I will fall ; p. 65, l. 19.

s. परि *pari*, 1 p. sin. past tense of पर्ना to fall, Braj form of पड़ना. परी ठगौरी *parī ṭhagaurī*, A trick has been played on us ; p. 37, l. 7.

s. परी *parī*, 3 p. past tense fem. of पड़ना for पड़ी, Happened, was ; p. 31, l. 8.

s. परीक्षा *parīkshā*, (s. परीक्षा : परि intensitive prefix, ईक्ष् to see) f. Examination, trial, proof ; p. 55, l. 15.

s. परीक्षित *Parīkshit* (: परि before, क्षि to destroy, because he was destroyed in his mother's womb, but re-animated by Kṛishn) m. The grandson of Arjun, and king of Hastināpur, who having cast a dead snake on a Ṛishi's neck, was cursed by his son, and condemned to die by the bite of a snake ; whereupon the *Prem Sāgar* was related to him that he might obtain beatitude ; p. 2, l. 7.

H. परेखा *parekhā*, m. Regret ; p. 183, l. 16, (so Price, but this word is more likely a corruption of परीक्षा trial, *q.v.*) कौन करै परेखा *kaun karai parekhā*, Who would make trial of ?

s. पारोपकार *pāropakār* (s. परोपकार : पर another उपकार assistance) m. The helping of others, beneficence.

s. परोप्कारी *paropkārī* (; s. परोप्कार charity, : पर other, उप्कार aid) Acting for the advantage of others, beneficent, hospitable ; Preface.

s. परोस्ना *parosnā* (s. परिवेषण : परि around, वेषण encompassing) v.a. To serve up dinner, to distribute food to guests; p. 19, l. 2.

H. परोहा *parohā*, m. A leathern bucket for drawing water; p. 71, l. 14.

s. पर्काजी *parkājī* (: s. पर other, कार्य्यी agent) adj. Attentive to the business or interest of others, serving others, beneficent; p. 38, l. 17.

s. पर्चा *parchā* / पर्चौ *parchau* (s. परीचा *q.v.*) m. Examination, experiment, trial, proof; p. 55, l. 17.

s. पर्छाईं *parchhāīṅ* (s. प्रतिछाया : प्रति back, छाया shade) f. Image from shadow or reflection, shadow, shade; p. 58, l. 22.

s. पर्जंक *parjaṅk* (s. पर्य्यङ्क : परि about, अकि to go) m. A bedstead; p. 160, l. 29.

s. पर्जा *parjā* = प्रजा *q.v.*; p. 17, l. 8.

s. पर्तीत *partīt* (s. प्रतीत : प्रति toward, इ to go) f. Faith, trust, confidence; p. 61, l. 11. पर्तीत कर्ना *partīt karnā*, To trust, to believe.

s. पर्ब *parb* / पर्व *parv* (s. पर्व्व) m. A festival, a holy-day; p. 12, l. 10.

s. पर्बत *parbat* / पर्वत *parvat* (s. पर्व्वत ; पर्व्व to fill) m. A mountain; p. 6, l. 9.

s. पर्बस *parbas* (s. पर्व्वश : पर another, वश subjection) adj. Depending on the will of another, under the authority of another, dependant; p. 80, l. 16. Precarious.

s. पर्वीन *parwīn* (s. प्रवीण : प्र implying excellence, वीणा a lute) adj. Skilful, intelligent, accomplished; p. 153, l. 9.

s. पर्शुराम *Parshurām* / परस्राम *Parasrām* (s. पर्शुराम : पर्शु an axe, राम who delights) m. A hero and demigod, the first of the three Rāmas, and the sixth Avatār of Vishṇu—p. 221, l. 11,—who appeared in the world as the son of the saint Jamadagni for the purpose of repressing the tyranny of the Kshatriyas, and slew their king Sahasrārjun. Parshurām appears to typify the tribe of Brāhmans and their contests with the Kshatriyas; p. 8, l. 14.

s. पर्हिं *parhiṅ*, *vide* परिहर्ना; p. 59, l. 17.

s. पल *pal* (s. पल ; पल् to go) m. A moment; p. 12, l. 21.

H. पलक *palak*, m. The eyelid; p. 54, l. 2.

H. पलट्ना *palaṭnā*, v.a. To return, to turn back. 2. To change, to shift; p. 202, l. 15.

s. पलाना *palānā* (s. पलायन : परा from, अयन going) v.n. To flee, to run away, to escape; p. 105, l. 14.

H. पल्टा *palṭā*, m. Turn, stead, exchange; p. 83, l. 27. Recompense; p. 85, l. 9. Revenge; p. 3, l. 19.

H. पल्लू *pallū*, m. The hem or border of a garment; p. 163, l. 20.

s. पल्वाना *palwānā* (caus. of पाल्ना *q.v.*) v.a. To cause to nourish, to bring up: p. 147, l. 4.

s. पवन *pawan* (s. पवन ; पू to be or make pure) f. Air, wind; p. 6, l. 8. 2. m. Regent of the winds and of the north-west quarter. पवन कौ पूत *pawan kau pūt*, The son of Pawan, *i.e.*, the ape Hanumān; p. 64, l. 24.

s. पवन्रेखा *Pawanrekhā* (: पवन wind, रेखा line) f. A queen, the wife of Ugrasen and mother of Kans by the dæmon Drumalik; p. 6, l. 5.

s. पवित्र *pawitr* (s. पवित्र ; पू to purify) adj. Pure, holy, undefiled, clean; p. 20, l. 9.

s. पशु *pashu*, m. An animal, a beast; p. 4, l. 4.

s. पशुपालक *pashupālak* (s. पशुपाल : पशु animal, पाल who preserves) m. A cowherd; p. 39, l. 9.

s. पषान *paṣhān* (s. पाषाण ; पिष् to grind (condiments upon) m. A stone; p. 28, l. 8.

s. पसार्ना *pasārnā* (s. प्रसारण : प्र before, सृ to go) v.a. To stretch forth; p. 26, l. 12. To unfold.

s. पसीना *pasīnā* (s. प्रस्वेद : प्र intensive, स्वेद sweat) m. Perspiration, sweat; p. 14, l. 24, and p. 34, l. 5.

H. पस्यौं *pasyauṅ*, adv. or postp. Near; p. 18, l. 21. पस्यौं आई *pasyauṅ āī*, Came near. (Not found in the dictionary).

H. पह्चान्ना *pahchānnā*, v.a. To know, to recognize, to be acquainted with; p. 2, l. 12.

s. पहन्ना *pahannā* / पहर्ना *paharnā* / पहिर्ना *pahirnā* (s. परिधान : परि around, धान having) v.a. To put on clothes, to wear; p. 35, l. 17.

s. पहर *pahar* (s. प्रहर : प्र before, हृ to take) m. A watch, the eighth part of the day, about three hours; p. 6, l. 5.

s. पहर लीं *pahar līṅ*, 3 p. pl. fem. past tense of पहर लेना *pahar lenā*, an intensive verb formed by adding लेना *lenā* to the root of पहर्ना *paharnā*, *q.v.* They put on; p. 14, l. 18.

s. पहराना *paharānā* / पहिराना *pahirānā* (; s. परिधान vesture : परि about, धान having) v.a. (caus. of पहिर्ना) To array, to cause another to put on clothes; p. 9, l. 12.

s. पहरावनी *paharāwanī* / पहिरावन *pahirāwan* / पहिरावनी *pahirāwanī* (s. परिधान : परि around, धान having) f. Vestments bestowed on guests at a wedding, dress, clothing; p. 114, l. 2.

H. पहल *pahal*, m. A flock of cotton; p. 142, l. 15.

H. पहाड़ *pahāṛ*, m. A mountain; p. 7, l. 17.

s. पहिचान्यों *pahichānyoṅ*, 1 p. sing. past tense of पहिचान्नो to recognize, I have perceived; p. 35, l. 21. (A Braj form).

H. पहिर्ना *pahirnā*, v.a. To put on clothes, to dress, to wear.

H. पहिराना *pahirānā*, causal of पहिर्ना *q.v.* To cause to dress; Preface.

H. पहुंचावन *pahuṅchāwan* (v.n. from पहुंचाना *q.v.*) Escorting, conducting; p. 9, l. 12. पहुंचावन चले *pahuṅchāwan chale*, They went escorting, *or* as escort (when पहुंचावन might also be considered as the inflected infinitive of पहुंचान्ना.

H. पहुंचान्ना *pahuṅchāwnā* (caus. of पहुंच्ना *q.v.*) v.a. to escort; p. 9, l. 13.

H. पहुंची *pahuṅchī*, f. An ornament for the wrist; p. 152, l. 22.

H. पहुंच्ना *pahuṅchnā*, v.n. To arrive, reach; p. 6, l. 2. To extend, amount to, befall, belong.

H. पहुड़्ना *pahuṛnā*, v.n. To lie down, to repose, to rest.

s. पहुनई *pahunaī* (s. प्राघुणता : प्राघुण a guest) f. Hospitality, entertainment; p. 40, l. 2.

s. पहुप *pahup* (s. पुष्प) m. A flower; p. 123, l. 27.

s. पहरुआ *pahruā* (s. प्रहरी ; प्रहर a watch) m. A watchman, a sentinel; p. 14, l. 3.

s. पह्लाद *Pahlād* / प्रह्लाद *Prahlād* m. The son of Hiranakasyap, also called Harijan; p. 160, l. 5.

H. पह्ले *pahle* / पहिले *pahile* adv. First; p. 23, l. 2.

H. पाओं *pāoṅ* (inflection pl. of पांव, *q.v.*) Feet; p. 4, l. 17. पाओं पर गिर *pāoṅ par gir*, Having

fallen at the feet. पाओं पड़ना *pāoṅ paṛnā*, v.n. To fall at the feet of; p. 21, l. 17.

s. पांच *pāṅch* (; पञ्च five) num. Five; p. 5, l. 22.

s. पांच सीसवाला *pāṅch sīswālā* (: पांच five, सीस head, वाला affix denoting agent or possession) m. One who has five heads; p. 148, l. 9.

s. पांडव *Pāṅḍav* (s. पाण्डव ; पाण्डु a king of ancient Delhi, and nominal father of Yudhishṭhir) m. A Pāṇḍava or descendant of Pāṇḍu, especially applied to Yudhishṭhir, and his four brothers; p. 3, l. 6.

s. पांडे *pāṅḍe* (s. पण्डित) m. A title of Brāhmans, a schoolmaster.

s. पांत *pāṅt* / पांति *pāṅti* (s. पंक्ति ; पचि to spread) f. A rank of soldiers, a row. A line (of writing). पांत पांत *pāṅt pāṅt*, In rows; p. 4, l. 24. जात पांति *jāt pāṅti*, f. A pedigree.

H. पांव *pāṅw*, m. Foot. पांव उठाना *pāṅw uṭhānā*, To raise the foot, *i.e.*, To go quickly. पांव उड़ाना *pāṅw uṛānā*, To interfere unprofitably, (*lit.*, to squander the feet). पांव उतर्ना *pāṅw utarnā*, To be dislocated (the foot). पांव का अंगूठा *pāṅw kā aṅgūṭhā*, The thumb of the foot, *i.e.*, The great toe. पांव कांपना *pāṅw kāmpnā*, To fear to attempt anything. पांव काइम कर्ना *pāṅw kāim karnā*, To occupy a fixed habitation, to adopt a new resolution. पांव किसी का उखाड़ना *pāṅw kisī kā ukhāṛnā*, To move a person's foot, to shake his intention. पांव किसी का गले में डालना *pāṅw kisī kā gale meṅ ḍālnā*, To convict one by his own arguments, (*lit.*, to put a person's foot into his throat). पांव की उंगली *pāṅw kī uṅglī*, The finger of the foot, *i.e.*, A toe. पांव पकड़ना *pāṅw pakaṛnā*, To beseech submissively, (*lit.*, to lay hold of the foot). पांव पड़ना *pāṅw paṛnā*, To fall at the feet, to entreat humbly. पांव देना *pāṅw denā*, To set foot in an affair, to commence a thing; p. 136, l. 12.

s. पांवड़ा *pāṅwṛā* (; पांव a foot) m. A cloth or carpet spread to walk on; p. 20, l. 8.

s. पाक *pāk* (s. पाक ; पच् to become ripe) m. A confection, an electuary medicine; p. 152, l. 16.

s. पाकड़ *pākaṛ* (s. पर्कटी ; पृच् to touch) m. The waved-leaved Indian fig-tree (Ficus venosa); p. 51, l. 22.

H. पाखर *pākhar*, f. Iron armour for the defence of a horse or elephant; p. 150, l. 22.

s. पाछें *pāchheṅ* / पाछे *pāchhe* (s. पश्चात्) adv. Afterwards; p. 202, l. 9.

s. पाट *pāṭ* (s. पट्ट ; पट् to surround) m. Silk. 2. A turband. 3. A chair. 4. A throne; p. 4, l. 16. राज पाट *rāj pāṭ*, The throne of empire.

s. पाटंबर *pāṭambar* (s. पट्टाम्बर : पट्ट silk, अम्बर cloth, apparel) m. Silk cloth, a silk garment; p. 16, l. 10.

s. पाटी *pāṭī* (s. पट्टिका) f. The side-pieces of a a bed. 2. A kind of board on which children learn to write. 3. Division of the hair, which is combed to the two sides and parted in the middle; p. 163, l. 15. 4. A sweetmeat. 5. A mat.

H. पाटना *pāṭnā*, v.a. To roof, to cover; p. 110, l. 8. 2. To fill, to overstock.

s. पाठ *pāṭh* (s. पाठ ; पठ् to read) m. A reading, lecture, perusal or recitation; p. 176, l. 22.

s. पाठक *pāṭhak* (s. पाठक ; पाठ a lecture, *q.v.*) m.

He that gives lessons, a teacher, a professor. 2. A title of Brāhmans.

s. पाठ्शाला *pāṭhshālā* (: पाठ study ; पठ् to read, शाला *shālā*, a house). A college ; Preface.

s. पाढ़ा *paṛhā* (s. पृषत: ; पृष् to sprinkle) m. A hog-deer ; p. 129, l. 21.

s. पाणि *pāṇi*, The hand (*vide* त्रिशूल); p. 161, l. 13.

s. पात *pāt* (s. पत्र ; पत् to go) m. A leaf ; p. 27, l. 4.

s. पातक *pātak* (s. पातक ; पत् to fall) m. Sin, crime ; p. 37, l. 1.

H. पातर् *pātar*, f. A dancing-girl ; p. 209, l. 11. A prostitute. 2. adj. Lean, weak.

s. पाताल पुरी *Pātāl purī* (: s. पाताल Pātāla, *q.v.*, पुर् city) f. The metropolis of the infernal regions and capital of Yama, regent of the dead ; p. 228, l. 21.

s. पाती *pātī* (s. पत्री ; पत् to go) f. A letter, an epistle ; p. 87, l. 19.

s. पात्र *pātr* (s. पात्र ; पा to preserve or retain) m. A vessel. माया पात्र *māyā pātr*, A vessel of wealth, exceedingly rich ; p. 200, l. 10. 2. Worthy, able, eligible, fit.

s. पाथर् *pāthar* (s. प्रस्तर् : प्र, स्तृ to spread) m. A stone ; p. 60, l. 51.

s. पान *pān* (s. पर्ण ; पृ to please) m. A leaf. 2. The betel-leaf (the leaf of the Piper betel) ; p. 16, l. 17.

s. पाना *pānā* / s. पावना *pāwnā* } (s. प्रापण : प्र, आप् to acquire) v.a. To get, acquire, obtain ; p. 1, l. 11, and p. 2, l. 12.

s. पानि *pāni* (s. पाणि ; पण् to be of price) m. The hand ; p. 59, l. 19.

s. पानी *pānī* (s. पानीय ; पा to drink) m. Water ; p. 9, l. 20. पानी देना *pānī denā*, To offer a libation of water to satisfy the manes of a deceased person after his corpse has been burnt ; p. 79, l. 29.

s. पाप *pāp* (; s. पा to preserve (from it) m. Sin, crime, offence. पाप रूप *pāp-rūp*, One in form like a criminal, of guilty aspect ; p. 2, l. 17.

s. पापड़ *pāpaṛ* (s. पर्पट ; पर्प् to go) m. A thin crisp cake made of any grain of the pea kind ; p. 42, l. 25.

s. पापी *pāpī* (; s. पाप sin, *q.v.*) adj. Sinful, criminal ; p. 6, l. 17.

s. पाप्नी *pāpnī* (s. पापिनी ; पाप sin) f. adj. A criminal or wicked woman ; p. 171, l. 15.

s. पायन *pāyan*, a Braj form, pl. inflec. of पाए *pāe*, a foot, At his feet ; p. 65, l. 19.

s. पार् *pār* (; s. पार् to cross over) m. The opposite side or bank of a river. Across, over, beyond. पार् होना *pār honā*, v.n. To cross ; p. 5, l. 7.

s. पारस *pāras* (s. स्पर्शमणि : स्पर्श touch, मणि gem) m. The philosopher's stone ; p. 83, l. 26.

s. पार्वती *Pārvatī* (s. पार्व्वती ; पार्व्वत a mountain) f. A name of Durgā—the wife of Shiva,—as being daughter of the sovereign of the Himāla or snowy mountains ; p. 52, l. 19.

s. पार्वार् *pārwār* (s. पारावार् : पार् the further bank, वृ to surround) adv. On both sides (of a river). 2. Quite through, through and through.

s. पालन *pālan* (; पालना *q.v.*) m. Bringing up, preserving ; p. 81, l. 4. Cherishing, rearing, nourishing.

s. पाला *pālā* (s. प्रालेय : प्र, लीच् to unite with) m. Frost, hoar-frost ; p. 36, l. 21. 2. Trust, charge. 3. Leaves of a tree named *Jharberī*, a species of

Zizyphus. पाले पड़ना *pāle parṇā*, To fall within the power of another.

s. पालागन *pālāgan* (s. पादलग्न : पाद foot ; पद् to go, लग्न attachment) m. Obeisance by embracing the feet, reverence, respect, veneration ; p. 82, l. 9.

s. पाल्ना *pālnā* (; s. पाल् to nourish) v.a. To preserve, to protect, to nourish, to rear ; p. 16, l. 26. 2. m. A cradle ; p. 19, l. 4.

s. पावत *pāwat*, pres. part. of पावनौं *pāwanaun*, to obtain. Obtaining ; Preface.

s. पावन *pāwan* (s. पावन ; पू to cleanse) adj. Pure, purifying. पतित पावन *patit pāwan*, Purifying the guilty ; p. 132, l. 8.

s. पावस *pāwas* (s. प्रावृष : प्र forth, वृष् to sprinkle) m. The rainy season ; p. 35, l. 5.

s. पाषंड *pāṣhaṇḍ* / पाषंडी *pāṣhaṇḍī* (s. पाषण्ड : पाप sin, षण् to give) adj. Hypocritical, deceitful, heretical.

s. पाषंड्य *pāṣhaṇḍya* (; s. पाषण्ड *q.v*) m. Wickedness, deceit, heresy.

H. पास *pās*, postp. Near, toward, close to ; p. 2, l. 10.

s. पासा *pāsā* (s. पाशक ; पश् to bind) m. A die. pl. पासे *pāse*, The oblong dice with which chaupar is played ; p. 129, l. 11. 2. A throw of dice.

s. पाहुना *pāhunā* (s. प्राघुण : प्र, आङ्, घुण् to turn round) m. A guest ; p. 158, l. 11.

s. पिउ *piu* (s. प्रिय) adj. Beloved. 2. m. Husband ; p. 222, l. 20.

s. पिंगल *Piṅgal* (s पिङ्गल ; पिजि to colour) m. Name of a fabulous being in the form of a serpent, to whom a treatise on prosody is ascribed. 2. The said treatise ; p. 85, l. 7.

s. पिग *pik* (s. पिक : पि imitative sound, कै to utter) m. The kokil, or black or Indian cuckoo, which is frequently introduced in Indian poetry, and is supposed by its musical cry to inspire pleasing and tender emotions ; p. 35, l. 16.

s. पिक ब्यनी *pik byanī* / पिक बैनी *pik bainī* (: s. पिक the Indian cuckoo, वाणी voice) adj. Possessing a voice like the kokil (an epithet of a female); p. 107, l. 7.

H. पिच्कारी *pichkārī*, f. A squirt or syringe ; p. 174, l. 30.

H. पिछौरा *pichhaurā*, m. A cloth or sheet worn round the waist, or thrown carelessly over the head. पिछौरी *pichhaurī*, f. Diminutive of the preceding ; p. 34, l. 13.

s. पिछ्ला *pichhlā* (; पीछा *q.v.*) adj. Hinder ; p. 25, l. 27. Latter, late, last.

s. पिता *pitā* (s. पितृ ; पा to nourish) m. A father ; p. 4, l. 1.

s. पितांबर *pitāmbar* = पीतांबर (*q.v.*)

s. पितामह *pitāmaha* (s. पितामह ; पितृ a father) m. A paternal grandfather ; p. 208, l. 18. A name of Brahmā, the Great Father of all.

s. पिनाक *Pināk* (s. पिनाक ; पा to preserve (the world) m. The bow of Shiva ; p. 173, l. 27. 2. A musical instrument.

s. पिप्पली *pippalī*, f. Long pepper (Piper longum).

s. पिय *piya* / पिया *piyā* / पी *pī* (s. प्रिय ; प्री to please) adj. Beloved. 2. m. A husband ; p. 35, l. 11. Lover.

s. पिर्थी *pirthī* (s. पृथ्वी ; पृथु a king whose domain was the earth) f. The earth ; p. 3, l. 1.

s. पिलाना *pilānā* (caus. of पीना *q.v.*) To give to drink, to make drink; p. 9, l. 8.

s. पिलान्ना *pilāwnā* (caus. of पीना *q.v.*) v.a To cause to drink; p. 17, l. 21.

s. पिल्ना *pilnā* (s. पेलन) v.a. To attack, to assault; p. 119, l. 12. 2. v.n. To be bruised, thrashed, trodden, pressed, ground.

s. पिशाच *pishāch* / पिसाच *pisāch* (s. पिशाच : पिश for पिशित flesh, अश् to eat) m. A sprite, a malignant being something between a fiend and a ghost, described as visiting battle-fields with Mahādev; p. 119, l. 15.

s. पीछा *pīchhā* (s. पश्चात्) m. The rear. 2. Pursuit. पीछा छोड़ना *pīchhā chhoṛnā*, To leave the pursuit, p. 101, l. 19. पीछा ताक्ना *pīchhā tāknā*, v.n. To watch for the absence of any one in order to take advantage of it; p. 210, l. 18.

H. पीछे *pīchhe*, adv. After, afterwards; p. 2, l. 9.

s. पीट्ना *pīṭnā* (s. पीडन ; पीड् to give pain) v.a. To beat, to beat the breast in lamentation; p. 18, l. 2. छाती पीट्ना *chhātī pīṭnā*, To beat the breast.

s. पीठ *pīṭh* (s. पृष्ठ ; पृष् to sprinkle) f. The back; p. 3, l. 13. पीठ देना *pīṭh denā* (*lit.*, to give the back) To flee, to run away. 2. To throw away in displeasure. पीठ पर हाथ फेर्ना *pīṭh par hāth phernā*, To pat on the back, to encourage.

s. पीड़ा *pīṛā* (s. पीड़ा ; पीड़ to pain) f. Pain; p. 210, l. 14.

s. पीढ़ा *pīṛhā*, m. / पीढ़ी *pīṛhī*, f. (; s. पीठ a back) A stool; p. 21, l. 11. A chair. 2. A generation of progenitors.

s. पीढ़ा बंध *pīṛhā bandh* (s. पीठ बंध) m. A preface or introduction to a book.

s. पीत *pīt* (s. पीत ; पा to drink in, *i.e.*, by the eyes) adj. Yellow; p. 27, l. 9.

s. पीतांबर *pītāmbar* (s. पीताम्बर : पीत yellow, अंबर cloth, apparel) m. A silk cloth of a yellow colour. (vulg.) A silk cloth; p. 13, l. 8.

s. पीना *pīnā* (; पा to drink) v.a. To drink; p. 11, l. 8.

s. पीपल *pīpal* (s. पिप्पल ; पा to preserve) m. The holy fig-tree (Ficus religiosa); p. 51, l. 22.

s. पीर *pīr* (s. पीडा ; पीड् to pain) f. Pain; p. 8, l. 9. Grief, pity.

s. पीरा *pīrā* / पीला *pīlā* (s. पीत ; पा to drink, *i.e.*, imbibe by the eye) adj. Yellow; p. 21, l. 2.

s. पीस्ना *pīsnā* (s. पेशण ; पिष् to grind) v.a. To grind. 2. To gnash the teeth; p. 9, l. 15.

s. पुंज *puñj* (s. पुञ्ज : पुं man, जन् to be born) m. A heap, a quantity, a collection; p. 94, l. 25.

H. पुकार *pukār*, f. Calling out, exclamation, outcry, clamour; p. 8, l. 17, and p. 19, l. 26.

H. पुकार्ना *pukārnā*, v.a. To call aloud; p. 19, l. 22.

s. पुजाना *pujānā* (trans. of पूज्ना *q.v.*) v.a. To cause to worship; p. 185, l. 9.

s. पुजापा *pujāpā* (; s. पूजा worship) m. The apparatus of worshipping; p. 58, l. 5.

s. पुज्ना *pujnā* (; s. पूर् to be filled) v.n. To be filled or completed; p. 176, l. 11.

s. पुज्वाना *pujwānā* (caus. of पुज्ना *q.v.*) v.a. To cause to worship; p. 29, l. 4.

s. पुत्र *putr* (s. पुत्र : पुत the hell of the childless, त्रा to preserve) m. A son; p. 5, l. 4.

s. पुत्री *putrī* (f. of पुत्र *q.v.*) f. A daughter.

s. पुत्ली *putlī* (s. पुत्रली) f. The pupil of the eye. 2. An image, a puppet; p. 119, l. 27. 3. Frog of a horse's foot.

s. पुन *pun* | पुनि *puni* (s. पुनर्) adv. Again; p. 49, l. 30. Then.

s. पुन्य *punya* (s. पुण्य ; पुञ् to be pure) m. Virtue, moral or religious merit; p. 5, l. 4.

s. पुन्यवान *punyawān* (s. पुण्यवान ; पुण्य virtue) Virtuous, righteous, charitable; Preface.

s. पुर *pur*, m. | पुरी *purī*, f. (s. पुर ; पुर् to lead) A city, a p. 6, l. 3.

s. पुर *Pur*, m. The younger brother of Yadu, and son of king Jajātī; p. 81, l. 11.

s. पुरातम *purātam* | पुरातन *purātan* (s. पुरातन ; पुरा old) adj. Old, ancient; p. 233, l. 5.

s. पुरान *Purān* (s. पुराण ; पुरा old) m. A Purāna, or sacred and poetical work, supposed to be compiled or composed by the poet Vyāsa, and comprising the whole body of Hindū theology. Each Purāna treats of five topics especially:—the creation; the destruction and renovation of worlds; the genealogy of Gods and heroes; the the reigns of the Manus and the transactions of their descendants. There are eighteen acknowledged Purānas:—1. Brahmā. 2. Padma, or the lotus. 3. Brahmanḍa or tke Egg of Brahmā. 4. Agni or Fire. 5. Vishnu. 6. Garura, his bird or vehicle. 7. Brahmā Vaivarta, or transformations of Brahmā. 8. Shiva. 9. Singa. 10. Nārada, son of Brahmā. 11. Skanda, son of Shiva. 12. Markanḍeya, from a sage of that name. 13. Bhavishyat, or prophetic. 14. Matsya or the Fish. 15. Varāha, or the boar. 16. Kurma, or the tortoise. 17. Vāmana, or the dwarf. 18. The Bhāgavat or life of Krishn, which last is by some considered as a spurious and modern work. The Purānas are reckoned to contain 400,000 stanzas. There are also eighteen Upapurānas, or similar poems of inferior sanctity. The whole constitutes the popular or poetical creed of the Hindūs; and some of them or parts of them are very generally read and studied.

s. पुराना *purānā* (s. पुराण ; पूर् to fill) adj. Old; p. 105, l. 22.

s. पुरुष *purush* (s. पुरुष : पुर् the body, वष् to abide) m. A man generally or individually, a male, mankind; p. 20, l. 8.

s. पुरुषाः *purushāh* (m. pl. of पुरुष *q.v.*) Ancestors; p. 41, l. 16.

s. पुरुषारथ *purushārath* | पुरुषार्थ *purushārth* (s. पुरुषार्थ : पुरुष man, अर्थ object) m. Explained by Price as—manliness, boldness, generosity. (The meaning in Sanskrit, and which seems more appropriate — is, Completion of human wishes); p. 72, l. 8.

s. पुरोहित *purohit* (s. पुरोहित : पुरस् first, हित revered) m. A family priest conducting all the ceremonials and sacrifices of a house or family; p. 20, l. 2.

s. पुरखा *purkhā* (s. पुरुष ?) m. An old man, an elder; p. 97, l. 2. An ancestor.

s. पुरबासी *purbāsī* (: पुर town, बसना to dwell) m. Inhabitant of a town; p. 72, l. 10.

s. पुलस्ति *Pulasti* (s. पुलस्ति : पुल great, अस् to throw or cast down) m. A son of Brahmā, one of the seven Rishis; p. 226, l. 1.

s. पुष्प *pushp* (s. पुष्प ; पुष्प् to flower) m. A flower, a blossom; p. 42, l. 30.

s. पुष्प बिमान *pushp bimān* (: s. पुष्प a flower, *q.v.*,

विमान a car, *q.v.*) m. A car of flowers; p. 147, l. 5.

s. पूंछ *pūṅchh* (s. पुच्छ) m. A tail; p. 21, l. 5.

s. पूछना *pūchhnā* (; s. प्रच्छ् to ask) v.a. To ask, inquire, question, interrogate; p. 2, l. 14.

s. पूज *pūj* (s. पूज्य) adj. To be worshipped, deserving respect, venerable; p. 5, l. 19.

s. पूजवना *pūjavanā* (; s. पूर् to fill) v.a. To cause to be completed, to perfect; p. 165, l. 8.

s. पूजा *pūjā* (s. पूजा ; पूज् to worship) f. Worship, adoration, veneration; p. 20, l. 8.

s. पूज्ना *pūjnā* (; s. पूर् to fill) v.n. To be accomplished, fulfilled, completed; p. 7, l. 4. (; s. पूज् to worship) v.a. To worship, to adore, to venerate.

s. पूत *pūt* = पुत्र *q.v.* m. A son; p. 6, l. 18, and p. 64, l. 24.

s. पूतना *Pūtanā* (s. पूतना ; पूत् to be pure) f. A female fiend and giantess who—in the shape of a beautiful woman—attempted to kill Krishṇ by giving him suck after poisoning her breast; p. 17, l. 13.

s. पूनौ *pūnau*, पून्यो *pūnyo*, पून्यौ *pūnyau* (s. पौर्णमासी or पूर्णिमा ; पूर्ण full) f. The day of full moon; p. 48, l. 11.

s. पूरन *pūran*, पूरा *pūrā* (s. पूर्ण ; पूर् to be full) adj. Entire, complete, full, perfect, mature; p. 12, l. 5.

s. पूरब *pūrab*, पूरव *pūrav* (s. पूर्व ; पूर्ब् or पूर्व् to fill or dwell) adj. Eastern; p. 116, l. 28. 2. Prior, former. 3. m. The east.

s. पूरा कर्ना *pūrā karnā* (: पूरा *q.v.*, कर्ना to do) To complete; Preface.

s. पूरी *pūrī* (s. पूरः ; पूर् to fill) f. A fresh cake fried in butter or ghī; p. 42, l. 25.

s. पूर्नमा *pūrnamā* (s. पूर्णिमा) f. The day of full moon.

s. पूर्नाहुत *pūrnāhut*, पूर्नाहुति *pūrnāhuti* (: s. पूर्ण complete, आहुति oblation) f. The final oblation at a royal sacrifice; p. 205, l. 22.

s. पूर्व *pūrv* (s. पूर्व्व) adj. Former, prior; p. 23, l. 20

s. पूर्वार्द्ध *pūrvārddh* (s. पूर्व्वार्द्ध : पूर्व्व former, अर्द्ध half) The former half; p. 97, l. 22.

s. पूस *pūs* (s. पौष ; पुष्य the asterism in which the moon is full in this month) m. The name of the ninth solar month—according to some systems—the full moon of which is near पुष्या or γ and δ of Cancer (December-January).

s. पृथिकु *Prithiku* (; s. प्रथ् to be famous) m. A king of the race of Yadu, ancestor of Krishṇ; p. 5, l. 21.

s. पृथी *prithī*, पृथ्वी *prithwī* (s. पृथ्वी ; प्रथ् to be famous) f. The earth; p. 5, l. 22.

s. पृथीनाथ *prithīnāth* (: s. पृथ्वी earth, नाथ lord) m Lord of the earth, a term used in addressing a king (as to Parīkshit); p. 3, l. 6.

s. पेखना *pekhnā* (s. प्रेक्षण : प्र, ईक्ष् to see; p. 89, l. 28.

s. पेच *pech* (P. پیچ) m. Twist, contortion. ताव पेच खाना *tāw pech khānā*, To be vexed or irritated; p. 231, l. 5.

s. पेट *peṭ* (; s. पिट् to collect) m. The belly; p. 11, l. 19. पेट पोंछन *peṭ poṅchhan*, m. The last child of a woman; p. 15, l. 2.

s. पेटी *peṭī* (; s. पेट stomach) f. A waistband, a belt; p. 118, l. 20. A girth. 2. A box. 3. The thorax, chest.

s. पेठ *peṭh* = पेट (*q.v.*); p. 86, l. 12.

H. पेड़ *peṛ*, f. A tree, a plant; p. 9, l. 15.

s. पेड़ा *perā* (s. पिंड) m. A kind of sweetmeat made with curds. 2. A globular mass of leaven prepared for baking.

s. पेल्ना *pelnā* (s. पेलन) v.a. To shove, to push, to cram (as a horse at a leap); p. 77, l. 1.

s. पै *pai* (s. पय) m. Milk; p. 17, l. 22.

H. पै *pai*, post. On, upon, to; p. 10, l. 13.

s. पैंड *paiṅḍ* (s. पण्ड ; पड् to go) f. Pace, step; p. 201, l. 27. 2. A rising ground, an eminence.

s. पैंडा *paiṅḍā* (; s. पडि to go) m. A road, highway; p. 166, l. 22. पैंडा मार्ना *paiṅḍā mārnā*, v.a. To stop a road, to rob on the highway (hence the word "Pindarries").

s. पेंताना *peṅtānā* / पैंताना *paiṅtānā* (s. पादान्त : पाद foot, अन्त end) m. The foot of a bed; p. 111, l. 26.

H. पैज *paij*, f. A vow, a promise. पैज कर्ना *paij karnā*, v.a. To make a vow; p. 120, l. 16.

H. पैठना *paiṭhnā*, v.n. To enter; p. 21, l. 13. To plunge into; p. 14, l. 8.

H. पैड़ी *paiṛī*, f. A ladder, a staircase, a flight of steps; p. 137, l. 25.

s. पैदल *paidal* (perhaps from s. पाद or P. پى a foot) adv. On foot. 2. m. Infantry; p. 98, l. 23.

H. पैर *pair*, m. The foot.

H. पैरी *pairī* (; पैर) f. An ornament worn on the legs.

H. पैर्ना *pairnā*, v.n. To swim; p. 30, l. 25.

s. पैहै *paihai*, 2 and 3 p. sin. fut. of पाव्नौं (*q.v.*)

s. पोआ *poā* (s. पोत : पूञ to purify) m. A plant. 2. A nursling of any animal. 3. A very young serpent.

H. पोंछन *poṅchhan* (; पोंछ्ना to wipe) m. Wiping. 2. A rag with which anything is wiped, anything thrown away after wiping. The last child of a woman is called पेट पोंछन *peṭ poṅchhan*, That which wipes out the uterus; p. 15, l. 2.

H. पोंछ्ना *poṅchhnā*, v.a. To wipe; p. 22, l. 5.

s. पोख्ना *pokhnā* (; s. पुष् to nourish) v.a. To foster, to nourish; p. 10, l. 1.

H. पोट *poṭ*, f. A bundle, a package; p. 37, l. 18.

H. पोट्ली *poṭlī* (; पोट *q.v.*) f. A small bundle; p. 218, l. 3.

s. पोता *potā* (s. पौत्र ; पुत्र a son) m. Grandson, son's son; p. 4, l. 30.

H. पोत्ना *potnā*, v.a. To plaster, to smear; p. 22, l. 17. (The houses in India have the floors smeared with cowdung, which soon hardens and is considered cleanly).

s. पोथी *pothī* (s. पुस्ति ; पुस्त् to bind) f. A book; p. 4, l. 26.

H. पोना *ponā* / पोवनौं *powanauṅ* v.a. To string (pearls), to thread (a needle). 2. To make bread. 3. m. A spoon with holes in it—like a colander—for skimming, etc.

s. पोय *poe* / पोया *poyā* (s. उपोदिका ; उद water) f. A kind of vegetable (Basella alba *and* rubra); p. 113, l. 17.

s. पोषण *poṣhaṇ* / पोषन *poṣhan* (s. पोषण ; पुष् to nourish) m. Bringing up, rearing, fostering, cherishing. पोषण भरन *poṣhaṇ bharan*, Re-imbursement for education; p. 84, l. 5,—where भरन *bharan* is the infinitive of भर्ना.

s. पोष्ना *poṣhnā* / पोस्ना *posnā* = पोख्ना *q.v.*

H. पौढ़्ना *pauṛhnā*, v.n. To repose, to lie down, to rest; p. 176, l. 4.

s. पौत्र *pautr* (s. पौत्र : पुत्र a son) m. A grandson, a son's son ; p. 157, l. 15.

s. पौत्री *pautrī* (fem. of पौत्र *q.v.*) f. Grand-daughter, son's daughter.

s. पौन *paun* = पवन The wind (*q.v.*) ; p. 48, l. 13.

s. पौनृक *Paunṛik*, m. A king of Benāres, who pretended to be Vishnu, and was slain by Krishṇ ; p. 185, l. 5.

s. पौर *paur* / पौरी *paurī* (; s. पुर a town, *i.e.*, belonging thereto) f. A gate *or* door ; p. 14, l. 11.

s. पौरिया *pauriyā* (; पौर gate) m. A gate-keeper, a warder ; p. 74, l. 19.

s. पौली *paulī* = पौरी (*q.v.*) ; p. 169, l. 27.

s. प्यार *pyār* (s. प्रीति ; प्री to please) m. Tenderness, affection, fondness ; p. 21, l. 6.

s. प्यारा *pyārā* (; s. प्यार *q.v.*) adj. Dear, beloved ; p. 25, l. 19.

s. प्यावना *pyāwanā* (; s. पान drinking ; पा to drink) v.a. To give to drink, to cause to drink.

s. प्यास *pyās* (s. पिपासा ; पा to drink) m. Thirst ; p. 3, l. 13.

s. प्यासा *pyāsā* (; s. पिपासित ; पिपासा thirst) adj. Thirsty ; p. 33, l. 2, and p. 201, l. 8.

s. प्रकार *prakār* (s. प्रकार : प्र, कृ to do) m. Manner, method, kind, sort ; p. 218, l. 14.

s. प्रकाश *prakāsh* (s. प्रकाश : प्र implying motion or eminence, काश् to shine) m. Light, bright daylight, splendour, sunshine ; p. 45, l. 5. Expansion, diffusion ; p. 35, l. 22. Manifestation. The word is equally applicable to physical or moral subjects, as the blowing of a flower, diffusion of celebrity, the publicity of an event or the manifestation of a truth. 2. adv. Openly, publicly. 3. adj. Public, bright, open, manifest. Blown, expanded.

s. प्रकास *prakās* = प्रकाश (*q.v.*) ; p. 41, l. 3.

s. प्रकृत *prakṛit* / प्रकृति *prakṛiti* (s. प्रकृति : प्र before, कृ to make) f. Nature, disposition, property, quality ; p. 201, l. 26.

s. प्रगट *pragaṭ* (s. प्रकट ; प्र implying manifestation) adj. Displayed, manifest ; p. 10, l. 27.

s. प्रगट्ना *pragaṭnā* (; s. प्रगट *q.v.*) v.n. To become manifest, to appear ; p. 12, l. 8.

s. प्रचंड *prachaṇḍ* (s. प्रचण्ड : प्र very, चण्ड hot) adj. Raging, fierce, mighty ; p. 35, l. 5.

s. प्रजा *prajā* (: s. प्र before, जन् to be born) f. Progeny, subjects.

s. प्रजापति *prajāpati* (s. प्रजापति : प्रजा people or the world, पति master) m. World's Lord, an epithet common to the ten divine personages who were first created by Brahmā. Their names are Marīchi, Atri, Angiras, Pulastya, Pulaha, Kratu, Prachetus, Vashishṭha, Bhṛigu, and Nārad. Some authorities make the Prajāpatis only seven in number, and others reduce them to three—Daksha, Nārad and Bhṛigu. Others, again, make them twenty-one in number ; p. 228, l. 28.

s. प्रताप *pratāp* (s. प्रताप : प्र much, ताप् to shine) m. Glory, majesty, high influence ; p. 17, l. 3. The high spirit arising from rank and power.

s. प्रतापी *pratāpī* / प्रतापवान *pratāpwān* (; s. प्रताप majesty : प्र before, तप् to shine) Glorious, majestic, potent ; Preface.

s. प्रतिज्ञा *pratigyā* (s. प्रतिज्ञा : प्रति mutually, ज्ञा

to know) f. An agreement, compact, stipulation, promise; p. 237, l. 7.

s. प्रति दिन *prati din* (s. प्रति दिन् : प्रति severally, दिन् a day) adv. Each day, every day.

s. प्रतिपाल *pratipāl*, प्रतिपालन *pratipālan* (s. प्रतिपालन : प्रति, पाल् to cherish) m. Patronising, fostering, rearing, breeding, cherishing.

s. प्रतिपालक *pratipālak* (s. प्रतिपालक : प्रति, पाल who cherishes) m. Cherisher, patron.

s. प्रतिपाल्ना *pratipālnā* (s. प्रतिपालन : प्रति, पाल् to cherish) v.a. To cherish, to keep, to observe. बचन प्रतिपाल्ना *bachan pratipālnā*, To keep a promise; p. 94, l. 23.

s. प्रतिबिंब *pratibimb* (s. प्रतिबिम्ब : प्रति back, बिम्ब image) m. An image, or the reflection in a mirror; p. 52, l. 18.

s. प्रतिष्ठा *pratishṭhā* (s. प्रतिष्ठा : प्रति, स्था to stay) f. Consecration of a monument, erected in honor of a deity, or of the image of a deity. 2. Celebrity, renown.

s. प्रतीत *pratīt* (s. प्रतीति respect : प्रति towards, इ to go) f. Faith, confidence, respect. प्रतीत कर्ना *pratīt karnā*, To respect, to regard; p. 114, l. 29. 2. To examine. 3. To believe, to trust.

s. प्रत्यक्ष *pratyaksh* (s. प्रत्यक्ष : प्रति indicative prefix, अक्ष an organ of sense) adj. Perceptible, perceived, present, obvious, apparent, manifest; p. 43, l. 10.

s. प्रथम *pratham* (s. प्रथम ; प्रथ to be famous) adj. First. adv. Before, first; p. 137, l. 24.

s. प्रदक्षिना *pradakshinā* (s. प्रदक्षिणा : प्र, दक्षिण the right) f. Going round an object to which it is intended to shew respect, with the right hand always towards it (a religious ceremony). Circuit, circumambulation; p. 216, l. 3.

s. प्रदमन *Pradaman* (Braj form of प्रद्युम्न *q.v.*); p. 126, l. 7.

s. प्रद्युम्न *Pradyumn* (s. प्रद्युम्न : प्र pre-eminent, द्युम्न power) m. Kāma, the Indian Cupid, consumed to ashes by Mahādev for disturbing his devotions, and re-born as Pradyumn, the son of Kṛishṇ; p. 8, l. 26.

s. प्रधान *pradhān* (s. प्रधान : प्र pre-eminent, धा to have) m. A president, chief minister or counsellor of state; p. 15, l. 28.

s. प्रन *pran* (s. पण) m. Promise, agreement, vow, resolution: p. 122, l. 14.

s. प्रनाम *pranām* (s. प्रणाम : प्र forward, णम to bow) m. Bow, obeisance; p. 31, l. 29.

s. प्रफुल्लित *praphullit* (s. प्रफुल्ल : प्र, फुल्ल flowered) adj. Blooming, in blossom. 2. Gay, cheerful, lively; p. 56, l. 7.

s. प्रबल *prabal* (s. प्रबल : प्र intens., बल strength) adj. Predominant, prevalent, powerful; p. 104, l. 10.

s. प्रबाह *prabāh*, प्रवाह *pravāh* (s. प्रवाह : प्र continually, वह् to bear) m. Stream, current; p. 14, l. 6.

s. प्रभात *prabhāt* (s. प्रभात : प्र manifestly, भा to shine) m. Dawn, morning.

s. प्रभाव *prabhāv* (s. प्रभाव : प्र pre-eminence, भाव quality) m. Power, influence, majesty, dignity.

s. प्रभु *Prabhu* (s. प्रभु : प्र pre-eminent, भू to be) m. Lord, master, principal: p. 59, l. 13. This name is appropriated to Kṛishṇ throughout the *Prem Sāgar* in much the same way as *Κύριος* is to our Saviour in the Gospel.

s. प्रभुता *prabhutā* (s. प्रभुता ; प्रभु *q.v.*) f. Influence, lordship, dominion ; p. 154, l. 20.

s. प्रभू *prabhū* = प्रभु (*q.v.*) ; p. 64, l. 17.

s. प्रमाण *pramāṇ* | प्रमान *pramān* } s. प्रमाण : प्र, मा to measure) m. Authority, proof, verification, attestation, limit, instance, example, measure ; p. 98, l. 24. Quantity. 2. adj. Actual, authentic, substantial, real, approved of, agreeable, acceptable.

s. प्रयाग *Prayāg* (s. प्रयाग : प्र principal, यज् to worship) m. A celebrated place of pilgrimage, the modern Allahabād, the confluence of the Ganges or Gangā and the Yamunā with the supposed subterraneous addition of the Saraswatī. Near this Brahmā sacrificed a horse on the recovery of the four Vedas from Sankhāsur ; p. 124, l. 9.

s. प्रलंब *Pralamb* (s. प्रलम्ब : प्र forward, लवि to oppose) m. Name of a Daitya killed by Balarām ; p. 33, l. 19.

s. प्रलय *pralay* | प्रलै *pralai* } (s. प्रलय : प्र, ली to destroy) m. The end of a Kalpa and destruction of the world, a deluge ; p. 44, l. 19.

s. प्रवास *pravās* (s. प्रवास : प्र far, वास abode) m. Travelling, journeying, sojourning in a foreign country ; p. 81, l. 20. Abroad.

s. प्रवीन *pravīn* (s. प्रवीण : प्र excellently, वीणा a lute) Skilful, clever, conversant ; Preface.

s. प्रवेश *pravesh* (s. प्रवेश : प्र, विश् to enter) m. Entrance, admittance, access ; p. 139, l. 12.

s. प्रशंसा *prashaṅsā* | प्रसंसा *prasaṅsā* } (s. प्रशंसा : प्र especially, शंस् to praise) f. Applause, praise, encomium ; p. 224, l. 9.

s. प्रश्न *prashn* (s. प्रश्न ; प्रच्छ् to ask) m. A question ; p. 232, l. 4.

s. प्रसंग *prasaṅg* (s. प्रसङ्ग : प्र preceding, षञ्ज् to join) m. Mention, discourse, subject of discourse ; p. 5, l. 20. Association.

s. प्रसन्न *prasanna* (: s. प्र principally, सद् to go) adj. Rejoiced, pleased, gracious ; p. 5, l. 20.

s. प्रसन्नता *prasannatā* (; s. प्रसन्न clear) f. Brightness, clearness, kindness, pleasure ; p. 7, l. 15.

s. प्रसाद *prasād* (s. प्रसाद : प्र, सद् to go) m. Victuals, food that has been offered to a Deity ; p. 193, l. 21.

s. प्रसिद्ध *prasiddh* (s. प्रसिद्ध ; प्र forth, षिध् to go) m. Fame. 2. That which is notorious ; p. 61, l. 7. Celebrated, known ; p. 223, l. 3.

s. प्रसेन *Prasen*, m. Name of a brother of Satrājīt —slain by a lion ; p. 129, l. 20.

s. प्रस्थान *prasthān* (: प्र away from, स्था to stay) m. March, departure, going forth ; p. 3, l. 10.

s. प्रहार *prahār* (s. प्रहार : प्र, हृ to take) m. The act of striking or beating, a blow, a strike ; p. 170, l. 15.

s. प्रहारी *prahārī* (s. प्रहार : प्र, हृ to take) m. A striker, a smiter, destroyer, humbler ; p. 52, l. 24.

s. प्रागुजोतिषपुर *Prāgujotiṣhpur* | प्राग्योतिषपुर *Prāgyotiṣhpur* } (s. प्रागज्योतिष : प्राक् formerly, ज्योतिष light) m. A country, Kāmarūpa—part of Assam, the capital of Bhaumāsur ; p. 147, l. 1.

s. प्राचीन *prāchīn* (s. प्राचीन ; प्राच the east) adj. Old, of former times, ancient ; p. 37, l. 1.

s. प्रात *prāt* (s. प्रातर् : प्र initial, अत् to go) m. Morning, dawn of day ; p. 26, l. 7.

s. प्राण *prāṇ* / प्रान *prān* (s. प्राण : प्र, अन् to breathe) m. Breath, soul, life; p. 17, l. 22. 2. Sweetheart. प्रान पति *prān pati*, Soul's lord.

s. प्रानी *prānī* (s. प्राणी ; प्राण *q.v.*) m. An animal, a creature endowed with life, an animated being.

s. प्रारब्ध *prārabdh* / प्रालब्ध *prālabdh* (s. प्रारब्ध : प्र, रभ् to begin) m. Fortune, lot, fate, destiny, predestination; p. 67, l. 11. Venture, chance.

s. प्रिय *priya*, m. / प्रिया *priyā*, f. (s. प्रिय ; प्री to please) adj. Beloved, dear; p. 91, l. 22.

s. प्रीतम *prītam* (s. प्रियतमः : प्रिय beloved, तम superl. affix) adj. superl. deg. Dearest, most beloved; p. 49, l 7. 2. m. A lover, a sweetheart, a husband.

s. प्रीति *prīti* (s. प्रीति : प्री to please) f. Love, affection; p. 32, l. 8.

s. प्रेत *pret* (s. प्रेत : प्र forth, इत gone) m. A spirit, an evil spirit animating the carcases of the dead; p. 49, l. 17.

s. प्रेत्नी *pretnī* (f. of प्रेत *q.v.*) f. A she-dæmon, a female ghost; p. 100, l. 29.

s. प्रेम *prem* (s. प्रेमन ; प्र for प्रिय beloved) m. Love, affection, friendship; p. 1, l. 1. प्रेम रंग राता *prem rang rātā*, adj. Coloured with the dye of love, strongly attached, loving; p. 110, l. 19.

s. प्रेम सागर *Prem Sāgar* (: प्रेम *q.v.*, सागर ocean) m. Ocean of Love. The name which Shrī Lallūjī Lāl Kabi gave to his Hindī translation of Chaturbhuj Misr's translation of the tenth chapter of the *Bhāgavat Purāna*; Preface.

s. प्रोहित *prohit* = पुरोहित *q.v.*

फ

s. फंदा *phandā* (; s. पश् to bind) m. A noose, a net, a snare. (met.) Perplexity, difficulty; p. 5, l. 6.

s. फंदाना *phandānā* (; s. फल् to move ?) v.a. and caus. of फांद्रा, To make to spring; p. 173, l. 3.

s. फटना *phaṭnā* (s. स्फटन) v.n. To be rent, to break; p. 26, l. 23.

s. फन *phan* (s. फण) m. The expanded head of a snake, the hood of a cobra; p. 30, l. 25.

H. फबना *phabnā*, v.n. To become, to befit; p. 129, l. 14.

H. फरकना *pharaknā*, v.n. To flutter, to vibrate with convulsive involuntary motion, as the eyelids. To throb, to palpitate. 2. To writhe the shoulders; p. 60, l. 8.

s. फरी *pharī* (s. फर) f. A shield; p. 79, l. 7.

s. फर्सा *pharsā* (s. परशु : पर another, शृ to injure) m. An axe, a hatchet; p. 18, l. 13.

s. फल *phal* (; फल् to bear or produce) m. Fruit; p. 6, l. 20. Effect, advantage. Children, progeny. 2. The iron head of a spear or arrow; p. 213, l. 9. 3. The blade of a sword.

s. फल्गू *phalgū* (s. फल्गु ; फल् to bear fruit) m. The name of a river which is said to run underneath Gaya; p. 137, l. 25.

s. फलना *phalnā* (; s. फलन fructifying) v.n. To bear fruit. 2. To result, to be produced. 3. To be fortunate.

s. फहराना *phahrānā* (s. स्फुरण quivering ; स्फुर् to shake) v.n. To flutter as a flag; p. 35, l. 9.

H. फांक *phānk*, f. A slice, a piece (as of fruit); p. 202, l. 28.

s. फांद्ना *phāndnā* (; s. फालन) v.a. To jump over, to leap over.

s. फांसी *phānsī* (s. पाश : पश् to bind) f. A noose, a snare, a loop; p. 4, l. 13. Strangulation. फांसी देना *phānsī denā*, To hang. फांसी पड़ना *phānsī parṇā*, To be hanged.

H. फाटक *phāṭak*, m. A gate; p. 71, l. 18.

H. फावड़ा *phāwṛā*, m. A mattock, a spade; p. 18, l. 14.

H. फिकार्ना *phikārnā*, v.a. To uncover the head; p. 74, l. 28. (*Vide* मूंड) To unplait the hair of the head.

H. फिर *phir*, adv. Again, afterwards, back, then; p. 3, l. 11.

H. फिराना *phirānā* (caus. of फिर्ना *q.v.*) v.a. To turn back. 2. To whirl round; p. 15, l. 4.

H. फिर्तु *phirtu*, 3 p. sin. pres. of फिर्नौ and Braj form of फिर्ता *phirtā*) He is wandering about; p. 21, l. 20.

H. फिर्ना *phirnā*, v.a. To turn, to return. To walk about; p. 11, l. 8. To wander.

H. फीका *phīkā*, adj. Weak, vapid, tasteless, insipid. 2. Dim in colour; p. 163, l. 4.

s. फुंकार *phuṅkār* (s. फुत्कार : फुत expression of contempt, कार who makes) f. The hiss of a snake; p. 30, l. 22. फुंकारें मार्ना *phuṅkāreṅ mārnā*, To hiss as a snake; p. 30, l. 22.

s. फुंकार्ना *phuṅkārnā* (; फुंकार *q.v.*) v.n. To hiss as a snake.

H. फुफी *phuphī* } A paternal aunt, father's sister;
फुफू *phuphū* } p. 95, l. 19.

H. फुफेरा *phupherā* (; H. फुफी *q.v.*) adj. Descended from or related through a paternal aunt. फुफेरा भाई *phupherā bhāī*, The son of a paternal aunt; p. 202, l. 3.

s. फुर्ती *phurtī* (s. स्फुर्त्ति : स्फुर् to shake) f. Activity, quickness, agility; p. 60, l. 22.

s. फुल्वाड़ी *phulwāṛī* (: s. फुल्ल् to blow, वाड़ी garden) f. A flower garden; p. 192, l. 18.

H. फुस्लाना *phuslānā*, v.a. To coax, to wheedle, to persuade; p. 23, l. 3.

s. फूंक्ना *phūṅknā* (s. फुत्कार : फुत expression of contempt, कार who makes) v.a. To blow with the breath, to puff, to set on fire. फूंक देना *phūṅk denā*, To set on fire; p. 18, l. 15.

s. फूट्ना *phūṭnā* (; s. स्फुट् to burst) v.n. To burst, to be broken; p. 19, l. 9.

s. फूल *phūl* (; s. फुल्ल् to blow) m. A flower; p. 6, l. 7.

s. फूल्ना *phūlnā* (s. फुल्लन ; फुल्ल् to blow) v.n. To blow, to blossom, to expand (as a flower); p. 6, l. 7. 2. To be pleased, to expand with delight, to be enraptured; p. 65, l. 5. 3. To be puffed up, to be inflated; p. 24, l. 5.

s. फूल्हिं *phūlhiṅ*, 3 p. pl. present tense of फूल्नौ *phūlnau* (Braj form of फूलते हैं) are blooming; p. 48, l. 9.

फेंत *pheṅt*, f. } A waistband, a belt. फेंत बांधना
s. फैंत *phaiṅt*, f. } *pheṅt bāndhnā*, To gird one's
फैंता *phaiṅtā*, m. } self, to prepare; p. 63, l. 22.

s. फेंक्ना *pheṅknā* (; s. क्षिप् to throw) v.a. To fling; p. 22, l. 24. To cast.

s. फेन *phen* (s. फेन : स्फायी to swell) m. Foam. फेन सी सेज *phen sī sej*, A bed white as foam; p. 88, l. 12.

s. फेनी *phenī* (perhaps ; फेन foam) f. A kind of sweetmeat; p. 42, l. 25.

H. फेर *pher*, adv. Again; p. 11, l. 1.

H. फेर्ना *phernā* (caus. of फिर्ना) v.a. To turn back, to return. फेर देना *pher denā*, To give back, to restore; p. 10, l. 18. To wave; p. 34, l. 13.

S. फैंक्ना *phaiṅknā*, v.a. To throw = फेंक्ना *q.v.*; p. 125, l. 29.

H. फैलाना *phailānā* (trans. of फैल्ना *q.v.*) v.a. To diffuse; p. 13, l. 20.

H. फैलाव *phailāw*, m. Spreading, publication, publicity; p. 20, l. 14.

H. फैल्ना *phailnā*, v.n. To be spread, to be diffused; p. 18, l. 15. 2. To be dispersed. 3. To become public; p. 20, l. 11.

S. फोड़ना *phoṛnā* (s. स्फोटन) v.a. To break; p. 23, l. 8. To split, to burst.

ब

S. बंकाई *baṅkāī* (s. बङ्कता ; बङ्क crooked ; वकि to curve) f. A bend, a curvature; p. 163, l. 6. The bend of a river.

S. बंट्वाना *baṅṭwānā* (caus. of बंटना) v.a. To cause to be distributed; p. 30, l. 8.

S. बंदन्वार *bandanwār* (: s. बन्धन fastening, वार a doorway a gate) m. A wreath or garland of leaves and flowers suspended across gateways on marriages or public festivals; p. 50, l. 14.

S. बंदर *bandar* (s. वानर : वा like, नर a man, *or* वन wood, रम् to play) m. A monkey; p. 7, l. 2, and p. 188, l. 20.

H. बंदी *Bandī*, m. A tribe called Bhāts, who are bards or panegyrists (*see* मागध); p. 124, l. 5. 2. f. An ornament for the forehead, a frontlet; p. 152, l. 20.

S. बंध *bandh* (s. बन्धन ; बन्ध् to tie) m.f. Binding, bondage; p. 150, l. 13 (where it is fem.).

S. बंधक *bandhak* (s. बन्धक ; बन्ध् to bind) m. A pledge, a pawn; p. 200, l. 19.

S. बंधन *bandhan* (s. बन्धन ; बन्ध् to tie) m. Fastening, bondage; p. 14, l. 2. बंधन में पड़्ना *or* आना *bandhan meṅ paṛnā* or *ānā*, To become a captive.

S. बंधाई *bandhāī* (; बंधाना *q.v.*) f. Fastening; p. 23, l. 18.

S. बंधु *bandhu* (s. बंधु ; बंध् to bend) A kinsman of a person himself, of his father, or of his mother. A brother. A friend; p. 3, l. 26.

S. बंध्वाना *bandhwānā* (caus. of बांधना *q.v.*) v.a. To cause to fasten; p. 76, l. 2.

S. बंश *bansh*, बंस *bans*, बंश *wansh* (s. बंश , बंश् to shine) m. Race, lineage; p. 7, l. 11, and p. 36, l, 7. 2. Bambū. 3. (; s. वन् to sound) m. A pipe, flute. बांस बंश *bāns bansh*, The bambū stock; p. 36, l. 7.

S. बंशी *banshī*, बंसी *bansī* (; s. बंश bambū) f. A flute; p. 27, l. 2, and p. 34, l. 16. A hook; p. 64, l. 6.

S. बसावलि *bansāwali* (s. बंशावलि : बंश stock, आवलि a row) f. A genealogy.

S. बंशी बट *banshī baṭ*, बंसी बट *bansī baṭ* (; s. वट Indian fig-tree) m. The fig-tree under which Krishn was accustomed to play the flute; p. 37, l. 11.

S. बक *bak* (s. वक ; वकि to be crooked) m. A crane (Ardea Torra *and* Putea); p. 25, l. 29.

S. बक *bak*, बक झक *bak jhak* (; s. वाक relating to a crane) f. Foolish talk, garrulity.

S. बकासुर *Bakāsur* (: s. वक् a crane, असुर a

dæmon) m. The crane-dæmon, a fiend sent by Kans to slay Krishn in his childhood; p. 25, l. 29.

बकबक्ना *bakbaknā* | बक्ना *baknā* | बक झक कर्ना *bak jhak karnā* | बक झक्ना *bak jhaknā* (; s. वाक relating to a crane) v.n. To prattle, gabble, chatter, talk idly, talk at random; p. 44, l. 8, and p. 52, l. 21.

s. बक्ता *baktā* (s. वक्ता : वच् to speak) m. A speaker, an orator; p. 214, l. 29. 2. adj. Eloquent; p. 215, l. 16. Loquacious.

s. बक्रा *bakrā* (s. बर्कर : वृक् to take) m. A he-goat; p. 62, l. 6.

s. बक्रदंत *Bakrdant* (: s. वक्र crooked, दंत tooth) m. Name of the brother of Sisupāl slain by Krishn; p. 213, l. 21.

s. बक्ला *baklā* (s. वल्कल ; वल् to surround) m. Bark; p. 52, l. 24. Skin, rind, shell (of a fruit).

s. बक्वाद *bakwād* (: s. बक prattle, वाद dispute) m. Prattle, foolish talk; p. 49, l. 30.

s. बखान *bakhān* (s. व्याख्यान : वि *and* आङ before, ख्या to say) m. Explanation, praise, description; p. 5, l. 11.

s. बखान कर्ना *bakhān karnā* | बखान्ना *bakhānnā* (s. व्याख्यान : वि, ख्या to say) v.a. To celebrate; p. 11, l. 19. To praise, to commend. 2. To relate.

s. बग *bag* (s. बक) m. A crane. बग पांति *bag pānti*, A row of cranes; p. 35, l. 9.

H. बगूला *bagūlā*, m. A whirlwind; p. 19, l. 15.

s. बग्ला *baglā* | बगुला *bagulā* (s. बक *q.v.*) m. A crane (Ardea Torra *and* Putea); p. 25, l. 31.

s. बच *bach* = बचन *bachan*, *q.v.* A word; p. 40, l. 12.

s. बचन *bachan* (s. वचन ; वच् to speak) m. Speech; p. 3, l. 8. Talk, discourse, word, promise; p. 10, l. 9. Agreement बचन देना *bachan denā*, To promise, to agree. बचन निभाना *bachan nibhānā*, To abide by a promise. बचन बंद कर्ना or कर लेना *bachan band karnā* or *kar lenā*, To bind by promise. बचन मान्ना *bachan mānnā*, To obey. बचन लेना *bachan lenā*, To receive a promise.

H. बचाना *bachānā* (trans. of बच्ना *q.v.*) v.a. To save; p. 23, l. 7. To rescue, protect, guard.

s. बच्छ *bachchh* | बछ्ड़ा *bachhṛā* | बछ्रू *bachhrū* | बछिया *bachhiyā* (s. वत्स ; वद् to speak (kindly to) m. A calf; p. 21, l. 5.—where बछ्ड़ा *bachhṛā* and बछिया *bachhiyā* occur.

s. बच्छासुर *Bachchhāsur* (: बच्छ a calf *q.v.*, असुर a dæmon, *q.v.*) m. The calf-dæmon, name of a fiend sent by Kans to destroy Krishn in his childhood; p. 25, l. 25.

s. बजंत्री *bajantrī* (: s. वाद्य musical instrument, यंत्रि a musician) m. A performer on musical instruments; p. 16, l. 13.

s. बजाना *bajānā* (trans. of बज्ना *q.v.* ; s. वाद्य a musical instrument ; वद् to sound) v.a. To sound, to play on any instrument; p. 16, l. 13.

s. बज्र *bajr* | वज्र *vajr* (s. वज्र ; वज् to go) m. A thunderbolt; p. 18, l. 2.

s. बट *baṭ* | बड़ *baṛ* (s. वट) m. The Indian fig-tree (Ficus Indica); p. 27, l. 4. 2. बड़, in composition, is used as a contraction of बड़ा great;—thus: बड़ पन *baṛ pan*, Greatness, grandeur; बड़ बोला *baṛ bolā*, A noisy talkative person; बड़ भकुआ *baṛ bhakuā*, A blockhead.

H. बठ्ना *baṭhnā*, v.n. To enter; p. 11, l. 22.

H. वड़ना *baṛnā*, v.n. To enter; p. 26, l. 22.

S. वड़ा *baṛā* (S. वृद्ध ; वल् to cover) Large, great, greater, senior, elder, eldest, principal; p. 4, l. 30. Grown-up; p. 7, l. 17. वड़ों ने *baroṅ ne*, Our ancestors; p. 41, l. 17.

S. वड़ाई *baṛāī* (S. वृद्धता ; वृद्ध large ; वल् to cover) f. Greatness; p. 163, l. 6. 2. Dignity, grandeur. वड़ाई कर्ना or मार्ना *baṛāī karnā* or *mārnā*, To extol, to magnify.

S. वढ़ती *baṛhtī* (S. वृद्धता ; वृध् to increase) f. Increase, excess; p. 207, l. 11.

S. वढ़ना *baṛhnā* (S. वर्द्धन ; वृध् to increase) v.n. To increase, to go on, to advance; p. 9, l. 7.

S. वत कहाव *bat kahāw* (: बात a word *q.v.*, कहना to say, *q.v.*) m. Discourse; p. 115, l. 7.

H. वताना *batānā*, v.a. To point out, to shew, to explain. वताइये *batāiye*, Be pleased to shew; p. 3, l. 7.

S. वत्राना *batrānā* (S. वार्त्ता talk) v.a. To converse, to talk, to dispute; p. 22, l. 8.

S. वदन *badan* (S. वदन ; वद् to speak) m. The mouth, face, countenance; Preface. 2. The body; p. 36, l. 10.

S. वदी *badī* (S. वदि) f. The dark half of the lunar month from full moon to new moon; p. 13, l. 7.

S. वद्री *Badrī* (S. वद्रीशैल : वद्री the jujube tree, शैल mountain) f. A part of the Himālya range, and a celebrated place of pilgrimage; the Bhadrīnāth of modern travellers, or a town and temple on the west bank of the Alakanandā river in the province of Srīnagar; p. 104, l. 21. *Vide Asiatic Researches, vol.* xi, *p.* 521.

S. वद्रीनाथ *Badrīnāth* (*See* वद्री); p. 104, l. 21.

S. वध *badh* (; S. वध् to kill) m. Killing, slaughter; p. 8, l. 15.

H. बधाई *badhāī*, f. / बधावा *badhāwā*, m. } A congratulatory song. 2. Presents carried to the house of a woman on the sixth and fortieth day after childbirth; p. 16, l. 15.

S. वधिक *badhik* (; S. वध् to kill) m. A huntsman, a fowler. 2. An executioner.

S. वधू *badhū* (S. वधू ; वन्ध् to bind, *or* वह् to bear) f. A wife. कुल बधू *kul badhū*, A wife of good family; p. 42, l. 6. देव बधू *dev badhū*, A goddess; p. 123, l. 29.

S. वध्ना *badhnā* (; S. वध् to kill) v.a. To smite, to kill. वध कर्ना *badh karnā*, intensitive verb; p. 31, l. 27.

S. वन *ban* (S. वन ; वन् to sound) m. A forest, a wood; p. 6, l. 7.

H. वन आना *ban ānā*, v.n. To succeed; p. 31, l. 15. (Hollings translates this—"come to the wood.")

S. वनज *banaj* (S. वाणिज्य ; वणिज् a merchant ; पण to transact business) m. Trade, traffic, merchandize; p. 42, l. 2.

H. बन्ठन्ना *banṭhannā*, v.n. To be completely adorned. वन ठन्के *ban ṭhanke*, Decked out; p. 17, l. 18.

S. वन विहार *ban bihār* (: वन wood (*q.v.*), विहार sport, *q.v.*) m. Rambling and amusement in the woods; p. 23, l. 24.

H. वनाव *banāw* (v.n. from वनाना to make, *q.v.*) m. Dressing, preparation, decking one's self, adornment; p. 49, l. 13. 2. Concord, understanding, reconciliation.

s. बनी बनाए *banī banāe* (part. of बन्ना and बनाना *q.v.*) adj. Decked out; p. 117, l. 3.

s. बनिक *banik* (s. वणिज् ; पण to transact business) m. A merchant, a trader; p. 217, l. 13.

H. बन्ना *bannā*, v.n. To be made, to be prepared or adjusted. 2. To chime in with, to agree, to answer, to become. 3. To counterfeit. 4. To succeed. बना अध बना *banā adh banā*, In a state of incompletion (*lit.*, Made, half-made); Preface.

s. बन्बास *banbās* (: बन a forest, बास habitation) m. Dwelling in the woods; p. 5, l. 3.

s. बन्माल *banmāl* (: s. बन a forest, माला a garland) m. A garland of various flowers reaching to the feet—usually those of the Tulsī (Ocymum sanctum) Kunda (Jasminum multiflorum) Mandār (Asclepias gigantea) Pārijata (Erythrina fulgens) and Lotus; p. 27, l. 8.

s. बन्माली *banmālī* / बन्वारी *banwārī* (s. बन्माली : बन a forest, माला a garland) m. A name of Krishṇ — Wearer of a necklace of forest-flowers; p. 52, l. 9.

s. बयार *bayār* (s. वायु ; वा to go) f. Wind; p. 174, l. 14.

s. बर *bar* (s. वर ; वृ to select) m. A boon; p. 6, l. 1, and p. 37, l. 6. A choice, a blessing, a good. 2. A bridegroom; p. 37, l. 2, and p. 163, l. 29. 3. adj. Excellent; p. 1, l. 1. 4. (s. वट) m. The large Indian fig-tree (Ficus Indica). 5. (s. वरम) conj. But, moreover, even. बर्दाई *bardāī*, Giver of a choice or blessing; p. 46, l. 6.

s. बरखना *barakhnā* (; s. वर्षण ; वृष् to sprinkle) v.n. To rain; p. 79, l. 16.

H. बरज्ना *barajnā*, v.a. To forbid, to prohibit; p. 78, l. 20.

s. बरण *baraṇ* (s. वर्ण) m. Colour; p. 2, l. 17. 2. Kind, caste. 3. Praise; p. 33, l. 14.

s. बरत *barat* (*vide* व्रत) A vow. 2. (s. वरत्रा ; वृञ to cover or surround) f. A thong, a leathern girth or rope; p. 180, l. 9. 3. (pres. part. of बर्ना *q.v.*) Flaming, blazing; p. 75, l. 25.

s. बरन *baran* (s. वरम rather) conj. Rather, moreover, but; p. 39, l. 8.

s. बरन कर्ना *baran karnā* (*vide* बरन) v.a. To hire a priest for the performance of a sacrifice or any religious ceremony; p. 205, l. 17.

s. बरन्ना *barannā* (; s. वर्ण् to paint) v.a. To describe; p. 42, l. 28.

s. बरसाव्ना *barasāwnā* (caus. of बरस्ना *q.v.*) v.a. To cause to rain; p. 13, l. 5.

s. बरस्गांठ *barasgāṅṭh* (: s. वर्ष a year, ग्रंथि a knot) f. The ceremony of tying a knot on the anniversary of the birth-day of a child; p. 25, l. 7.

s. बरस्ते *baraste*, pres. part. of बरस्ना (*q.v.*) used as a substantive. बरस्ते में *baraste meṅ*, In the rain (*lit.*, in raining); p. 14, l. 21.

s. बरस्ना *barasnā* / बर्स्ना *barsnā* (; s. वर्ष rain) v.n. To rain; p. 14, l. 5.

s. बरस्वां *baraswāṅ* (; बरस a year, *q.v.*) Yearly, annual. बरस्वां दिन *baraswāṅ din*, Anniversary; p. 41, l. 2.

s. बरात *barāt* (s. व्रात ; वृ to choose) f. The marriage procession; p. 9, l. 5.

s. बराती *barātī* (; बरात *q.v.*) m.f. The attendants at a marriage; p. 9, l. 8.

s. बराह *barāh* (s. वराह : वर best, हन् to injure)

m. A boar. The third incarnation of Vishṇu in the shape of that animal; p. 8, l. 13.

s. वरी *barī* = वड़ा *baṛā*, *q.v.* (a Braj form); p. 212, l. 26.

s. वरुण *Baruṇ* | वरुन *Barun* | वरुण *Varuṇ* (s. वरुण; वृ to surround the earth, or वृ to select) m. The Hindū Neptune, god of the waters and regent of the west; p. 38, l. 11.

s. वरुणी *baruṇī* | वरुनी *barunī* (s. वरुणी?) f. An eyelash; p. 117, l. 29.

H. वर्छा *barchhā*, m. A long spear or lance; p. 173, l. 5.

H. वर्छी *barchhī*, f. A long slender spear; p. 173, l. 5.

s. वर्त्तमान *barttmān* = वर्त्तमान (*q.v.*)

s. वर्नन *barnan* = वर्नन *varnan* (*q.v.*)

H. वर्ना *barnā*, v.n. To burn; p. 33, l. 5.

H. वर्फी *barfī* (; برف ice) f. A kind of sweetmeat. Ices; p. 42, l. 25.

s. वर्ष *barsh* | वरस *baras* (s. वर्ष; वृष् to sprinkle) m. Rain. 2. A year; p. 7, l. 24.

s. वर्षा *barshā* (s. वर्षाः; वृष् to sprinkle) f. pl. The rains, the third of the six seasons; from the fifteenth of Ashāṛh to the fifteenth of Bhadr; p. 51, l. 29.

s. वर्सौड़ी *barsauṛī* (s. वार्षिक; वर्ष rain) f. An annual tax or rent; p. 16, l. 21.

H. वर्हा *barhā*, m. A field where cows feed; p. 109, l. 4.

H. वल *bal*, m. A coil or twist. वल खाना *bal khānā*, v.n. To be angry; p. 161, l. 20.

s. वल *bal* (; s. वल् to live) m. Strength, power; p. 8, l. 3. 2. A name of Balarām. 3. (s. वलि) The king of Pātāl; p. 160, l. 6. 4. A sacrifice, an oblation.

s. वलदेव *Baladev* (s. वलदेव : वल strength, देव who sports) m. A name of वलराम *Balarām* (*q.v.*); p. 11, l. 25.

s. वल निधि *bal nidhi* (: s. वल strength, निधि a treasure) m. An assemblage or treasure of strength—an epithet of Krishṇ; p. 77, l. 10.

s. वलराम *Balarām* (s. वलराम : वल strength, रम् to sport) m. Balarām, the incarnation of the thousand-headed serpent, which took place first in the womb of Devakī, wife of Vasudev, and was then transferred to that of Rohinī, another of his wives, in order to avoid the fury of Kans. The birth of Balarām immediately preceded that of his half-brother Krishṇ; p. 8, l. 26.

A. वला *balā*, f. Misfortune, calamity; p. 23, l. 2.

s. वलि *Bali* (s. वलि; वल् to live) m. The virtuous sovereign of Mahābalipur, tricked out of his kingdom by Vishṇu in the shape of a dwarf; p. 8, l. 14.

s. वली *balī* (; s. वल strength) adj. Strong, powerful; p. 9, l. 22.

s. वलूला *balūlā* (s. बुद्बुद) m. A bubble of water.

H. वल्दाऊ *Baldāū* (; वलद a bullock that carries a burthen) m. Bullock-driver—a title of Balarām, elder brother of Krishṇ, alluding to his occupation in Braj; p. 20, l. 18.

s. वल्बीर *Balbīr* (: s. वल a name of Balarām, वीर brother) m. Krishṇ as the brother of Balarām; p. 52, l. 3. 2. (: s. वल strength, वीर hero) m. The Hero Bala—a name of Balarām; p. 20, l. 19.

s. वल्भद्र *Balbhadr* (s. वल्भद्र : वल strength, भद्र auspicious) m. A name of Balarām; p. 71, l. 28.

H. वल्लम *ballam*, m. A pike; p. 173, l. 5.

s. बल्वंत *balwant* (s. बल्वत ; बल strength) adj. Strong, stout, powerful; p. 7, l. 11, and p. 32, l. 14.

s. बल्वाला *balwālā* (: s. बल strength, वाला implying agent) m. One possessing strength; p. 76, l. 12.

s. बशिष्ठ *Bashishṭh* = वशिष्ठ (*q.v.*): p. 4, l. 23.

s. बस *bas* (s. वश subject ; वश् to desire) Power, command, authority, advantage. बस करना *bas karnā*, To bring to submission; Preface. बस आना *bas ānā*, To come into one's power, to be obtained or mastered; p. 47, l. 27. बस होना *bas honā*, To contend with, to have power against; p. 135, l. 2 and 4.

P. बस *bas*, adj. Enough. बस करना *bas karnā*, To stop, to give enough and hold; p. 191, l. 15.

s. बसंत *basant* | वसंत *vasant* (s. वसन्त ; वस् to dwell) m. Spring, the third season comprising Chaitr and part of Vaisākh (from the middle of March to the middle of May); p. 33, l. 14.

s. बसन *basan* (s. वसन ; वस् to be clothed) m. Cloth. 2. A suit of clothes, apparel; p. 37, l. 15.

s. बसाना *basānā* (trans. of बसना *q.v.*) To people, to colonise, to bring into cultivation, to cause to be inhabited.

s. बसुदेव *Basudev* (s. वसुदेव : वसु a kind of demigod, and देव deity, *or* वसु wealth, दिव् to shine) m. The father of Krishn, and son of Sūrsen and Marishyā, a chieftain of the race of Yadu; p. 5, l. 23.

s. बस्तु *bastu* = वस्तु (*q.v.*)

s. बस्त्र *bastr* | वस्त्र *vastr* (s. वस्त्र ; वस् to wear) m. Clothes; p. 9, l. 11.

s. बस्ना *basnā* (; s. वस् to dwell) v.n. To dwell in, to inhabit, settle, reside, to be peopled; p. 4, l. 6.

s. बहंगी *bahangī* (s. विहङ्गी ; विहङ्ग a bird) f. A stick with ropes hanging from each end for slinging baggage, which is carried on the shoulder; p. 42, l. 22.

H. बहक्ना *bahaknā*, v.n. To be balked, to be deceived, to stray, to be intoxicated.

H. बहकाना *bahkānā* (trans. of बहक्ना) v.a. To balk, to mislead, to deceive.

s. बहधा *bahdhā* (s. बाधा) f. Pain, distress; p. 176, l. 6. 2. Obstruction, hindrance.

s. बहन *bahan* (s. भगिनी ; भग prosperity) f. A sister; p. 5, l. 27.

s. बहनेऊ *bahaneū* (s. भगिनीपति) m. A brother-in-law, a sister's husband; p. 5, l. 28.

s. बहर्मुख *baharmukh* | बहिर्मुख *bahirmukh* (: s. बहिर् out, मुख face) The neglect of any moral or religious duty. 2. adj. Impious; p. 137, l. 17.

s. बहाना *bahānā* | बहा देना *bahā denā* (caus. of बहना *q.v.*) v.a. To wash away; p. 44, l. 10.

s. बहि जाना *bahi jānā* (; s. वह् to flow) v.n. To flow or pass. 2. To go or swim with the stream. 3. To be ruined or destroyed.

s. बहिराना *bahirānā*, v.n. To issue, to come out. 2. (for बहलाना) v.a. To divert or amuse.

s. बहु *bahu* (s. बहु ; बंहि to increase) adj. Much, many, great. adv. Very; Preface.

s. बहुतेर *bahuter* | बहुतेरा *bahuterā* (s. बहुतर) adj. Many, very much; p. 39, l. 6.

s. बहुधा *bahudhā* (; s. बहु much) adv. In many ways, usually, generally, mostly, often.

H. बहुरि *bahuri* | बहुरौं *bahuraun* adv. Again; p. 77, l. 11.

s. बहुलास *Bahulās*, m. A Brāhman visited by Krishn for his piety; p. 231, l. 10.

s. बहू *bahū* (s. वधू ; वह् to bear) f. A daughter-in-law; 128, l. 3.

s. बहना *bahnā* (; s. वह् to flow) v.n. To flow, to glide, to blow; p. 6, l. 8.

H. बहलाना *bahlānā*, v.a. To divert, to amuse; p. 78, l. 2.

s. बांक *bāṅk* (s. वङ्क crooked) m. A crook, curvature, bending. 2. A semi-circular ornament worn on the arms. 3. A kind of dagger; p. 173, l. 6. 4. A reach or turning of a river. 5. Fault, offence, wickedness.

s. बांचना *bāṅchnā* (; s. वचन discourse) v.a. To read.

s. बांछा *bāṅchhā* (s. वांछा) f. Wish, desire; p. 55, l. 13.

s. बांछित *bāṅchhit* (s. वांछित ; वाञ्छ् to wish) adj. Desired, longed for.

s. बांझ *bāṅjh* (s. वंध्या ; वंध् to bind) adj. Barren, unfruitful; p. 6, l. 19.

H. बांट *bāṅṭ* (s. वण्टक ; वटि to divide) m. Food given to a cow while she is milked; p. 55, l. 9.

s. बांटना *bāṅṭnā* (; s. वटि to divide) v.a. To divide; p. 23, l. 10.

s. बांधना *bāndhnā* (s. बन्धन ; बन्ध् to bind) v.a. To bind, to fasten; p. 11, l. 7, and p. 23, l. 18.

s. बांस *bāṅs* (s. वंश ; वन् to sound) m. Bambū; p. 36, l. 7.

s. बांसुरी *bāṅsurī* (; s. वंश *q.v.*) f. A flute or pipe; p. 48, l. 16.

s. बांह *bāṅh* (s. बाहु ; बाध् to oppose) f. The arm; p. 73, l. 7. बांहें चढ़ाना *bāṅheṅ charhānā*, To get ready, to prepare.

s. बाक्य *bākya* = वाक्य (*q.v.*); p. 175, l. 20.

H. बाखल *bākhal*, m. An area or court yard; p. 22, l. 3. Several houses in one enclosure.

H. बागा *bāgā*, m. A vestment, a honorary dress; p. 9, l. 12.

s. बाघ *bāgh* (s. व्याघ्र : वि, आङ्, घ्रा to smell) m. A tiger; p. 141, l. 2.

s. बाघंबर *bāghambar* (s. व्याघ्रांबर : व्याघ्र a tiger, अंबर covering) m. A tiger's skin used as a robe; p. 233, l. 17.

s. बाचा *bāchā* (*vide* वाचा); p. 199, l. 27.

s. बाछना *bachhnā* (s. वाञ्छ् to wish) v.a. To choose, to select; p. 22, l. 19.

s. बाजा *bājā* (s. वाद्य) m. Any musical instrument. बाजा गाजा *bājā gājā*, The sound or clangour of various musical instruments; p. 20, l. 8.

s. बाजन *bājan* (s. वाद्य ; वद् to sound) m.pl. Musical instruments; p. 5, l. 24.

s. बाजना *bājnā* (; s. वाद्य musical instrument) v.a. To sound, to beat, strike, or play upon; p. 31, l. 18. पग पट तार बाजना *pag paṭ tār bājnā*, To beat time with the foot; p. 31, l. 18.

s. बाट *bāṭ* (s. वाट ; वट् to surround) m. A road; p. 16, l. 23. बाटे घाटे *bāṭe ghāṭe* (: बाट road, घाट pass, ford, bathing-place by a river-side) adv. Somewhere or other. बाट लेना *bāṭ lenā*, To go one's way; p. 16, l. 23. बाट देखना *bāṭ dekhnā*, To expect; p. 40, l. 7.

s. बाड़ *bāṛ* (; s. वट् to surround) f. Edge of swords, etc. 2. A fence, a hedge; p. 71, l. 13. 3. Verge, edge, margin.

s. बाड़ी *bāṛī* (s. वाटी ; वट् to surround) f. An enclosed piece of ground, a garden, orchard; p. 71,

l. 13. A kitchen-garden, a house with the garden, orchard, etc., attached to it.

s. बाढ़ *bāṛh* (; s. वृध् to increase) f. (verbal noun) Increase; p. 155, l. 20. 2. Promotion. 3. A flood.

बाढ़ना *bāṛhnā* / s. बाढ़नौ *bāṛhnau* / बढ़ना *baṛhnā* (; s. वृध् to increase) v.n. To increase, to go on, proceed, advance; p. 1, l. 2.

s. बाढ़ाना *bāṛhānā* (caus. of बाढ़ना *q.v.*) v.a. To increase; p. 61, l. 9.

s. बाढ़ै *bāṛhai*, 3 p. sin. aor. of बाढ़ना (*q.v.*) May be increased; p. 1, l. 2.

s. बात *bāt* (; वृत् to be) f. Speech, language, word, saying, discourse: p. 2, l. 17. Account, subject, matter, thing. बात कर्ना *bāt karnā*, To converse.

s. बात की बात में *bāt kī bāt meṅ*, adv. Instantly, in a twinkling, in a moment; p. 148, l. 30.

s. बादल *bādal* / बादर *bādar* (s. वारिद : वरि water, द yielding) m. A cloud; p. 7, l. 6, and p. 28, l. 11.

s. बादी *bādī* (s. वादी ; वद् to speak) m. A speaker, an accuser, an enemy, a mischief-maker; p. 44, l. 6.

s. बाधा *bādhā* (; s. बाध् to oppose) f. Pain, distress. 2. Obstacle, impediment; p. 4, l. 19.

s. बान *Bān* = बानासुर (*q.v.*); p. 161, l. 10.

s. बान *bān* (s. बाण ; वण् to sound) m. An arrow, a rocket used in battle; p. 35, l. 10.

H. बाना *bānā*, m. A kind of weapon—probably a dart: p. 173, l. 5. 2. (s. वर्ण class ?) Habit, profession, fashion in dress. 3. v.a. To open; p. 26, l. 14.

s. बानावती *Bānāwatī* (: s. बान Bānāsur, वती fem. affix) f. The wife of Bānāsur; p. 162, l. 2.

s. बानासुर *Bānāsur*, m. Name of an Asur to whom Mahādev granted 1,000 arms and who was an ally of Kans; p. 62, l. 29.

s. बानी *bānī* (s. वाणी ; वण् to sound) Speech, language. Name of the Goddess Saraswatī; Preface. 2. Voice; p. 8, l. 19. Statement; p. 224, l. 26.

H. बाप *bāp*, m. A father. (often used like our boy in—"Come on, my boys;" which would be चलो मेरे बाप *chalo mere bāp*); p. 4, l. 1.

s. बापी *bāpī* = वापी (*q.v.*); p. 218, l. 9.

H. बाप्रौ *bāprau*, adj. Helpless, poor; p. 216, l. 13.

H. बाबर *bābar*, m. A kind of sweetmeat; p. 42, l. 24.

H. बाबा *bābā*, m. Father, sire; p. 75, l. 5. An endearing expression—Papa!; p. 29, l. 2. Dad!

s. बाम *bām* (s. वाम ; वा to go) adj. Left, not right. 2. (s. वामा) f. A woman. ब्रज्बाम *Brajbām*, The women of Braj; p. 59, l. 5.

s. बाम अंग *bām aṅg* (s. वामांग : वाम left, अंग body) m. The left side.

s. बायां *bāyāṅ* (s. वाम ; वा to go) adj. Left, not right. inflex. बाएं; p. 26, l. 12. subaud. हाथ में *hāth meṅ*.

s. बार *bār* (s. वार ; वृ to cover) m. Time, occasion, delay. बार लगाना *bār lagānā*, v.a. To delay. बार बार *bār bār*, Repeatedly; p. 15, l. 15. 2. Hair; p. 215, l. 26. 3. m. A day of the week; p. 7, l. 7. 4. (s. वार water ; वृ to surround) Water. 5. m. A door; p. 62, l. 14. 6. (s. बाल ; बल् to live) A child. (s. बाला) f. A girl not exceeding sixteen.

s. बारण *bāraṇ* (s. वारण ; वृ to cover or defend) Forbidding, prohibiting, preventing. 2. An

elephant. बारण बदन *bāraṇ badan,* Elephant-faced—an epithet of Gaṇesh; Preface.

s. बारह *bārah* (s. द्वादशन्) num. Twelve; p. 3, l. 2.

s. बारिज *bārij* (s. बारिज : बारि water, ज produced) m. A lotus; p. 154, l. 2. बारिज नयन *bārij nayan,* adj. Having eyes like the lotus.

s. बारी *bārī* (s. वाटी) f. A garden, an orchard. 2. A house. (s. बालिका) A young girl not exceeding sixteen. 3. H. A window. 4. An ornament worn in the ear and nose.

s. बारुनि *bāruni* (s. वारुणी) f. Any spirituous liquor, or—more properly—a particular kind prepared from hog-weed, ground with the juice of the date or palm, and then distilled; p. 184, l. 14. बारुनी पान कर *bārunī pān kar,* Drinking liquor (*ibid*).

s. बारौ *bārau* = बार (*q.v.*) m. A child; p. 76, l. 17.

s. बाल *bāl* (s. बाला) f. A girl under sixteen; p. 163, l. 3.

s. बालक *bālak* (; s. बल् to live) m. A young child, an infant, a boy; p. 10, l. 16.

s. बालकपन *bālakpan* (; बालक a child, *q.v.*) m. Childhood; p. 76, l. 19.

s. बाल लीला *bāl līlā* (: बाल child (*q.v.*) लीला sport, *q.v.*) f. Childish play; p. 8, l. 21.

s. बालसुख *bālsukh* (: s. बाल child, सुख pleasure) m. The pleasure of having offspring; p. 13, l. 18.

H. बावड़ी *bāwṛī* / बावली *bāwlī* (f. A large well into which the descent is by steps under arches; p. 71, l. 14.

s. बावन *bāwan* (s. वामन ; वम् to eject from the mouth) m. A dwarf. The fourth incarnation of Vishṇu in the shape of a dwarf; p. 8, l. 14.

s. बावला *bāwlā* (s. वातूल ; वात wind) adj. Mad; p. 120, l. 28.

s. बास *bās* (; s. वास् to perfume) f. Smell, scent, odour. In composition with सु *su,* good; p. 52, l. 29. 2. (s. वास : वस् to dwell) m. Abode, residence; p. 3, l. 18.

H. बासन *bāsan,* m. A dish, a pot; p. 19, l. 9.

s. बासी *bāsī* (s. वासी ; वस् to reside) part. used substantively, An inhabitant. बन बासी *ban-bāsī,* Inhabitant of the woods. ब्रज बासी *Braj-bāsī,* Inhabitant of Braj. (*passim*).

s. बासुदेव *Bāsudev* / वासुदेव *Vāsudev* (s. वासुदेव ; वसुदेव Vasudev, *q.v.*) m. A patronymic—Krishṇ, who was the son of Vasudev; p. 8, l. 24.

s. बासना *bāsnā* / वासना *vāsnā* (s. वासना ; वस् to dwell) f. Desire, inclination; p. 48, l. 23.

s. बासना *bāsnā* (s. वासन perfuming ; वस् to dwell) v.a. To scent, to perfume; p. 155, l. 15.

s. बाहन (s. वाहन ; वह् to bear) m. A vehicle, any animal or other conveyance on which a person rides; p. 32, l. 13.

H. बाहर *bāhar,* adv. Out, outside. बाहर करना *bāhar karnā,* To take out, to free; p. 4, l. 15.

s. बिंजन *biñjan* (s. व्यञ्जन : वि, अञ्ज् to make clear) Sauce, condiments; p. 42, l. 26: particularly vegetables dressed with butter and added to flesh or fish. 2. (in Grammar) A consonant.

s. बिंब *bimb* / बिंबा *bimbā* (s. बिम्ब ; वि to go or shine) m. A cucurbitaceous plant with red fruit (Momordica monadelpha); p. 163, l. 7.

s. बिकट *bikaṭ* (s. विकट : वि implying expansion, कट् to go) adj. Large, terrible; p. 166, l. 14.

s. बिकल *bikal* (s. विकल : वि not, कला moon's

digit) adj. Restless, uneasy, troubled ; p. 83, l. 6.

s. विकसित *bikasit* (s. विकसित : वि apart, कस् to go) adj. Expanded, blown (as a flower). 2. Delighted.

s. विकस्ना *bikasnā* (s. विकसन : वि apart, कस् to go) v.n. To blow or expand (as a flower) ; p. 79, l. 19. 2. To be delighted, to smile.

s. विकास *bikās* (s. विकाश : वि before and काश् to shine) Shining, blooming, expanding. बदन विकाश *badan bikās*, Expanding or irradiating the countenance ; Preface, but here बदन is better taken with the preceding word. (*See* बारण.)

s. विकासुर *Bikāsur*, m. A dæmon, son of Kashshipa, destroyed by a stratagem of Vishṇu ; p. 234, l. 4.

s. विक्ना *biknā* (: वि, क्री to buy) v.n. To be sold ; p. 218, l. 15.

s. विक्रार *bikrār* (s. विकराल) adj. Terrific, hideous, p. 215, l. 25.

s विखर्ना *bikharnā* (s. वि, क्षृ to scatter) v.n. To be scattered, dispersed, or dishevelled ; p. 20, l. 2, and p. 56, l. 16.

H. विगड़ना *bigaṛnā*, v.n. To be spoiled, damaged, or marred ; p. 6, l. 28, p. 9, l. 18, and p. 72, l. 30,

s. विगाड़ *bigāṛ* (s. विग्रह) m. Violation, difference, dispute ; p. 151, l. 16.

s. विघन *bighan* (s. विघ्न : वि before, हन् to be injured (by it) and क aff.) m. Obstacle, impediment ; Preface.

H. विच *bich*, adv. and postp. In, among, between.

s. विचराना *bicharānā* / विछुराना *bichhurānā* (trans. of बिछुर्ना *q.v.*) v.a. To separate, to disperse ; p. 153, l. 13.

s. विचार *bichār* (s. विचार : वि before, चर् to go) m. Consideration, reflection, contrivance, judgement, opinion, thought, will ; p. 4, l. 3.

s. विचार्ना *bichārnā* (s. विचरण : वि before, चर् to go) v.a. To consider, to reflect, to investigate ; p. 7, l. 10. To think, to ponder, meditate.

s. विचित्र *bichitr* / विचित्र *vichitr* (s. विचित्र : वि, चित्र variegated) adj. Variegated, various, of various accomplishments ; p. 63, l. 6. Wonderful.

s. विछर्ना *bichharnā* / विछुर्ना *bichhurnā* (: s. वि, छुट् to cut) v.n. To be separated ; p. 34, l. 12.

s. विछाना *bichhānā* (trans. of विछ्ना *q.v.*) v.a. To spread, to cover with a cloth) ; p. 22, l. 18, and p. 54, l. 23.

H. विछुआ *bichhuā*, m. An ornament for the toes ; p. 152, l. 22. 2. A sort of dagger.

s. विछोह *bichhoh* / विछोहा *bichhohā* (: s. वि, छुट् to cut) m. Separation, absence ; p. 68, l. 14.

s. विछौना *bichhaunā* (; विछ्ना *q.v.*) m. Bedding ; p. 95, l. 1.

s. विछ्ना *bichhnā* (; s. विस्तर ; स्तृ to spread over) v.n. To be spread.

s. विजली *bijlī* (s. विद्युत् : वि intensive, द्युत् light) f. Lightning ; p. 7, l. 6, and p. 34, l. 5.

H. विजायठ *bijāyaṭh*, m. A bracelet, an armlet.

s. विताना *bitānā* (caus. of बीत्ना *q.v.*) v.a. To spend, to pass time ; p. 46, l. 24.

s. वितीत *bitīt* (s. व्यतीत : वि, अतीत passed) adj. Passed, gone, elapsed ; p. 89, l. 14.

s. बितै है *bitai hai*, Braj for बितै, 3 p. sing., aorist of बित्ना *bitnā*, to pass, Will pass ; p. 126, l. 8.

s. वित्त *bitt* (s. वित्त ; विद् to know) m. Wealth, property ; Preface.

s. बित्ना *bitnā* / बीत्ना *bītnā* (: s. व्यतीत : वि over, अतीत passed) v.n. To pass, to elapse; p. 3, l. 12. To happen.

s. बिथर्ना *bitharnā* / बीथुर्ना *bīthurnā* (perhaps; विस्तरण; स्तृ to spread out *or* cover) v n. To be scattered; p. 68, l. 17. To be sprinkled.

s. बिथराना *bitharānā* = बिथराना *q.v.;* p. 121, l. 18.

s. बिथा *bithā* (s. व्यथा; व्यथ् to be disquieted) f. Pain, affliction, distress; p. 83, l. 21.

s. बिदर्भ *bidarbh* = विदर्भ *q.v.;* p. 106, l. 23.

s.A. बिदा *bidā* (s. विदाय or A. وداع) f. Farewell, dismission, taking leave; p. 4, l. 15.

s. बिदारण *bidāraṇ* (s. विदारण : वि before, and दृ to tear) Tearing, breaking, splitting, severing, dividing; Preface.

s. बिदार्ना *bidārnā* (s. वदारण rending; दृ to tear) v.a. To rend, to tear.

s. बिदुर *Bidur* / विदुर *Vidur* (s. विदुर; विद् to know) m. A learned man, the younger brother and counsellor of Dhṛitarāshṭr; p. 96, l. 9.

s. बिदूरथ *Bidūrath*, m. A king, ancestor of Krishṇ; p. 5, l. 21. A Kaurava; p. 134, l. 11. Name of a brother of Sisupāl—slain by Krishṇ; p. 213, l. 21.

s. बिदेस *bides* (विदेश : वि implying variety, देश country) m. A foreign country (opposed to देस); p. 123, l. 17.

s. बिद्या *bidyā* (s. विद्या; विद् to know) f. Knowledge, learning, science—whether sacred or profane, but more especially the former. It is sometimes classed in fourteen divisions:— the four Vedas; the six Angas or grammar, etc.; the Purāṇās as the eleventh class; and Mimānsa or theology, Nyāya or logic, and Dharma or law, as the remaining three; Preface. 2. A magical pill by putting which into the mouth a person has the power of ascending to heaven; p. 13, l. 5.

s. बिद्याधर *bidyādhar* (s. विद्याधर; विद्या a magical pill, धर who holds) m. A holder or possessor of the magical pill, the owner of which can at pleasure ascend to heaven. These demigods dance before the assembled deities in Indr's heaven; p. 13, l. 5.

s. बिद्यार्थी *bidyārthī* (s. विद्यार्थ : विद्या knowledge, अर्थ object) A student; Preface.

s. बिद्यावान *bidyāwān* (s. विद्यावान; विद्या wisdom) adj. Learned, wise, scientific.

s. बिध *bidh* / बिधि *bidhi* (s. विधि : वि before, धा to have) f. A sacred precept, law, statute, decree, command, injunction. 2. Brahmā or providence. 3. Fate, destiny. 4. Manner, way, method; p. 6, l. 2. Kind, sort.

s. बिधाता *bidhātā* (s. विधाता : वि severally, धा to have or contain) m. The deity Brahmā.

s. बिध्ना *bidhnā* (s. विधि; विध् to rule) m. A name of Brahmā; p. 13, l. 24.

s. बिध्वंस *bidhwaṅs* (s. विध्वंस *q.v.*); p. 204, l. 17.

s. बिध्वा *bidhwā* (s. विध्वा : वि privative, धव a husband) f. A widow (the Latin *vidua*).

s. बिन *bin* / बिना *binā* (s. विना; वि without) postp. Without, except. बिन रोये *bin roye*, Without weeping; p. 4, l. 21. बिन काज *bin kāj*, Uselessly, uncalled for; p. 15, l. 2.

s. बिनव्ना *binavnā* / बिनौना *binaunā* (s. विनय obeisance : वि, णी to obtain) v.a. To adore; p. 180, l. 18. To venerate, to revere; p. 194, l. 10.

s. बिनास *binās* (s. विनाश : वि, नश् to perish) m. Annihilation, destruction ; p. 15, l. 27.

s. बिन्ती *bintī* (s. विनीति or विनति or विनय : वि separately, णी to obtain or guide) f. Submission, submissive solicitation, apology.

s. बिपत *bipat* (s. विपत्ति : वि implying reverse, पत् to go) f. Adversity, misfortune, calamity, distress; p. 16, l. 26.

s. बिपरीत *biparīt* (s. विपरीत : वि separate, परि implying contrariety, इत gone) adj. Contrary, opposite. 2. f Mischief, ruin.

s. बिप्र *bipr* (s. विप्र : वि, प्र to fill or complete (the essential observancy) or वप् to shave) m. A man of the sacerdotal caste, a Brāhman ; p. 39, l. 25.

s. बिफर्ना *bipharnā* (perhaps ; बिपरीत) v.n. To be perverse, refractory, disobedient, cross, obstinate, pert.

s. बिबेक *bibek* = विवेक *q.v.* ; p. 50, l. 25.

s. बिमान *bimān* (s. विमान : वि, मा to measure, or मन् to understand) m. The car or vehicle of a deity ; p. 12, l. 27.

s. बिमुख *bimukh* (*vide* विमुख) ; p. 196, l. 18.

s. बियोग *biyog* (s. वियोग : वि priv., योग union) m. Separation, absence, —especially of lovers ; p. 4, l. 18.

s. बियोगी *biyogī* (; बियोग *q.v.*) m. A lover suffering the pangs of absence from his beloved one.

s. बिरंच *Birañch* (s. विरञ्च : वि severally, रच् to create) m. A name of Brahmā—Creator.

H. बिरद *birad*, m. Fame, reputation, panegyric ; Preface.

s. बिरम्ना *biramnā* (; s. विराम : वि, रम् to stop) v.n. To stop, to remain ; p. 35, l. 23.

s. बिरह *birah* (s. विरह : वि over, रह् to abandon) m. Separation, parting, absence of lovers ; p. 48, l. 17.

s. बिराज्ना *birājnā* (s. विराजन : वि, राज् to shine) v.n. To be conspicuous or splendid ; p. 31, l. 25. To enjoy one's self, to live in health and ease, content and independence.

s. बिराट *birāṭ* (s. विराट) m. The embodied spirit ; p. 69, l. 17.

H. बिराना *birānā*, adj. Strange, foreign, belonging to another ; p. 54, l. 24.

s. बिराम *birām* (: s. वि implying change, रम् to be at rest) adj. Restless, agitated ; p.* 139, l. 4.

H. बिरियां *biriyāṅ*, f. Time ; p. 13, l. 151.

s. बिरुद्ध *biruddh* (*vide* विरुद्ध) ; p. 143, l. 27.

s. बिरूप *birūp* (s. विरूप : वि several, रूप form) adj. Disfigured, deformed, ugly. बिरूप होना *birūp honā*, v.n. To be disgraced.

s. बिरोध *birodh* = विरोध (*q.v.*) ; p. 191, l. 11.

s. बिर्माना *birmānā* (caus. of बिर्मना *q.v.*) v.a. To cause to delay ; p. 94, l. 2.

s. बिलंब्ना *bilambnā* (; बिलंब delay, *q.v.*) v.n. To stay, to tarry, to delay.

s. बिलंब *bilamb* (s. विलम्ब : वि, लबि to go) m. Delay, procrastination ; p. 70, l. 9.

H. बिलक्ना *bilaknā*, v.n. To sob, to cry violently (as a child) ; p. 19, l. 8. 2. To long for, to desire eagerly.

s. बिलखना *bilakhnā* (s. विलक्षण : वि not, लक्षण sign, *i.e.*, condition for which no reason can be assigned) v.a. To see, to behold. 2. v.n. To be displeased, to be ill at ease ; p. 114, l. 22.

s. बिलग *bilag* (s. विलग्न : वि, लग् to be connected)

adj. Separate. 2. m. Separation, difference. **बिलग मान्ना** *bilag mānnā*, v.n. To be offended, to take a thing amiss; p. 21, l. 18.

s. **बिलम्ना** *bilamnā* = **बिर्मना** (*q.v.*)

H. **बिललाना** *bilalānā* = **बिल्बिलाना** (*q.v.*) v.n. To lament; p. 222, l. 20.

s. **बिलाना** *bilānā* (s. **विलय** destruction : **वि, ली** to liquefy) v.n. To vanish, to retire, to be lost; p. 100, l. 18. 2. v.a. To cause to vanish, to dissipate, to dispose of, to distribute.

s. **बिलास** *bilās* (s. **विलास** : **वि** before, **लस्** to desire) m. Pleasure, delight; Preface.

s. **बिलोक्ना** *biloknā* = **बिलोक्ना** (*q.v.*)

s. **बिलोना** *bilonā* = **बिलोवना** (*q.v.*); p. 88, l. 19.

s. **बिलोवना** *bilowanā* (s. **विलोड़न** churning : **वि, लुड्** to agitate) v.a. To churn; p. 22, l. 19.

H. **बिल्बिलाना** *bilbilānā*, v.n. To be restless, to be tormented with pain, to complain with pain or grief, to lament; p. 163, l. 8.

s. **बिवाह** *biwāh* (s. **विवाह** : **वि** mutually, **वह्** to take) m. Marriage. **बिवाह रचाना** *biwāh rachānā*, To celebrate a marriage. **बिवाह लाना** *biwāh lānā*, To take in marriage, to bring home a wife, to marry.

s. **बिशद** *bishad* / **बिसद** *bisad* (s. **विशद** : **वि** before, and **शद्** to wither) White, clear, pure; Preface.

s. **बिश्रांति** *bishrānti* (s. **विश्रान्ति** ; **वि** separate, **श्रम्** to be weary) f. Rest, repose, cessation from toil or occupation.

s. **बिश्रांत** *bishrānt* (s. **विश्रांत** : **वि, श्रांत** rest) adj. Rested. **बिश्रांत घाट** *Bishrānt ghāṭ*, m. Name of a place near the river Yamunā, where Krishn and Balarām rested after the slaughter of Kans; p. 79, l. 24.

s. **बिश्राम** *bishrām* (s. **विश्राम** : **वि, श्रम्** to be weary) m. Rest, ease, repose. **बिश्राम कर्ना** *or* **लेना** *bishrām karnā* or *lenā*, To repose; p. 2, l. 17.

s. **बिश्वामित्र** *Bishwāmitr* (*See* **विश्वामित्र**); p. 4, l. 23.

s. **बिश्वास** *bishwās* / **बिस्वास** *biswās* (s. **विश्वास** *q.v.*)

s. **बिष** *bish* / **विष** *vish* (s. **विष** ; **विष्** to pervade) m. Poison; p. 17, l. 17.

s. **बिषई** *bishai* (s. **विषयी** : **वि, षी** to bind) adj. Sensual, worldly.

s. **बिष्धर** *bishdhar* (s. **विष्धर** : **विष** poison, **धर** who has) m. A snake; p. 53, l. 16.

s. **बिषम ज्वर** *bisham jwar* (: s. **विषम** difficult [: **वि** not, **सम** even], **ज्वर** fever) m. An inflammatory fever; p. 175, l. 14.

s. **बिषय** *bishay* / **विषय** *vishay* (s. **विषय** : **वि** over, **षि** to bind) m. Any object of sense—as colour, sound, odour, flavour, and contact; p. 48, l. 23. 2. An affair, a matter.

s. **बिष्णु** *Bishnu* / **विष्णु** *Vishnu* (s. **विष्णु** ; **विष** to pervade (the universe) m. Vishnu, the Deity in the character of The Preserver. He it was who becoming incarnate as Krishn, performed the exploits described in the *Prem Sāgar*; p. 6, l. 23.

s. **बिसर्ना** *bisarnā* (; **विस्मरण** forgetting) v.n. To forget; p. 6, l. 28.

s. **बिसाल** *bisāl* / **विसाल** *visāl* (s. **विशाल** ; **विश्** to enter) adj. Great, large; p. 54, l. 18.

H. **बिसूर्ना** *bisūrnā*, v.n. To cry slowly, to sob; p. 121, l. 11.

s. **बिस्तार्ना** *bistārnā* (s. **विस्तार** spreading : **वि** apart,

स्तृ to cover) v.a. To spread out, to extend, to diffuse: p. 194, l. 2.

s. बिस्राना *bisrānā* } (caus. of बिसर्ना *q.v.*) v.a. To forget; p. 50, l. 30. To cause to forget.
बिसार्ना *bisārnā* }

s. बिस्वः *biswah* (; बीस twenty) m. The twentieth part, particularly of the measure of land called a बीघा *bīghā* ; but at p. 3, l. 2, simply "part."

s. बिस्वकर्मा *Biswakarmā* (s. विश्वकर्म्मा : विश्व universal, कर्म्म work) m. The artificer of the Gods, the Indian Vulcan ; p. 101, l. 26.

s. बिह्वाल *bihbāl* (s. विह्वल : वि, ह्वल् to shake) adj. Agitated, alarmed, overcome with agitation ; p. 59, l 17. Unable to restrain one's self.

s. बिहर्ना *biharnā* (s. विहरण : वि change, हृ to take) v.n. To rejoice, to take pleasure ; p. 141, l. 12. 2. v.a. To enjoy, to delight. बिहर्ति अंग *biharti aṅg*, Of delightsome form ; p. 141, l. 10.

s. बिहस्ना *bihasnā* (s. विहसन : वि, हस् to laugh) v.n. To smile, to laugh gently ; p. 126, l. 11.

s. बिहार *bihār* (s. विहार : वि implying change, हृ to take) m. Diversion, amusement, sport ; p. 23, l. 24, and p. 155, l. 9.

s. बिहारी *Bihārī* (s. विहारी ; विहार sport : वि implying change, हृ to take) m. A name of Krishṇ ; p. 140, l. 22. adj. Sportive.

s. बिहारी लाल *Bihārī Lāl*, m. The name of the author of the Hindī translation of the tenth chapter of the *Bhāgavat* or *Prem Sāgar*. His name is compounded of बिहारी *Bihārī* (sportive) a name of Krishṇ, and लाल *lāl*, dear ; p. 49, l. 14.

s. बीड़ा *bīṛā* = बीरा *bīrā* (*q.v.*). बीड़ा उठाना *bīṛā uṭhānā*, v.a. To undertake a business ; p. 64, l. 28. बीड़ा डाल्ना *bīṛā ḍālnā*, v.n. To propose a premium for the performance of a task. [These expressions originate in a custom of throwing a bīṛā of betel into the midst of an assembly in token of a proposal to any person to undertake some difficult affair then to be performed, which the person who takes up the betel makes himself responsible for.]

H. बीच *bīch*, postp. In, among, between ; p. 3, l. 2.

H. बीचों बीच *bīchoṅ bīch* (*See* बीच) adv. In the midmost circle ; p. 143, l. 22.

s. बीत्ना *bītnā* (; s. व्यतीत : वि before, अतीत passed) v.n. To pass, elapse, happen, befal ; p. 3. l. 12.

H. बीन *bīn*, m. An arrow ; p. 120, l. 23.

s. बीन *bīn* (s. वीणा ; वी to go) f. The Indian lute, an instrument of the guitar kind, usually having seven wires or strings, and a large gourd at each end of the finger-board : the extent of the instrument is two octaves. It is supposed to be the invention of Nārad, son of Brahmā, and has many varieties enumerated, according to the number of strings ; p. 64, l. 11. (*See Asiatic Researches, vol.* i., *art.* 13.)

H. बीर *bīr*, f. Sister ! (used in the vocative only) ; p. 17, l. 20. 2. m. A brother. 3. A jewel worn in the ear.

s. बीर *bīr* (s. वीर) m. A hero ; p. 35, l, 8.

s. बीरा *bīrā* (s. वीटिका : वि, इट् to go) m. A betel-leaf made up with a preparation of the areca nut, spices, and chunam, given to champions as a mark of their designation for any exploit ; p. 62, l. 10.

s. बीर्ता *bīrtā* (s. वीरता ; वीर a hero, *q.v.*) f. Heroism, prowess.

s. बीर्य्य *bīryya* (s. वीर्य्य ; वीर् to be strong) m. Sperma genitale; p. 69, l. 21. 2. Power, strength.

s. बीस *bīs* (s. विंशति) Twenty; p. 3, l. 2. बीस बिस्वे *bīs biswe*, Twenty twentieths *or* twenty parts. The बिस्वे is here redundant, or only shews that the feet when complete were twenty, each equal to and like the other, so that when the number was lessened, they had become incomplete as a whole.

s. बीसेक *bīsek* (: बीस twenty, एक one, here signifying about) num. About twenty; p. 82, l. 26.

H. बुझना *bujhnā*, v.n. To be dipped, to be extinguished, to be quenched; p. 35, l. 2. बिष बुझे *bish bujhe*, Dipped in poison; p. 120, l. 23.

H. बुझाना *bujhānā* (trans. of बुझना) v.a. To extinguish; p. 9, l. 20.

s. बुझाना *bujhānā* (; s. बुध् to know) v.a. To make to comprehend, to explain, to demonstrate; p. 8, l. 21.

s. बुढ़ापा *buṛhāpā* (; बूढ़ा old) m. Old age; p. 81, l. 7.

s. बुद्धि *buddhi* (s. बुद्धि ; बुध् to know) f. Intellect, understanding; p. 6, l. 27.

s. बुध *budh* (s. बुध ; बुध् to know) m. A sage. 2. The planet Mercury. 3. Wednesday. बुध बार *budh bār* or बुध वार *budh wār*, Wednesday; p. 11, l. 25.

H. बुरा *burā*, adj. Bad, ill. बुरा मान्ना *burā mānnā*, v.n. To take amiss; p. 55, l. 7, and p. 82, l. 3.

H. बुलाना *bulānā* (caus. of बोलना *q.v.*) v.a. To call, to invite, to summon; p. 22, l. 17.

H. बुलवाना *bulwānā* (caus. of बुलाना *q.v.*) v.a. To cause to send for; p. 7, l. 9. बुलवा भेज्ना *bulwā bhejnā*, v.a. intens. To send to summon; p. 7, l. 9.

H. बुहार्ना *buhārnā*, v.a. To sweep; p. 22, l. 17.

s. बूंद *būṅd* (s. विन्दु ; विद् to be a part of) m. A drop; p. 30, l. 18.

H. बूड़ना *būṛnā*, v.n. To dive. 2. To drown, to be immersed, to dip.

s. बूढ़ा *būṛhā* (s. वृद्ध ; वृध् to increase) adj. Old; p. 15, l. 28.

s. बृंद *briṅd* (s. वृन्द : वृण् to please) m. A heap, a multitude, a quantity, an aggregation.

s. बृंदा *briṅdā* (s. वृन्दा : वृण् to please) f. A plant held sacred by the Hindūs (the Ocymum sanctum *or* melongana) sacred basil. This shrub is said to have been a nymph beloved by Krishṇ and metamorphosed,—the story, to some extent, resembling that of Apollo and Daphne; p. 25, l. 9.

s. बृंदा देवी *Briṅdā Devī*, f. The tutelar goddess of Briṅdā; p. 25, l. 15.

s. बृंदाबन *Briṅdāban* (s. बृंदा holy basil, बन a wood) m. The district to which Krishṇ and the cowherds removed from Gokul. (*lit.*, a forest of Tulsī trees (the Ocymum sanctum); p. 25, l. 9.

s. बृक *brik* / वृक *vrik* (s. वृक ; वृक् to take) m. A wolf; p. 140, l. 15.

s. बृथा *brithā* / वृथा *vrithā* (s. वृथा ; वृ to choose) adv. In vain; p. 43, l. 10. adj. Abortive, fruitless.

s. बृद्ध *briddh* / वृद्ध *vriddh* (s. वृद्ध ; वृध् to grow) adj. Old; p. 81, l. 11.

s. बृषभ *brishabh* (s. वृषभ ; वष् to sprinkle) m. A bull; p. 60, l. 15.

s. बृहस्पति *Brihaspati* (s. वृहस्पति : वृहत् great, पति master) m. The Regent of the planet Jupiter,

identified astronomically with the planet. In mythology, he is the Preceptor of the Gods. 2. Thursday; p. 7, l. 7.

H. बेंडा *beṅḍā*, adj. Crooked.

S. बेग *beg* (S. वेग ; व्रज् to go) m. Speed. 2. adv. Quickly; p. 8, l. 17.

H. बेटा *beṭā*, m. A son; p. 7, l. 14.

H. बेड़ी *beṛī*, f. Gyves, irons for the leg, a fetter; p. 12, l. 16. 2. A bucket for irrigation.

H. बेटी *beṭī*, f. A daughter; p. 5, l. 26.

S. बेद *bed* / वेद *ved* (S. वेद ; विद् to know) m. A Veda—the generic term for the sacred writings of the Hindūs, supposed to have been revealed by Brahmā, and—after having been preserved by tradition for a considerable period—to have been arranged in their present form by Vyāsa. The principal Vedas are three in number: the Rich, Yajush, and Sāma, to which a fourth—the Atharva—is usually added, and the Itihāsa and Purānās—or ancient history and mythology—are sometimes considered as a fifth; p. 8, l. 12.

S. बेदी *bedī* (S. वेदी ; विद् to know) f. An altar; p. 187, l. 18.

S. बेन *ben* / बेनु *benu* (S. वेणु ; वन् to sound) f. A flute or pipe; p. 36, l. 7.

S. बेर *ber* (S. बदर ; बद् to be firm) m. The jujube tree (Zizyphus jujuba), also the fruit. 2. f. (S. वार ; वृ to cover) Time, turn, vicissitude. Delay; p. 7, l. 1. अब की बेर *ab kī ber*, This time; p. 12, l. 6.

S. बेल *bel* / बेलि *beli* / बेली *belī* (S. वल्लि ; वल्ल् to cover) f. A creeper, a climbing plant; p. 33, l. 14. The tendril of a vine.

S. बैंदी *baiṅdī* (S. विन्दु ; विद् to be a part of) f. An ornamental circlet made with a coloured earth or unguent, on the forehead and between the eyebrows; p. 163, l. 15. 2. An ornament worn by women on the forehead.

S. बैकुंठ *Baikuṅṭh* / वैकुंठ *Vaikuṅṭh* (S. वैकुण्ठ ; विकुण्ठा wife of Subhra and mother of Vishṇu in one form, *or* वि privative, कुण्ठ destruction, *or* वि various, कुण्ठ illusion) m. The paradise of Vishṇu, said to be in the Northern Ocean, or on the Eastern peak of Mount Meru; p. 47, l. 23.

S. बैजंती *baijaṅtī* (S. वैजयन्ती : वि certainly, जि to conquer) f. A flag or standard, the standard of Vishṇu.

S. बैजंती माल *baijaṅtī māl* (: वैजयन्ती conquering, माला necklace) A necklace worn by Vishṇu in his several forms, and composed of jewels produced from the five elements of nature: the sapphire from the earth; the pearl from water; the ruby from fire; the topaz from air; and the diamond from space or æther; p. 13, l. 8.

H. बैठना *baiṭhnā*, v.n. To sit, to sit down; p. 4, l. 24.

H. बैठाना *baiṭhānā* / बैठार्ना *baiṭhārnā* / बैठाल्ना *baiṭhālnā* (trans. of बैठना *q.v.*) To cause to sit; p. 7, l. 9.

S. बैठे बिठाए *baiṭhe biṭhāe* (participles of बैठना to sit, and बिठाना to cause to sit, *q.v.*) adv. While doing nothing, without impulse or causation of our own; p. 138, l. 14.

S. बैदक *baidak* (S. वैद्यक ; वेद the medical Veda) m. The practise and science of physic; p. 85, l. 7.

S. बैदिक *baidik* (S. वैदिक ; वेद the Veda) m. A brāhman well versed in the Vedas.

s. बैन *bain*, f. = बैन (*q.v.*). 2. m. A word, a speech; p. 96, l. 26.

H. बैना *bainā*, m. An ornament for the forehead; p. 163, l. 15. 2. (s. वायन) Sweetmeats distributed at marriages.

s. बैनु *bainu* = बैनु (*q.v.*); p. 204, l. 16.

s. बैर *bair* (s. वैर ; वीर a warrior) m. Enmity, revenge. बैर बढ़ाना *bair barhānā*, To augment one's hostility; p. 7, l. 26. बैर लेना *bair lenā*, To take revenge; p. 19, l. 7.

P. बैरख *bairakh* (P. بیرق) m. A banner, ensign, colours; p. 117, l. 24.

s. बैराग *bairāg* / बैराग्य *bairāgya* (s. वैराग्य ; वि privative, and राग passion) m. The absence of desire or passion, penance, devotion, the renouncing the world; p. 4, l. 15.

s. बैरागी *bairāgī* (; बैराग *q.v.*) m. A devotee who renounces the world, and its enjoyments and gives himself up to penance.

s. बैरी *bairī* (s. वैरी ; वैर enmity) m.f. An enemy; p. 9, l. 19.

H. बैल *bail*, m. A bull, an ox; p. 2, l. 9.

s. बैष्णव *Baishṇab* (s. वैष्णव ; विष्णु Vishṇu) adj. Relating or belonging to Vishṇu. A follower of Vishṇu; p. 5, l. 13.

s. बैस *bais* (s. वैश्य) = बैष्णव (*q.v.*)

s. बैस *bais* (s. वयस ; वय to go) m. Age. किशोर बैस *kishor bais*, Of youthful age; p. 163, l. 30. 2. (s. वैश्य *q.v.*) The third of the four Hindū castes. 3. Name of a tribe of Rājpūts.

s. बैसंदर *Baisandar* (s. वैश्वानर : विश्व all, नर mankind, *i.e.*, fit for all men) m. Fire or its deity; p. 142, l. 22.

s. बैसाख *baisākh* (*vide* वैसाख); p. 184, l. 21.

H. बोझ *bojh*, m. Load, burthen, weight; p. 19, l. 16, and p. 31, l. 17.

H. बोल *bol*, m. Word; p. 99, l. 27. Speech, talk, conversation.

H. बोल उठना *bol uṭhnā*, v.n. To speak out, to exclaim; p. 6, l. 28.

H. बोलना *bolnā*, v.n. To speak, say, talk; p. 6, l. 8.

H. बोली *bolī*, f. Speech, dialect, language. 2. Talk, conversation; Preface. The voice of birds; p. 6, l. 8.

s. ब्याकरन *byākaran* (s. व्याकरण : वि, आङ, कृ to make or do) m. Grammar.

s. ब्याकुल *byākul* / व्याकुल *vyākul* (s. व्याकुल : the particle वि. आकुल agitated) adj. Perplexed, confounded, agitated, restless; p. 8, l. 17.

s. ब्याध *byādh* (s. व्याध ; व्यध् to pierce) A hunter, a fowler.

s. ब्याधि *byādhi* = व्याधि (*q.v.*); p. 38, l. 5.

s. ब्यापना *byāpnā* (s. व्यापन : वि implying change, आप् to obtain) v.n. To pervade, to occupy, to effect, to operate, to work, to act, to affect; p. 125, l. 23.

H. ब्यालू *byālū*, m. Supper; p. 75, l. 16.

s. ब्यास *Byās* = व्यास (*q.v.*); p. 4, l. 23.

s. ब्याह *byāh* (s. विवाह *q.v.*) m. Marriage; p. 106, l. 17. ब्याह लेना *byāh lenā*, v.n. To take in marriage, to bring home a wife, to marry.

s. ब्याहन *byāhan* (s. विवाहण : वि mutually, वह् to take) m. v.n. Marrying, marriage. ब्याहन जोग *byāhan jog*, Marriageable, fit for marriage; p. 9, l. 3.

s. ब्याहा *byāhā*, m. (s. विवाहित) / ब्याहता *byāhtā* f. (s. विवाहिता) adj. Married.

s. ब्याह्ना *byāhnā* (; s. विवाह : वि mutually, वह् to take) v.a. To give or take in marriage ; p. 5, l. 25. ब्याही जाना *byāhī jānā*, To be married (a woman).

s. ब्योपारी *byopārī* (; s. व्योपार business : वि, आङ् पृ to be busy) m. A merchant ; p. 239, l. 1.

s. ब्योमासुर *Byomāsur* (s. व्योम sky, असुर dæmon) m. Name of a dæmon, a minister of Kans ; p. 61, l. 28.

H. ब्योरा *byorā*, m. Difference, distinction. 2. Account, explanation, history ; p. 10, l. 25.

s. ब्यौहार *byauhār* (s. व्यवहार : वि, अव implying dissension, हृ to take) m. Profession, calling, trade, negotiation, practice, custom ; p. 146, l. 5.

s. ब्रज *Braj* (s. व्रज ; व्रज् to go) A cow-pen, a station of cowherds. 2. The district about Āgrā and Mathurā, containing the villages of Gokul, Brindāban, etc., being about 168 miles in circumference. It was the scene of Krishn's youthful exploits ; Preface. ब्रज मंडल *Braj maṅḍal*, The circle or district of Braj ; p. 8, l. 19.

s. ब्रज भाषा *Braj bhāshā*, f. The dialect of Braj, the most ancient form of Hindī ; Preface.

s. ब्रज बाला *Braj bālā* (: s. व्रज *q.v.*, बाला fem. of बाल a child) f. Maidens of Braj ; p. 36, l. 22.

s. ब्रत *brat* (s. व्रत ; वृ to choose) m. A meritorious act, a fast, a vow, a religious rite or penance ; p. 37, l. 7.

s. ब्रथा *brathā*, *vide* वृथा.

s. ब्रह्म *Brahm* (s. ब्रह्म ; वृह् to increase, *i.e.*, mankind) God, the all-pervading, the divine cause and essence of the world, from which all things proceed and to which they return ; p. 35. l. 22.

s. ब्रह्म अस्त्र *Brahm astr* (: ब्रह्म Deity, अस्त्र weapon)
ब्रह्म बान *Brahm bān* (: ब्रह्म Deity, बान arrow)
m. A fabulous weapon, which, consecrated by a formula addressed to Brahmā, deals infallible destruction to those against whom it is discharged ; p. 174, l. 13.

s. ब्रह्मचर्य *brahmacharya* (s. ब्रह्मचर्य्य : ब्रह्म the Veda, चर्य्य observance) The profession or way-of-life of a brahmachārī (*q.v.*) ; p. 160, l. 9.

s. ब्रह्मचारी *brahmachārī* (s. ब्रह्मचारी : ब्रह्म the Veda, चर् to go or follow) m. A religious student, a brāhman from the time of his investiture with the sacerdotal thread till he becomes a householder, a person who continues with his spiritual teacher studying the Vedas, a paṇḍit learned in the Veda, an ascetic ; p. 228, l. 27.

s. ब्रह्म भोज *brahma bhoj* (: s. ब्राह्मण a brāhman, भोजन eating, food, victuals) The feeding of brāhmans.

s. ब्रह्म रात्रि *brahm rātri* (: ब्रह्म the Deity Brahm, रात्रि night) f. A night six months long, during which Krishn danced and sported with the cowherdesses ; p. 56, l. 27. 2. A night of 1000 Yugs or ages of the Gods, being 216,000,000 of those of mortals.

s. ब्रह्मलोक *Brahmalok* (s. ब्रह्मलोक : ब्रह्म Brahm, लोक world) m. The world of Brahmā (*vide* सतलोक) ; p. 235, l. 13.

s. ब्रह्म शेष *brahma shesh* (: वह्म a brāhman, शेष leavings) m. The leavings of a brāhman ; p. 193, l. 23.

s. ब्रह्मा *Brahmā* (; ब्रह्म the infinite spirit) m. The first person of the Hindū Triad, representing the

Creative power. He is the husband of Saraswatī and is usually represented with four heads, from each of which sprang a Veda. He is said to have originally had five heads, but Shiva cut off one of them. His vehicle is the *hans* or swan, but he is seldom depicted as riding on it. Temples are not erected to him—since the creative act is past, and the Preserver and Destroyer—Vishṇu and Shiva—engross the hopes and fears of the Hindū votary. His image, however, is placed in the temples of other Gods; p. 3, l. 8.

s. ब्रह्मांड *brahmāṅḍ* (s. ब्रह्माण्ड : ब्रह्म Brahm, अण्ड an egg (to which the world is compared) m. The globe, the world. In creation there are said to be countless brahmāṅḍas; p. 232, l. 2.

s. ब्रह्मादिक *Brahmādik* (: s. ब्रह्म Brahmā, आदिक et cætera) m. Brahmā and the rest; p. 11, l. 1.

s. ब्राह्मण *brāhmaṇ* (s. ब्राह्मण ; ब्रह्म the first Deity of the Hindū triad ; ब्रह् to increase, *i.e.*, mankind) m. A man of the first Hindū tribe. Of these tribes there are four:—the ब्राह्मण *brāhmaṇ* or priest; the क्षत्रिय *kshatriya*, or soldier; the वैश्य *vaishya*, or merchant; and the शूद्र *shūdra*, or slave; p. 7, l. 30.

s. ब्राह्मनी *brāhmanī* (s. ब्राह्मणी) fem. of ब्राह्मन *q.v.* The wife of a brāhman, a female of the brāhman caste; p. 217, l. 24.

भ

H. भई *bhaī* (*vide* भये).

s. भंग *bhaṅg* (s. भङ्ग ; भञ्ज् to break) m. Breaking, splitting. Defeat, discomfiture, destruction; p. 6, l. 19. (s. भग्न) adj. Torn, broken. Overcome.

s. भंडार *bhaṅḍār* (s. भाण्डागार : भाण्ड a vessel, आगार house) m. A place where goods are kept, a store house, a treasury; p. 208, l. 24.

s. भंडीर *bhaṅḍīr* = भांडीर (*q.v.*); p. 34, l. 24.

s. भंवर *bhaṅwar* (s. भ्रमर ; भ्रम् to go round) m. A huge black bee; p. 52, l. 29.

s. भक्त *bhakt* (s. भक्त ; भज् to serve) m. An adorer, a votary, a devotee; p. 7, l. 29. 2. A Hindū performer at an entertainment, a dancer or player. 3. adj. Pious.

s. भक्ति *bhakti* (s. भक्ति ; भज् to serve) f. Persuasion, religion, faith; p. 24, l. 16.

s. भक्तिवंत *bhaktiwaṅt* (s. भक्तिमत् ; भक्ति devotion) adj. Pious, devoted; p. 214, l. 24.

s. भक्ष *bhaksh* (s. भक्ष्य ; भक्ष् to eat) adj. Eatable. 2. m. Food; p. 32, l. 16.

s. भगंदर *bhagaṅdar*, m. Fistula; p. 138, l. 4.

s. भगत *bhagat* (; s. भज् to serve) m. in the dictionaries, but at p. 175, l. 2, fem. A Hindū performer, a player. भगत खेलना *bhagat khelnā*, v.n. To act a play; p. 175, l. 2. भगत होना *bhagat honā*, v.n. To be initiated as a devotee, to be affiliated to a religious order (by putting a necklace of beads on the neck, and a circle on the forehead).

s. भगदंत *Bhagdaṅt*, m. A counsellor of Duryodhan; p. 216, l. 24.

H. भगाना *bhagānā* (caus. of भागना *q.v.*) v.a. To cause to flee; p. 13, l. 23.

s. भग्वत *Bhagwat* / भग्वान *Bhagwān* } (; s. भग् to be fortunate) m. The Deity, the Supreme Being; p. 10, l. 24.

s. भग्वत गीता *Bhagwat Gītā* (: s. भग्वत adorable,

गीता song) f. An ancient poem consisting of dialogues between Krishṇ and Arjun; p. 166, l. 19.

s. भजन *bhajān* (s. भजन ; भज् to serve) m. Adoration, worship; p. 46, l. 24. भजन कर्ना *bhajan karnā*, To say prayers, to worship.

H. भजाना *bhajānā* (caus. of भज्ना to flee, *q.v.*) v.a. To cause to flee; p. 211, l. 12.

H. भज्ना *bhajnā* / भजिजाना *bhajijānā* } v.n. To flee, to run away.

s. भज्ना *bhajnā* (; s. भज् to serve) v.a. To worship, to adore; p. 7, l. 28. To count one's beads.

s. भज्मान *Bhajmān* (; s. भज् to serve) m. A king of the race of Yadu, and ancestor of Krishṇ; p. 5, l. 21.

s. भट *bhaṭ* (s. भट ; भट् to maintain) m. A warrior, a hero.

H. भटक्ना *bhaṭaknā*, v.n. To go astray, to wander, to miss the right path; p. 19, l. 29. भूले भटके *bhūle bhaṭke*, Wandering and lost.

H. भड़क *bharak*, f. Splendour, blaze, flash, glare, show. 2. Perturbation, agitation, alarm, startling (in animals).

H. भड़काना *bharkānā* (caus. of भड़क्ना *q.v.*) v.a. To frighten, to scare. 2. To blow up into a flame, to kindle (a fire).

H. भड़क्ना *bharaknā*, v.n. To start, shrink, be scared; p. 175, l. 4. 2. To be blown up into a flame, to blaze forth; p. 142, l. 7.

s. भतीजा *bhatījā* (s. भ्रातृज : भ्रातृ brother, ज born) m. A brother's son, a nephew; p. 97, l. 3.

s. भद्र्देस *Bhadrdes* (: s. भद्र fortunate, देस country) m. A country governed by the father of Lakshmanā—one of Krishṇ's wives; p. 145, l. 22.

s. भद्रा *Bhadrā* (s. भद्रा ; भदि to be happy) f. The daughter of the king of Kekai—one of the wives of Krishṇ; p. 145, l. 13.

s. भभूत *bhabhūt* / भभूति *bhabhūti* } (s. विभूति : वि implying change, भू to be) f. Ashes of cow-dung which devotees rub over their bodies; p. 92, l. 19.

s. भय *bhay* (; s. भी to be afraid) m. Fear, terror; p. 3, l. 5. भय खाना *bhay khānā*, To be afraid.

s. भयंकर *bhayaṅkar* (s. भयङ्कर : भय fear, and the active part. of the root कृ to make or do) adj. Horrible, terrific.

s. भय्चक *bhaychak* / भैचक *bhaichak* } (: s. भय fear, चकित astonished) adj. Alarmed, aghast. भय्चक रह्ना *bhaychak rahnā*, To be amazed or astonished at a sudden or unexpected event; p. 77, l. 16.

s. भय्मान *bhaymān* (; s. भय fear) adj. Alarmed; p. 59, l. 8.

s. भयानक *bhayānak* (s. भयानक ; भी to fear) adj. Frightful: p. 174, l. 16.

s. भये *bhaye* (; s. भू to become) 3 p. pl. past tense of होना to be, Was born; p. 18, l. 21. In the Braj dialect the tense is thus conjugated:—

SINGULAR.

मैं	m. भयौ *or* भो		I was *or* became.
तू			Thou wast *or* becamest.
वह	f. भई *or* भाऊ		He was *or* became.

PLURAL.

हम	m. भये *or* भए		We were *or* became.
तुम			Ye were *or* became.
वे	f. भईं *or* भे		They were *or* became.

s. भरत *Bharat* (s. भरत ; भृ to nourish) m. The younger brother of Rāma—son of Dasaratha and Kaikayī; p. 8, l. 26

s. भरद्वाज *Bharadwāj* (s. भरद्वाज : भरत् upholding, वाज a wing) m. Name of a sage; p. 4, l. 23.

s. भरम *bharam* (s. संभ्रम) m. Credit, character, reputation. भरम गंवाना *bharam ganwānā*, v.n. To lose character. 2. (s. भ्रम) Error, mistake, doubt; p. 104, l. 3.

s. भरोसा *bharosā* / भरोसौ *bharosau* (s. भद्राशा : भद्र good, आशा hope) m. Hope, confidence; p. 11, l. 13.

s. भर्ना *bharnā* (s. भरण : भृ to nourish) v.a. To fill. 2. To undergo, as दुख भर्ना *dukh bharnā*, To suffer grief; p. 9, l. 2. भोग भर लेना *bhog bhar lenā*, To take one's fill of enjoyment; p. 30, l. 12.

s. भर्माना *bharmānā* (; s. भ्रम् to be mistaken) v.a. To deceive; p. 47, l. 22. 2. To excite by temptation. 3. To alarm.

H. भला *bhalā*, adj. Good; p. 55, l. 6. Honest, well-meaning; p. 4, l. 10. adv. Well! Marry! Very good!

s. भलाई *bhalāī* (; भला *q.v.*) f. Goodness, welfare; p. 42, l. 13,—where, if the reading be भुलाई *bhulāī*, it should be translated "he has caused us to forget"—उस ने *us ne* being understood.

H. भल्का *bhalkā*, m. A gold patch fixed on the nose-ring; p. 163, l. 17.

s. भव *bhava*, m. Existence, the world. A name of Shiva. भव सागर *bhava* or *bhaw sāgar*, m. The ocean of the world *or* of existence; p. 5, l. 7.

s. भविष्य *bhavishya* (s. भविष्य ; भू to be) adj. Future, future time; p. 64, l. 12.

s. भस्म *bhasm* (s. भस्मन ; भस् to shine) f. Ashes; p. 33, l. 8.

H. भह्राना *bhahrānā*, v.n. To shiver, to tremble, to totter, to stagger; p. 153, l. 18.

H. भाई *bhāī*, m. Brother, comrade; p. 3, l. 24.

s. भांग *bhāṅg* (s. भङ्गा ; भञ्ज् to break) m. Hemp (Cannabis sativa) or the intoxicating potion and drug made from it: p. 15, l. 23.

s. भांड *bhāṅḍ* (s. भाण्ड ; भण्डि to be auspicious, *or* भण्ड a jester) m. An earthen pot. 2. A mimic, an actor.

s. भांडीर *bhāṅḍīr* (s. भाण्डीर : भाण्ड a vessel, ईर् to bring) Referable perhaps to the legend of Krishn's taking his meals under a tree in Brindāban. m. The Indian fig-tree; p. 34, l. 22.

s. भांजा *bhāṅjā* / भान्जा *bhānjā* (s. भागिनेय ; भगिनी a sister) m. A sister's son; p. 62, l. 11.

s. भांजी *bhāṅjī* / भान्जी *bhānjī* (s. भागिनेयी ; भगिनी sister ; भग prosperity) f. A sister's daughter, a niece; p. 15, l. 1.

s. भांजी *bhāṅjī* (s. भञ्जनी ; भञ्ज् to break) f. Hinderance, interruption; p. 112, l. 11. भांजी मार्ना *or* देना *bhāṅjī mārnā* or *denā*, To interrupt; (*ibid.*)

H. भांति *bhāṅti*, f. Manner, mode, method, kind, sort. भांती भांति *bhāṅti bhāṅti*, Of every kind, various; p. 6, l. 7.

s. भांवर *bhāṅwar* / भांव्री *bhāṅwri* (; भ्रम् to go round) f. Revolution, circulation. भांवर पाड़ना *or* फिर्ना *bhāṅwar pāṛnā* or *phirnā*, v.n. To circle, to circumambulate,—a ceremony at marriages; p. 123, l. 26, and l. 30. 2. To be sacrificed.

s. भाख्ना *bhākhnā* (s. भाषण ; भाष् to speak) v.a. To speak, to call; p. 186, l. 14.

s. **भाग** *bhāg* (s. **भाग** ; **भज्** to share) m. A part or portion. 2. Destiny, fortune ; p. 13, l. 11. **भाग जाग्ना** *bhāg jāgnā*. To be fortunate (*lit.* to have a wakeful fortune).

s. **भागवत** *Bhāgavat* (s. **भागवत** ; **भग्** fortune) A Purānā placed fifth in all the lists but one ; a work of great celebrity in India, which exercises a more direct and powerful influence upon the opinions and feelings of the people than any other Purānā. It derives its name from being dedicated to the glorification of Bhagavat or Vishṇu. It contains twelve Skandhas or books, of which the Tenth is translated into Hindī under the name of *Prem Sāgar*, or "Ocean of Love," as well as into all other Indian languages. Colebrooke observes (*Asiatic Researches, vol.* vii., *p.* 467) :—"I am inclined to adopt an opinion supported by many learned Hindūs, who consider the celebrated *Shrī Bhāgavat* to be the work of a grammarian, Vopadeva : he flourished at the court of Hemādri, Rājā of Devagiri, Devgar, or Daulatābād, probably in the 13th century. (*See Wilson's* Preface *to the* Vishṇu Purānā, *pp.* 24 to 32) ; Preface.

s. **भागी** *bhāgī* (; s. **भाग** share, *q.v.*) m. A partner sharer. 2. adj. Fortunate.

s. **भागीरथ** *Bhāgīrath* (s. **भगीरथ**) m. A king whose austerities brought the Ganges down from heaven ; p. 177, l. 24.

s. **भागीरथी** *Bhāgīrathī* (; s. **भगीरथ** *q.v.*) f. The Gangā or Ganges, so called from the pious king Bhāgīrath, whose austerities brought it down from heaven ; p. 177, l. 24.

H. **भाग्ना** *bhāgnā*, v.n. To flee, to run away ; p. 2, l. 18.

s. **भाग्वन** *bhāgwan* (: **भाग** fate ; **भज्** to share) Fortunate, prosperous, rich ; Preface.

s. **भाजन** *bhājan* (s. **भाजन** ; **भज्** to serve) m. A plate, a dish ; p. 23, l. 8.

s. **भाजी** *bhājī*, f. Greens. 2. (s. **भाजित** ; **भाज्** to divide) A portion *or* share of food.

H. **भाज्ना** *bhājnā*, v.n. To flee, to run away : p. 164, l. 14, and p. 212, l. 27. 2. (s. **भजन**) v.a. To fry.

H. **भाट** *Bhāṭ*, m. Name of a tribe (*Vide* **बंदी** and **मागध**).

s. **भात** *bhāt* (s. **भक्त** ; **भज्** to serve) m. Boiled rice ; p. 37, l. 7.

s. **भादों** *bhādoṅ* (s. **भाद्र** : **भद्र** for **भद्रपदा** the 27th asterism) m. The name of the fifth Hindū month, the second of the Rainy Season (August-September) when the moon at full is near the wing of Pegasus (Pūrva-bhādrapadā) ; p. 13, l. 7, and p. 34, l. 17.

s. **भान** *bhān* = **भानु** (*q.v.*) ; p. 184, l. 7.

H. **भाना** *bhānā*, v.n. To be approved of ; p. 55, l. 1. To fit.

s. **भानु** *bhānu* (s. **भानु** ; **भा** to shine) m. The sun ; p. 48, l. 10.

s. **भान्ना** *bhānnā* (; s. **भज्** to break) v.a. To put into circular motion. **जग भाय** *jag bhāe*, The earth revolves ; p. 224, l. 1, but at p. 167, l. 18, To twist, to turn in a lathe, to wave, to brandish. 2. To break, to destroy ; p. 204, l. 15.

s. **भाफ** *bhāph* (s. **वाष्प**) f. Steam, vapour, sulphurous breath ; p. 26, l. 20.

s. **भाभी** *bhābhī* (s. **भ्रातृवधू**) f. A brother's wife ; p. 219, l. 10.

H. भाय *bhāe*, m. History; p. 167, l. 18.

S. भार *bhār* (S. भार; भृ to nourish) m. A weight, the burthen of the fœtus; p. 35, l. 13.

S. भारी *bhārī* (; S. भार a weight) adj. Heavy, grievous; p. 10, l. 11. Weighty, important.

S. भावई *bhāvaī* (S. भावी; भू to be) adj. About-to-be, future, predestined; p. 177, l. 30.

S. भाव *bhāv* or *bhāw* (S. भाव; भू to be) m. Sentiment; p. 49, l. 2. Passion, emotion—especially as an object of amatory and dramatic poetry. Two kinds of Bhāvas are usually enumerated—the Sthāyī and Vyabhichārī. The first comprehends eight varieties and the second thirty-three. The list blends both feelings and objects, and sorrow and sleep, and passion and death, are equally classed among the Bhāvas. Dramatic writers add the Vibhāvas, or preceding states of mind, and Anubhāvas, external signs of any states of mind. 2. Blandishment. 3. Gesticulation, pantomine. 4. Existence, a thing—as वस्तु भाव *bastu bhāv*, Goods, things. भाव बताना *bhāv batānā*, To gesticulate.

S. भावना *bhāvanā* (S. भावना; भू to be) f. Consideration, anxiety, apprehension; p. 75, l. 5. Thought, doubt.

S. भावित *bhāvit* (S. भावित; भू to be) adj. Thoughtful, anxious, apprehensive; p. 12, l. 22.

S. भाला *bhālā* (S. भल्ल a crescent-shaped arrow; भल्ल् to kill) m. A spear about seven cubits long, a lance with a narrow head; p. 173, l. 5.

S. भाष्ना *bhāṣhnā* (S. भाष्) v.a. To speak; p. 210, l. 1.

S. भाषा *bhāṣhā* (S. भाषा; भाष् to speak) f. Speech, language; Preface.

S. भिकारी *bhikārī* (S. भिक्षाहारी : भिक्षा begging, alms, आहारी; हृ to take) m. A beggar, a mendicant; p. 15, l. 21.

H. भिगोना *bhigonā* (caus. of भीग्ना *q.v.*) v.a. To cause to wet; p. 105, l. 17.

S. भिज्वाना *bhijwānā* (caus. of भेज्ना *q.v.*) v.a. To cause to send; p. 123, l. 17.

H. भिड़्ना *bhiṛnā*, v.n. To close (as two armies), to come together; p. 14, l. 18. To be joined, to be contiguous.

S. भिन्न *bhinn* (S. भिन्न; भिद् to break) adj. Separate, different. भिन्न भिन्न *bhinn bhinn*, Various, several, dispersed; p. 28, l. 10.

H. भी *bhī*, conj. Also, too, even, and; p. 3, l. 3.

S. भीख *bhīkh* (S. भिक्षा; भिक्ष् to beg) f. Alms; p. 39, l. 10. Begging.

H. भींगा *bhīṅgā* / भीगा *bhīgā* } adj. *or* part. Wet; p. 60, l. 23.

H. भींग्ना *bhīṅgnā* / भीग्ना *bhīgnā* } v.n. To be wet; p. 44, l. 19.

H. भीड़ *bhīṛ* / भीर *bhīr* } f. Multitude, crowd, throng; p. 18, l. 9, and p. 70, l. 25. 2. Difficulty, trouble; p. 173, l. 24.

H. भीड़ भाड़ *bhīṛ bhāṛ* = भीड़ (*q.v.*) f. A crowd; p. 104, l. 8.

S. भीतर *bhītar* (S. अभ्यन्तर) postp. Within; p. 20, l. 16.

S. भीम *Bhīm* (S. भीम; भी to fear) m. The second of the five Pāṇḍu princes; p. 96, l. 16. It is also a name of Shiva and signifies "terrible."

S. भीषम *Bhīṣham* (S. भीष्म) m. A king to whom Ambā—the daughter of the king of Benares—fled; p. 154, l. 25.

s. भीष्म *Bhīshm* (s. भीष्म ; भी to fear) m. The grand-uncle of the Pāṇḍus ; p. 134, l. 10.

s. भीष्मक *Bhīshmak*, m. King of Kuṇḍalpūr, whose daughter—Rukminī—was married to Krishṇ ; p. 106, l. 18.

s. भुगत्ना *bhugatnā* (; s. भोग enjoyment ; भुज् to eat) v.a. To enjoy, to suffer. To receive the reward of virtue *or* the punishment of crime ; p. 179, l. 23.

s. भुज *bhuj* / भुजा *bhujā* (s. भुज ; भुज् to bend) m.f. The arm above the elbow ; p. 51, l. 7. भुज बंध *bhuj baṅdh*, m. An ornament worn on the arm, an armlet ; p. 152, l. 21. भुज मूल *bhuj mūl*, The upper part of the arm near the shoulder. भुज भर्ना *bhuj bharnā*, To embrace ; p. 182, l. 23.

s. भुजाएं *bhujāeṅ*, pl. of भुजा (*q.v.*) Arms ; p. p. 176, l. 15.

H. भुट्टा *bhuṭṭā*, m. Indian corn (Zea Mays). An ear of the said corn ; p. 73, l. 3.

s. भुलाना *bhulānā* (caus. of भूल्ना *q.v.*) v.a. To deceive, mislead, cause to forget ; p. 42, l. 23, and p. 84, l. 15.

s. भुव *bhuv* (s. भुवन ; भू to be) m. The world ; p. 230, l. 21. 2. (s. भुवस ; भू to be) m. Heaven, æther, the sky or atmosphere.

s. भुवंग *bhuwaṅg* (s. भुजङ्ग ; भुज a curve, गम् to go) m. A snake ; p. 54, l. 14.

s. भू *bhū* / भूं *bhuṅ* (s. भू the earth ; भू to be) f. The earth ; p. 44, l. 26. Ground, land.

s. भूंस्ना *bhūṅsnā* (; भष् to bark) v.n. To bark.

s. भूखा *bhūkhā* (s. बुभुक्षित ; बुभुक्षा ; भुज् to eat) adj. Hungry ; p. 19, l. 4.

s. भूत *bhūt* (s. भूत ; भू to be) m. A dæmon, a goblin ; p. 49, l. 17. 2. The past time ; p. 64, l. 12 3. An element, of which the Hindūs reckon five. (*See* पंचतत्व.)

s. भूत्नी *bhūtnī* (fem. of भूत *q.v.*) f. A hag, a she-goblin or fiend ; p. 100, l. 28.

s. भूतल *bhūtal* (s. भूतल : भू the earth, तल below *or* तल essential nature, especially in composition —the earth itself, the very earth) m. The earth.

s. भूप *bhūp* (s. भूप : भू the earth, प who protects) m. A king ; p. 35, l. 24.

s. भूपाल *bhūpāl* (s. भूपाल : भू the earth, पाल cherisher) m. A king ; p. 144, l. 4.

s. भूमि *bhūmi* (s. भूमि ; भू to be) f. Land, earth, the earth ; p. 8, l. 13.

H. भूरा *bhūrā*, adj. Fair, auburn or brownish ; p. 29, l. 10.

H. भूला बिस्रा *bhūlā bisrā* / भूला भट्का *bhūlā bhaṭkā* adj. Missing the road —generally a person who calls on another in consequence of some accident, etc., not intentionally to pay a visit.

H. भूल्ना *bhūlnā*, v.n. To forget, err, go astray ; p. 6, l. 10. To be misled *or* deceived, to mistake, stray, be forgotten, to be dazed ; p. 17, l. 20.

s. भुवन *bhūwan* (s. भुवन ; भू to be) m. The world.

s. भूषण *bhūshaṇ* = आभूषण (*q.v.*)

s. भूषन *bhūshan* (s. भूषण ; भूष् to adorn) m. Ornament, embellishment ; Preface.

s. भृंगी *bhriṅgī* (s. भृङ्ग ; भृ to nourish) m. A kind of wasp (Vespa solitaria). 2. A large black bee ; p. 89, l. 6.

s. भृकुती *bhrikutī* (s. भृकुटी : भ्रु the eyebrow, कुट् to be crooked) f. The eyebrow ; p. 53, l. 22.

s. भृगु *Bhrigu* (s. भृगु : भ्रस्ज् to fry (in religious fervour) m. Name of a celebrated Muni, one of the Brahmādikas or Prajāpatīs, sons of Brahmā, and first created of beings; p. 226, l. 1.

H. भेज्ना *bhejnā*, v.a. To send; p. 7, l. 9. To transmit.

H. भेट *bheṭ*, f. Meeting, interview. 2. A present to a superior; p. 16, l. 21.

H. भेट्ना *bheṭnā*(; H. भेट *q.v.*) v.a. To meet, to join; p. 16, l. 23. 2. To make a present to a superior.

s. भेड़िया *bheṛiyā* (s. भेड्रहा : भेड्र a sheep, हा destroyer) m. A wolf; p. 65, l. 4.

s. भेद *bhed* (s. भेद ; भिद् to divide) m. Separation. 2. A secret; p. 11, l. 5.

s. भेद में *bhed meṅ* (*See* भेद) With the cognizance of. कृष्ण के भेद में *Krishṇ ke bhed meṅ*, Krishṇ being privy to it; p. 137, l. 20.

s. भेर *bher* (s. भेरी ; भी to cause fear) m. A kettle-drum; p. 13. l. 6. A kind of pipe, a musical instrument.

s. भेव *bhev* (perhaps for भाव *q.v.*) m. A state or condition of being, innate property, nature, disposition; p. 129, l. 5.

s. भेष *bhesh*, m. Disguise, assumed likeness, counterfeit dress, semblance. 2. Appearance; p. 4, l. 26. भेष धारी *bhesh dhārī*, Putting on the dress, assuming the appearance.

s. भैंसा *bhaiṅsā* (s. महिष : मह् to worship *or* be worshipped) m. A male buffalo; p. 62, l. 6.

s. भैया *bhaiyā* (s. भ्राता) m. A brother; p. 22, l. 7.

s. भोंक्ना *bhoṅknā* / भौंक्ना *bhauṅknā* (; s. भष् to bark) v.a. To bark; p. 14, l. 20. 2. (met.) To talk foolishly.

H. भोंपू *bhompū*, m. A horn, a wind instrument; p 29, l. 16.

s. भोंह *bhoṅh* / भौं *bhauṅ* (s. भ्रू ; भ्रम् to turn round) f. The eyebrow; p. 59, l. 19. भौं टेढ़ी कर्नी *bhauṅ ṭeṛhī karnī*, v.a. To scowl, to frown, to browbeat, to look angrily—raising the eyebrows. भौंवें तान्नी *bhauṅweṅ tānnī*, To knit the eyebrows.

s. भोग *bhog* (s. भोग ; भुज् to eat) m. Pleasure, enjoyment; p. 6, l. 12. 2. Possession. भोग कर्ना *bhog karnā*, To enjoy carnally.

s. भोजन *bhojan* (s. भोजन ; भुज् to eat) m. Eating, food: p. 15, l. 17.

s. भोजकटु *Bhojkaṭu*, m. A city founded by Rukm—the son of king Bhīshmak—after his defeat by Krishṇ; p. 122, l. 25.

H. भोर *bhor*, m. The break of day, dawn; p. 12, l. 18.

H. भोरा *bhorā* / भोला *bholā* adj. Simple, artless, innocent; p. 38, l. 6.

H.S. भोलानाथ *Bholānāth* (: H. भोला innocent, s. नाथ lord) m Lord of the innocent—a name of Mahādev; p. 154, l. 27.

s. भौंरा *bhauṅrā* / भौरा *bhaurā* (s. भ्रमर ; भ्रम् to go round) m. A large black bee; p. 33, l. 15.

s. भौंरी *bhauṅrī*, fem of भौंरा (*q.v.*); p. 89, l. 7.

s. भौजाई *bhaujāī* (s. भ्रातृजाया : भ्रातृ a brother, जाया a wife) f. A brother's wife; p. 151, l. 4.

s. भौमावति *Bhaumāwati* (; s. भौम earth) f. Name of the wife of Bhaumāsur; p. 149, l. 29.

s. भ्यातुर *bhyātur* (s. भ्यातुर : भय fear, आतुर agitated) adj. Distracted with fear; p. 44, l. 22.

s. भ्यानक *bhyānak* / भ्यान्ना *bhyāwnā* (s. भयानक ; भी to fear) adj. Formidable, terrible; p. 11, l. 10.

s. भ्रम *bhram* (; s. भ्रम् to turn round) m. Suspicion, apprehension, perplexity, doubt; p. 164, l. 5. 2. Error, mistake.

s. भ्रमर *bhramar* (s. भ्रमर : भ्रम् to go round) m. A large black bee; p. 91, l. 13.

s. भ्रष्ट *bhrasht* (s. भ्रष्ट ; भ्रष् to fall down) adj. fallen, debased, polluted: p. 154, l. 16. भ्रष्ट करना *bhrasht karnā*, v.a. To seduce, to pollute. भ्रष्ट होना *bhrasht honā*, To be polluted, to be debased.

s. भ्राता *bhrātā* (s. भ्राता ; भ्राज to shine) m. A brother.

म

s. मंगल *mangal* (s. मङ्गल : मगि to go) m. Welfare, happiness; p. 33, l. 10. 2. The planet Mars or its deified personification. 3. Tuesday.

s. मंगलाचार *mangalāchār* (: s. मङ्गल happiness, आचार conduct, proceeding) m. Festivity, rejoicing, congratulation, a song of congratulation, a marriage song or epithalamium; p. 7, l. 8.

s. मंगलामुखी *mangalāmukhī* (: s. मङ्गल luck, मुख face) m.f. A musician or singer whose services are employed in merry-makings and festivities; p. 7, l. 8.

s. मंगली *mangali* (; s. मङ्गल happiness ; मगि to go) adj. Triumphant, rejoicing. मंगली लोग *mangalī log*, People employed in rejoicings.

s. मंगवाना *mangwānā* (caus. of मंगाना) v.a. To cause to be sent for, to cause to be summoned; 16, l. 20.

मंगसिर *mangasir* | s. मगशिर *magashir* | मगसिर *magasir* (s. मार्गशिर ; मृगशिरस the asterism in which the moon is full in this month) m. The month Agrahāyana (November-December), in some systems the first of the Hindū year; p. 37, l. 29.

s. मंच *manch* (s. मञ्च ; मचि to be high) m. A platform, a scaffold, a sort of throne or chair of state, or the platform on which it is raised, the dais; p. 76, l. 3. 2. A bed, a bedstead.

s. मंजन *manjan* (; s. मञ्ज् to purify) m. Tooth-powder, dentifrice; p. 163, l. 15. 2. (s. मार्ज्जन ; मृज् to clean) m. Cleansing the person by wiping, bathing, etc.

s. मंडल *mandal* (s. मण्डल ; मडि to adorn) m. The disk of the sun or moon. 2. A circle, orb, or sphere; p. 50, l. 13. 3. A province or district; p. 8, l. 19, as in Brajmandal, Coromandal, etc.

s. मंडलाकार *mandalākār* (: s. मण्डल a circle, आकार form) adj. Circular; p. 50, l. 13.

s. मंडलाना *mandlānā* (: मण्डल a circle *q.v.*) v.n. To circle; p. 142, l. 11.

s. मंडली *mandalī* (s. मण्डली ; मडि to adorn) f. An assembly; p. 23, l. 13.

s. मंडित *mandit* (s. मण्डित ; मडि to adorn) Ornamented, adorned; Preface. Covered. रज मंडित *raj mandit*, Covered with dust; p. 60, l. 11.

s. मंत्र *mantr* (s. मन्त्र ; मत्रि to advise) m. A charm, an invocation; p. 85, l. 6. मंत्र जंत्र *mantr jantr*, Incantation. 2. Secret consultation, private advice.

s. मंत्री *mantrī* (; s. मत्रि to consult) m. A counsellor, a minister of state; p. 8, l. 2.

s. मंद *mand* (s. मन्द ; मदि to be lazy) adj. Slow. मंद गति *mand gati*, Slow-paced. Gentle; p. 6, l. 7. Abated, tedious, foolish, dull. 2. s. m. The planet Saturn.

s. मंदताई *maṅdatāī* (s. मन्दता ; मन्द dull) f. Dimness ; p. 168, l. 8.

s. मंदिर *maṅdir* (s. मन्दिर ; मदि to sleep) m. A house, a dwelling ; p. 12, l. 17. A temple ; p. 117, l. 13.

s. मकर *makar* (s. मकर : म for मुख the mouth, कृ to scatter) m. Name of the tenth zodiacal sign, the sign Capricorn (represented by a water animal, with the body and tail of a fish, and the fore-legs, neck, and head of an antelope). मकराकृत *makarākṛit* (: मकर *q.v.*, आकृत shaped) Shaped like the above fabulous animal (an epithet of Vishṇu's ear-ring ; p. 103, l. 30. 2. A shark or alligator.

s. मग (s. मार्ग ; मृग to inquire) m. A road ; p. 83, l. 19. मग देखना *mag dekhnā*, To expect, to wait for.

s. मगध *Magadh*, m. A province of India, South Bihār, where Jurāsindhu, the enemy of Krishṇ, reigned ; p. 7, l. 24, and p. 98, l. 10.

s. मगन *magan* (s. मग्न ; मस्ज् to plunge into water) adj. Immersed. आनंद में मगन *ānaṅd meṅ magan*, Immersed in pleasure ; p. 19, l. 3. Delighted, pleased, glad, happy.

s. मगर *magar* (s. मकर : म for मुख, कृ to scatter) m. An alligator ; p. 85, l. 23.

H. मचलना *machalnā*, v.n. To be perverse, refractory, disobedient, cross. मचल पड़ना *machal parṇā*, To be cross ; p. 22, l. 23.

s. मचान *machān* = मंच (*q.v.*) ; p. 76, l. 4.

H. मचाना *machānā* (caus. of मचना *q.v.*) To make, to excite, to stir up ; p. 17, l. 10. धूम मचाना *dhūm machānā*, To excite a tumult ; p. 74, l. 28.

H. मचना *machnā*, v.n. To be made, to be produced ; p. 110, l. 9. To be perpetrated.

s. मछ *machh* (s. मत्स्य ; मदि to be pleased) m. A fish in general. 2. The small fish शफरी *shapharī* (Cyprinus sophore), which was Vishṇu's first incarnation, and in which he rescued the Vedas—which were submerged ; p. 8, l. 12.

s. मछरी *machharī* = मछली (*q.v.*), A fish ; p. 126, l. 13.

s. मछली *machhlī* (s. मत्सी) f. A fish ; p. 32, l. 21.

s. मछुआ *machhuā* (; s. मच्छ a fish) m. A fisherman ; p. 125, l. 29.

s. मझार *majhār* (; s. मध्य, *q.v.*) m. The middle, the centre. 2. postp. In ; p. 169, l. 29.

H. मटक *maṭak* / मटकन *maṭkan* } f. Coquetry, ogling ; p. 53, l. 21.

H. मटकना *maṭaknā*, v.n. To wink, to ogle, to coquet.

H. मटकाना *maṭkānā* (caus. of मटकना) v.a. To make to coquet, to wink, to ogle.

s. मट्टी *maṭṭī* (s. मृत्तिका ; मृत earth) f. Earth, mould, clay ; p. 22, l. 3.

s. मठड़ी *maṭhṛī* (perhaps from मिष्ट sweet) f. A sort of sweetmeat : p. 42, l 25.

H. मड़ोड़ा *maṛoṛā* (; मड़ोड़ना to twist, *q.v.*) m. A twisting of the bowels, gripes ; p. 138, l. 4.

H. मड़ोड़ना *maṛoṛnā*, v.a. To twist ; p. 60, l. 23. To writhe, to contort, to gripe.

s. मढ़ना *maṛhnā* (; s. मण्ड the head, or मड़ to adorn) v.a. To cover (as a book with leather *or* a drum with parchment).

s. मढ़ा *maṛhā* (s. मण्डप : मण्ड ornament, पा to preserve) m. A temporary building, an open

shed or hall—adorned with flowers and erected on festive occasions (such as marriages); p. 9, l. 9. 2. (part. of मढ़ना) lined or covered (as a drum with parchment).

s. मढ़ैया *maṛhaiyā* (s. मंडपिका : मण्ड ornament, पा to preserve) f. A cottage, a hut; p. 220, l. 10.

s. मत *mat* (s. मति ; मन् to respect) f. Manner, method, way, mode, system. Wisdom, intellect. 2. (s. मा do not) prohib. and neg. part. Not, do not; p. 5, l. 8.

s. मतंग *mataṅg* (s. मतङ्ग ; मदि to please or be pleased) m. An elephant; p. 76, l. 14.

s. मता *matā* | मतौ *matau* | (s. मत ; मन् to mind) m. Counsel, advice; p. 21, l. 13.

s. मति *mati* (s. मति : मन् to respect) f. Understanding, intellect; p. 40, l. 26. मति हीन *mati hīn*, Void of understanding.

s. मत्त *matt* | मत्वत *mattwat* | (s. मत्त : मद् to rejoice (वत् is the affix of resemblance) adj. Drunken, like one intoxicated; p. 59, l. 3.

s. मत्वाला *mattwālā* (: मत्त *q.v.*, वाला signifying agent) adj. Drunken, intoxicated with lust, furious; p. 62, l. 13.

s.H. मतवारा *matwārā* | s.H. मतवाला *matwālā* | (: s. मत्त drunk, वारा Hindī affix signifying agent) adj. Drunken.

s. मथुरनी *Mathuranī* (fem. of माथुर *q.v.*) f. A female of Mathurā; p. 39, l. 17.

s. मथुरा *Mathurā* (s. मथुरा ; मथि to stir) m. A town in the province of Āgrā, celebrated as the birth-place and early residence of Krishn, and still an object of pilgrimage to the Hindūs; p. 5, l. 27.

s. मथुरिया *Mathuriyā* (s. माथुरीय ; मथुरा the city Mathurā ; मथि to stir) m. A caste of Brāhmans of Mathurā; p. 38, l. 22.

s. मथना *mathnā* (; s. मथ् to churn) v.a. To churn; p. 22, l. 16. 2. A churning-staff.

s. मथनी *mathnī* (s. मन्थान ; मन्थ् to agitate) f. A churning-staff; p. 22, l. 17.

s. मद *mad* (; s. मद् to be glad) m. Joy, delight. Spirituous or vinous liquors, intoxication; p. 3, l. 9. Pride, arrogance; p. 39, l. 25. Passion, desire. मद माता *mad mātā* (: s. मद spirituous drink, माता = s. मत्त intoxicated) adj. Drunken with wine; p. 23, l. 25.

s. मदिरा *madirā* (s. मदिरा ; मद् to be pleased) f. Spirituous liquor; p. 188, l. 20.

s. मधु *madhu* (s. मधु ; मन् to mind or respect) m. Ardent spirit. 2. The nectar or honey of flowers. 3. Honey. 4. The season of spring. 5. The month Chaitr, (*q.v.*); p. 184, l. 1. 6. A dæmon slain by Krishn.

s. मधुकर *madhukar* (s. मधुकर : मधु honey, कर what makes) m. Honey-maker, a large black bee; p. 91, l. 7.

s. मधुपुरी *Madhupurī* | मधुबन *Madhuban* | (: मधु a dæmon so called, पुरी a city *or* बन a forest) Names of the city of Mathurā; p. 66, l. 19.

s. मधुमाखी *madhumākhī* (s. मधुमक्षिका : मधु honey, मक्षिका a fly ; मक्ष to be angry) f. A honey-fly, *i.e.*, a bee; p. 170, l. 9.

s. मधुमास *Madhumās* (: s. मधु honey, मास month) m. The month of Chaitr (March-April); p. 184, l. 1.

s. मधुर *madhur* (s. मधुर : मधु honey, रा to get)

adj. Sweet, harmonious; p. 45, l. 20, p. 122, l. 9, and p. 165, l. 10.

s. मधुसूदन *Madhusūdan* (: मधु a dæmon so called, सूदन destroyer) m. A name of Krishṇ, who slew the dæmon Madhu.

s. मध्य *madhya* (s. मध्य : मा beauty, धा to have) adv. Among, amid. 2. post. Amid; p. 50, l 24.

s. मन *man*, m. Mind, heart, soul, spirit, inclination; p. 3, l. 10. मन बच *man bach* (: s. मन mind, बच for वचन speech) m. Mind's word, he whom one invokes; p. 115, l. 18. मन भाना *man bhānā*, v.n. To be agreeable to the mind. adj. Grateful to the mind. मन भावन *man-bhāwan*, or मन भावना *man-bhāwana*, adj Acceptable, pleasing; p. 6, l. 8. मन मन्ता *man mantā*, मन माना *man mānā*, or मन मान्ता *man māntā*, adj. Mind-pleasing, to one's heart's wish, to one's heart's content; p. 30, l. 5. मन मार्ना *man mārnā*, To resist one's own inclination, to be grieved or troubled. मन मार रह्ना *man mār rahnā*, To suffer grief with patience. मन लाना *man lānā*, To fix the mind upon, to be attentive.

s. मनाना *manānā* (caus. of मान्ना *q.v.*) v.a. To conciliate, to soothe, to propitiate, to invoke; p. 12, l. 25.

s. मनि *mani* (s. मणि ; मण् to sound) m. A gem, a jewel; Preface.

s. मनुष *manush* (s. मनुष्य ; मनु the progenitor of mankind) m. Man, individually or collectively, a man, mankind; p. 9, l. 24.

s. मनुहार *manuhār* (s. मनोहारि fascinating : मनस् the mind, हृ to take) adj. Cheering, delighting, fascinating. 2. f. Conciliation, soothing, fascination; p. 9, l. 19, and p. 84, l. 4.

s. मनोरथ *manorath* (s मनोरथ : मनस् the mind, रम् to delight) m. Desire, wish, intention; p. 56, l. 30.

H. मन्घटा *manghaṭā*, m. The raised masonry round the mouth of a well; p. 180, l. 6.

s. मन्मथ *Manmath* (s. मन्मथ : मन the mind, मथ who agitates) m. A name of Kāmadeva—the God of Love. Mind-disturber; p. 54, l. 14.

s. मन्हारी *manhārī* (s. मनोहारी : मनस् the mind, हृ to steal) adj. Captivating, heart-stealing; p. 169, l. 30.

s मन्हु *manhu* (s. मन्ये) adv. Suppose, as if, like; p. 50, l. 10.

s. मम *mama*, Braj form of मेरा *merā*, My; p. 108, l. 3.

s. ममता *mamatā* (; s. मम mine) f. The interest or affection entertained for other objects from considering them as belonging to *or* connected with oneself, affection; p. 68, l. 19.

s. मय *maya* (used in composition) Consisting of *or* made of,—as मनिमय *manimay* (: मणि a jewel, मय composed) Composed of jewels; p. 71, l. 22.

s. मय *May* (s. मय : मय to go, *or* मि to scatter, *or* मी to part) m. An Asur who built a palace for Krishṇ; p. 142, l. 17. He is the architect of the Daityas.

s. मयंद्री *Mayandrī*, m. A monkey—brother of Dubid; p. 188, l. 3.

s. मरण *maraṇ* (; s. मृ to die) m. Death; p. 5, l. 5.

s. मरम *maram* (s. मर्म ; मृ to die) m. Secret meaning *or* purpose, a secret, anything hidden *or* recondite; p. 230, l. 3.

s. मरिष्या *Marishyā*, f. The wife of Sūrsen; p. 5, l. 22.

s. मरीचि *Marīchi* (s. मरीचि ; मृ to perish (darkness) m. A saint—the son of Brahmā—and one of the Prajāpatis *or* first-created beings; p. 228, l. 27.

H. मरोर *maror* (; मड़ोड़ना *q.v.*) f. Twist, flexion, turn, bend; p. 53, l. 21.

s. मर्घट *marghaṭ* (s. मर्घट्ट ; मृ to die) m. The place where Hindūs burn their dead; p. 200, l. 22.

s. मर्दनियां *mardaniyāṅ* (s. मार्द्दनीयाः ?) m. pl. Attendants whose business it is to rub oil, perfumed paste, etc., over the body; p. 66, l. 14.

s. मर्ना *marnā* (; s. मृ to die) v.n. To die. This is one of the six irregular verbs; and, in Hindūstānī, makes मुत्रा *mūā* in the past tense; but, in Hindī, a regular form मरा *marā* occurs, thus —मरा सांप *marā sāmp*, A dead snake; p. 3, l. 16.

s. मर्य्याद *maryyād* (s. मर्य्यादा : मर्य्या limitation, आदा to have or take) f. Respect, the limits of good behaviour; p. 86, l. 6.

s. मर्वाना *marwānā* (caus. of मर्ना *q.v.*) v.a. To cause to die; p. 90, l. 9.

s. मल *mal* (s. मल ; मल् to contain (in the body) *or* मृज् to cleanse) m. Dirt; p. 163, l. 14.

s. मलागिर *Malāgir* (s. मलयगिरि : मलय Malabar, गिरि mountain) m. A mountain *or* mountainous range, from which the best sandal wood is brought, —answering to the Western Ghāṭs in the peninsula of India.

s. मलार *malār* (s. मल्लारी) f. Name of a Rāginī or melody sung during the rainy season; p. 35, l. 18.

s. मलिन *malin* | मलीन *malīn* (s. मलिन ; मल dirt) adj. Foul; p. 18, l. 28. Filthy. 2. Sad, vexed, troubled; p. 48, l. 10.

s. मलेछ *malechh* | म्लेच्छ *mlechchh* (s. म्लेच्छ ; म्लेच्छ् to speak inarticulately) m. An unclean race, those who make no distinction between clean and unclean food, a barbarian *or* one speaking any language but Sanskrit and not subject to the usual Hindū institutions; p. 101, l. 21.

s. मल्लयुध *mallyudh* (: s. मल्ल a wrestler, युध fight) m. Wrestling, the strife of wrestlers; p. 7, l. 25.

H. मष्ट *masht*, f. Silence. मष्ट मार्ना *masht mārnā*, To keep silence; p. 130, l. 9.

s. मसान *masān* (s. श्मशान : श्म for शव a corpse, शान for शयन place of repose) m. A cemetery: p. 75, l. 24.

s. मस्तक *mastak* (s. मस्तक ; मस् to weigh) m. A head, a skull; p. 176, l. 15.

H. महक्ना *mahaknā*, v.n. To exhale an agreeable odour; p. 152, l. 14.

s. महत *mahat* (s. महत् ; मह् to worship) adj. Great, glorious. 2. f. Greatness, dignity; p. 39, l. 11.

s. मह्तारी *mahtārī* (s. महत्तरा) f. A mother; p. 120, l. 12.

s. महर *mahar* (s. महत्तर ; महत् great) m. A chief; p. 39, l. 30.

s. महरि *mahari* (s. महिला ; मह् to worship *or* be worshipped) f. A woman, a wife; p. 22, l. 18.

s. महा *mahā* (s. महा ; मह् to worship) Great. महा जान *mahā jān*, Greatly intelligent; Preface.

s. महाकाल *Mahākāl* (s. महाकाल : महा great, काल black *or* Time. Shiva—as Mahākāl—may be considered as the personification of Time that destroys all things) m. A name *or* rather a form of Shiva in his character of the Destroying Deity,

in which he is represented black and of a terrific aspect; p. 174. l. 10.

s. महाकोढ़ *mahākoṛh* (: s. महा great, कोढ़ leprosy) m. Great leprosy, elephantiasis; p. 138, l. 3.

s. महादुखी *mahādukhī* (: महा great, दुखी pained) Much afflicted; p. 2, l. 6.

s. महादेव *Mahādev* (: महा great, देव God) m. Mahādev, a name of Shiva — the Destroying Deity; p. 7, l. 27.

s. महाप्रलय *mahāpralay* (: महा great, प्रलय destruction) m. A destruction of the world, occurring after every period of 4,320,000,000 years. 2. A total destruction of the universe happening after a period commensurate with the life of Brahmā *or* 100 years, each day of which is equal to the period first stated and each night of which is of similar duration. At the expiration of this term the seven loks *or* divisions of the universe, with the saints, gods, and Brahmā himself, are annihilated.

s. महाभारत *Mahābhārat* (: महा great, भारत the grand epic poem of the Hindūs, by Vyāsadeva, containing an account of the dissensions and wars of the Kauravas and Pāṇḍavas—two great collateral branches of the house of Bharat, so called from its founder—a prince of that name) m. The great sacred epic poem of the Hindūs; p. 5, l. 25. 2. The war of the descendants of Bharat; p. 2, l. 6.

s. महारथी *mahārathī* (: s. महा great, रथी charioteer) m. A charioteer; p. 239, l. 3.

s. महाराज *Mahārāj* (: महा great, राजा king) m. Great king, sire. (This is now the common form of address among Hindūs, and corresponds to our "sir" and is used by the lowest classes—even in addressing one another—as well as by the highest.) Preface.

s. महाराजाधिराज *mahārājādhirāj* (: महाराज (*q.v.*), and अधिराज chief sovereign) Supreme lord; Preface.

s. महावत *mahāwat* (s. महामात्र : महा great, मात्र wealth *or* revenue) m. An elephant-driver; p. 62, l. 13.

H. महावर *mahāwar*, m. Lac, the red dye so called —extracted from lac insects; p. 163, l. 15.

s. महाशय *mahāshay* (s. महाशय : महा great, आशय purpose) Magnanimous, liberal, munificent; Preface.

s. महिमा *mahimā* (s. महिमा ; महत् great ; मह् to worship) f. Greatness (generally, literal or figurative); p. 8, l. 12.

s. मही *mahī* (s. मही ; मह् to worship) f. The earth. मही पाल *mahī pāl* (: मही earth, पाल who preserves) m. Protector of the earth, a king.

s. मही *mahī* (s. मथित ; मथ् to churn) f. Buttermilk; p. 23, l. 8.

H. महीना *mahīnā*, m. A month; p. 16, l. 6,

s. महुआ *mahuā* (s. मधूक ; मन् to respect) m. A tree whose flowers are sweet and from which a spirituous liquor is distilled (Bassia latifolia); p. 142, l. 8.

s. महेश *Mahesh* (s. महेश : महत् great, ईश lord) m. A name of Shiva; p. 235, l. 7.

s. मह्ना *mahnā* (; s. मन्थन churning) v.a. To churn. (*vide* मह्यौ).

s. मह्यौ *mahyau* (s. मथित ; मथ् to churn) m. Buttermilk; p. 21, l. 19. (a Braj form.)

s. मा *mā* | माई *māī* (s. माता ; मान् to respect) f. A mother; p. 18, l. 22.

s. माईं *māīṅ* (s. मामकी ; मामक mother's brother ; मम mine, poss. case of अहम् I) f. An aunt, maternal uncle's wife.

n. मांग *māṅg* | माग *māg* f. A line on the top of the head where the hair is parted; p. 152, l. 20. मांग निकालना *māṅg nikālnā*, To divide the hair in a straight line on the top of the head. 2. A betrothed damsel; p. 106, l. 18.

s. मांगना *māṅgnā* (s. मार्गण ; मृग् to seek, v.a. To ask for, require, demand. 2. To betroth; p. 134, l. 17.

s. मांझ *māṅjh* (s. मध्य) m. The middle. मांझ धार *māṅjh dhār*, f. The mid-stream. 2. postp. In the middle; p. 21, l. 19.

s. मांड़ना *māṅṛnā* (; s. मर्द्दन ; मृद् to rub) v.a. To rub. 2. To trample. 3. To knead. 4. To make; p. 153, l. 29. To excite, perpetrate; p. 159, l. 15.

s. मांढा *māṅḍhā* = मढा *q.v.*

n. मांह *māṅh* | मांहि *māṅhi* postp. In; p. 31, l. 11, and p. 73, l. 8. (a Braj word.)

s. माखन *mākhan* (s. मन्थज : मन्थ churning) m. Butter; p. 16, l. 22.

s. मागध *māgadh* (s. मागध ; मगध a Kandwādī verb, to ask, *or* मगध the country of South Bihār) m. A bard or minstrel, whose duty it is to recite the praises of sovereigns, their genealogies, and the deeds of their ancestors, in their presence; and to attend the march of the army and animate the soldiers with martial songs. They form a particular caste, and are said to have sprung from a Vaishya father and Kshatriya mother. In mythology they are said to have been created at once by the will of Shiva. Under the name of Bhāts they are still numerous in some parts of India, especially Gujarāt (*See Forbes' Oriental Memoirs*); p. 124, l. 5.

s. माघ *māgh* (; s. मघा the star Regulus or *a* Leonis, near which is the full moon of this month) m. The Hindū month corresponding with our January-February. On the 13th of the light half of this month Kans was born; p. 7, l. 7.

s. माटी *māṭī* = मट्टी (*q.v.*); p. 22, l. 5.

s. माता *mātā* (s. मातृ ; मन् to respect) f. A mother; p. 6, l. 18. 2. (s. मत्त ; मद् to rejoice) adj. Intoxicated, drunk; p. 59, l. 7.

s. मातना *mātnā* (; s. मद् to be intoxicated) v.n. To be intoxicated; p. 74, l. 19.

s. माथा *māthā* (s. मस्तक ; मस् to weigh) m. The forehead; p. 21, l. 2. माथा ठनकना *māthā ṭhanaknā* (*lit.*, ringing or throbbing of the forehead) implies a presentiment of the conclusion of an affair, from certain marks observed in the commencement, and is generally considered unlucky. माथे पर चढ़ना *māthe par chaṛhnā*, To tyrannise, to oppress; p. 190, l. 4.

s. माथुर *Māthur* (s. माथुरीय ; मथुरा the city of Mathurā : मथि to stir) m. An inhabitant of Mathurā; p. 39, l. 1. Name of a caste of Kayaths, also of Brāhmans.

s. माधव *Mādhav* | माधो *Mādho* (s. माधव ; मधु honey) m. A name of Kṛishṇ—the honeyed; p. 90, l. 21.

s. मान *mān* (s. मान ; मन् to revere) m. Character, dignity, honour, respect; p. 7, l. 9. 2. Arrogance,

pride; p. 52, l. 27,—though here it may be differently translated (*vide* मानो). 3. (s. मान ; मा to measure) m. Measure—whether of weight, *or* length, *or* breadth, *or* capacity.

s. मान सरोवर *mān sarowar* / मानस सरोवर *mānas sarowar* (: मानस the Supreme Mind, सरोवर lake) m. The lake of the Supreme Mind—to which Krishṇ conducted the Gopīs; p. 50, l. 20.

s. मानि है *māni hai*, Braj form of माने *māne*, 3 p. sing. aorist of मान्नौं *mānnauṅ*, to respect: May respect; p. 81, l. 18.

s. मानो *māno*, adv. Like, as though; p. 46, l. 16. Properly the 2 p. pl. aorist of मान्ना *mānnā*, to suppose: You would suppose. मान्कर *mānkar*, Suppose; p. 52, l. 29,—though it may be differently translated (*vide* मान).

s. मान्ता *māntā* (s. मान्ति) f. Vow, promise; p. 58, l. 2.

s. मान्धाता *Māndhātā*, m. A prince, the father of the hero Muchkuṅd; p. 103, l. 10.

s. मान्हु *mānhu* (s. मन्य) adv. Like; p. 35, l. 22. Suppose.

s. मामा *māmā* (s. मामक ; ममक mine ; मम poss. case of अहम् I) m. A maternal uncle, mother's brother; p. 67, l. 3.

s. माया *māyā* (; s. मा to measure—as being the medium through which all things are seen) f. Compassion, kindness, affection; p. 48, l. 17. 2. Deception; p. 4, l. 14,—the illusion, depending on the power of the Deity, whereby mankind believe in the existence of external objects which are, in fact, nothing but ideas; p. 11, l. 15. 3. Prosperity, riches. माया पात्र *māyā-pātr*, adj. Rich, opulent.

s. मारग *mārag* (s. मार्ग ; मृग् to inquire) m. A road, a path *or* way. मारग चह्ना *mārag chahnā*, To look out, to watch for a person; p. 125, l. 2.

s. मार डाल्ना *mār ḍālnā* (: मार्ना to slay, *q.v.*, डाल्ना to cast down, *q.v.*) v.a. intens. To slay outright; p. 7, l. 17.

H. मारू *mārū*, m. Name of an instrument of martial music, a kettle-drum; p. 100, l. 6. 2. (s. मालव) Name of a Rāg *or* musical instrument.

H. मारे *māre*, postp. Through, by reason of; p. 3, l. 14. This word may originally have been the past participle of मार्ना *mārnā* to strike, and have implied "stricken with,"—but this is doubtful.

s. मार्कंडेय *Mārkeṅḍeya*, m. A Rishi; p. 226, l. 1.

E. म्‌ार्कोइस *Markois*, The English word Marquess.

s. मार्धाड़ *mārdhāṛ* / मार्धार *mārdhār* f. Chastisement; p. 185, l. 10.

s. मार्ना *mārnā* (; s. मृ to die) v.a. To smite; p. 2, l. 9. To kill, slay, destroy.

s. मालती *Mālatī* (s. माल Vishṇu, अत् to go, *i.e.*, to be presented to) f. A fragrant plant (Bignonia suaveolens); p. 51, l. 6.

s. माला *mālā* (s. माला : मा future, ला to get *or* be, *or* ; मा to measure) f. A garland, a chaplet of flowers. 2. A string of beads, a rosary; p. 49, l. 3.

s. माली *mālī* (s. माली ; माला a garland : मा fortune, ला to get) m. A gardener; p. 73, l. 16.

s. मावस *māwas* (s. अमावस्या) f. Conjunction of the sun and moon, the change of moon; p. 163, l. 4.

s. मास *mās* (s. मास ; मस् to measure) m. A month; p. 6, l. 22. 2. (s. मांस) Flesh; p. 18, l. 15.

s. मिटाना *miṭānā* (caus. of मिट्टा, *q.v.*) v.a. To cause to be effaced; p 56, l. 30.

s. मिट्टा *miṭnā* (; s. मृष्ट wiped; मृज् to cleanse) v.n. To be effaced; p. 3, l. 8.

s. मिठाई *miṭhāi* (s. मिष्टान्न : मिष्ट sprinkled, अन्न food) f. Sweetmeats; p. 41, l. 3.

s. मित्र *mitr* (s. मित्र ; मिद् to be affectionate) m. A friend; p. 11, l. 13.

s. मित्रता *mitratā* (; s. मित्र a friend ; मिद् to be affectionate) f. Friendship.

s. मित्रविंदा *Mitrabindā*, f. The daughter of Rājādhidevī, grand-daughter of Sūrsen and cousin and wife of Krishṇ; p. 143, l. 19.

s. मिथिला *Mithilā* (s. मिथिला ; मिथ् to be agitated) f. A country to the north-east of Bengāl, the modern Tirhut; p. 136, l. 18.

s. मिथ्या *mithyā* (s. मिथ्या : मिथ् to injure) adv. Falsely; p. 199, l. 28.

H. मिर्गी *mirgī*, f. Epilepsy; p. 138, l. 3.

s. मिलन *milan* (; मिलना *q.v.*) m. In agreement with, (ablative में understood); p. 48, l. 10. A Braj word. (This is the reading of the late editions and appears better than मलिन *malin*, "sad,"—which, however, gives very good sense, and is the reading of the editions of 1810 and 1825.

s. मिलना *milnā* / मिलजाना *miljānā* (; s. मिल to mix) v.n. To be mixed, to blend; p. 3, l. 11. To be confounded, to meet, join, be met with, to be obtained: p. 46, l. 22. To attain, to occur, to associate, to agree, to suit, to be united. मिलना जुलना *milnā julnā*, To meet, to mix, to visit. मिले जुले रहना *mile jule rahnā*, To live together in harmony.

s. मिस *mis* (s. मिष ; मिष् to vie) m. Pretence; p. 23, l. 15.

s. मिहदी *mihdī* (s. मेन्धी) f. Name of a plant from the leaves of which a red dye is prepared, with which the natives stain their hands and feet (Lausonia inermis); p. 163, l. 15.

s. मीच *mīch* (s. मृत्यु ; मृ to die) f. Death; p. 3, l. 29.

s. मीठा *mīṭhā* (s. मिष्ट ; मिष् to sprinkle) adj. Sweet; p. 6, l. 8, and p. 27, l. 10.

s. मीन *mīn* (s. मीन ; मी to hurt) m. A fish; p. 125, l. 29.

s. मुंज *muṅj* / मूंज *mūṅj* (s. मुञ्ज ; मुजि to sound) m. The name of a grass of which the Brāhman's triple thread is made (Saccharum munja); p. 34, l. 14. Ropes also are made of it.

s. मुंड *muṅḍ* (s. मुण्ड ; मुडि to shave) m. The head; p. 100, l. 28. मुंड माला *muṅḍ mālā*, f. A necklace of human heads.

s. मुंडन *muṅḍan* (s. मुण्डन ; मुडि to shave) m. Shaving. मुंडन कर्वाना *muṅḍan karwānā*, To get one's self shaved, to cause to be shaved; p. 137, l. 24. 2. The first shaving of a child, which is a religious ceremony among the Hindūs.

s. मुंड्ना *muṅḍnā* / मूंड्ना *mūṅḍnā* (s. मुण्डन shaving ; मुडि to be shaved) v.a. To shave; p. 121, l. 15. 2. v.n. To be shaved.

s. मुंद्ना *muṅdnā* (; s. मुद्रण) v.n. To be shut *or* closed.

s. मुंह *muṅh* (s. मुख) m. Mouth, face, countenance; p. 13, l. 22. अपना सा मुंह ले आना *apnā sā muṅh le ānā*, To return disappointed from any enter-

prise, to fail of success (*lit.*, to return bringing one's own face). मुंह बाना *muṅh bānā*, To open the mouth, to gape. मुंह लेके रह जाना *muṅh leke rah jānā*, To be silent from shame. मुंह मांगा धन *muṅh māṅgā dhan*, As much money as one asks for; p. 62, l. 15. मुंह चह्ना *muṅh chahnā*, To look to any one for support; p. 96, l. 22.

s. मुकुट *mukuṭ* (; s. मकि to adorn) m. A crown, a crest, a diadem; p. 3, l. 13.

s. मुक्त *mukt* (s. मुक्त ; मुच् to set free) adj. Released, absolved; p. 49, l. 2. 2. (s. मुक्ता) m. A pearl. मुक्तमाल *muktmāl* (: s. मुक्ता a pearl, माला a necklace) m. A pearl-necklace; p. 152, l. 21.

s. मुक्ती *muktī* (s. मुक्ति ; मुच् to set free) f. Release, pardon, absolution from sin, salvation, deliverance of the soul from the body and exemption from further transmigration; p. 5, l. 9.

s. मुख *mukh* / मुखड़ा *mukhṛā* } (s. मुख ; खन् to dig) m. The mouth, the face; p. 56, l. 15.

s. मुचकुंद *Muchkuṅd* (; s. मुच् to obtain liberation) m. A hero to whom Kṛishṇ granted final beatitude; p. 98, l. 2.

H. मुझ *mujh*, inflec. of मैं *maiṅ*, I (*q.v.*). Me; p.3, l.3.

H. मुझे *mujhe*, dat. *or* acc. of मैं (*q.v.*) Me; p. 3, l. 7.

s. मुठी *muṭhī* / मुट्ठी *muṭṭhī* } (s. मुष्टि ; मुष् to steal or take) f. The fist, the hand, a handful; p. 210, l. 7. प्रान मुट्ठी में लेना *prān muṭṭhī meṅ lenā*, to take the life in the hand, *i.e.*, To be entirely devoted; p. 87, l. 17.

s. मुढ़ *muṛh* (s. मुंड the head ; मुडि to shave) m. A head-man, a chief; p. 123, l. 25.

s. मुदित *mudit* (s. मुदित ; मुद् to rejoice) adj. Rejoiced, pleased, delighted; p. 79, l. 17.

s. मुद्रा *mudrā* (s. मुद्र ; मुद् to please) f. A seal, a signet; p. 173, l. 29. 2. The mark of a seal, a stamp.

s. मुनि *Muni* (s. मुनि ; मन् to be revered) m. A holy sage, a pious and learned person endowed with more or less of a divine nature, *or* having attained such excellence by rigid abstraction and mortification. The title is applied to the Rishis, Brahmādikas, and to persons distinguished for their writings—such as Pāṇini, Vyāsa, etc.; p. 3, l. 9.

s. मुनीस *munīs* / मुनीश *munīsh* } (s. मुनीश ; मुनि a sage, ईश chief) m. A saint *or* chief of saints *or* sages; p. 4, l. 30.

s. मुर *Mur* (s. मुर ; मुर् to encircle) m. A five-headed dæmon—slain by Kṛishṇ; p. 148, l. 8.

s. मुरारि *Murāri* / मुरारी *Murārī* } (s. मुरारि : मुर a dæmon so called, अरि foe) m. A name of Kṛishṇ—so called as having slain the dæmon Mur; p. 24, l. 22.

s. मुर्झाना *murjhānā* (; s. मूर्च्छ् to faint) v.n. To wither, to pine, to fade, to droop; p. 163, l. 7.

s. मुर्ली *murlī* (s. मुर्ली : मुर surrounding, ला to get or have) f. A fife, flute, pipe; p. 56, l. 17, and p. 184, l. 13.

s. मुष्टक *Mushṭak* (perhaps from मुष्टि fist) m. A wrestler slain by Balarām; p. 78, l. 15.

s. मुसल *musal* / मूसल *mūsal* } (s. मुसल ; मुस to break) m. A wooden pestle used for cleaning rice. A club; p. 2, l. 9. मुसल धार बरसा *musal dhār barasnā*, to rain heavily and con-

tinuously (*lit.*, if from this word, to rain a torrent of clubs (*See* मूस्लाधार).

H. मुस्काना *muskānā*, / मुस्कुराना *muskurānā* v.n. To smile; p. 22, l. 2.

H. मुस्कान *muskān* / मुस्क्यान *muskyān* f. A smile. मुस्क्यान युत *muskyān yut*, Possessed of smiles, smiling; p. 53, l. 20.

H. मुहि *muhi* = मोहि (*q.v.*) and Braj for मुझे *mujhe*, To me, *or*, me; p. 89, l. 26.

S. मुहूर्त्त *muhurtt* / मुहूर्त्त *muhūrtt* (s. मुहूर्त्त ; हूर्च्छ् to be crooked) m. A division of time—the 30th part of a day and night, 12 kshanas *or* 48 minutes; p. 9. l. 10.

H. मूंछ *mūṅchh*, f. Whiskers: p. 121, l. 15.

S. मूंड *mūṅḍ* (s. मुण्ड ; मुडि to shave) m. The head. मूंड फिकार्ना *mūṅḍ phikārnā*, To bare *or* uncover the head in token of grief *or* abasement; p. 74, l. 27.

S. मूंद्ना *mūṅdnā* (s. मुद्रा a seal) v.a. To close; p. 7, l. 17. To shut, to imprison.

S. मूंद्री *mūṅdrī* / मूद्री *mūdrī* (s. मुद्री ; मुद् to please) f. A finger-ring; p. 59, l. 17.

S. मूठ *mūṭh* (s. मुष्टि ; मुष् to take) f. Handle, hilt, fist, hand, handful. मूठ की मूठ *mūṭh kī mūṭh*, By handfuls; p. 149, l. 5.

S. मूड़ *mūṛ* (s. मुण्ड ; मुडि to shave *or* cut) m. The head.

S. मूढ़ *mūṛh* (s. मूढ़ ; मुह् to be foolish) adj. Foolish, stupid; p. 9, l. 20.

S. मूत *mūt* (s. मूत्र ; मूत्र to urine) m. Urine; p. 188, l. 11.

S. मूत्ना *mūtnā* (; s. मूत्र to urine) v.a. To urine; p. 188, l. 20.

S. मूर *mūr* = मूल (*q.v.*); p. 198, l. 11.

S. मूरख *murakh* (s. मूर्ख ; मुह् to be foolish) m. A dolt, a simpleton, a fool; p. 9, l. 17. adj. Foolish.

S. मूरत *mūrat* / मूर्ती *mūrtī* (s. मूर्त्ति ; मुर्च्छ् to become insensible) f. Figure, form, body in general, or any definite shape or image; p. 2, l. 10.

S. मूर्छा *mūrchhā* (s. मूर्च्छा ; मूर्च्छ् to faint) f. Fainting, loss of consciousness or sense, a swoon. मूर्छा आना *or* खाना *mūrchhā ānā* or *khānā*, v.n. To swoon; p. 68, l. 28.

S. मूर्छित *mūrchhit* (s. मूर्च्छित : मुर्च्छ् to be faint) adj. swooning, fainting, insensible; p. 14, l. 22,

S. मूर्त्ति *mūrtti* = मूरत (*q.v.*)

S. मूल *mūl* (s. मूल : मूल् to stand) m. Origin, root: p.17, l. 2. Race, generation. Principal or capital sum of money. 2. The text of a book opposed to the commentary. The nineteenth lunar mansion (γ or υ Scorpionis).

S. मूस्लाधार *mūslādhār* (: मूसला a taproot, धार stream) adv. Heavily and continuously (of rain): p. 44, l. 16.

S. मृग *mṛig* (s. मृग : मृग् to chase) m. A deer. मृगणि *mṛigaṇi*, Braj form of मृगों *mṛigoṅ*, pl. infl. of मृग the deer: p. 52, l. 7. मृगनैनी *mṛiganainī* (s. मृगनयनी : मृग deer, नयन eye) adj. Gazelle-eyed (an epithet of a beautiful woman); p. 107, l. 6. मृग राज *mṛig rāj*, m. the king of beasts, *i.e.*, A lion. मृग छाला *mṛig chhālā*, The skin of an antelope used as a bed, seat, etc., by devotees; p. 230, l. 2.

S. मृगी *mṛigī* (fem. of मृग *q.v.*) f. A doe, a female deer; p. 59, l. 20.

S. मृतक *mritak* (s. मृतक ; मृ to die) m. A corpse; p. 54, l. 12.

S. मृत्य *mritya* / मृत्यु *mrityu* (s. मृत्यु ; मृ to die) f. Death; p. 10, l. 8.

S. मृदंग *mridang* (s. मृदङ्ग ; मृद् to be beaten) f. A kind of drum or tabour; p. 160, l. 10.

H. में *meṅ*, postp. In, among; Preface.

S. मेंढा *meṅḍhā* (s. मेढ ; मिह् to urine) m. A ram; p. 65, l. 5.

S. मेंह *meṅh* / मेह *meh* (; s. मिह् to sprinkle) m. Rain; p. 34, l. 5.

S. मेघ *megh* (s. मेघ ; मिह् to sprinkle) m. A cloud. मेघ बरण *megh baraṇ*, Of the hue of clouds; p. 13, l. 8. मेघ पति *megh pati*, Lord of clouds, a title of Indr and one of his chief officers; p. 44, l. 8. मेघ धुनि *megh dhuni*, A shout like thunder; p. 19, l. 26.

S. मेट्ना *meṭnā* (active of मिट्ना *miṭnā*, *q.v.*) v.a. To efface; p. 3, l. 8. To blot out, to wipe out, to annihilate. 2. To thwart.

H. मेरा *merā* / मेरे *mere* / मेरी *merī* gen. of मैं I, (*q.v.*) Of me, mine. मेरे रहते *rahte*, In my presence (with में understood); p. 2, l. 15.

H. मेरे *mere*, dat. of मैं *maiṅ*, I. This irregular form for मुझे occurs in the phrase "I have a son," as मेरे पुत्र होगा *mere putr hogā*, A son will be to me; p. 10, l. 6, but it is perhaps better to regard it as the ablative, and understand घर में *ghar meṅ*, In my house.

H. मेलना *melnā*, v.a. To thrust in, to cram; p. 73, l. 7.

H. मैं *maiṅ*, nom. sin. pr. 1 per., I; p. 3, l. 3.

S. मैया *maiya* (s. माता) f. A mother; p. 21 l. 28.

S. मैला *mailā* (;. मलिन) adj. Foul, dirty, filthy; p. 101, l. 21.

H. मो *mo*, Hindī form of मुझे *mujhe*, मो को *or* कौं *mo ko* or *kauṅ*, To me; p. 28, l. 23. मो for मेरा as मो मथा *mo mathā*, My forehead; p. 32, l. 8.

S. मोच्छ *moksh* (s. मोक्ष ; मोक्ष् to let loose or free) m. Release, liberation, absolution, beatitude, final and eternal happiness, the liberation of the soul from the body, and its exemption from further transmigration; p. 46, l. 22.

S. मोखा *mokhā* (; s. मुख *q.v.*) m. A small hole for admitting light and air, an airhole; p. 71, l. 20.

S. मोच्ना *mochnā* (s. मोचन liberating; मुच् to be free) To let go, to free. 2. To shed; p. 134, l. 10. 3. m. Release.

H. मोट *moṭ* / मोठ *moṭh* f. A bundle; p. 72, l. 16.

H. मोटा *moṭā*, adj. Great, bulky; p. 31, l. 14.

S. मोती *motī* (s. मौक्तिक ; मुक्ता a pearl) m. A pearl. मोती हारा *motī hārā*, m. A necklace of pearls; p. 49, l. 27.

S. मोर *mor* (s. मयूर ; मि to scatter, or : मही the earth in the 7th case, मह्यां, रु to cry) m. A peacock; p. 6, l. 8. मोर मुकुट *mor mukuṭ*, A crown or crest like that of the peacock; p. 27, l. 8.

H. मोर *mor*, m. Twist, turn. 2. (s. मम) pron. My, mine.

S. मोल *mol* (s. मूल्य ; मूल principal) m. Price; p. 53, l. 14. बिन मोल के चेरी *bin mol ke cherī*, Slave girls without purchase.

S. मोह *moh* (; s. मुह् to be ignorant) m. Fainting, loss of consciousness. 2. Ignorance, folly, foolishness—It is applied especially to that spiritual

ignorance which leads men to believe in the reality of worldly objects, and to addict themselves to mundane and sensual enjoyment; p. 4, l. 14. Pity, compassion, sympathy, fascination. मोह में आना *moh meṅ ānā*, To faint at the sudden appearance of a friend or mistress. मोह लेना *moh lenā*, To attach, to allure.

s. मोहन *Mohan* (s. मोहन : मुह् to be foolish) m. A name of Kṛishṇ; p. 18, l. 21. A sweetheart. 2. adj. Fascinating, charming, depriving of sense, captivating. मोहन भोग *mohan bhog*, A kind of sweetmeat. मोहन माल *mohan māl* (; मोहन charming, also a name of Kṛishṇ, माला necklace) m. A necklace of gold beads and coral, so called as worn by Kṛishṇ, or as rendering the appearance fascinating; p. 152, l. 21.

s. मोहनी *mohanī* (s. मोहनी ; मुह् to be foolish) f. An enchantress, a fascinating woman; p. 11, l. 22, where if the का was omitted, the sense would be equally good. adj. Fascinating; p. 17, l. 17. Depriving of the power of reflection.

s. मोह्ना *mohnā* (: s. मोहन fascination ; मुह् to be foolish) v.a. To fascinate, to enchant, to delude; p. 28, l. 16. 2. adj. Fascinating, charming.

H. मोहि *mohi*, dative sin. of pr. 1 p. हौं *hauṅ* I, To me; Preface.

s. मोहित *mohit* (s. मोहित ; मुह् to be foolish) adj. Charmed, fascinated; p. 17, l. 19.

s. मोही *mohī* (: मोहि *q.v.*, ई an intensive particle or particle of identification) dat. sin. pr. 2. per., To me truly; p. 13, l. 17.

s. मौड़ *mauṛ* (s. मौलि ; मूल the root or base, or मू to bind) m. A kind of high-crowned hat, worn by the bridegroom at the time of marriage; p. 133, l. 11.

s. मौन *maun* (s. मौन ; मुनि a sage who preserves silence) m. Silence, taciturnity; p. 37, l. 17.

य

s. यंत्र *yantr* (s. यन्त्र ; यम् to check) m. A machine in general. 2. A musical instrument; p. 56, l. 10.

s. यक्ष *Yaksh* (s. यक्ष ; यक्ष् to worship) m. A demigod attending especially on Kuver, the God of Riches, and employed in the care of his gardens and treasures; p. 59, l. 2.

s. यज्ञ *yajn*, pronounced *yagya* (s. यज्ञ ; यज to worship) m. A sacrifice *or* religious ceremony in which oblations are offered; p. 7, l. 29.

s. यज्ञोपवीत *yāgyopavīt* (s. यज्ञोपवीत : यज्ञ a sacrifice, उपवीत a sacred thread) m. The sacrificial thread *or* cord, worn by the three first classes of Hindūs over the left shoulder and under the right; p. 84, l. 28.

s. यत्न *yatn* (s. यत्न ; यत् to endeavour) m. Effort; p. 36, l. 23. Carefulness, care; p. 147, l. 4.

s. यथा *yathā* (s. यथा : यद् what) adv. As, according to; p. 85, l. 10.

s. यथा जोग *yathā jog* / यथा योग्य *yathā yogya* (s. यथा as, योग्य fitting) adv. Properly, becoming; p. 87, l. 20.

s. यदु *Yadu*, m. The name of a king, the ancestor of Kṛishṇ, and eldest son of Yayāti, the fifth monarch of the lunar dynasty. यदु कुल *Yadu kul*, Race of Yadu; p. 5, l. 20.

s. यदुपति *Yadupati* (: s. यदु *q.v.*, पति lord, *q.v.*) m.

Chief of the race of Yadu (an epithet of Krishn); 47, l. 8.

s. यदुबंस *Yadu-bans* (s. यदुवंश : यदु Yadu, वंश race) m. The tribe of Yadu.

s. यदुवंशी *Yadubanshī* (s. यदुवंश : यदु name of a king, *q.v.*, वंश race) m.f. A descendant of Yadu; p. 8, l. 23.

s. यद्यपि *yadyapi* (s. यद्यपि : यदि if, अपि certainly) conj. Though. adv. Although; p. 139, l. 6.

s. यम *Yam* (s. यम ; यम् to restrain) m. Yam, the Deity of Narak *or* Hell, where his capital is placed, in which he sits in judgment on the dead, and distributes rewards and punishments, sending the good to Swarg, and the wicked to the division of Narak appropriated to their crimes: he corresponds with Pluto or Minos, and in Hindū mythology is often identified with Death and Time. He is the son of Sūrya *or* the Sun, and brother of the personified Yama. यम गुफा *yam guphā*, Cave of death; p. 12, l. 18. यम दूत *yam dūt*, Messenger of death; p. 17, l. 23.

s. यमदग्नि *Yamadagni*, m, A Muni, father of Parshurām; p. 221, l. 10.

s. यमन *Yaman* (s. यवन ; यु to mix, *or* जु to be swift) m. A Yavan, which name formerly meant an Ionian or Greek, but is now applied to both the Muḥammadan and European invaders of India, and is often used as a general term for any foreign or barbarous race.

s. यमल *yamal* (s. यमल ; यम् to cease) adj. Two, a pair; p. 24, l. 10. यमलार्जन *yamalārjun*, Two trees of the kind *terminalia alata glabra.*

s. यमुना *Yamunā* (s. यमुना ; यम् to stop, *i,e.*, at the Ganges) f. The Yamunā *or* Jamnā river, which rises on the south side of the Himālaya range, at a short distance to the north-west of the source of the Ganges, and after a course of 378 miles falls into that river immediately below Allahabād. In mythology it is considered as the daughter of Sūrya and sister of Yama; p. 14, l. 6.

s. यश *yash* (s. यशः ; अश् to pervade) m. Fame, reputation, renown, glory.

s यसस्वी *yasaswī* (s. यशस्विन् ; यशस् renown ; अश् to pervade) Famed, renowned, celebrated; Preface.

H. यह *yah*, 3 p. pr. dem. He, she it, this; p. 2, l. 17.

s. यहां *yahān* (; s. इह here) adv. In this place, here, at the house of; p. 16, l. 26.

s. या *yā* (s. अस्य) dem. pron. This; p. 31, l. 7. This is a Braj form of यह. याहि *yāhi* for इसे *ise*, This; acc. of या *yā*; p. 33, l. 22.

s. याचक *yāchak* (s. याचक ; याच् to ask) m. A petitioner, a beggar, one who asks or solicits = जाचक; p. 107, l. 18.

s. याचना *yāchnā* (s. याच्) v.a. To want, to need, to require, to solicit, to ask, to implore, to beg

s. यातना *yātanā*) s. यातना ; यत् to inflict pain) f. Pain, agony, sharp *or* acute pain.

s. यात्रा *yātrā* (s. यात्रा ; या to go) f. Pilgrimage. 2. March, departure, journey; p. 25, l. 11.

s. यादव *Yādav* (s. यादव ; यदु *q.v.*) m. A Yādava *or* descendant of Yadu; p. 81, l. 20. 2. Krishn (as a descendant of Yadu.)

s. यादव पति *Yādav pati* (s. यादव a descendant of Yadu, पति lord) m. Lord of the Yādavas, (a title of Krishn).

s. यादों *Yādon*, pl. infl. of यादव a Yādava, *q.v.*,

used with बोले *bole*, they said; p. 138, l. 29: the ों *oṅ* being probably the collective affix, (as in सैंकड़ों *saiṅkṛoṅ*, Hundreds: etc.)

s. यामनी *Yāmanī* (s. यावन ; यवन the country of the Yavans *or* Ionians) Grecian, but now applied to Europeans and Muḥammadans; Preface.

s. यामिनी *yāimnī* = जामिनी Night (*q.v.*)

s. याम्नी भाषा *Yāmnī bhāshā* (s. यावनी भाषा : यावनी of the Yavans. भाषा dialect) The language of the Yavans; Preface.

s. यार् *yār* (s. जार ; जॄ to render infirm, *i.e.*, weakening the affection of the wife for her husband) m. A paramour; p. 49, l. 6.

s. युक्त *yukt* (s. युक्त ; युज् to join or mix) adj. Right, proper, fit.

s. युक्ति *yukti* (s. युक्ति : युज् to join) Skill, dexterity, contrivance, wit, art; Preface.

s. युग *yug* (: s. युज् to join) m. A pair, a couple. 2. An age. The Hindūs reckon four ages:—the सत्य *satya*, or age of gold,—comprising 1,728,000 years; the त्रेता *tretā*, or silver age—of 1,296,000 years; the द्वापर *dwāpar*, or brazen age—of 864,000 years; and the कलि *kali*, or iron age —of 435,101 years; p. 3, l. 7.

s. युगल *yugal* (s. युगल ; युग a pair) adj. A pair, a brace, a couple; Preface.

s. युत *yut* (s. युत ; यु to join) (*in comp.*) Connected with, joined to, possessed of,—as श्रीयुत, Possessed of fortune; Preface. धर्मयुत *dharmmayut*, Virtuous. संकोच्युत *saṅkochyut*, Bashful; p. 118, l. 14.

s. युद्ध *yuddh* (s. युद्ध ; युध् to fight) m. Battle, war, contest; p. 6, l. 23.

s. युधिष्ठिर *Yudhishṭhir* / युद्धिस्थिर *Yuddhisthir* (s. युधिष्ठिर : युधि in battle, ष्ठिर for स्थिर firm) m. The nominal son of Pāṇḍu, whom he succeeded in the sovereignty of India; but—according to the legend—begotten on Kuntī by the deity Yama. He was the eldest of the five Pāndava princes, and the leader in the war with the Kurus; p. 96, l. 16.

s. युवती *yuwatī* (s. युवती ; यु to mix or associate) f. A young woman—one from 16 to 30 years of age: p. 36, l. 3.

s. युवा *yuwā* (s. युवा ; यु to mix or associate) A young man, one of the virile age—or from 16 to 70. 2. adj. Young, juvenile; p. 81, l. 8.

s. यूथ *yūth* (s. यूथ ; यु to mix) m. A herd *or* flock: p. 100, l. 5.

H. यों *yoṅ*, adv. Thus; p. 14, l. 1.

s. योग *yog* (s. योग : युज् to join) m. Junction, union; p. 35, l. 12. 2. That kind of abstraction by which union with the divinity is obtained; p. 4, l. 20. In the *Gītā* it is described as sitting on Kusha grass, with the body firm, the eyes fixed on the tip of the nose, and the mind intent on the deity. 3. The 27th part of a great circle of 360° —measured on the plane of the ecliptic. Each Yog has a distinct name (See *Asiatic Researches*, vol. ix., p. 365). 4. A fortunate moment; p. 16, l. 7. 5. (s. योग्य) adj. Possible, capable, fit, —in composition, answering to our "-able," "-worthy;" p. 9, l. 3.

s. योगिनी *Yoginī* (s. योगिनी ; युज् to join) f. A female fiend *or* sprite attendant on Durgā and created by her; p. 100, l. 29. In some places

eight Yoginīs are enumerated by name. In astrology, spirits governing periods of good and ill luck; p. 25, l. 12.

s. योगेश्वर *Yogeshwar* (s. योगेश्वर : योग religious observance, ईश्वर lord) m. The god of devotion *or* to whom devotion is offered; p. 121, l. 3.

s. योजन *yojan* (s. योजन ; युज् to join) m. A measure equal to 4 kos, which, at 4,000 yards to the kos, is equal to 9 miles:—others make it 5 miles; p. 101, l. 29.

s. योतिष *yotiṣh* } योतिक *yautik* } (s. ज्योतिष ; ज्योतिस् light of the heavenly bodies) m. Astronomy or astrology; p. 85, l. 7.

s. योतिषी *yotiṣhī* = जोतिषी (*q.v.*)

s. योद्धा *yoddhā* = जोधा (*q.v.*)

s. योधा *yodhā* = जोधा (*q.v.*); p. 77, l. 3.

s. यौतुक *yautuk* (s. यौतक ; युतक nuptial gifts ; युत् to be joined) m. Lover, nuptial present; p. 9, l. 10.

र

H. रई *raī*, f. A churning-staff; p. 22, l. 18. 2. Bran.

s. रंग *raṅg* (s. रङ्ग ; रञ्ज् to colour) m. Colour. 2. Manner, method. 3. Entertainment, merriment, pleasure. रंग भूमि *raṅg bhūmi*, a place of amusement, theatre, palæstra; p. 62, l. 4. रंग महल *raṅg mahal*, An apartment dedicated to voluptuous enjoyment. रंग राता *raṅg rātnā*, To be affected or imbued with love, to become attached.

s. रंगना *raṅgnā* (; s. रङ्ग dye) v.a. To colour. 2 v.n. To be coloured. रंगी *raṅgī*, Imbued; p. 88, l. 20.

s. रंडी *raṅḍī* (s. रण्डा a widow ; रम् to sport) f. A woman; p. 24, l. 2. (this is rather a contemptuous term.)

H. रंहट *raṅhat* } रहट *rahat* } m. A wheel for drawing water; p. 71, l. 14.

s. रकत *rakat* } रक्त *rakt* } (s. रक्त ; रञ्ज् to colour) adj. Red; p. 60, l. 6. 2. m. Blood.

s. रक्षक *rakshak* (s. रक्षक ; रक्ष् to preserve) m. A protector, a keeper, a guard, a watchman.

s. रक्षा *rakshā* (; s. रक्ष् to preserve) f. Protection, preservation, defence; p. 4, l. 16.

s. रख लेना *rakh lenā*, v.a. To take in charge, to take into one's own keeping or service; p. 3, l. 10.

s. रखैया *rakhaiyā* (; रखना *q.v.*) m. Keeper, preserver; p. 37, l. 29.

s. रखना *rakhnā* (; s. रक्ष् to preserve) v.a. To keep, put, place, have, hold, possess, preserve, save, reserve, apply, esteem; p. 3, l. 10.

s. रखवाना *rakhwānā* (caus. of रखना *q.v.*) v.a. To cause to place; p. 42, l. 22.

s. रखवारा *rakhwārā* } रखवाल *rakhwāl* } रखवाला *rakhwālā* } (; रखना *q.v.*) A keeper, a watchman, a guard; p. 12, l. 4.

s. रखवारौ *rakhwārau* (; रखना to keep, *q.v.*, वारौ signifying agent) m. Keeper, guardian; p. 45, l. 16.

s. रखवाली *rakhwālī* (; रखना *q.v.*) f. The keeping, guardianship; p. 21, l. 30.

s. रघुनाथ *raghunāth* (: रघु here — for the race of रघु king of Ayodhya, and great-grandfather of Rāmachandr, नाथ lord) m. Lord of the race of Raghu, a name of Rāma; p. 131, l. 28.

s. रचाना *rachānā* (caus. of रचना *q.v.*) v.a. To make. 2. To stain; p. 163, l. 15.

s. रचना *rachnā* (; s. रच् to make) v.n. To set to work, to be employed. 2. To stain *or* colour. 3. To love, to like. 4. To keep time (in music.) 5. To penetrate. 6. To predestinate ; p. 36, l. 18. 7. v.a. To prepare to perform ; p. 13, l. 4. 8. (s. रचन) f. Forming, invention. 9. To create ; p. 175, l. 29. 10. m. Created thing, work ; p. 47, l. 26.

s. रज *raj* (s. रज ; रञ्ज् to colour) m. Dust ; p. 52, l. 11. The farina of flowers. रज मंडित *raj maṅḍit*, Covered with dust. 2. The second of the qualities incident to humanity, the Raja Gun, *or* property of passion, whence proceed anger, covetousness, etc. ; p. 199, l. 14.

s. रजक *rajak* (s. रजक ; रञ्ज् to colour) m. A washerman ; p. 73, l. 1.

s. रजोगुन *Rajogun* (*See* रज) ; p. 235, l. 16.

s. रतन *ratan* | रत्न *ratn* (s. रत्न ; रम् to sport) m. A gem in general, a jewel, a precious stone. रतन जटित *ratan jaṭit*, Studded with jewels. रत्न माला *ratn mālā*, f. A necklace of precious stones. रत्न सिंहासन *ratn siṅhāsan*, m. A throne adorned with precious stones ; p. 218, l. 17.

s. रति *Rati* (s. रति ; रम् to sport) f. The wife of Kāmdev ; p. 95, l. 4. 2. Love, venery, coition.

s. रतीवंत *ratīwaṅt* (; रती fortune) Fortunate, prosperous, flourishing ; Preface.

s. रथ *rath* (s. रथ ; रम् to sport) m. A car, or chariot ; p. 6, l. 6. रथवान *rathwān*, m. A charioteer ; p. 175, l. 5.

s. रथी *rathī* (s. रथिक ; रथ a car) m. The owner of a car *or* one who rides in one, a charioteer, a warrior fighting in a chariot ; p. 98, l. 23.

s. रन *ran* (s. रण ; रण् to sound) m. War, battle, conflict ; p. 100, l. 24. रन भूमि *ran bhūmi*, f. A field of battle.

s. रन्वास *ranwās* (: रानी from s. राज्ञी a queen *or* रंडा a woman, वास abode) m. The seraglio of a Rājā, the female apartments ; p. 4, l. 17.

s. रबि *rabi* | रवि *ravi* (s. रवि ; रु to be praised *or* glorified) m. The sun ; p. 54, l. 18.

s. रमा *Ramā* (s. रमा ; रम् to sport) f. A name of Lakshmī.

s. रमना *ramnā* (s. रम् to sport) To enjoy, to copulate ; p. 172, l. 17.

s. रस *ras* (s. रस ; रस् to taste, to love) m. Taste, flavour, of which six kinds are reckoned—sweet, sour, salt, bitter, acid and astringent ; p. 19, l. 1. 2. Taste, sentiment, emotion—as an object of poetry or composition :—eight sentiments are usually enumerated, viz. : शृंगार *shriṅgār*, love ; हास्य *hāsya*, mirth ; करुणा *karuṇā*, tenderness ; रौद्र *raudra*, anger ; वीर *vīra*, heroism ; भ्यानक *bhyānaka*, terror ; वीभत्स *vībhatsa*, disgust ; अद्भुत *adbhuta*, surprise. शांत *shāṅta*, tranquillity *or* content, or वात्सल्य *vātsalya*, paternal tenderness, is sometimes considered as the ninth. 3. Quicksilver, from its being a semi-fluid metal, and—according to certain alchymical notions—possessed of supernatural power over the juices of the body. 4. Enjoyment, harmony ; p. 158, l. 6.

s. रसातल *rasātal* (s. रसातल : रसा the earth, तल below) m. Pātāl, the seven infernal regions under the earth and the abode of Nāgas, Asurs, Daityas, and other races of monstrous and dæmoniacal beings under the various govern-

ments of Shesha, Bali and other chiefs. (This is not to be confounded with Naraka or Tartarus —the hell of guilty mortals after death; p. 8, l. 8.

s. रसोई *rasoī* (s. रसवती ; रस flavour) f. Victuals. 2. Cooking; p. 39, l. 13. 3. Kitchen; p. 125, l. 2. रसोई करनेवाली *rasoī karnewālī*, A female cook; p. 126, l. 1.

s. रस्सी *rassī* (s. रश्मि ; अश् to pervade) f. A string, cord; p. 23, l. 16.

s. रहित *rahit* (s. रहित ; रह् to leave) adj. Destitute, void of; p. 83, l. 8.

H. रहाना *rahānā* (caus. of रहना, *q.v.*) v.a. To cause to stay, to retain; p. 83, l. 7.

H. रहै *rahai*, 3 p. sing. of रहौं (*q.v.*); p. 13, l. 25. This tense is thus conjugated:—

	SINGULAR.	PLURAL.
1.	रहौं	1. रहं
2. and 3.	रहै	2. रहौ
		3. रहैं

H. रहौं *rahauṅ*, (for रहूं) 1 p. sing. aorist of रहना (*q.v.*); p. 13, l. 18.

H. रहना *rahnā*, v.n. To remain, continue, last, stop. रह जाना *rah jānā*, v.n. To wait, stay, delay; Preface.

s. राई *rāī* / राय *rāe* (; s. राजा according to Shakespear, from रै wealth, according to Price) m. A chief. नंद राय *Naṅd Rāe*, The Chieftain Naṅd (so Tīpū Ṣāḥib is still called Tīpū Rāe in the South); p. 47, l. 5. (the य here is sounded like ए and might be so written.)

s. राई *rāī* (s. राजिका ; राज् to shine) f. A kind of mustard with small grains (Sinapis racemosa). राई काई *rāī kāī* (: राई mustard seed, काई scum) adj. Broken into small pieces; p. 142, l. 15.

s. रांड *rāṅd* (s. रण्डा ; रम् to sport) f. A widow; p. 98, l. 14.

s. रांभना *rāmbhnā* (s. रम्भन ; रभि to sound) v.n. To low (as a cow), to bellow; p. 8, l. 6.

s. राक्षस *rākshas* (s. राक्षस ; रक्ष् to be preserved, *i.e.*, from him) m. A fiend, a dæmon—either of great power, the foe of the gods—as Rāvan and Kans; *or* an attendant of Kuver and guardian of his treasures, *or* a foul spirit haunting cemeteries and devouring the dead bodies; p. 6, l. 11. राक्षस ब्याह *rākshas byāh* (s. राक्षसी विवाह) A form of marriage, the violent seizure and rape of a girl after the repulse *or* slaughter of her kinsmen; p. 123, l. 12.

s. राक्षसी *rākshasī*, fem. of राक्षस (*q.v.*) A she-fiend; p. 18, l. 17.

s. राख *rākh* (s. रक्षा ; रक्ष् to preserve) f. Ashes; p. 103, l. 25.

s. राग *rāg* (s. राग ; रञ्ज् to colour) m. A mode of music, of which six are enumerated: Bhairava, Mālava, Sāranga, Hindola, Vasanta, Dipaka, Megha; p. 56, l. 11.

s. रागिनी *rāginī* (; s. राग, *q.v.*) f. A musical mode —of which there are thirty; p. 56, l. 15.

s. राचना *rāchnā* (; s. रचन) v.n. To be affected *or* imbued with love, to be strongly attached; p. 49, l. 4.

s. राज *rāj* (s. राज्य) m. Government, sovereignty, reign, kingdom; p. 4, l. 4. राज कन्या *rāj kanyā*, f. A princess. राज गादी *rāj-gādī* or राज पट्ट *rāj-paṭṭ*, f. King's cushion, *i.e.*, a throne. राज द्वार *rāj-dwār*, King's gate, gate of a palace;

p. 74, l. 20. राज धानी *rāj-dhānī*, f. A metropolis, seat of empire ; p. 150, l. 17. राज मंदिर *rāj-mandir*, m. A palace ; p. 110, l. 5. राज रोग *rāj-rog*, m. A mortal disease, consumption.

s. राजधिदेवी *Rājadhidevī*, f. The daughter of Sūrsen, and mother of Mitrabindā, who married Krishṇ ; p. 143, l. 19.

s. राजस *rājas* (s. राजस ; रजस the second quality incident to creatures,—the quality of passion which produces sensual desire, worldly coveting, pride and falsehood, and is the cause of pain ; रञ्ज् to colour *or* be atttached to) m. The state of being in this world or the next, in which the Raja Guṇ or quality of passion predominates ; it is divided into three classes,—the first comprising the Gandharbas, Yakshas, etc.; the second kings and heroes; the third boxers, wrestlers, gamblers, tipplers, etc. Worldly lusts ; p. 46, l. 3.

s. राजा *rājā* (s. राज ; राज् to shine) m. A king, prince ; p. 2, l. 7.

s. राजेश्वर *rājeshwar* (: राज a king, ईश्वर chief) m. A supreme lord ; Preface.

s. राज्ना *rājnā* (s. राज) v.n. To shine, to be adorned.

s. रानी *rānī* (s. राज्ञी ; राज् to shine) f. A queen, a princess ; p. 4, l. 17.

s. राज्नीति *rājnīti* (s. राज्नीति : राज a king, नीति polity) f. The art of government, the duties of a prince in peace and war.

s. राज्सू *rājsū* (s. राजसूय ; राज a king, सू to be produced, *or* राज the moon, सु to bring forth (because of the Soma *or* moon-juice drunk at the ceremony) m. A sacrifice performed only by an universal monarch, attended by his tributary princes, as in the case of Yudhishṭhir and others ; p. 195, l. 25.

s. राता *rātā* (; s. रक्त *q.v.*) adj. Red ; p. 71, l. 18. 2. Dyed, coloured.

s. रातिदेव *Rātidev*, m. An ascetic who remained forty-eight days without drinking water, and then bestowed what he was about to drink on another ; p. 201, l. 7.

s. रात *rāt* / रात्रि *rātri* (s. रात्रि ; रा to give (pleasure *or* rest) f. Night ; p. 46, l. 24.

s. रात्ना *rātnā* (; राता *q.v.*) v.a. To dye, to stain. 2. v.n. To be strongly attached or in love (*lit.*, stained with the dye of love).

s. राधा *Rādhā* / राधिका *Rādhikā* (s. राधा ; राध् to accomplish) f. Name of the favourite mistress of Krishṇ while in Brindāban, a celebrated Gopī ; p. 51, l. 1.

s. राधा कुंड *Rādhā kuṇḍ* (: राधा a celebrated gopī, कुण्ड pool) m. A pool dug by Krishṇ's command at the foot of the mountain Gobardhan, filled with consecrated water ; p. 61, l. 7.

s. राम *Rām* (s. राम ; रम् to sport) m. A name common to three incarnations of Vishṇu. 1. Parshurām, son of the Muni Jamadagni, born at the commencement of the second *or* Treta Yug, to punish the tyrants of the Kshatriya race. 2. Rāmachandra, son of Dasaratha, king of Oude, born at the close of the second Age, to destroy Rāvan, the Daitya monarch of Ceylon. 3. Balarām, the elder and half-brother of Krishṇ, born at the end of the third *or* Dwāpar Age, and son of Rohinī ; p. 7, l. 27. राम कृष्ण *Rām Krishṇ*,

Balarām and Krishn (by Dwandwa); p. 17, l. 1.

s. रामचंद *Rāmchand* (s. रामचन्द्र : राम Rāma, चन्द्र the moon—the moon-like Rāma) m. Name of the seventh incarnation of Vishṇu; p. 129, l. 26.

s. राम नामी कपड़े *Rām nāmī kapṛe* (: s. राम the god Rāma, नाम name, कपड़े clothes) m. pl. Garments worn by the Vaishṇavas, or sectaries of Vishṇu, imprinted all over with the name of Rām; p. 166, l. 17.

s. रामावतार *Rāmāvatar* (: s. राम Rāma, अवतार descent) m. The seventh incarnation of Vishṇu, in the form of Rāmachandra, for the purpose of destroying the tyrant Rāvana; p. 8, l. 15.

H. रार *rār* / रारि *rāri* } f Wrangling, quarrel; p. 112, l. 26.

H. रारी *rārī*, adj. Quarrelsome, contentious.

H. राव्चाव *rāwchāw*, m. Gaiety, amusement, merriment, mirth. 2. Affection, endearment; p. 74, l. 2.

H. रावत *rāwat* / राव्ता *rāwtā* } m. A warrior, a champion; p. 35, l. 8.

s. रावन *Rāvan* (s. रावण ; रु to cry) m. The king of Ceylon—a powerful Daitya who carried off Sītā, wife of Rāmachandra, and was slain by him; p. 8, l. 3.

H. राव्रा *rāwrā* / राव्रो *rāwro* } possess. pron. Your.

s. रास *rās* (s. रास ; रस् to sound) m. A festival amongst the cowherds, including songs and dances, especially the circular dance as danced by Krishn and the Gopīs *or* cowherdesses; p. 38, l. 13. रास धारी *rās dhārī*, A dancing boy who imitates the rās of Krishn. 2. (s. राशि) f. A heap. 3. A sign of the zodiac. रास चक्र *rās chakr*, m. The zodiac.

s. रिझाना *rijhānā* (; s. रञ्ज् to colour) v.a. To please. 2. (met.) To plague, to tease, to perplex.

s. रिद्धि *riddhi* (s. ऋद्धि ; रिध् to grow) f. Increase, wealth, prosperity. रिद्धि सिद्धि *riddhi siddhi*, Prosperity and success; p. 41, l. 14.

s. रिपु *ripu* (s. रिपु ; रप् to abuse) m. An enemy; p. 66, l. 22.

s. रिस *ris* (s. रोष ; रुष् to be angry) f. Anger, passion; p. 22, l. 5.

s. रिसाना *risānā* (; रिस *q.v.*) v.n. To be displeased, to be angry; p. 22, l. 9.

s. रींछ *rīṅchh* (s. ऋच्छ ; ऋष् to go) m. A bear; p. 129, l. 26.

s. रीझना *rījhnā* (; s. रञ्ज् to colour) v.n. To be pleased, to be gratified; p. 56, l. 21.

s. रीता *rītā* (s. रिक्त ; रिच् to void) adj. Empty. रीते हाथ *rīte hāth*, Empty-handed; p. 158, l. 23.

H. रुई *ruī*, f. Cotton; p. 142, l. 15.

s. रुक्ना *ruknā* (; s. रुध् to confine) v.n. To be stopped or confined, to be impeded; p. 39, l. 16.

s. रुक्म *Rukm* (s. रुक्मी ; रुक्म gold) m. Name of the eldest son of king Bhīshmak, whose sister Rukminī was carried off and married by Krishn; p. 108, l. 13.

s. रुक्म केश *Rukm kesh*, m. Name of the second son of king Bhīshmak; p. 108, l. 15.

s. रुक्मिनी *Rukminī* (s. रुक्मिणी ; रुक्म gold) f. A princess, daughter of king Bhīshmak of Kundalpur, betrothed to Sisupāl, but carried off by Krishn. She had been Sītā in a former birth; p. 8, l. 27.

s. रुचि *ruchi* (s. रुचि ; रुच् to shine) f. Desire, wish, avidity, desire of *or* pleasure in eating; p. 66, l. 15. 2. Light, lustre.

s. रुदन *rudan* (s. रुदण : रुद् to weep) m. Weeping, crying, a tear, tears; p. 222, l. 20.

s. रुद्र *Rudr* (s. रुद्र ; रुद् to weep) m. A name of Shiva, because he dispels the tears of his votaries; p. 8, l. 11.

s. रुधिर *rudhir* (s. रुधिर ; रुध् to obstruct) m. Blood; p. 104, l. 13.

s. रुस्ना *rusnā* / रूस्ना *rūsnā* (; s. रुष् to be angry) v.n. To be angry, to be displeased; p. 52, l. 27.

s. रुहितास *Ruhitās*, m. The son of king Harichand, who was translated on account of his piety; p. 200, l. 22.

s. रूख *rūkh* (s. रूच ; रूच to be rough) m. A tree; p. 24, l. 8.

s. रूखा *rūkhā* (s. रुच harsh ; रुह् to grow) adj. Dry, plain, rough, harsh; p. 49, l. 16. Unkind, pure, simple, unseasoned. रूखा सूखा *rūkhā sūkhā*, Plain, blunt, harsh words.

s. रूखनि *rūkhani*, ablative pl. of रूख (*q.v.*) Braj form of रूखों (*sc.* पर) On the trees; p. 34, l. 13.

s. रूप *rūp*, m. Form, figure, shape, appearance; p. 2, l. 17. Beauty; p. 6, l. 11. रूप निधान *rūp-nidhān*, Receptacle of beauty. रूप सागर *rūp-sāgar*, Ocean of beauty; p. 49, l. 12.

s. रूपए *rūpae*, (acc. pl. of रूपियः) m. Silver coins; p. 16, l. 22.

s. रूपा *rūpā* (s. रूप्य ; रूप form) m. Silver; p. 16, l. 10.

s. रे *re*, a vocative particle = अरे (*q.v.*); p. 22, l. 5.

H. रेंक्ना *reṅknā* / रैंक्ना *raiṅknā* v.n. To bray (as an ass); p. 29, l. 22.

s. रेख *rekh* / रेखा *rekhā* (s. लेखा : लिख् to write) f. Writing, line, fate; p. 17, l. 5.

s. रेत *ret* (s. रेतजा) f. Sand; p. 52, l. 11. 2. Filings.

s. रेती *retī* (; रेत sand, *q.v.*) f. Sandy ground on the shore of a river, sand; p. 50, l. 17.

s. रेनु *renu* (s. रेणु : रि to hurt) f. Dust. पग रेनु *pag renu*, Dust of the feet; p. 65, l. 19.

s. रेनुका *Renukā*, f. Name of the wife of Yamadagni; p. 221, l. 13.

s. रेवत *Rewat*, m. A king of Arntā, whose daughter Rewatī married Balarām; p. 106, l. 9. 2. A mountain on which the monkey Dubid sate; p. 188, l. 14.

s. रेवती *Rewatī* (; s. रेवत Rewat) f. Name of the daughter of King Rewat—married to Balarām. 2. The 27th lunar mansion—consisting of ζ Piscium and 31 other stars.

s. रेवतीरमन *Rewatīraman* (s. रेवतीरमण : रेवती Rewatī, daughter of King Rewat, रमण a husband ; रम् to sport) m. A name of Balarām, the elder brother of Krishn,—so called as being the husband of Rewatī; p. 20, l. 18.

s. रैन *rain* (s. रजनि) f. Night; Preface.

H. रोंगटी *roṅgṭī* / रोंट्गी *roṅṭgī* f. Wrangling, cheating; p. 159, l. 5.

H. रोंट्ना *roṅṭnā*, v.a. To delay.

s. रोक्ना *roknā* (; s. रुज् to impede) v.a. To stop, to impede. किसी की रोकी न रुकीं *kisī kī rokī na rukīṅ*, Though impeded by any one did not stop; p. 39, l. 16.

S. रोग *rog* (S. रोग ; रुज् to be *or* make sick) m. Disease ; p. 67, l. 4.

S. रोझ *rojh* (S. ऋष्य *or* रिष्य ; ऋष् to go) m. The painted or white-footed antelope (Antilope picta) ; p. 129, l. 21.

S. रोटी *roṭī*, f. Bread. Wheaten cakes toasted on an earthen *or* iron dish *or* plate ; p. 23, l. 3.

H. रोना *ronā*, v.n. To cry, to weep ; p. 4, l. 21.

S. रोम *rom* (S. रोम ; रु to make) m. The hair of the body, down ; p. 28, l. 17.

H. रोली *rolī*, f. A mixture of rice, turmeric and alum, with acid,—used to paint the forehead ; p. 42, l. 30.

S. रोवन *rowan*, inflec. infin. of रोवना = रोना (*q.v.*) To weep, to cry ; p. 19, l. 4.

S. रोहन *Rohan* (S. रोहण) m. The name of a king whose daughter—Rohanī—was married to Vasudev and became the mother of Balarām ; p. 5, l. 26.

S. रोहनी *Rohanī* (S. रोहिणी ; रुह् to grow) f. The daughter of King Rohan, wife of Vasudev and mother of Balarām ; p. 5, l. 26. 2. The fourth mansion of the moon—comprising Aldebaran and four other stars in Taurus ; p. 13, l. 7.

A. रौनक *Raunak*, m. Name of a region to which the serpent Kālī was sent by Kṛishṇ. In the Vishṇu Purāṇā he is sent into the sea ; p. 32, l. 2. (Perhaps from the A. رونق *raunak*, Beauty).

S. रौर *raur* (S. राव ; रु to cry *or* sound) m. Noise, clamour, outcry. 2. Fame ; Preface.

ल

S. लंका *Lankā* (S. लङ्का ; लक् to obtain (happiness, in which) m. The capital of Rāvan, Ceylon ; p. 147, l. 5.

H. लंगड़ा *langṛā*, adj. Lame ; p. 49, l. 19.

S. लंबा *lambā* (S. लम्ब ; लवि to fall, to sound) adj. Long ; p. 13, l. 22, and p. 74, l. 21.

S. लकीर *lakīr* / लखीर *lakhīr* (S. लेखा ; लिख् to write) f. A line ; p. 10, l. 20. पत्थर की लकीर *patthar kī lakīr*, A writing on a stone, indelible ; p. 112, l. 9.

S. लकुट *lakuṭ* (S. लगुर ; लग् to go) m. A staff, a stick, a club ; p. 27, l. 8.

S. लच्छन *lakshan* (S. लक्षण ; लक्ष् to mark) m. A sign, mark, token ; p. 162, l. 6.

S. लच्मण *Lakshmaṇ* / लच्मन *Lakshman* (S. लक्ष्मण ; लक्ष् to mark *or* see) m. The son of Dasaratha by Sumitra, and half-brother of Rāmachandra ; p. 8, l. 26.

S. लच्मना *Lakshmanā* (S. लक्ष्मणा ; लक्ष् to mark *or* see) f. The daughter of the king of Bhadrdes and one of the wives of Kṛishṇ ; p. 145, l. 22. 2. The daughter of Duryodhan—married to Sambū, the son of Kṛishṇ by Jāmwatī ; p. 189, l. 12.

S. लच्मी *Lakshmī* (S. लक्ष्मी ; लक्ष् to see) f. Lakshmī, one of the three principal female deities of the Hindūs, wife of Vishṇu, and goddess of wealth and prosperity ; p. 15, l. 24. 2. Wealth, prosperity ; p. 44, l. 7.

S. लच्मी कंत *Lakshmī kant* (: लच्मी *q.v.*, कंत husband, *q.v.*) m. The husband of Lakshmī, goddess of prosperity (an epithet of Kṛishṇ) ; p. 121, l. 2.

s. लखा *lakhnā* (; s. लच् to see) v.a. To see, to look at, to perceive; p. 7, l. 25. 2. To understand.

s. लग *lag* (; s. लग् to be in contact) adv. To, as far as, near, till, until, up to, close to.

s. लगातार *lagātār* (; लग्ना *q.v.*) adv. Successively; p. 44, l. 30.

s. लगाना *lagānā* (active of लग्ना *q.v.*) v.a. To close, to apply; p. 3, l. 14. To attach, join, fix, ascribe, inform: p. 22, l. 4. To impose, lay, add, place, put; p. 21, l. 22. To plant, set, inflict, shut, spread, fasten, employ, engage, use.

s. लगन *lagan*, लग्न *lagn* (s. लग्न ; लग् to be with or near) f. The rising of a sign, its appearance above the horizon, the moment of the sun's entrance into a zodiacal sign; p. 7, l. 10. m. A large flat hollow copper bason. 2. Friendship, love; p. 38, l. 12. 3. Espousal.

s. लग्ना *lagnā* (; s. लग् to be with or near) v.n. To be close to, to adjoin, to touch, to be connected with, to apply, to begin (in this sense it is used with the inflected infinitive of another verb, as कहने लगीं *kahne lagīn*, they began to say; p. 4, l. 18.) To grow upon; p. 9, l. 16. To follow; p. 28, l. 4.

s. लजाना *lajānā* (; s. लज्जा ; लज्ज् to be modest) v.n. To be ashamed or abashed; p. 37, l. 18.

s. लज्जा *lajjā* (; s. लज् to be ashamed) f. Bashfulness, modesty, shame; p. 122, l. 22.

s. लज्जामान *lajjāmān* (s. लज्जमान ; लज्ज् to be ashamed) adj. Ashamed, abashed.

s. लज्जित *lajjit* (s. लज्जित ; लज्जा modesty) adj. Abashed, ashamed; p. 28, l. 20.

H. लट *laṭ*, f. Tangled hair; p. 68, l. 17.

H. लटक *laṭak*, f. Hanging, dangling, an affected motion in blandishment; p. 53, l. 23.

H. लटुरी *laṭurī*, लटूरी *laṭūrī* (; H. लट tangled hair) A curl. लटूरियां *laṭūriyān*, Curls; p. 21, l. 2.

H. लट्कन *laṭkan*, m. A pendant, drops in the ear; p. 163, l. 17.

H. लट्काना *laṭkānā* (trans. of लटक्ना *q.v.*) v.a. To suspend, to let down; p. 180, l. 7.

H. लट्पटा *laṭpaṭā*, adj. Playful, wanton, frisky, humorous. 2. Irregularly folded (a turban).

H. लट्पटाना *laṭpaṭānā*, v.n. To stagger, to trip.

s. लड्का *laṛkā* (; s. लड् to sport) m. A boy; p. 5, l. 22.

s. लड्की *laṛkī* (; s. लड् to sport) f. A girl; p. 5, l. 22.

H. लड्खड़ाना *laṛkhaṛānā*, लड्खराना *laṛkharānā* v.n. To stagger, to trip, to roll over and over; p. 212, l. 21. 2. To stutter *or* stammer.

s. लड्ना *laṛnā*, लर्ना *larnā* (; s. लड् to stir *or* agitate) v.n. To fight; p. 29, l. 15.

s. लड़ाना *laṛānā* (; s. लड् to frolic) v.a. To play, to fondle; p. 21, l. 7.

H. लड़ी *laṛī*, A string of pearls; p. 56, l. 15.

H. लड्डू *laḍḍū*, m. A sweetmeat made of sugar with rasped kernel of cocoa-nut and cream, and formed into a large ball; p. 42, l. 24.

s. लता *latā* (s. लता ; लत् to enfold) f. A creeper, a vine.

H. लथड्ना *lathaṛnā*, v.n. To be draggled.

H. लथेड्ना *latheṛnā* (caus. of लथड्ना) v.a. To draggle *or* besmear with dirt; p. 22, l. 24.

H. लद्ना *ladnā*, v.n. To be loaded.

H. लदाना *ladānā*, v.a. To load.

H. लपट *lapaṭ*, f. Odour; p. 111, l. 7. 2. Heat, warmth; p. 30, l. 14.

लपटना *lapaṭnā* }
H. लपटाना *lapṭānā* } v.n. To cling to, to wrap round, to adhere to; p. 31, l. 14.
लिपटना *lipaṭnā* }

H. लपेटना *lapeṭnā*, v.a. To wrap up, to fold, to enclose, to pack, to roll, to spread.

S. लब *Lab*, m. A Daitya—father of Jālab—who was slain by Balarām; p. 215, l. 19.

H. ललकारना *lalkārnā*, v.a. To call to defyingly, to shout, to challenge; p. 60, l. 19.

H. ललचाना *lalchānā*, v.a. To long for, to desire; p. 82, l. 16.

S. ललिता *Lalitā* (s. ललिता sportive *or* desired; लड् to frolic, *or* लल् to desire) f. Name of a cowherdess who addressed Ūdho; p. 91, l. 12.

S. लसना *lasnā* (; s. लस् to embrace, to adhere) v.n. To become, to be fit. 2. To be skilful, to shine. 3. To encircle; p. 238, l. 5.

H. लहकना *lahaknā*, v.n. To be kindled *or* lighted, to rise up in a flame; p. 105, l. 18. 2. To glitter *or* shine. 3. To wave as herbage before the wind.

S. लहर *lahar* (s. लहरि) f. A wave; p. 6, l. 9. 2. Whim, fancy, vision. 3. Effect of a snake's poison. 4. Emotion.

H. लहैं *lahaiṅ*, 2 p. sing., past tense, of लेनौ to take (a Braj form) Have ye taken; p. 172, l. 10.

S. लहना *lahnā* (; s. लाभ) v.a. To find, to get, to obtain; p. 51, l. 22. To find out; p. 69, l. 10. 2. v.n. To avail, to answer, to boot.

S. लह्यौ *lahyau*, 2 p. sing. past tense of लहनौं *lahnauṅ* (*q.v.*) to experience. (a Braj form) Have seen *or* experienced; p. 80, l. 14.

H. लहलहाना *lahlahānā*, v.n. To bloom, to be verdant, to flourish; p. 33, l. 14.

H. लहलहा *lahlahā*, adj. Blooming, flourishing.

S. लाख *lākh* (s. लक्ष; लक्ष् to mark *or* see) m. A hundred thousand; p. 16, l. 10.

S. लाग *lāg* (; s. लग् to be in contact) f. Affection, love; p. 74, l. 3.

S. लागना *lāgnā* (a Braj form.) = लगना *q.v.*

S. लाज *lāj* (s. लज्जा; लज् to be modest) f. Shame, modesty; p. 37, l. 30. An action opposed to decency; p. 38, l. 8.

S. लाठ *lāṭh* } (s. यष्टि; यक्ष् to worship) f. A
लाठी *lāṭhī* } pillar, an obelisk. 2. A club or staff; p. 29, l. 21, and p. 218, l. 2. लाठी टेक *lāṭhī ṭek*, Leaning on his staff; p. 38, l. 19.

S. लाड़ *lāṛ* (s. लड् to frolic) m. Play, sport, caresses; p. 21, l. 7. लाड़ लड़ाना *lāṛ laṛānā*, To fondle (*ibid.*)

S. लाड़ला *lāṛlā* (; s. लाड़ caress, *q.v.*) adj. Darling, dear.

H. लात *lāt*, f. A kick. लात मारना *lāt mārnā*, v.a. to kick; p. 19, l. 8. लातें चलाना *lāteṅ chalānā*, To discharge kicks; p. 63, l. 20.

H. लादी *lādī*, f. A small load, particularly that of a washerman; p. 72, l. 15.

H. लादना *lādnā* (caus. of लदना) v.a. To lade; p. 16, l. 22.

S. लाभ *lābh* (s. लाभ; लभ् to get) m. Gain; p. 72, l. 30.

P. लाल *lāl* (P. لال) Red; p. 3, l. 27. m. A ruby; Preface. s. (; लल् to wish) Dear, darling. 2.

Name of the author of the *Prem Sāgar*; p. 1, l. 13.

s. लालसा *lālasā* (s. लालसा ; लल् to desire) f. Ardent desire; p. 126, l. 29.

P. लाली *lālī* (; P. لال) f. Redness; p. 163, l. 7.

s. लालची *lālchī* (; s. लालसा desire ; लल् to wish for) adj. Greedy, covetous; p. 57, l. 2.

s. लिखा *likhā* (; लिखना *q.v.*) f. Writing; p. 13, l. 25.

s. लिखना *likhnā* (; s. लिख् to write) v.a. To write; p. 91, l. 20.

s. लिखाना *likwānā* (caus. of लिखना *q.v.*) v.a. To cause to write; p. 84, l. 25.

H. लिटाना *liṭānā* (caus. of लेटना *q.v.*) v.a. To cause to recline, to make to repose; p. 111, l. 25.

E. लिप्टन अबराहाम लाकट *Lipṭan Abarāhām Lākaṭ*, Lieutenant Abraham Lockett; Preface.

H. लिपटाना *lipaṭānā* (caus. of लपेटना *q.v.*) v.a. To cause to involve or encircle.

H. लिपटना *lipaṭnā* = लपटना (*q.v.*); p. 131, l. 24.

H. लिये *liye*, postp. For, on account of, for the sake of; Preface. past part. of लेना *lenā*, to take (*q.v.*) Having taken, holding; p. 2, l. 9.

s. लिवैया *liwaiyā* (; s. लेना to take) m. Taken; p. 37, l. 29.

s. लिलाट *lilāṭ* | लिलार *lilār* (s. ललाट ; लल् wish) m. The forehead; p. 173, l. 29. 2. Fate, destiny.

s. लीक *līk* (s. लेखा a line ; लिख् to write) f. The marks of a carriage-wheel, path, track, trace. Disgrace; p. 121, l. 23.

s. लीन *līn* (s. लीन ; ली to be in contact with) adj. Absorbed, immersed; p. 23, l. 12. United, embraced.

s. लीने *līne*, 3 p. pl. past tense of लेना *lenā*, To take, a Braj form for लिये *liye*; p. 62, l. 10. लीने बुलाय *līne bulāe* for बुलाय लिये *bulāe liye*.

s. लीपना *līpnā* (; s. लिप् to smear) v.a. To besmear; p. 22, l. 17.

H. लीर *līr*, f. A strip or shred of cloth; p. 188, l. 25.

s. लीला *līlā* (s. लीला ; ली embrace, ला to get or give) f. Play, sport; p. 8, l. 21.

s. लुकना *luknā* (; s. लुक concealment) v.n. To lie hid, to be concealed.

s. लुकाना *lukānā* (caus. of लुकना) v.a. To conceal; but at p. 89, l. 26, in a middle sense, Having concealed himself.

s. लुटाना *luṭānā* (caus. of लुटना *q.v.*) v.a. To cause to plunder; p. 21, l. 9. To squander.

s. लुढ़ना *luṛhnā* (; s. लुठ् to roll about) To roll, to be spilt.

s. लुढ़ाना *luṛhānā* (caus. of लुढ़ना, *q.v.*) v.a. To cause to roll, to spill; p. 21, l. 12.

s. लुहांगी *luhāngī* (; s. लोह iron) f. A staff armed with iron; p. 173, l. 6.

H. लूला *lūlā*, adj. Lame of the hands, crippled; p. 49, l. 19.

s. लेउ *leu* (Braj for लो *lo*) 2 p. pl. imp. of लेनौ *lenau*, to take, Take thou; p. 67, l. 18.

s. लेखा *lekhā* (s. लेखा ; लिख् to write) m. Account, reckoning; p. 147, l. 13.

s. लेखना *lekhnā*, v.n. To be accounted; p. 53, l. 15.

H. लेटना *leṭnā*, v.n. To lie down, to repose; p. 111, l. 24.

s. लेना *lenā* (; s. ला to get) v.a. To take. ले *le*, past. part. Having taken; Preface.

s. लेवा *lewā*, m. A taker; p. 150, l. 7.

S. लेहै *lehai*, Braj form of लेना *lenā*, to take. At p. 23, l. 2, a verbal noun, The taking.

H. लै *lai*, Braj of ले past conj. part. of लेना *lenā*, to take, Taken. लै लै *lai lai*, Repeating; p. 34, l. 13.

H. लै जै है *lai jai hai*, Braj for लेजाए, 3 p. sing. aor. of लेजाना to take, He will take; p. 126, l. 8.

S. लैवे *laiwe*, a Braj form of the infin. लेनौ *lenau*, To take (*vide* De Tassy's *Grammar*, p. 36, note 1.); p. 72, l. 27.

H. लों *loṅ* / लौं *lauṅ* } adv. Till, to, up to; p. 34, l. 10.

S. लोक *lok* (S. लोक ; लोक् to see) m. People. 2. A world *or* division of the universe:—In general three loks are enumerated—स्वर्ग लोक *swarga-lok* or देव लोक *deva-lok*, heaven; मर्त्य लोक *marttya-lok*, earth; पाताल लोक *Pātāla-lok*, hell; p. 8, l. 6. Another classification gives seven loks—भूर् लोक *bhūr-lok*, the earth. भुवर् लोक *bhuvar-lok*, region of Munis, Siddhis, etc., between the earth and the sun. स्वर् लोक *shur-lok*, Indra's heaven, between the sun and the polar star. महर् लोक *mahar-lok*, abode of Bhṛigu and other saints co-existent with Brahmā, and who—during the conflagration of the lower worlds—ascend to जन लोक *jana-lok*, the abode of Brahmā's sons Sanaka, Sānandr, Sanātana, and Sanatkumāra. तपो लोक *tapo-lok*, where the deities called Vairāgīs reside. सत्य लोक or ब्रह्म लोक *Satya-lok* or *Brahma-lok*, the abode of Brahmā—translation to which exempts from further birth. The three first worlds are destroyed at the end of each Kalpā, or day of Brahmā; the three last at the end of his life *or* of 100 of his years; the fourth lok lasts the same time, but is uninhabitable from heat while the three lower worlds are burning. Another enumeration calls these seven worlds—earth, sky, heaven, middle region, place of birth, mansion of the blest, and abode of truth; placing the sons of Brahmā in the sixth division, and stating the fifth, or *jana-lok*, to be that where animals destroyed in the general conflagration are born again; p. 31, l. 17.

S. लोक्पाल *Lokpāl* (S. लोकपाल : लोक world, पाल who cherishes) m. A king. 2. Deities who protect the regions of the sun, moon, fire, wind,—Indra, Yama, Varuna, and Kuvera; p. 166, l. 3. (*vide* दिग्पाल).

S. लोकालोक *lokālok* (S. लोकालोक : लोक seeing, अलोक not seeing) m. A mountainous belt surrounding the outermost of the seven seas and bounding the world; p. 238, l. 2.

S. लोग *log* (S. लोक) m. People, mankind; p. 4, l. 10.

S. लोचन *lochan* (S. लोचन ; लोच् to see) m. The eye; p. 97, l. 5. लोचन सुफल होना *lochan suphal honā*, To gratify the eyes; p. 36, l. 5. To derive profit from them.

S.H. लोट्पोट *loṭpoṭ*, adj. Wallowing, tumbling and tossing, restless.

H. लोटा *loṭā*, m. An earthern pot for cooking *or* carrying water, a pipkin. 2. A small metal pot (generally of brass or tinned iron; p. 218, l. 2.

S. लोट्ना *loṭnā* (; S. लुट् to roll on the ground) v.n. To wallow, to roll on the ground. लोट पोट्के *loṭ poṭke* (from लोट्ना पोट्ना) v.n. Having rolled on the ground; p. 29, l. 24.

H. लोत *lot* / लोथ *loth* f. A corpse; p. 79, l. 22.

S. लोभ *lobh* (s. लोभ ; लुभ् to covet) m. Avarice, covetousness; p. 39, l. 25. 2. Temptation

S. लोभी *lobhī* (s. लोभी ; लोभ avarice, *q.v.*) adj. Avaricious; p. 215, l. 1.

S. लोम *lom* (s. लोम ; लू to sound) m. The hair of the body.

S. लोमस *Lomas* (s. लोमस ; लोम hair or down) m. The name of a saint and ascetic celebrated in the Mahābhārata. King Parikshit having contemptuously cast a dead snake upon the neck of Lomas while he was sitting in a state of abstraction, Shṛingī, the saint's son, imprecated a curse upon the king that he should die of the bite of a snake on the seventh day; p. 3, l. 14.

S. लोल *lol* (s. लोल ; लोड् to be frantic) adj. Shaking, tremulous.

S. लोह *loh* (s. लोह ; लू to cut) m. Iron. लोह लाठ *loh lāṭh*, m. An iron mace; p. 64, l. 4. लोहा बजाना *lohā bajānā*, To fight with swords. लोहा बाजना *lohā bājnā* (: लोहा iron, बाजना to strike, *q.v.*) v.n. To smite with swords; p. 100, l. 5.

S. लोहू *lohū* (s. लोहित ; रुह् to grow) m. Blood; p. 31, l. 20, and p. 64, l. 8.

H. लौटना *lauṭnā*, v.n. To turn back, to return.

S. ल्याऊं *lyāūṅ*, Hindī form of ले आऊं *le āūṅ*, 1 p. sin. aor. of ले आना to bring, I will come bringing; p. 27, l. 16.

H. ल्यारी *lyārī*, m. A wolf; p. 65, l. 5.

S. ल्याव *lyāw*, a Braj form of लाव *lāw*, Bring, 2 p. imp. of लानौ *lānau*; p. 64, l. 25.

व

S. वंत *waṅt* (s. वंत pl. of वान *q.v.*)

S. वत *wat* (particle in composition) As, like.

S. वर्नन *varnan* (s. वर्णन : वर्ण् to colour) m. Description; p. 33, l. 11. Explanation, praise. वर्नन करना *varnan karnā*, To explain, describe.

S. वर्षा *varshā* (वर्ष : वृष् to sprinkle) f. Rain; p. 138, l. 6.

E. वलिज्ली *Walijlī*, The English word Wellesley: Preface.

S. वशिष्ठ *Vashishṭh* (वशिष्ठ : अव before, शास् to govern, *i.e.*, the other saints) m. A Rishi or divine sage of the first order; he is also a Brahmādika, a Prajāpati, and one of the seven stars of Ursa Major; p. 4, l. 23.

H. वसीठ *vasīṭh*, m. An agent, an ambassador; p. 63, l. 6.

S. वसुदेव *Vasudev* = बसुदेव (*q.v.*)

S. वस्तु *vastu* (s. वस्तु ; वस् to abide) m. A thing, matter, substance. वस्तु भाव *vastu bhāv*, f. Chattels, baggage; p. 25, l. 14.

S. वस्त्र *vastr* (s. वस्त्र ; वस् to wear) m. Clothes; p. 37, l. 13.

H. वह *wah*, pr. 3 pers., He; p. 2, l. 13.

H. वहां *wahāṅ*, adv. There, in that place; p. 2, l. 8.

H. वा *wā*, Braj for उस *us*, infl. of वह (*q.v.*) वा को *wā ko* for उस का *us kā*, Of her; p. 92, l. 13.

S. वांछित *vāṅchhit* (s. वाञ्छित : वाञ्छ् to desire) Wished, desired, longed-for.

S. वाक्य *wākya* (s. वाक्य ; वच् to speak) m. A word, speech; p. 175, l. 25.

S. वाचा *vāchā* (s. वाचा ; वच् to speak) f. Speech.

language, word. 2. Affirmation, agreement; p. 199, l. 27.

s. वान *wān* (particle used in composition) Possessing, endowed with, as रथवान *rathwān*, A charioteer; p. 175, l. 5. धन्वान *dhanwān*. Rich; p. 200, l. 9.

s. वापी *wāpī* (s. वापी ; वप् to sow seed (of the lotus) f. A large oblong pool; p. 218, l. 9.

H. वार *wār*, m. A blow, a wound.

s. वार *var* = बार *bār* (*q.v.*)

s. वारानशी *Wārānashī* (s. वाराणसी : वर best, अनस water, alluding to the Ganges, on which the city stands) f. The holy city Benares; p. 139, l. 2.

s. वारापार *wārāpār* (s. अवारपार ; अवार the near, पार the opposite bank) On this side and on that side. m. Bound, limit; p. 113, l. 29.

H. विंहें *vinhen*, dat. or acc. pl. of वह (*q.v.*) for उन्को To them, or them, and p. 8, l. 11, used respectfully for उस्को him.

s. विथराना *vitharānā* (s. विस्तरण ; स्तृ to spread) v.a. To scatter; p. 121, l. 18. To sprinkle.

s. विदर्भ *Vidarbh* (s. विदर्भ : वि privative, दर्भ the sacred grass, which did not grow in that country on account of the curse of a saint whose son died from the wound of a blade of this grass) m. A district and city to the south-west of Bengāl, the modern Barā Nāgpur or Berār proper; p. 106, l. 23.

s. विधाता *vidhātā* = विधाता (*q.v.*); p. 20, l. 22.

s. विध्वंस *vidhwans* (s. विध्वंस : वि, ध्वंस् to fall) m. Non-existence, annihilation, slaughter; p. 204, l. 17.

s. विन *vin* (s. विना ; वि privative) post. Without; p. 27, l. 26.

s. विनती *vinatī* (s. विनति : वि an expletive, नम् to bow) f. Bowing, hence "humble supplication;" p. 8, l. 11.

s. विपरीत *viparīt* (s. विपरीत : वि implying change, परि contrariety, इत gone) adj. Reverse, contrary, opposite. 2. Mischief; p. 97, l. 17.

s. विभौ *vibhau* (s. विभव : वि implying variety, भव being) m. Substance, property, wealth; p. 219, l. 16.

s. विमुख *vimukh* (s. विमुख : वि averse, मुख face) adj. With averted face, baffled, disappointed; p. 196, l. 18.

s. विराम *virām* (*see* बिराम); p. 139, l. 4.

s. विरुद्ध *viruddh* (s. विरुद्ध : वि against, रुध् to stop) adj. Opposite, opposed to, contrary; p. 143, l. 27.

s. विरोचन *Virochan* (s. विरोचन : वि, रुच् to shine) m. The son of King Prahlād and father of Bali; p. 160, l. 6.

s. विरोध *virodh* (s. विरोध : वि, रुध् to stop) m. Enmity, variance, hostility; p. 191, l. 11.

s. विलोक्ना *viloknā* (s. विलोकन : वि, लोक् to see) v.a. To see, to look at; p. 52, l. 17.

s. विवाह *vivāh* (s. विवाह : वि mutually, वह् to take) m. Marriage; p. 106, l. 5.

s. विवेक *vivek* (s. विवेक : वि severally, विच् to judge) m. Judgment, discrimination, discretion; p. 50, l. 25.

s. विवेकी *vivekī* (s. विवेकी ; विवेक, *q.v.*) adj. Discreet, judicious; p. 214, l. 29.

s. विश्व *vishwa* (s. विश्व ; विश् to pervade) m. The universe, the world.

s. विश्वकर्मा *Vishwakarmā* (s. विश्वकर्म्मा : विश्व universal, कर्म्म work) m. The son of Brahmā and artificer of the gods; p. 101, l. 26.

s. विश्वास *wishwās* / विस्वास *wiswās* (s. विश्वास : वि, श्वस् to breathe or live) m. Trust, confidence, faith. विश्वास घाती *wishwās ghātī* (: s. विश्वास confidence, घाती a killer or destroyer ; घात a blow ; हन् to kill) m. A treacherous friend, one who seeks to take advantage of the confidence placed in him; p. 90, l. 10.

H. विस *wis* or *vis*, inflexion of the pron. 3 p. वह *wah*, and equal to उस *us*. Him, her, it, that; Preface.

s. विस्वामित्र *Wiswāmitr* (s. विश्वामित्र : विश्व all, मित्र friend) m. A Muni—the son of Gādhi—originally of the military order, but who became, by long and painful austerities, a Brahmarshi—in which character he appears in the Rāmāyana as the early preceptor and counsellor of Rāma; p. 200, l. 4.

s. वृक्ष *vriksh* (s. वृक्ष : वृक्ष् to cover) m. A tree in general; p. 6, l. 7.

s. वृतासुर *Vritāsur*, m. A dæmon, who was otherwise invulnerable, but was slain with a weapon made from the bone of the Muni Dadhīch; p. 201, l. 15.

H. वे *ve*, n. pl. pr. 3 p. वह *wah*. They; p. 2, l. 10.

s. वेश्या *veshyā* (; s. वेश ornament) f. A harlot; p. 3, l. 9.

s. वेनु *Vainu*, m. Name of a king who, in his next birth, became Rāvan, and was destroyed by Rāma; p. 204, l. 16.

s. वैराग्य *vairāgya* = वैराग्य (*q.v.*); p. 204, l. 8.

s. वैश्य *vaishya* (s. वैश्य ; विश् to enter (fields) m. A man of the third or agricultural and mercantile tribe; p. 42, l. 1.

s. वैसाख *vaisākh* (s. वैशाख ; विशाखा the constellation in which the moon is full this month, or विशाखा revolving) m. The first month in the Hindū calendar (April-May); p. 184, l. 21.

s. व्याकरण *vyākaran* (s. व्याकरन : वि, आङ्कृ to make or do) m. Grammar, the science of grammar; p. 85, l. 6.

s. व्याधि *vyādhi* (s. व्याधि : वि, आङ, धा to have) m. Sickness, disease; p. 138, l. 5.

s. व्यवहार *vyavahār* / व्यौहार *vyauhār* (s. व्यवहार ; वि, अव implying dissension, हृ to take) m. Profession, calling, trade, transaction, practice, custom; p. 57, l. 15.

s. व्यास *Vyās* / व्यासदेव *Vyāsadev* (s. व्यास : वि and आङ before, अस् to pervade) m. A celebrated saint and author, the supposed original compiler of the Vedas and Purānās; also the founder of the Vedānta philosophy; Preface, and p. 4, l. 23.

श

s. शंकर *shankar* (s. शङ्कर ; शं good fortune, कर making) m. A name of Shiva; p. 160, l. 12.

s. शंख *shankh* (s. शङ्ख ; शम् to pacify) m. The conch shell used by the Hindūs in two ways: in offering libations, and secondly in sounding it as a horn at sacrifices. In the latter use it is often referred to in battles as held by the heroes. It is also one of the emblems of Vishnu; p. 13, l. 9.

s. शंखचूड़ *Shankhchūr*, m. The name of a Yaksh

slain by Krishṇ for attacking the Gopīs; p. 57, l. 27.

s. शकुन *Shakun* (s. शकुनि ; शक् to be able) m. The maternal uncle of the Kaurava princes, and counsellor of Duryodhan; p. 216, l. 24.

s. शकुन *shakun* / सगुन *sagun* (s. शकुन ; शक् to be able, P. شگون) m. Augury, good omen; p. 65, l. 25.

s. शक्ति *shakti* (s. शक्ति ; शक् to be able) f. Power; p. 45, l. 9. Strength. 2. The energy or active power of a deity personified as his wife, as Gaurī of Shiva, Lakshmī of Vishṇu; etc.

s. शत्रु *shatru* (s. शत्रु ; शद् to go) m. An enemy; p. 15, l. 13. शत्रु भाव *shatru bhāv*, Like an enemy.

s. शब्द *shabd* (s. शब्द ; शब्द् to sound) m. Sound in general, a sound; p. 14, l. 20. 2. A word. 3. (in grammar) A declinable word, as a noun, etc.

s. शरण *sharaṇ* / सरन *saran* m. A house. A preserver, an asylum; p. 3, l. 7.

s. शरीर *sharīr* (s. शरीर ; शॄ to injure or be injured) m. The body of any animated being; p. 18, l. 18.

s. शस्त्र *shastr* (s. शस्त्र ; शस् to hurt) m. A weapon; p. 9, l. 23.

s. शांत *shānt* (s. शान्त ; शम् to be appeased) adj. Calm, tranquil. शांत होना *shānt honā*, v.n. To be appeased; p. 192, l. 3.

s. शाकल *shākal* (s. शाकल्य) f. A mixture of sesamum-seed, barley, clarified butter, coarse sugar, fruits, etc., used in oblations to the gods.

s. शाकिनी *Shākinī* (s. शाकिनी) f. A female deity of an inferior order, attendant on Shiva and Durgā; p. 173, l. 27.

s. शाखा *shākhā* (s. शाखा ; शाख् to pervade) f. The branch of a tree; p. 206, l. 5.

s. शाल *shāl* (s. शाल) m. A common timber tree (Shorea robusta. Rox. Pl. Cor.) 2. (s. शल्य) A thorn. 3. (s. शृगाल) A jackal.

s. शाला *shālā*, f. House, place.

s. शास्त्र *shāstr* (s. शास्त्र ; शास् to govern or teach) m. An order or command. 2. Scripture, science; p. 16, l. 6, and p. 85, l. 6. Institutes of religion, law or letters, especially considered as of divine origin or authority.

s. शिखर *shikhar* (s. शिखर ; शिखा a crest) m. The peak or summit of a mountain; p. 105, l. 14.

s. शिर *shir* = सिर *sir* (*q.v.*)

s. शिव *Shivā* (s. शिव ; शी to sleep, *i.e.*, on or in whom the universe reposes) m. The second person of the Hindū triad, the Deity in the character of The Destroyer. He is represented of a terrific aspect, with a necklace of skulls and snakes, riding on a bull, with a trident, bow, and hand-drum in his hands. Of all the gods he is soonest roused to anger, but the most easily propitiated (*vide* chap. lxiv., etc.). His heaven is Kailās in the Himālaya range; p. 23, l. 23.

s. शिवरात्र *Shivrātr* / शिवरात्रि *Shivrātri* (s. शिवरात्रि : शिव Shiva, रात्रि night) m. A festival held on the 14th of the dark fortnight in the month of Phālgun (February-March) in honour of the anniversary of the birth of the linga or phallus; p. 230, l. 14.

s. शिव रानी *Shiv Rānī* (: s. शिव Shiva, रानी queen) f. The wife of Shiva, the goddess Pārvatī; p. 125, l. 1.

s. शिवा *Shivā* (s. शिवा ; शिव्) f. A name of Durgā, Shiva's consort ; p. 162, l. 21.

s. शिष *shish* | शिष्य *shishya* } (; s. शास् to order) m. Obedient. A disciple, a scholar, a pupil ; p. 4, l. 15.

s. शिष्टाचार (s. शिष्टाचार : शिष्ट that which is ordered, आचार conduct) m. Humility, complaisance, good manners, civility ; p. 40, l. 6.

s. शिशुपाल *Shishupāl* | सिसुपाल *Sisupāl* } (s. शिशुपाल : शिशु a child, पाल who cherishes) m. The sovereign of a country in a central part of India *or* Chēdi—opposed to Krishn and slain by him. His death forms the subject of one of the Hindū epic poems named "Shishupāla Badha" by Māgha. He was a re-appearance of Rāvan ; p. 49, l. 7, and p. 106, l. 18.

s. शीघ्र *shīghr* (s. शीघ्र ; शिघ् to smell) adj. Quick, fast. 2. adv. Quickly ; p. 37, l. 8.

s. शीतल *shītal* | सीतल *sītal* } (s. शीतल ; शीत cool, ला to give *or* get) adj. Cool, refreshed ; p. 35, l. 13.

s. शील *shīl* | सील *sīl* } (s. शील ; शील् to meditate) adj. Well-behaved, kind ; p. 4, l. 8. Well-disposed. 2. m. Nature, quality, good-nature, good-disposition. शीलवान *shīlvān*, Amiable ; p. 108, l. 10. शील सुभाव *shīl subhāv*, Kind disposition ; p. 4, l. 8.

s. शीश *shīsh* | सीस *sīs* } (s. शीर्ष ; श्री to be honored, *i.e.*, by the other members) m. The head ; p. 3, l. 18. शीश फूल *shīsh-phūl*, An ornament for the head, worn by females ; p. 152, l. 20.

s. शुक *Shuk* = शुकदेव (*q.v.*).

s. शुक *shuk* (s. शुक ; शुभ् to shine) m. A parrot.

s. शुकदेव *Shukadev* (: s. शुक ; शुभ् to shine, देव divine) m. A Sage, the son of Vyāsa, and narrator of the *Bhāgavat* ; p. 4, l. 26.

s. शुक्र *Shukr* (s. शुक्र ; शुच् to grieve) m. The planet Venus or its regent, preceptor of the Daityas, who warned King Bali of the deceit of the Bāvan Avatār ; p. 201, l. 27.

s. शुद्ध *shuddh* (s. शुद्ध ; शुध् to be *or* to make pure) adj, Pure, clean ; p. 46, l. 25. Accurate.

s. शुभ *shubh* (; s. शुभ, शुभ् to shine) adj. Good, fortunate. शुभ लग्न *shubh lagn*, A fortunate time, or the rising of an auspicious sign of the zodiac ; p. 9, l. 5.

s. शूद्र *shūdr* (; s. शुच् to cleanse) m. A man of the fourth *or* servile tribe, said to have sprung from the feet of Brahmā ; p. 2, l. 10.

s. शृंगी *Shringī* (s. शृङ्गि ; शृङ्ग a horn, dignity) m. The name of a Sage, the son of Lomas, by whose curse Parīkshit was bitten by a serpent and died ; p. 3, l. 25. (*lit.*, dignified).

s. शेश *Shesh* (s. शेष) m. Remainder. 2. The king of the serpent race, a large thousand-headed snake, at once the couch and canopy of Vishnu and the upholder of the world—which rests on one of his heads. This being is a form of the deity and became incarnate in Balarām ; p. 10, l. 24.

s. शेषशाई *Sheshshāī* (: शेष the thousand-headed serpent, supporter of the world ; शायी a sleeper ; शी to sleep) m. The sleeper on the serpent Ananta (an epithet of Vishnu) ; p. 69, l. 13.

s. शोक *shok* (s. शोक ; शुच् to regret) m. Affliction, grief, lamentation, sorrow ; p. 79, l. 29.

s. शोकमय *shokmay* (: s. शोक grief, मय composed

of) adj. Afflicted, drowned in grief; p. 134, l. 13.

s. शोच *shoch* (; s. शुच् to be sad) m. Reflection, consideration ; p. 3, l. 17.

s. श्मशान *shmashān* (s. श्मशान : श्म for शव a corpse, शान for शयन place of repose) m. A cemetery, a place where dead bodies are buried *or* burned ; p. 200. l. 17.

s. श्याम *shyām* / स्याम *syām* (s. श्याम ; श्यै to go) adj. Black *or* dark-blue (an epithet of Krishṇ, who is always depicted of this colour); p. 31, l. 1.

s. श्रद्धा *shraddhā* (: s. श्रत् a particle implying belief, धा to hold) f. Faith, confidence, belief; p. 4, l. 25. Fondness, affection.

s. श्रम *shram* (s. श्रम ; श्रम् to be wearied) m. Fatigue, toil, weariness ; p. 56, l. 30.

s. श्रवन *shravan* (s. श्रवण ; श्रु to hear) m. The ear. श्रवननि *shravanani*, Braj for श्रवनों *shravanoṅ*, In the ears ; p. 107, l. 24.

s. श्राद्ध *shrāddh* (s. श्राद्ध ; श्रद्धा faith : श्रत् a particle implying belief, धा to have) m. A funeral ceremony observed at fixed periods and for different purposes, being offerings with water and fire to the gods and manes, and gifts and food to the relations present and assisting brāhmans. It is especially performed for a parent recently deceased, or for three paternal ancestors, or all ancestors collectively, and is supposed necessary to secure the ascent and residence of the souls of the deceased in a world appropriated to the manes. The following distributions of this ceremony are specified :—the पार्व्वण *pārvvaṇ*, in honour of three ancestors ; एकोद्दिष्ट *ekoddishṭ*, of one ; नित्यं *nityaṅ*, regular ; नैमित्तिकं *naimittakaṅ*, occasional ; काम्यं *kāmyaṅ*, to attain a particular object ; आन्हिकं *ānhikaṅ*, daily ; वृद्धि *vṛiddhi*, for increase of prosperity ; सपिण्डनं *sapiṇḍanaṅ*, in which the balls of meat offered to the deceased individually and collectively are blended together. There are many other kinds. For a person recently deceased, one takes place on the day after mourning expires, and twelve others in twelve successive months ; p. 137, l. 26.

s. श्राप *shrāp* (s. शाप ; शप् to swear) m. A curse, an imprecation ; p. 3, l. 29.

s. श्रापना *shrāpnā*, v.a. To curse, to imprecate ; p. 4, l. 7.

s. श्री *Shrī* (s. श्री ; श्रि to serve, *i.e.*, whom the world worships) Fortune, prosperity. 2. Wealth ; p. 39, l. 25. 3. Beauty. 4. Light. 6. The goddess Lakshmī, wife of Vishṇu, the deity of plenty and prosperity. 6. A prefix to the names of deities, forming a kind of invocation at the beginning of a letter, as in Persian they write ﷲ for الله *Allāh*, God ; sometimes repeated, as Shrī Shrī Durgā, also a prefix of respect as श्री भागवत् *Shrī Bhāgavat*, the Bhāgavat Purāṇā. This use of it is elliptical, the possessive affix मत् *mat* or युक्त् *yukt* "joined" being understood, and the sense will then be "the splendid," "the illustrious ;" Preface. श्री पति *Shrī pati*, Vishṇu, the husband of Lakshmī ; p. 139, l. 7.

s. श्री लल्लू जी लाल कवि *Shrī Lallū jī Lāl Kabi*, A learned brāhman of Gujarāt, attached to the College of Fort William, who in 1806 translated the *Prem Sāgar* from Braj Bhāshā into Hindī. His other works are the لطائف هندي *Laṭāif-i*

Hindī, "Anecdotes in Hindī," the राजनीति *Rājnīti*, the सभा विलास *Sabhā Bilās*, the सप्त शतिक *Sapta Shatika*, or "Seven Hundred Distichs," the مصادر بهاکها *Maṣādar-i Bhākhā*, a work on Hindī Grammar, the सिंहासन बत्तीसी *Sinhāsan Battīsī*, the बैताल पच्चीसी *Baitāl Pachchīsī*, قصهٔ مادهونل *Kiṣṣah-i Mādhūnal*, and the سکنتلا *Sakuntalā*. (*See Histoire de la Litt. Hind.* vol i., p. 307.

s. श्रीमत (s. श्रीमत : श्री *q.v.*, and मत् affix) Famous, illustrious.

s. श्रेष्ठ *shreshṭh* (s. श्रेष्ठ ; श्र for प्रशस्त best) adj. Best, excellent, most excellent, pre-eminent.

s. श्रोनितपुर *Shronitpur* (: s. श्रोण heaped together, पुर city) m. A city, the capital of Bānāsur; p. 160, l. 8.

ष

s. षट *shaṭ* | षड *shaḍ* } (s. षष्) card. n. Six; p. 19, l. 1. षट रस भोजन *shaṭ ras bhojan*, Food of six flavors, viz.:—Sweet, sour, salt, bitter, acid, and astringent; p. 19, l. 1.

s. षष्टांगुल *Shashṭāngul*, m. Name of a king, who by the instructions of Nārad obtained salvation in two hours; p. 5, l. 9.

s. षष्ठ *shashṭh* (s. षष्ठ ; षष् six) ord. num. Sixth.

स

s. स *sa*, a prepositive particle, signifying—With, together, along with; as in सजीव *sajīv*, with life, *i.e.*, Alive.

s. संकट *sankaṭ* (s. सङ्कट ; सम् implying junction) m. Vexation, misfortune, pang, agony, pain, anguish.

s. संकर्षन *Sankarshan* (s. सङ्कर्षण : सम् with, कृष् to plough) m. A name of Balarām, elder brother of Krishṇ; so called because born of two mothers—being removed from the womb of Devakī to that of Rohiṇī; p. 20, l. 18.

s. संकल्प *sankalp* (s. सङ्कल्प : सम् with, कृप् to be able) m. A solemn vow or declaration of purpose. संकल्प करना *sankalp karnā* or संकल्पना *sankalpnā*, v.a. To make a vow of bestowing alms *or* charitable gifts; p. 13, l. 21.

s. संका *sankā* (s. शङ्का ; शकि to fear) f. Fear, terror, doubt, suspicion, dread; p. 153, l. 7.

s. संकोच *sankoch* (s. सङ्कोच : सम् together, कुच् to contract) m. Shame, bashfulness, reserve; p. 50, l. 23.

s. संख *sankh* (s. शंख ; शम् to pacify) m. A conch, a shell; p. 86, l. 8.

s. संखासुर *Sankhāsur* (: s. संख a shell, असुर a dæmon) m. Shell-dæmon, a fiend slain by Krishṇ; p. 86, l. 8.

s. संग *sang* (s. सङ्ग : सम् together, गम् to go) A prefix signifying—Together, altogether, with. It often serves to denote fulness, completion. 2. adv. Along with; p. 21, l. 17.

s. संगति *sangati* (s. सङ्गति : सम् together, गति going) f. Coition. 2. Collection, congregation, company, society.

s. संगी *sangī* (; संग, *q.v.*) m. A companion; p. 88, l. 9.

s. संगीत *sangīt* (s. सङ्गीत) m. Music, singing; p. 85, l. 7. संगीत नाच *sangīt nāch*, A kind of dance. (Probably dancing and singing at the

same time, making the words and movements correspond).

s. संग्राम *sangrām* (; s. सङ्ग्राम to fight) m. Battle, war; p. 15, l. 23.

s. संजम *sanjam* / संयम *sanyam* (s. संयम : सम् with, यम् to restrain) m. Forbearance, soberness, abstinence from particular food on certain days; p. 46, l. 23.

s. संजोग *sanjog* / संयोग *sanyog* (s. संयोग : सम् before, युज् to join) m. Conjunction, union. 2. Accident, hap, chance; p. 6, l. 11. Event.

s. संजोवना *sanjowanā* (s. संयोजन : सम् together, युज् to join) v.a. To prepare.

s. संत *sant* (s. सन्तः) m. A kind of devotee, a saint; p. 57, l. 7. 2. adj. Pious.

s. संतान *santān* (s. सन्तान : सम् with, तन् to spread) m. Progeny, offspring; p. 240, l. 1.

s. संताप *santāp* (s. सन्ताप : सम् completely, तप् to heat) m. Pain, sorrow; p. 9, l. 17.

s. संतुष्ट *santusht* (s. सन्तुष्ट : सम् intensive prefix, तुष्ट pleased) adj. Satisfied, gratified, content, pleased.

s. संतोष *santosh* (s. सन्तोष : सम् intensity, तुष् to be pleased) m. Content, patience, satisfaction, pleasure; p. 38, l. 14.

s. संतोषी *santoshī* (s. सन्तोषित : सम् intensely, तुष् to be pleased) adj. Patient, contented.

s. संदेस *sandes* / संदेसा *sandesā* (s. संदेश : सम् together, दिश् to shew) m. A message; p. 87, l. 23.

s. संदेह *sandeh* (: s. सम् before, दिह् to collect) m. Suspicion, doubt, hesitation, anxiety; p. 5, l. 1. 2. (: s. स with, देह body) adj. With a body, in corporeal form; p. 227, l. 5.

s. संधान *sandhān* (s. सन्धान : सम् together, धा to hold) m. Spying, prying into secrets. संधान पाना *sandhān pānā*, v.a. To trace, to discover.

s. संधाना *sandhānā* (s. सन्धान : सम् together, धा to hold) m. Pickle.

s. संधि *sandhi* (s. सन्धि : सम् together, धा to have *or* hold) f. Union, junction. 2. Peace, pacification. 3. A crack. 4. A hole.

s. संध्या *sandhyā* (s. सन्ध्या ; सन्धि a joint (of the day) f. Twilight, either morning or evening. 2. A period of time—forenoon, afternoon, or mid-day. 3. Religious abstraction, meditation, repetition of mantras, sipping water, etc., to be performed by the three first classes of Hindūs, at particular and stated periods in the course of every day, especially at sunrise, sunset, and also—though less essentially—at noon; p. 89, l. 19.

s. सनिपात *sannipāt* / सन्निपात *sannipat* (s. सन्निपात : सम together, नि, पत् to go) m. The name of a disease in which the body is seized with an universal chilliness. Deliquium. (It is explained by the Hindū physicians to be that in which the three humours—bile, phlegm, and atrabilis—are corrupted); p. 138, l. 5.

s. संपत *sampat* / संपदा *sampadā* (s. सम्पत : सम्, पद् to go) f. Affluence, wealth, riches; p. 24, l. 5.

s. संपूर्णम *sampūrṇam* (s. सम्पूर्ण : सम् intensitive, पूर्ण full) adj. Completed, finished; p. 240, l. 7.

s. संपोलिया *sampoliyā* (: s. सर्प a snake, पोत young of any animal) m. A young snake; p. 56, l. 16.

s. संबंध *sambandh* / सन्मंद *sanmand* (s. सम्बन्ध : सम with, बन्ध a binding) m. Connection, affinity, relation; p. 80, l. 2.

s. संबंधी *sambandhī* (; s. संबंध, *q.v.*) m. A relation. 2. A son *or* daughter's father-in-law.

s. संवाद *sambād* (s. संवाद : सम with, वद् to speak) m. Conversation, discourse, dissertation; p. 176, l. 8.

s. संबू *Sambū*, m. The son of Krishn by Jāmwatī; p. 189, l. 15

s. संबोधन *sambodhan* (s. सम्बोधन : सम्, बुध् to know, in its causal form) m. Comfort, soothing, encouragement, the act of consoling. 2. Vocative case.

s. संभलना *sambhalnā* (s. सम्भारण : सम्, भृ to support) v.n. To be supported, to stand, to stop, to be firm, to recover one's-self from a fall; p. 60, l. 20.

s. संभारिकै *sambhārikai*, past conj. part. of संभार्ना *sambhārnā* (*q.v.*). Braj form of संभारके, Having taken courage; p. 38, l. 8.

s. संभाल्ना *sambhālnā* / संभार्ना *sambhārnā* (: s. सम् before, भृ to maintain) v.a. To support, prop, sustain; p. 4, l. 2. To hold up. 2. To shield, protect. 2. To stop, restrain, check, repress.

s. संभावना *sambhāvanā* (s. सम्भावना : सम्, भू to be) f. Probability.

s. संयमनी *Sanyamanī* (s. संयमन : सम् completely, यम् to restrain) f. The capital of Yam—the Regent of Death; p. 86, l, 16.

s. संयुक्त *sanyukt* (s. संयुक्त : सम together, युज् to join) adj. Joined, compounded; p. 153, l. 3.

s. संवत *sanwat* (s. संवत : सम before वय to go) m. A year, but generally a year of the era of Vikramāditya, which commences 56 B.C.; or of Shālivāhan, A.D. 76; Preface, and p. 16, l. 6.

H. संवार्ना *sanwārnā*, v.a. To prepare, to dress, to decorate, to adjust, to adorn, to arrange; p. 75, l. 28.

s. संसार *sansār* (s. संसार : सम together, सृ to go) m. The world; p. 8, l. 9.

s. संसारी *sansārī* (; s. संसार, *q.v.*) adj. Worldly.

s. संसौ *sansau* (s. संशय : सम् before शी to sleep) m. Apprehension, fear, doubt, anxiety.

s. संस्कार *sanskār* (*vide* अग्नि) m. A purificatory rite among Hindūs.

s. संहार *sanhār* (s. संहार : सम together, हृ to take) m. Making away with, killing, murdering. 2. adj. Killed.

s. संहार्ना *sanhārnā* (s. संहारण) v.a. To destroy; p. 45, l. 17.

s. सकट *sakat* (s. शकट) m. A cart; p. 19, l. 7.

s. सकटासुर *Sakatāsur* (: सकट a cart, असुर a dæmon) m. The dæmon of the cart; p. 19, l. 7.

s. सकल *sakal* (s. सकल : स with, कला apart) adj. All, every; p. 42, l. 20.

s. सकुच्ना *sakuchnā* (s. सङ्कोचन : सम together, कुच् to contract) v.n. To fear, to be afraid, to be in awe, to be abashed; p. 154, l. 3.

s. सकुटुंब *sakutumb* (: स with, कुटुंब family) adj. Accompanied by one's family; p. 224, l. 10.

s. सकोड़ना *sakornā* (s. सङ्कोचण : सम together, कुच to contract) *v.a.* To shrink together, to draw up the limbs; p. 77, l. 2.

s. सक्ना *saknā* (; s. शक् to be able) v.n. To be able; p. 3, l. 3.

S. सखा *sakhā* (s. सखा : स for समान all (the world), ख्या to celebrate) m. A friend, a companion; p. 22, l. 3.

S. सखी *sakhī* (s. सखी : स for समान all, ख्या to celebrate) f. A woman's female friend or confidante; p. 6, l. 6.

S. सगड़ *sagaṛ* (s. शकट) m. A cart; p. 58, l. 5.

S. सगा *sagā* (s. स्वकीय ; स्व own) adj. Related (of the same parents) as सगा भाई *sagā bhāī*, Own brother. 2. A relative; p. 11, l. 25.

S. सगाई *sagāī* (s. स्वकीयता ; स्व own) f. Relationship by the same parents, consanguinity. 2. Betrothing for marriage; p. 106, l. 8. 3. Second marriage of a woman of low tribe. सगाई कर्ना *sagāī karnā*, v.a., To contract a marriage, to affiance, to betrothe.

S. सघन *saghan*, adj. Thick (as a head of hair, clouds, wood, etc.); p. 48, l. 14.

S. सच *sach* (s. सत्य ; सत् being) adj. True; p. 20, l. 16. 2. adv. Indeed, actually. सुच मुच *such much*, In truth, in very fact; p. 65, l. 10.

S. सचेत *sachet* (s. सचेत : स with, चेत wisdom) adj. With circumspection, with caution, mindful, attentive; p. 98, l. 3.

S. सच्चा *sachchā* (; s. सत्य) adj. True, truthful; p. 22, l. 10.

S. सज *saj* (s. सज्ज ; षस्ज् to go) f. Shape, ornament, appearance. सज धज *saj dhaj*, f. Preparation and appearance; p. 163, l. 21. सज दार *saj dār* Well-shaped, handsome.

S. सजल *sajal* (: s. स with, जल water) adj. Watery, filled with or containing water.

S. सज्ञान *sagyān* (: स with, ज्ञान knowledge) adj. Knowing, intelligent. wise; p. 63, l. 4.

S. सज्वाना *sajwānā* (caus. of साज्ना *q.v.*) v.a. To cause to be equipped; p. 150, l. 17.

H. सटक *saṭak*, f. An elastic rod, thick at one end and thin at the other.

H. सटक्ना *saṭaknā*, v.n. To run away, to flee, to be separated; p. 19, l. 28.

H. सट्काई *saṭkāī* (; सटक an elastic rod thick at one end and thin at the other) f. Taperingness, the vanishing of a tapering body at the extreme point; p. 163, l. 5.

H. सट्ना *saṭnā*, v.n. To join, to adhere, to stick, to remain close; p. 167, l. 22.

S. सत *sat* (s. सत् ; अस् to be) adj. True, right, actual. 2. adv. Actually. 3. m. (s. सत्त्व the quality of goodness) m. Power, strength, essence, the principle of goodness, etc. (*See* गुन); p. 199, l. 14. 4. Juice, sap. 5. (s. सत्य) Virtue, truth; p. 6, l. 18. सत्बादी *sat-bādī* (s. सत्यवादी) adj. Truth-speaking, truthful; p. 10, l. 14.

H. सताना *satānā*, v.a. To tease, vex, fret, trouble, afflict, annoy, harass; p. 2, l. 13.

S. सती *satī* (s. सती ; अस् to be) f. A virtuous wife; p. 91, l. 16.

S. सतखन *satkhan* / सतखना *satkhanā* } (: सप्त seven, खण्ड part) adj. Consisting of seven divisions or stories; p. 71, l. 19.

S. सत्तर *sattar*, num. Seventy; p. 98, l. 23.

S. सत्ताईस *sattāīs* (s. सप्तविंशति) card. num. Twenty-seven; p. 18, l. 23.

S. सत्धन्वा *Satdhanwā*, m. A Yādava to whom Satbhāmā, the daughter of Satrājīt, was betrothed before she married Kṛishṇ, and who—incensed at

the loss of his bride—slew Satrājit, and was afterwards himself slain by Kṛishṇ; p. 134, l. 1.

s. सत्भामा *Satbhāmā*, f. The daughter of Satrājit and wife of Kṛishṇ; p. 128, l. 10.

s. सत्यबादी *satyabādi*, सत्यवादी *satyavādī* (s. सत्यवादी : सत्य truth, वादी speaker) adj. Speaker of truth, truthful; p. 228, l. 27.

s. सत्या *Satyā* (s. सत्या ; सत् good) f. The daughter of Nagnajit, king of Kausal, espoused by Kṛishṇ; p. 144, l. 13.

s. सत्युग *satyug* (s. सत्ययुग) m. The first *or* golden age (*see* युग); p. 3, l. 2, and p. 232, l. 6.

s. सत्रह *satrah* (s. सप्तदश: : सप्त seven, दशन् ten) num. Seventeen; p. 5, l. 26.

s. सत्राजीत *Satrājit*, m. A Yādava who obtained, by his austerities, a wondrous jewel from the sun; which, being lost, he accused Kṛishṇ of stealing it. Kṛishṇ recovered the gem and married Satbhāmā, the daughter of Satrājit—who was thereupon slain by another Yādava to whom Satrājit had previously betrothed his daughter; p. 128, l. 9.

H. सत्राना *satrānā*, v.n. To be angry; p. 92, l. 4.

s. सत्रुघ्न *Satrughn* (s. शत्रुघ्न : शत्रु enemy, घ्न that destroys) m. Son of Dasaratha and youngest brother of Rāmachandra,—re-born as Aniruddh; p. 8, l. 26.

s.H. सत्लड़ा *satlaṛā* (*vide* सत्लड़ी) adj. Consisting of seven rows *or* strings.

s.H. सत्लड़ी *satlaṛī* (: s. सप्तन् seven, H. लड़ row) f. A necklace of seven strings; p. 152, l. 21.

s. सत्लोक *Satlok* (s. सत्यलोक : सत्य truth, लोक world) m. Satya-lok *or* Brahmā-lok is the abode of Brahmā, and translation to it exempts beings from being born again; p. 232, l. 7.

s. सदा *sadā* (s. सदा ; स for सर्व्व all) adv. Always. सदाशिव *Sadāshiva* (eternal Shiva) A name of Shiva or Mahādev; p. 174, l. 15.

s. सदेह *sadeh* (: s. स with, देह body) adj. With body, corporeal.

s. सन *san* (s. शण ; शण् to give) m. Hemp (Cannabis sativa); p. 180, l. 9.

s. सनंदन *Sanandan* (s. सनन्द : स with, नन्द pleasure) m. Name of a Muni who explained how the Vedas praised the qualityless Brahm; p. 232, l. 10.

s. सनक *Sanak*, m. Name of a Rishi; p. 233, l. 9.

s. सनातन *Sanātan* (s. सनातन : सना always, तु to go) adj. Eternal; p. 226, l. 15. 2. Name of a Rishi; p. 232, l. 10.

s. सनाथ *sanāth* (: स with, नाथ lord) adj. Possessing a lord. भये सनाथ *bhye sanāth*, They felt their lord restored to them; p. 77, l. 12.

s. सनेह *saneh* = स्नेह (*q.v.*).

H. सन्ना *sannā*, v.n. To be impregnated; p. 6, l. 7. 2. To be stained, soiled, smeared *or* defiled. 3. To be kneaded, mixed up (as flour, dough, earth, etc.)

s. सन्मान *sanmān* (s. सन्मान : सम with, मान respect) m. Respect, esteem, reverence; p. 7, l. 9.

s. सन्मुख *sanmukh* (s. सम्मुख : सम with, मुख the face) adv. Face to face, opposite, confronting; p. 2, l. 18.

s. सन्यासी *Sanyāsī* (s. सन्यासी ; सन्न्यास : सम्, नि, अस् to throw) m. A brāhman of the fourth order, the religious mendicant: p. 15, l. 27.

s. सपल्लव *sapallav* (: स with, पल्लव a shoot : पद् the foot, लू to cut or break) adj. With sprouts, shoots, or twigs; p. 50, l. 14.

s. सपुच *Sapuch*, m. Name of a man of the lowest caste to whom king Harichand became servant, and who was afterwards at his intercession beatified ; p. 200, l. 10.

s. सपुत्र *saputr* (s. सुपुत्र : सु good, पुत्र son) m. A tractable or dutiful son ; p. 155, l. 19.

s. सप्ना *sapnā* (s. स्वप्न ; स्वप् to sleep) m. A dream ; p. 12, l. 1.

s. सप्रेम *saprem* (: स with, प्रेम love) adv. With affection ; p. 5, l. 16.

s. सब *sab*, All; p. 8, l. 1. Every, the whole, total ; p. 3, l. 20.

s. सबल *sabal* (: s. स with, बल strength) adj. Powerful, forcible, over vigorous ; p. 161, l. 4.

s. सबेरा *saberā* / सवेरा *sawerā* (s. सवेला : स with, वेला time) adj. Early, in the morning ; p. 25, l. 13.

s. सबै *sabai*, a Braj form of सब *sab*, all, (*q.v.*) ; p. 82, l. 24.

s. सभा *sabhā* (s. सभा : स for सह together, भा to shine) f. An assembly, a royal court ; p. 8, l. 9.

s. सम *sam*, adj. Like, alike ; p. 24, l. 6. एक सम *ek sam*, Alike. पर्वत सम *parwat sam*, Like a mountain ; p. 25, l. 30.

s. समंदर *samandar* = समुद्र (*q.v.*) (a Braj form) ; p. 86, l. 11.

H. समझ *samajh*, f. Understanding, mind, comprehension ; p. 82, l. 12.

H. समझना *samajhnā* (; समझ *q.v.*) v.n. To understand, comprehend, suppose, think, perceive, learn, consider, deem, fancy ; p. 20, l. 13.

s. समता *samatā* (s. समता ; सम equal) f. Equality, similitude, comparison ; p. 154, l. 9.

s. समय *samay* (s. समय : स for सम with, मी to mete) m. Time, season. अंत समय *ant samay*, At the time of my decease ; p. 181, l. 6. 2. Leisure, opportunity.

s. समर्पना *samārpnā* (s. समर्पण : सम together, अर्पण delivery) v.a. To deliver, to give over ; p. 203, l. 9.

s. समस्त *samast* (s. समस्त : सम together, अस् to throw or direct) adj. All, whole.

s. समा *samā* (s. समय : स for सम with, मी to mete *or* measure, or सम alike, इण to go) m. Time, season. 2. Plenty, abundance. 3. State, condition. 4. Concord, harmony. समा बंधना *samā bandhnā*, v.n. To be in concert, to form harmony ; p. 46, l. 16.

s. समाचार *samāchār* (s. समाचार : सम् and आङ before, चर् to go) m. News, tidings, information, intelligence, account of circumstances or health ; p. 4, l. 22.

s. समाधान *samādhān* (s. समाधान : सम together, धा to have (religious abstraction) m. Consolation, comfort, solace ; p. 87, l. 9. Adjustment, the act of satisfying.

s. समान *samān* (s. समान : सम all, अन् to breathe) adj. Like, similar, equal ; p. 5, l. 14, and p. 15, l. 13.

s. समाना *samānā* (s. समान measure) v.n. To be contained, to go into ; p. 43, l. 15. सींग समाना *sīng samānā*, v.n. To get in one's house, to find refuge ; p. 135, l. 30. अंग न समाना *ang na*

samānā, v.n. (*lit.*, not to be contained in one's body) Not to be able to contain one's self; p. 117, l. 25.

s. समाप्त *samāpt* (s. समाप्त : सम together, आप् to get) adj. Finished, concluded, accomplished, perfected.

s. समीप *samīp* (s. समीप : सम together, आप् water, *i.e.*, like the confluence of water) adv. *or* adj. Near; p. 89, l. 3.

s. समुचा *samuchā* (s. समुच्चय : सम together, उत् up, चि to collect) adj. Entire, whole; p. 56, l. 18.

s. समुद *samud* | समुद्र *samudr* } (s. समुद्र : सम with, उन्दि to be wet, *or* : स for सह with, मुद्र a seal, *i.e.*, sealed *or* limited by continents *or* : सम with, उद् water, रा to give) m. A sea; p. 8, l. 10.

s. समें *samen* | समैं *samain* } (s. समय : सम with, मी to mete) m. Time, season, leisure, opportunity; p. 6, l. 9.

n. समेटना *sametnā*, v.a. To collect together; p. 159, l. 3. 2. To constringe, to cause to shrivel.

s. समेत *samet* (s. समेत : सम with, इत gone) adv. With, along with, together with; p. 9, l. 12.

s. सम्बर *sambar* (s. सम्बर ; सम्ब् to accumulate) m. A dæmon who carried off Pradyumn but was afterwards slain by him; p. 124, l. 21.

s. सम्हार्ना *samhārnā* (; स्मृ to remember) v.a. To remember, to keep in memory; p. 239, l. 19. 2. To mention.

s. सयन *sayan* (s. शयन : शी to sleep) m. Sleep; p. 103, l. 24.

s. सयाना *sayānā* (s. सज्ञान) adj. Cunning, artful, sagacious. Mature; p. 96, l. 22.

s. सर *sar* (s. सरः ; सृ to enter) m. A pond or lake.

s. सर *sar* (s. शर ; शृ to hurt) m. An arrow. सर साधना *sar sādhnā*, v.a. To prepare to shoot an arrow; p. 141, l. 2.

s. सरट *sarat* (s. सरट ; सृ to go) m. A lizard; p. 181, l. 11.

s. सरद *sarad* (s. शरद् ; शृ to injure) f. The autumnal season, succeeding the rains, and comprising, according to the Vaidikas, the two months Bhādra and Aswin; according to the Purānikas, Aswin and Kārtik,—thus fluctuating from August to November; p. 35, l. 20.

s. सरनागत *saranāgat* (s. शरणागत : शरण protection, आगत come) m. A refugee, one who seeks protection; p. 176, l. 24.

s. सरनागतबत्सल *saranāgatbatsal* (s. शरणागतवत्सल : शरण refuge, आगत come, वत्सल compassionate ; वत्स a child) m. Merciful to suppliants, or those who come to him for refuge (an epithet of the Deity); p. 176, l. 24.

s. सरप *sarap* (s. सर्प ; सृप् to glide) m. A serpent.

s. सरस *saras* (s. श्रेयस ; श्र for प्रशस्त good) adj. Best, excellent, prime. 2. More, abundant, plenty.

s. सरस्वति *Saraswati* (s. सरस्वती : स with, रस flavour) f. The wife of Brahmā, the Goddess of speech and eloquence, patroness of music and the arts, and inventress of the Sanskrit language and Devanāgarī letters; Preface.

s. सराप *sarāp* (s. शाप ; शप् to swear, m. A curse.

s. सरापना *sarāpnā* (: सराप, *q.v.*) v.a. To curse.

H. सराह्ना *sarāhnā*, v.a. To praise, to commend, to applaud; p. 93, l. 13.

S. सरिता *saritā* (s. सरित; सृ to go) f. A river; p. 42, l. 14.

S. सरै *sarai* (s. सर्व्व) adj. All; p. 49, l. 3. (Perhaps the Braj for सरे *sare*).

S. सरोबर *sarobar* / सरोवर *sarovar* (s. सरोवर : सरस् a pool, वर best) m. A lake, any piece of water deep enough for the lotus to grow in; p. 13, l. 3.

S. सर्गुन *sargun* (s. सर्व्वगुण : सर्व्व all, गुन quality) adj. Possessing all qualities (an epithet of the Deity); p. 232, l. 3.

S. सर्ना *sarnā* (; s. सरण going) v.n. To be performed, to be carried on, to be effected; p. 78, l. 5.

S. सर्प (s. सर्प ; सृप् to go) m. A snake, a serpent; p. 32, l. 1.

S. सर्प हार *sarp hār* (: s. सर्प snake, हार necklace) m. A necklace of snakes; p. 173, l. 26.

S. सर्बदा *sarbadā* / सर्वदा *sarvadā* (s. सर्व्वदा ; सर्व्व all) adv. Always, perpetually; p. 128, l. 19.

S. सर्बस *sarbas* / सर्बसु *sarbasu* (: s. सर्व्व all, वसु substance, wealth, thing) m. Everything, whole property; p. 51, l. 15.

S. सर्व *sarv* (s. सर्व्व ; सृ to pervade) adj. All, the whole.

S. सर्वर *sarwar* = सरोवर (*q.v.*); p. 48, l. 8.

P. सर्वर *sarwar* (P. سرور) m. A chief, a leader. 2. H. adj. Equal.

S. सर्वस्य *sarvasya*, pron. sin. infl. Of all; p. 199, l. 29.

S. सर्साई *sarsāī* (; सरस juicy : स with, रस juice) f. Increase, abundance, excellence; p. 163, l. 13.

S. सर्सुराहट *sursurāhaṭ* (; s. सृ to move) f. A creeping sensation, titillation; p. 161, l. 8.

S. सलिता *salitā* = सरिता (*q.v.*); p. 182, l. 23.

S. सलोना *salonā* (s. सलवण : स with, लवण salt) adj. Salted, seasoned, tasteful. 2. Beautiful, piquant; p. 53, l. 13.

S. सल्य *Salya* (s. सल्य ; शल् to go) m. A king of the Madras, a people of the Panjāb, whose capital was Sakala (apparently the Sangala destroyed by Alexander) and one of the principal leaders and warriors of the party of Duryodhan.

S. ससि *sasi* (s. शशि ; शश a hare) m. The moon; p. 79, l. 19.

S. सहज *sahaj* (s. सहज cognate, inherent : सह with, ज born) adj. Easy. सहज सुभाव हि *sahaj subhāv hi*, Wth natural ease. 2. adv. Easily; p. 30, l. 4.

S. सहदेव *Sahadev* (s. सहदेव : सह with, देव who sports) m. The youngest of the five Pāṇḍava princes; p. 96, l. 16. 2. Name of the son of Jurāsindhu; p. 203, l. 13.

H. सहराना *saharānā* / सहिराना *sahirānā* v.n. To thrill; p. 161, l. 4. 2. v.a. To stroke, to rub gently, to tickle.

S. सहस्र *sahasr*, num. A thousand; p. 4, l. 24.

S. सहस्र बाहु *Sahasr bāhu* / सहस्रार्जुन *Sahasrārjun* (: s. सहस्र a thousand, बाहु arm) m. A king of Kshatrīs having a thousand arms, who was slain by Parshurām.; p. 221, l. 15.

S. सहायक *sahāyak* (: सह with, इण to go) m. A succourer, an aider; p 5. l. 19.

S, सहायता *sahāyatā* / सहारा *sahārā* (s. सहायता ; सहाय a companion) f. Aid, assistance, help; p. 103, l. 14, and p. 177, l. 2.

s. सहाई *sahāī* (s. सहाय : सह with, इण to go) m. An aider, an assistant, a helper ; p. 134, l. 20.

s. सहित *sahit* (s. सहित ; सह with) postpos. With ; p. 48, l. 2.

A. सही *sahī* (A. صحيح) an emphatic particle, It is true ! p. 220, l. 7. Very well !

s. सहेली *sahelī* (: s. सह with, together, आली a female friend) f. A woman's female companion, a handmaid ; p. 6, l. 6.

s. सहोदर *sahodar* (s. सहोदर : सह with, उदर belly) adj. Born of one mother ; p. 228, l. 5. सहोदर भाई *sahodar bhāī*, Full brother.

s. सहना *sahnā* (s. सहन ; सह् to bear) v.n. To bear, endure, support. न सहिके *na sahike*, Not having endured ; p. 30, l. 23.

H. सा *sā*, adj. Like (used enclitically). तुम सा *tum sā*, Like you ; p. 9. l. 22.

s. सांकल *sāṅkal* (s. शृंखला ; शृङ्ग a horn, here meaning a link) f. A chain ; p. 203, l. 26.

s. सांगीत *sāṅgīt* (s. सङ्गीत : सम together, गीत song) m. The art *or* science of music or dancing ; p. 162, l. 16. 2. The exhibition of singing, dancing and music at a public entertainment.

s. सांचा *sāṅchā* (s. सत्य) adj. True ; p. 44, l. 5. Right, proper.

s. सांझ *sāṅjh* (s. सन्ध्या ; सन्धि a joint (of the day) f. Evening ; p. 25, l. 15.

s. सांदीपन *Sāndīpan*, m. Name of a Rishi who instructed Krishn and Balarām ; p. 84, l. 30.

s. सांप *sāmp* (s. सर्प : सृप् to go) m A snake ; p. 58, l. 23.

s. सांवला *sāṅwlā* (s. श्यामल : श्याम black, ला to get) adj. Of a dark or sallow complexion ; p. 53, l. 13.

s. सांस *sāṅs* (s. श्वास : श्वस to breathe) f. A sigh ; p. 13, l. 22. लंबी सांस *lambī sāṅs*, A deep breath ; p. 26, l. 19.

s. सागर *sāgar*, m The ocean ; p. 4, l. 14. प्रेम सागर *Prem Sāgar*, Ocean of love—title of Lallūjī Lāl's translation of the tenth chapter of the *Bhāgavat* ; Preface, l. 14.

s. साजना *sājnā* (s. सज्जना ; सज्ज ready) v.a. To prepare ; p. 121, l. 29. To dress, to decorate.

s. साढ़े *sāṛhe* (: s. स with, अर्द्ध a half) adj. Used with nouns of number it denotes, With a half ; as साढ़े तीन *sāṛhe tīn*, Three and a half ; p. 98, l. 23.

s. सात *sāt* (s. सप्त) num. Seven. सात पांच कर्ना *sāt pāṅch karnā* (*lit.*, to make fives and sevens) To be in doubt, to be undecided what to do, to be troubled ; p. 116, l. 24. (Akin to our expression —" To be at sixes and sevens.")

s. सातवां *sātwāṅ* (; s. सप्त) ord. num. Seventh ; p. 7, l. 15.

s. सात्विक *sātwik* (s. सात्विक : सत्व (*vide* गुण) adj. Relating to *or* proceeding from the Satwa quality, sincere, good, true, gentle, amiable ; p. 236, l. 11.

s. साधना *sādhnā* (: s. साध् to accomplish) v.a. To familiarize gradually to any habit, to teach, to learn, to settle ; p. 16, l. 7. To rectify, to practise, to accomplish ; p. 4, l. 20. 2. f. The act of familiarising by habit. 3. Accomplishment.

s. साथ *sāth* (s. सह) postp. With, together with ; p. 3, l. 25. साथ कर्ना *sāth karnā*, v.a. To take along with ; p. 6, l. 6.

s. साथी *sāthī* (s. सार्थी ; सृ to go) m. A companion, a comrade ; p. 21, l. 11.

s. साद *sād* (s. श्रद्धा : श्रत् particle implying belief, धा to hold) f. Wish, desire; p. 126, l. 18.

s. साध *sādh* | साधु *sādhu* (; s. साध् to accomplish, perfect) adj. Virtuous, religious, holy. 2. m. A religious, holy man; p. 4, l. 7.

s. साबर *sābar* (s. सांबर or संबर) m. An elk; p. 129, l. 21.

s. सामग्री *sāmagrī* | सामा *sāmā* (s. सामग्र्य ; समग्र all) f. Furniture, tools, apparatus, articles, materials; p. 41, l. 5, and p. 41, l. 6.

s. सामर्थ *sāmarth* (s. सामर्थ्य ; समर्थ : सम with, अर्थ to ask) m. Ability, power; p. 2, l. 15;—(fem. at p. 31, l. 21.) सामर्थ होना *sāmarth honā*, v.n. To have the power for marriage, to be an adult; p. 106, l. 6.

s. सामर्थी *sāmarthī* (; सामर्थ, *q.v.*) adj. The strong; p. 57, l. 13.

P. सामान *sāmān*, m. Apparatus; p. 165, l. 30.

s. साम्हना *sāmhnā* (s. सन्मुख) m. Front, confronting, facing; p. 146, l. 14.

s. साम्हने *sāmhne* (; s. साम्हना, *q.v.*) adv. *or* postp. Opposite, before, in front, confronting.

s. सार *sār* (s. सार ; सृ to go) m. Best, excellent. 2. Pith, essence, marrow; Preface. Advantage, object. पराई सार *parāī sār*, The object of others; p. 51, l. 24. 3. (s. शार) m. A piece *or* man at chess, *chaupar*, etc.; p. 129, l. 11.

s. सारंग *sāraṅg* (s. सारङ्ग ; सृ to go) m. A bow, the bow of Vishṇu; p. 174, l. 12. 2. A Rāg or musical mode. 3. A peacock or its cry. 4. A snake. 5. A cloud 6. A deer. 7. A woman. 8. Name of a country. 9. Water. 10. A lamp. 11. The Nymphæa lotus.

s. सारथी *sārathī* (s. सारथि ; सृ to go) m. A charioteer; p. 120, l. 26.

s. सारदा *Sāradā* (s. शारदा ; शॄ to injure) f. A name of Saraswatī. 2. A name of Durgā; p. 155, l. 1.

s. सारस *sāras* (s. सारस ; सरस् a lake) m. The Indian crane (Ardea sibirica) or according to Price (Ardea Antigone); p. 35, l. 15.

H. सारा *sārā* (perhaps from s. सर्व्व) adj. All, the whole; p. 7, l. 8.

s. सारी *sārī* (s. शाटी ; शट् to praise or flatter) f. A piece of dress, consisting of a long wrapper passing round the waist and over the head, worn by Hindū women; p. 152, l. 19.

s. सार्ना *sārnā* (s. साधन ; साध् to effect, v.a. To perform, to accomplish; p. 65. l. 9. To complete, to make. To mend.

s. साल *Sāl*, m. Name of a dæmon, one of the ministers of Kans; p. 61, l. 28.

s. सालब *Sālab* | सालव *Sālav* m. A Daitya who took advantage of Krishṇ's absence to harass the Yādavas at Dwārikā; p. 210, l. 2.

s. साला *sālā* (s. श्याल ; श्यै to go) m. A wife's brother; p. 121, l. 20. 2. (s. शाला) in comp. House, place.

s. साल्ना *sālnā* (; s. शल् to go) v.a. To penetrate, to perforate, to run through; p. 175, l. 16. 2. v.n. To ache.

s. सावंत *sāwant* (s. सामन्त ; समन्त end) adj. Brave, heroic. 2. m. A hero, a champion; p. 117, l. 8.

s. सावधान *sāwadhān* (: s. स with, अवधान care) adj. Cautious, careful, on one's guard; p. 4, l. 10.

s. सावधानी *sāwadhānī* (; सावधान cautious, *q.v.*) f. Vigilance, caution; p. 116, l. 9.

s. सावन *sāwan* (s. श्रावण ; श्रवणा the 23rd lunar asterism) m. The fourth Hindū month (July-August), the first rainy month, on the fourteenth of the light half of which Baladev was born; p. 11, l. 25, and p. 34, l. 17.

s. सासु *sāsu* (s. श्वश्रू : शु a particle implying respect, श्रश् to pervade) f. A mother-in-law; p. 178, l. 13.

s. साहस *sāhas* (s. साहस ; सहस strength ; षह् to bear) m. Violence. 2. Courage, daring; p. 40, l. 27.

s. साहसी *sāhasī* (; s. साहस *q.v.*) adj. Violent. 2. Resolute, brave, determined, dauntless.

s. सिंगार *siṅgār* (s. शृङ्गार ; शृङ्ग eminence) m. Ornament; p. 6, l. 29. Dress, embellishment, decoration.

s. सिंधु *siṅdhu* (s. सिन्धु ; स्यन्द् to trickle) m. The ocean; p. 174, l. 3.

s. सिंह *siṅh* (s. सिंह ; सिहि to kill) m. A lion; p. 4, l. 5. सिंह पौर *siṅh-paur*, The grand entrance to a palace (where images of lions stand).

s. सिंहनी *siṅhnī* (fem. of सिंह *q.v.*) f. A lioness; p. 113, l. 10.

s. सिंहासन *siṅhāsan* (s. सिंहासन : सिंह a lion, आसन seat supported by lions) m. A throne; p. 47, l. 17.

s. सिख *sikh* (s. शिखा : शीङ् to sleep) f. A lock of hair on the crown of the head; p. 42, l. 29.

s. सिखाना *sikhānā* (caus. of सीखा *q.v.*) v.a. To teach; p. 37, l. 25.

s. सिग्रौ *sigrau* (s. समग्र) adj. All, every; p. 42, l. 16.

H. सिठाई *siṭhāī*, f. Insipidity, tastelessness; p. 168, l. 8.

s. सिथल *sithal* (s. शीतल : शीत cool, ला to give or get) adj. Cold, cool. 2. Stupified, benumbed with fear; p. 31, l. 22.

s. सिद्ध *siddh* / सिद्धि *siddhi* (s. सिद्धि ; षिध् to accomplish) f. Fulfilment, accomplishment, the entire completion or attainment of any object; p. 41, l. 14. 2. The result or fruit of the adoration of the gods, or of ascetic severities; p. 36, l. 17. 3. The supposed acquirement of supernatural powers by the completion of magical, mystical, or alchymical rites and processes. 4. Accuracy, correctness, indisputable conclusion or position.

s. सिद्ध *siddh* (s. सिद्ध : षिध् to effect) m. A class of demigods inhabiting Indra's heaven. 2. A saint or holy man who has subjected to his will the eight Siddhis (*vide* अष्ट सिद्धि). 3. adj. Successful. 4. Ready, accomplished.

s. सिधार्ना *sidhārnā* (; s. षिध् to go) v.n. To go, to depart; p. 40, l. 6.

s. सिर *sir* (s. शिर ; शॄ to enquire) m. The head, the top; p. 8, l. 9. सिर झुकाना *sir jhukānā*, To bow the head; p. 8, l. 9. सिर चढ़ाना *sir charhānā*, To exalt. 2. To be arrogant. 3. To shew respect. सिर धुन्ना *sir dhunnā* or सिर डुलाना *sir ḍulānā*, To beat *or* shake one's head from vexation; p. 231, l. 3.

s. सिरज्ना *sirajnā* (; s. सर्ज्जन creating) v.a. To create, to produce, to form.

s. सिल *sil* / सिला *silā* (s. शिला) f. A stone, a rock; p. 170, l. 7. 2. A flat stone on which condiments are ground; p. 19, l. 28.

s. सिष्टाचर *sishṭāchār* = शिष्टाचार (*q.v.*).

s. सिष्य *sishya* (s. शिष्य *q.v.*) m. A pupil.

s. सींग *sīṅg* (s. शृङ्ग ; शॄ to injure) m. A horn ; p. 16, l. 10. सींग समाना *sīṅg samānā* (: सींग horn, समाना to be contained) v.n. (*lit.*, to get in one's horns) To find refuge ; p. 135, l. 30.

s. सींगा *sīṅgā* (s. शृंग ; शॄ to injure) m. A horn (musical).

s. सींगी *sīṅgī* (dim. of सींगा *q.v.*) f. A small horn.

s. सींचना *sīṅchnā* (s. सेचन ; षिच् to sprinkle) v.a. To irrigate, to moisten ; p. 54, l. 16.

s. सीख *sīkh* (s. शिक्षा ; शिक्ष् to learn) f. Lesson, learning ; p. 37, l. 23.

s. सीखना *sīkhnā* (; s. सीख, *q.v.*) v.a. To learn ; p. 37, l. 23.

s. सीठ *sīṭh* (s. सिकथ ; षिच् to sprinkle) f. Dregs of betel *or* anything that has been chewed.

s. सीठा *sīṭhā*, adj. Insipid, tasteless, weak, pale, pithless, sickly.

s. सीत *sīt* (s. शीत ; श्यै to go) f. Cold *or* chillness. 2. Dew ; p. 36, l. 16. सीत काल *sīt-kāl*, Time of cold, winter. सीत ज्वर *sīt-jwar*, Cold fever, ague ; p. 175, l. 20.

s. सीतलता *sītalatā* (s. शीतलता ; शीतल cool, *q.v.*) Coolness ; p. 142, l. 29.

s. सीतलताई *sītalatāī* (s. शीतलता ; शीतल cool) f. Coldness, chill ; p. 168, l. 8.

s. सीता *Sītā* (s. सीता ; षि to bind (the earth) f. The wife of Rāmachandra and daughter of Janaka, king of Mithilā. She was re-born as Rukminī—wife of Krishṇ ; p. 8, l. 27.

s. सीतांग *sītāṅg* (s. शीताङ्ग : शीत cold, अङ्ग body) m. Being chilled with cold, numbness, palsy ; p. 138, l. 4.

s. सीधा *sīdhā* (s. साधु ; साध to perfect) adj. Straight ; p. 74, l. 4.

s. सीना *sīnā* (s. सीवन : षिव् to sew) v.a. To sew ; p. 73, l. 14.

s. सीरा *sīrā* (s. शीतल cool) m. A sweetmeat made of meal and sugar ; p. 42, l. 25.

s, सील *sīl* (s. शीतल) f. Cold, dampness.

s. सीला *sīlā*, adj. Damp, cool.

H. सु *su*, postp. From, by, with of,—as जासु *jāsu*, From *or* of whom. It is also used for सो *so* and signifies—He, she, it, they ; p. 99, l. 23.

s. सु *su* (s. सु ; षु to go) A particle *or* prefix implying "good," and corresponding to the Greek εὐ Thus—सुबास *subās*, A good smell ; p. 52, l. 29. It is opposed to दुर् *dur* or कु *ku*, thus—सुमति *sumati*, A good intellect ; कुमति *kumati*, A bad *or* depraved mind.

s. सुंदर *sundar* (s. सुन्दर : सु good, दृ to respect) adj. Handsome, comely ; p. 24, l. 12.

s. सुंदरता *sundartā* / सुंदरताई *sundartāī* (; s. सुंदर, *q.v.*) f. Beauty ; p. 163, l. 7.

s. सुकड़ना *sukaṛnā* (: s. सम् together, कुच् to contract) v.n. To be shrunk *or* contracted, to shrink ; p. 24, l. 23. 2. To draw in, to collect, to gather up, to constrain, to shrivel.

s. सुकाल *sukāl* (: s. सु good, काल time) m. An abundant season, a good and prosperous time ; p. 128, l. 19, and p. 138, l. 24.

s. सुकुचाना *sukuchānā* (; s. सङ्कोचन : सम् together, कुच् to contract) v.n. To be abashed, to be afraid.

s. सुकृत *sukṛit* (s. सुकृत : सु well, कृत done) adj. Well done. 2. m.f. Virtue, moral merit, a good action; p. 72, l. 9.

s. सुख *sukh* (s. सुख : सु good, ख an organ of sense) m. Ease, tranquillity, content, happiness; p. 25, l. 9. सुख चैन *sukh chain*, m. Ease, rest, leisure. सुख दाई *sukh dāī*, Ease-affording, refreshing; p. 35, l. 20. सुख दायक *sukh dāyak*, adj. Giving ease; p. 1, l. 13. सुख दान *sukh dān*, m. Bestowing pleasure; Preface. सुख धाम *sukh dhām*, Abode of happiness (an epithet of Balarām). सुख पाल *sukh pāl*, A kind of pālkī. सुख बास *sukh bās*, Abode of ease.

s. सुखी *sukhī* (; s. सुख ease) adj. At ease, happy, tranquil, contented; p. 4, l. 4.

s. सुगंध *sugandh* (s. सुगन्ध : सु good, गन्ध smell) f. Good smell, odour, perfume; p. 6, l. 7. 2. adj. Fragrant, sweet-smelling.

s. सुग्रीव *Sugrīb* (s. सुग्रीव : सु handsome, ग्रीवा neck) m. A monkey king, son of the Sun, sovereign of Kishkindhya and friend and confederate of Rāmachandra. His minister Dubid was slain by Balarām; p. 188, l. 2.

s. सुघड़ *sughaṛ* (s. सुघट : सु well, घटित contrived) adj. Elegant, accomplished, beautiful, virtuous.

s. सुच (s. शुचि ; शुच् to purify) adj. Pure, undefiled, clean, purified; p. 205, l. 13.

s. सुचकना *suchaknā* (; s. सुचकित : सु well, चकित astonished) v.n. To be astonished *or* startled; p. 142, l. 24.

s. सुचित *suchit* (s. सुचित : सु good, चित mind) adj. Thoughtless, easy. 2. At leisure, disengaged; p. 194, l. 22. 3. Attentive, careful, occupied.

s. सुढब *suḍhab* (: सु good, ढब manner) adj. Well-formed, elegant; p. 113, l. 19.

s. सुत *sut* (s. सुत ; षु to bring forth) m. A son; p. 45, l. 10. सुतन *sutan*, Braj pl. of the same.

s. सुतदेव *Sutdev*, m. Name of a Brāhman, a worshipper of Vishṇu and visited by him for his piety; p. 231, l. 11.

s. सुता *sutā* (s. सुता ; षु to bring forth) f. A daughter; p. 106, l. 20.

H. सुथ्रा *suthrā*, adj. Well, excellent, neat, beautiful, elegant; p. 50, l. 21.

s. सुदक्ष *Sudaksh*, m. The son of Paunṛik, who did penance to revenge his father's death; p. 187, l. 8.

s. सुदर्सन *Sudarsan* (s. सुदर्शन : सु good, दर्शन sight or appearance) m. The name of a holder of the magic pill, changed for his impiety into a serpent, and restored to his original form by Kṛishṇ; p. 58, l. 19. 2. The discus or missile weapon of Vishṇu and Kṛishṇ; p. 101, l. 29.

s. सुदामा *Sudāmā* (s. सुदामा : सु good, दामन् cord) m. A gardener who received Kṛishṇ on his first appearance in Mathurā; p. 73, l. 17. 2. One of the cowherd companions of Kṛishṇ; p. 82, l. 13. 3. An indigent brāhman loaded with wealth by Kṛishṇ; p. 217, l. 11.

s. सुदी *sudī* (s. सुदि) f. The light half of the lunar month, or from the new to the full moon; p. 7, l. 7.

s. सुद्ध *suddh* (s. शुद्ध ; शुध् to be or make pure) adj. Pure, clean, unpolluted. 2. Accurate, correct.

s. सुद्धां *suddhāṅ* (s. सार्द्ध) adv. Together, with.

s. सुध *sudh* | सुधि *sudhi* } (s. सुधी : सु good, धी intellect) f. Memory, remembrance, sensation,

consciousness, notice, care ; p. 4, l. 28. सुध बुध *sudh budh*, f. Sense, perception, sensation, care. सुध लेना *sudh lenā*, To take care of, to accomodate, to look after, to inquire into; p. 4, l. 28.

s. सुधा *sudhā* (s. सुधा : सु good, धे to drink, *or* धा to support) m. Nectar; p. 124, l. 4.

s. सुनाना *sunānā* (; s. श्रु to hear) c.v. To cause to hear, to inform, to relate, to advise, to warn; p. 4, l. 25, and p. 5, l. 14, where occurs a remarkable form हरिभक्त सुनावें हैं *Haribhakt sunāweṅ haiṅ*, "the votaries of Hari relate," the substantive verb being rarely appended to the aorist of another verb.

s. सुन्कै *sunkai*, past. conj. part. of सुन्ना to hear, *q.v.* Hindī form of सुन्के having heard; p. 21, l. 28.

s. सुन्दरी *sundarī* (s. सुन्दरी : सु good, दृ to respect) f. A handsome woman (prop. the fem. of the adj. सुन्दर); p. 6, l. 5.

H. सुपारी *supārī* / सुप्यारी *supyārī* f. Betel-nut (areca catechu); p. 42, l. 30.

s. सुफल *suphal* (s. सुफल : सु good, फल fruit) adj. Bearing good fruit, (literally or figuratively) profitable; p. 16, l. 4.

s. सुफलक *Suphalak* (: s. सु good, फल fruit) m. Name of the father of Akrūr, a very holy man; p. 138, l. 22.

s. सुबरन *subaran* (s. सुवर्ण : सु good, वर्ण colour) m. Gold; p. 71, l. 21.

s. सुबास *subās* (: s. सु good. वास smell) m. Good smell, fragrance; p. 52, l. 29.

s. सुभगदंत *Subhagdaṅt* (: s. सु good, भग fortune) m. Name of the son of Bhaumāsur; p. 149, l. 26.

s. सुभट *subhaṭ* (s. सुभट : सु well, भट warrior) m. A brave warrior; p. 216, l. 7.

s. सुभद्रा *Subhadrā* (s. सु exceeding, भद्र auspicious) f. Name of the sister of Balarām and Krishṇ, carried off by Arjun with the connivance of Krishṇ; p. 229, l. 14.

s. सुभाव *subhāv* (s. सु good *or* स्व own, भाव natural state of being, innate quality) m. Good-disposition, nature, innate quality; p. 4, l. 8.

s. सुमंतका *Sumaṅtakā*, m. The name of a jewel given by the Sun to Satrājīt; p. 128, l. 16.

s. सुमन *suman* (: s. सु good, मन् to think) m. A flower; p. 79, l. 16. 2. adj. Good-hearted, benevolent, virtuous.

s. सुमरण *sumaraṇ* / सुमरन *sumaran* / सुमिरन *sumiran* (s. स्मरण ; स्मृ to remember) m. Remembrance (continual theme); p. 36, l. 16. Mentioning. f. A small rosary.

s. सुमर्ना *sumarnā* / सुमिर्ना *sumirnā* (; s. स्मृ to remember) v.a. To remember; Preface, p. 1, l. 4. 2. To mention.

s. सुमिर *sumir* / सुमिरि *sumiri* (s. स्मरण ; स्मृ to remember) past conj. part. of सुमिर्ना (*q.v.*) Having remembered; p. 1, l. 4.

s. सुमेरु *Sumeru* / सुमेरू *Sumerū* (s. सुमेरु : सु good मि to shed *or* scatter radiance) m. The sacred mountain Meru, allegorically represented as composed of gold and gems, and the residence of the gods. In astronomical works—the North Pole; p. 127, l. 24.

s. सुर *sur* (s. सुर ; षु to possess power *or* षुर् to be radiant) m. A god, a deity; p. 36, l. 11. सुर्पति *Surpati*, A name of Indr (Regent of the gods);

p. 41, l. 13. सुर्पुर *Surpur,* The city of the gods and capital of Indr; p. 5, l. 24.

s. सुर *sur* (s. स्वर : स्वर् to sound) m. A tone; p. 34, l. 16. Melody, accent, song, note. सुर मिलाना *sur milānā,* To sing in tune; p. 56, l. 11.

s. सुरत *surat*, सुर्ता *surta* (s. स्मृति ; स्मृ to remember) f. Recollection; p. 19, l. 3 Memory, consideration, reflection, attention, caution, accuracy.

s. सुवाना *suwānā* (caus. of सोना *q.v.*) v.a. To cause to sleep; p. 134, l. 4.

s. सुशील *sushīl* (s. सुशील : सु good, शील ; शील् to meditate) adj. Well-disposed, good-natured, of good manners; p. 107, l. 2. Polite.

s. सुसर *susar* (s. श्वशुर : शु particle implying respect, अश् to pervade) m. A father-in-law; p. 135, l. 13.

s. सुहाग *suhāg* (s. सौभाग्य ; सुभग auspicious) m. Auspiciousness, good-fortune; p. 74, l. 14. 2. The affection of a husband.

s. सुहागन *suhāgan* (s. सौभागिनी ; सुभगा a woman beloved by her husband ; सु good, भग fortune) f. A woman beloved by her husband, a favourite wife. A married woman whose husband is alive; p. 117, l. 2.

सुहाता *suhātā*, H. सुहाना *suhānā*, सुहवाना *suhawānā* — adj. Agreeable, pleasing; p. 27, l. 11. 2. (सुहाना) v.n. To be agreeable, to please; p. 63, l. 10.

H. सूँट *sūṅṭ,* f. Silence. सूँट भर्ना *or* मार्ना *sūṅṭ bharnā* or *mārnā,* To keep silence; p. 168, l. 18. सूँट मारे जाना *sūṅṭ māre jānā,* To depart in silence.

s. सूँड *sūṅḍ* (s. शुण्ड ; शुण् to go) m. An elephant's proboscis *or* trunk; p. 77, l. 2.

s. सूकर *sūkar* (s. शूकर ; शूक a bristle *or* शू imitative sound, कर् that makes) m. A hog; p. 141, l. 2.

s. सूक्ना *sūknā* (s. शुष्) v.n. To grow dry, to dry up; p. 138, l. 6.

s. सूक्ष्म *sūkshm* (s. सूक्ष्म ; सूच् to inform) adj. Subtile, fine, slender, minute, small; p. 77, l. 8.

s. सूक्ष्मता *sūkshmatā* (s. सूक्ष्मता ; सूक्ष्म *q.v.*) f. Subtileness. 2. Shrillness.

s. सूजा *sūjā* (s. सूचि a needle ; षिव् to sew) m. A borer, a gimlet.

s. सूजी *sūjī* (; सूजा *q.v.*) m. A tailor; p. 73, l. 9. 2. A needle.

H. सूझना *sūjhnā,* v.n. To be visible, to be seen, to be able to see; p. 97, l. 5.

s. सूत *Sūt* (s. सूत ; षू to bring forth) m. A charioteer: p. 211, l. 11. 2. A sage slain by Balarām; p. 214, l. 27.

s. सूत *sūt* (s. सूत्र ; षिव् to sew) m. Thread; p. 180, l. 9.

H. सूथन *sūthan,* f. Drawers; p. 73, l. 7.

s. सूद्र *Sūdr* (s. शूद्र) m. A Shūdra, a man of the fourth or servile tribe among the Hindūs.

s. सूधा *sūdhā* (s. शुद्ध ; शुध् to be *or* make pure) adj. Proper, true. 2. Straight. 3. Simple, artless; p. 38, l. 6.

s. सूनाँ *sūnāṅ*, सूनोँ *sūnoṅ* (s. शून्य) adj. Empty, deserted: p. 17, l. 15.

s. सूप *sūp* (s. सूर्प ; सूर्प् to measure) m. A kind of basket for winnowing corn; p. 14, l. 3.

s. सूर *sūr* (s. शूर ; शु to bear) m. A hero; p. 9, l. 22.

s. सूरज *sūraj* (s. सूर्य्य ; सृ to go) m. The sun; p. 37, l. 4.

s. सूरजग्रहन *sūrajgrahan* / सूर्य्यग्रहन *sūryyagrahan* (s. सूर्य्यग्रहन : सूर्य्य sun, ग्रहन eclipse) m. An eclipse of the sun; p. 221, l. 4.

s. सूर्ता *sūrtā* (s. शूरता ; शूर a hero ; शु to bear) f. Heroism; p. 53, l. 20.

s. सूर्मा *sūrmā* (; s. शूर a hero) adj. Bold, brave; p. 99, l. 27.

s. सूर्य्य *sūryya* (s. सूर्य्य ; सृ to go) m. The sun; p. 128, l. 20. सूर्य्य वंसी *sūryya bańsī* (s. सूर्य्य वंशी) m. Descendant of the sun, a tribe of Kshatriyas so called, who claim descent from the sun; p. 205, l. 3.

s. सूर्सेन *Sūrsen* (; s. सूर the sun, from षू to bring forth) m. A king, grandfather of Krishn; p. 5, l. 21.

s. सूल *sūl* (s. शूल ; शूल् to disease) m. Colic; p. 138, l. 4. 2. A trident or pike, the point of a spear. 3. (s. शूक ; शो to sharpen) A thorn; p. 62, l. 1. Pang, grief; p. 188, l. 3.

s. सूहा *sūhā* (s. शोण ; शोण to be red) adj. Red, crimson. सूहा कुसुंभा *sūhā kusumbhā*, Red as —or with—the dye of safflower; p. 35, l. 17.

s. सृष्ट *srisht* / सृष्टि *srishti* (s. सृष्टि ; सृज् to create) f. The creation, the world; p. 146, l. 16.

H. से *se*, postp. governing the abl. From, by, with, out of; Preface.

s. सेंकड़ा *senkrā* / सैंकड़ा *sainkrā* (; s. शत a hundred) adj. Hundred; p. 154, l. 15.

s. सेज *sej* (s. शय्या ; शी to sleep) f. A bed; p 75, l. 20.

s. सेत *set* (s. श्वेत ; श्वित् to be white) adj. White; p. 35, l. 9. सेत दीप *set dīp* (s. श्वेतद्वीप) The white island, a minor division of the universe so called, and supposed by Wilford to be Britain.

s. सेन *sen*, m. / सेना *senā*, f. (s. शयन ; शी to sleep) Slumber. सुख सेना *sukh senā*, Peaceful repose; p. 171, l. 4.

s. सेन *sen* / सैन *sain* (s. सञ्ज्ञा : सम् with, ज्ञा to know) f. A wink, a sign; p. 25, l. 26. सैन कर्ना *sain karnā*, To beckon.

s. सेन *sen* / सेना *senā* (s. सेना ; षि to bind) f. An army. सेनापति *senāpati*, m. The commander of an army; p. 64, l. 19.

H. सेव *sev*, m. A kind of sweetmeat; p. 42, l. 25.

s. सेव *sev* = सेवा (*q.v.*); p. 42, l. 17.

s. सेवक *sewak* (s. सेवक ; षेव to serve) m. A servant; p. 46, l. 27.

s. सेवा *sewā* (s. सेवा ; षेव् to serve) f. Service, worship; p. 8, l. 24.

s. सेव्ना *sewnā* (; सेवन service ; षेव् to serve) v.a. To attend on, to serve; p. 129, l. 4. 2. To brood, to incubate, to hatch.

s. सेस *ses* = शेष (*q.v.*).

s. सै *sai* (s. शत) card. num. Hundreds; p. 9, l. 10. (pl. of सौ, *q.v.*).

s. सैन्य *sainya* = सेन (*q.v.*) f. An army.

s. सो *so* (s. सः) correlative pronoun. He, she, it, that; Preface. सोई *soī*, He himself. सोऊ *soū*, He also.

s. सो *so* / सौ *sau* adj. Like = सा (*q.v*); p. 28, l. 7.

s. सोअर *soar* (s. सूतिकागृह : सूतिका a lying-in woman, गृह house) m. The chamber of a puerperal woman ; p. 125, l. 15.

H. सों *soṅ* (the Hindī form of से) postp. From, with ; p. 42, l. 14. To ; p. 13, l. 17. गर्भ सों जानौ *garbh soṅ jānau*, To be with child ; p. 20, l. 3.

s. सोंपना *sompnā* / सौंपना *saumpnā* (s. समर्पण) v.a. To consign, to give in charge, to entrust ; p. 25, l. 21.

s. सोंह *soṅh* (s. शपथ) f. An oath. सोंह देना *soṅh denā*, To adjure ; p. 23, l. 18.

H. सोंहीं *soṅhīṅ* / सोहीं *sohīn* adv. and postp. Face to face, in front, opposite, before ; p. 6, l. 13.

s. सोखना *sokhnā* (s. शोषण : शुष् to dry) v.a. To dry up, to soak up, to absorb ; p. 41, l. 26.

s. सोग *sog* (s. शोक : शुच् to regret) m. Affliction, grief, sorrow, lamentation, anguish ; p. 96, l. 10.

s. सोच *soch* (s. शुच् to be sad) m. Consideration, reflection, thought ; p. 3, l. 22.

H. सोचत हैं *sochat hai*, for Urdu सोचता है ; p. 14, l. 6.

s. सोचना *sochnā* (; s. शुच् to be sorry) v.a. To consider, to think, to meditate ; p. 10, l. 4.

s. सोध *sodh* (शोधन) f. Discharge of debt ; p. 70, l. 16. 2. Correction, search, inquiry.

s. सोधना *sodhnā* (s. शोधन payment ; शुध् to be or make pure) v.a. To pay, to discharge a debt, to liquidate. 2. To collate. 3. To refine.

s. सोनत्पुर *Sonatpur* = शोनित्पुर (*q.v.*) ; p. 172, l. 12.

s. सोना *sonā* (s. स्वर्ण : सु excellent, ऋण to go or be) m. Gold ; p. 3, l. 9.

s. सोना *sonā* (; s. शयन ; शी to sleep) v.n. To sleep ; p. 8, l. 10.

s. सोभा *sobhā* (s. शोभा ; शुभ् to shine) f. Beauty ; p. 29, l. 12. Splendour, ornament, dress, decoration. सोभायमान *sobhāyamān*, adj. Beautiful, splendid ; p. 34, l. 4, and p. 117, l. 12.

H. सोरह *sorah* (Braj for सोलह *solah*) num. Sixteen ; p. 109, l. 3.

s. सोलह *solah* (s. षोडशन् sixteen : षष् six, and दशन् ten) Sixteen ; p. 3, l. 2.

s. सौच *sauch* (s. शौच : शुचि purity) m. Purification by oblation, etc.

s. सौत *saut* (s. सपत्नी : स the same, पति husband) f. A rival wife, one of two or more wives to the same husband ; p. 36, l. 10.

s. सौनक *Saunak*, m. Name of a sage ; p. 214, l. 26.

s. सौभरि *Saubhari*, m. A sage who married the fifty daughters of Māndhātri (*See Vishṇu Purāṇā*, p. 369) and afterwards gave himself up to austerities. While practising these, Garuṛ killed a fish near where he was sitting, on which Saubhari uttered a curse upon him—that if he returned to that spot he should die ; p. 32, l. 21.

s. स्कंध *skaṅdh* (s. स्कन्ध : क the head, धा to hold) m. The shoulder. 2. A section, a chapter ; Preface, and p. 5, l. 15. 2. A prince. 3. Name of the son of Bāṇāsur ; p. 171, l. 12.

s. स्तुति *stuti* (s. स्तुति ; ष्टु to praise) f. Praise, glorification, eulogy ; p. 8, l. 12.

s. स्त्री *strī* (; s. स्त्यै to sound) f. A woman ; p. 4, l. 19.

s. स्थान *sthān* (; s. ष्ठा to be fixed) m. Place, abode ; p. 3, l. 10.

s. स्थापन *sthāpan* (s. स्थापन ; ष्ठा to stay) m. Placing, founding, fixing, erecting.

s. स्थापित *sthāpit* (s. स्थापित ; ष्ठा to stay) adj. Established, placed, fixed, founded; p. 215, l. 5.

s. स्थिर *sthir* (s. स्थिर ; ष्ठा to stay) adj. Firm; p. 204, l. 10.

s. स्नान *snān* (s. स्नान ; ष्णा to bathe) m. Bathing; p. 37, l. 9.

s. स्नेह *sneh* (s. स्नेह ; ष्णिह् to be unctuous) m. Love, kindness, regard; p. 35, l. 23. 2. Oil.

s. स्फटक *sphaṭak* / स्फटिक *sphaṭik* (s. स्फटिक ; स्फुट् to expand) m. Crystal; p. 71, l. 17.

s. स्मशान *smashān* = श्मशान (*q.v.*); p. 200, l. 17.

s. स्यामता *syāmatā* (s. श्यामता ; श्याम *q.v.*) f. Blackness; p. 163, l. 4.

s. स्यार *syār* / स्याल *syāl* (s. शृगाल ; सृज् to create) m. A jackal; p. 118, l. 9.

s. स्रम *sram* = श्रम (*q.v.*)

s. स्वछंद *swachhand* (s. स्वच्छन्द : स्व own, छन्द inclination) adj. According to one's own opinion or inclination, self-willed, capricious; p. 53, l. 2.

s. स्वधर्म *swadharm* (s स्वधर्म्म : स्व own, धर्म्म virtue) m. Peculiar duty or occupation—as praying is the duty of a brāhman; fighting, of a soldier, etc.

s. स्वप्न *swapn* (s. स्वप्न ; ष्वप् to dream) m. A dream; p. 12, l. 25.

s. स्वभाव *swabhāv* (s. स्वभाव : स्व own, भाव property) m. Nature, natural state, property, or disposition; p. 31, l. 28.

s. स्वयंबर *swayambar* (s. स्वयम्वर : स्वयम self, वर selecting a husband) m. A girl's selecting a husband for herself; p. 143, l. 20.

s. स्वयम्बरा *swayam-barā* (; s. स्वयम्बर *q.v.*) f. A girl who selects her own husband.

s. स्वरूप *swarūp* (: स्व own, and रूप form) Own or identical appearance, similar; p. 8, l. 20.

s. स्वर्ग *Swarg* (s. स्वर्ग : सु happiness, ऋज् to go or obtain) m. Indr's heaven, the abode of deified mortals and inferior deities; p. 15, l. 10.

s. स्वस्ति *swasti* (s. स्वस्ति : सु well, अस् to be) A particle of benediction, approbation, etc.—So be it, amen! p. 179, l. 12. स्वस्ति वचन *swasti vachan*, m. A religious rite preparatory to any important observance, in which the brāhmans strew boiled rice on the ground, and invoke the blessings of the gods on the commencing ceremony.

s. स्वाति *swāti* (s. स्वाति : सु well *or* auspiciously, ऋत् to go *or* be) f. The star Arcturus, the fifteenth mansion of the moon. स्वाति सुत *swāti sut*, The issue of Arcturus, a pearl, from a popular belief that drops of rain falling into shells when the moon is in that mansion, are converted into pearls; but turn to poison if they fall into the mouth of a serpent.

s. स्वाद *swād* (s. स्वाद ; ष्वाद् to taste) m. Relish, flavour, taste; p. 27, l. 10.

s. स्वाधीन *swādhīn* (s. स्वाधीन : स्व self, अधीन dependent) adj. Independent, being one's own master. 2. Absolute, despotic.

s. स्वाधीनता *swādhīnatā* / स्वाधीनी *swādhīnī* f. Independence, liberty, freedom.

s. स्वान *swān* (s. स्वन ; श्वि to increase) m. A dog: p. 12, l. 20.

s. स्वामी *swāmī* (; s. स्व own) m. Master, owner, lord, proprietor 2. A husband; p. 6, l. 5.

S. स्वार्थ *swārth* (s. स्वार्थ : स्व own, अर्थ purpose) m. Desire, object, end, aim. 2. Self-interest, selfishness; p. 91, l. 1.

S. स्वार्थी *swārthī* (; s. स्वार्थ *q.v.*) adj. Selfish.

S. स्वार्थिक *swārthik* (s. स्वार्थिक ; स्वार्थ own object : स्व own, अर्थ object) adj. Answering its object or purpose, successful, profitable; p. 73, l. 23.

S. स्वास *swās* | स्वासा *swāsā* } (s. श्वास ; श्वस् to breathe) m. Respiration, breath, life.

S. स्वेत *swet* (s. श्वेत ; श्वित् to be white) adj. White; p. 114, l. 14.

ह

S. हंकार *hankār* (s. हक्कार : हक sound of calling, कार that makes) m. Cry, outcry, bawling, calling. 2. Driving.

S. हंकार्ना *hankārnā* (s. हक्कार : हक sound of calling, कार that makes) v.a. To call to, to halloo after; p. 169, l. 29. 2. To drive away.

S. हंडा *handā* (s. हण्ड) m. A cauldron; p. 42, l. 21.

S. हंस *hans* (s. हंस ; हन to hurt *or* kill) m. A goose, a swan; p. 35, l. 15.

S. हंसा *hansā*, m. | हंसी *hansī*, f. } (s. हास्य ; हस to laugh) Laughter, mirth; p. 4, l. 6.

S. हंसाई *hansāī* (s. हास्य) f. Ridicule, derision; p. 143, l. 27.

S. हंसाना *hansānā* (caus. of हंस्ना, *q.v.*) v.a. To cause to laugh, to amuse; p. 24, l. 25.

S. हंस्ना *hansnā* (; s. हस् to laugh) v.n. To laugh, to smile; p. 17, l. 19.

H. हक्बकाना *hakbakānā*, v.n. To be confused *or* irresolute when anything is to be done, to be aghast; p. 151, l. 6.

S. हग्ना *hagnā* (: s. हद् to evacuate) v.a. To void excrement; p. 188, l. 20.

H. हटाना *haṭānā* (caus. of हट्ना, *q.v.*) v.a. To repel, to drive back; p. 60, l. 20.

H. हट्ना *haṭnā*, v.n. To go back, to retire, retract; p. 29, l. 24.

S. हठ *haṭh* (; हठ् to treat with violence) f. Obstinacy, perverseness. हठ की टेक पर होना *haṭh kī ṭek par honā*, To resist obstinately (*lit.*, to be on the prop of perverseness); p. 10, *l.* 4.

H. हड्बड़ाना *haṛbaṛānā*, v.n. To be confused, to hurry; p. 36, l. 4.

S. हतन *hatan*, imp. of हत्ना (*q.v.*); p. 176, l. 26.

S. हत्ना *hatnā* (; s. हत smitten ; हन् to smite) v.a. To kill; p. 149, l. 14.

S. हत्या *hatyā* (; s. हन् to kill) f. Killing, murder, slaughter; p. 3, l. 9 (Used chiefly in composition, as—ब्रह्महत्या *brahmhatyā*, The murder of a brāhman; रिपुहत्या *ripuhatyā*, The slaughter of a foe).

S. हथ *hath* (contrac. of हाथ, *q.v.*) m. The hand. हथ कड़ी *hath-kaṛī* (: हथ hand, कड़ी ring) f. A manacle, handcuff; p. 12, l. 16.

S. हथ्यार *hathyār* (; हाथ hand, *q.v.*) m. Implements, arms; p. 170, l. 14.

S. हन्ना *hannā* (; हन to kill) v.a. To kill, to smite; p. 12, l. 19.

S. हय *hay*, pronounced *hai* (s. हय ; हि to go) m. A horse; Preface.

S. हर *Har* (s. हर ; हृ to take) m. A name of Shiva; p. 233, l. 14. 2. (P. هر) adj. Every, all. हर भांति *har bhānti*, Every kind.

s. हरण *haraṇ* } (s. हरण ; हृ to take) m. Plunder,
हरन *haran* } taking by force. हरण दुख *haraṇ dukh*, Removing grief; p. 37, l. 20.

s. हरनी *haranī* (fem. of हरन, *q.v.*) f. A doe; p. 96, l. 23. 2. (; हर्ना, *q.v.*) adj. f. Taking away; p. 177, l. 25.

s. हरष *harash* (s. हर्ष ; हृष् to be pleased) m. Delight, joy; p. 13, l. 2. Blooming.

s. हरषना *harashnā* (; s. हृष् to be pleased) v.n. To blow (as a flower). To be delighted; p. 5, l. 11.

s. हरा *harā* (s. हरित ; हृ to take) adj. Green, verdant; p. 13, l. 2. Fresh.

s. हरि *Hari* (; s. हृ to take (men's hearts) m. Vishṇu and (considered as the same deity) Krishṇ; p. 59, l. 19, and p. 85, l. 19. हरि पैड़ि *Hari paiṛi*, f. A ghāṭ *or* landing-place dedicated to Hari (*lit.*, the steps of Hari). हरि भक्त *Hari-bhakt*, m. A Vaishṇava *or* worshipper of Hari; p. 5, l. 13. हरि भजन *Hari-bhajan*, m. Adoration of Vishṇu.

s. हरिचंद *Harichand*, m. Name of a munificent king, whose liberality was tested by the Ṛishi Viswāmitr. The king gave away all he possessed and even hired himself to a low-caste man as the watchman of a cemetery, on condition that his master should satisfy the Ṛishi's further demands. His duty was to exact a fee for each corpse brought to be burned, and his own son died and was brought by the queen his mother for cremation. Having nothing to satisfy the customary demand, she was about to strip off her last garment and bestow it in payment, when the deity appeared and transported the whole family to heaven; p. 200, l. 2.

s. हरिजन *Harijan*, m. The son of Hiranakasyap, also called Prahlād; p. 160, l. 5.

s. हरिभक्त *haribhakt*, m. A Vaishṇava or worshipper of Hari (*q.v.*); p. 7, l. 11.

s. हरियाली *hariyālī* (; s. हरित green ; हृ to take (the mind) f. Greenness, freshness, verdure; p. 50, l. 18.

s. हर्ता *hartā* (s. हर्त्ता ; हृ to take) m. One who takes away; p. 7, l. 27. दुख हर्ता *dukh hartā*, Remover of pain; p. 47, l. 23. 2. A thief.

s. हर्ना *harnā* (s. हरण ; हृ to take) v.a. To seize on, to take forcibly. 2. To steal, to spoil. 3. To remove; p. 12, l. 30.

s. हर्षित *harshit* (s. हर्षित ; हृष् to be pleased) adj. Pleased, delighted, rejoiced; p. 140, l. 4.

s. हल *hal* (s. हल ; हल् to plough) m. Plough; p. 100, l. 3.

s. हलधर *Haldhar* (s. हलधर : हल a plough, धर who holds) m. Plough-holder,—a name of Balarām; p. 20, l. 19.

s. हलरावना *halrāwnā*, v.a. To amuse, to play with, to dandle; p. 126, l. 16.

s. हस्तिनापुर *Hastināpur* (s. हस्तिन name of a king its founder, and पुर city, *or* perhaps from the latter, and हस्तिन् an elephant) m. Ancient Delhi the capital of Yudhishṭhir and his brethren. Its remains are still visible about fifty-seven miles north-east of the modern city, on the banks of the old channel of the Ganges; p. 2, l. 7.

s. हां *hāṅ* (s. आं ; अम् to go) adv. Yes, aye! p. 41, l. 21.

S. हांक *hāṅk* (verbal n. from हांक्ना *q.v.*) f. Cry, bawling, calling loudly. हांक मार्ना *hāṅk mārnā*, To bawl after, to call to. 2. Driving.

S. हांक्ना *hāṅknā* (s. हङ्कार) v.a. To drive; p. 27, l. 4. 2. To bawl to.

H. हांप्ना *hāmpnā* / हांफ्ना *hāmphnā* v.n. To pant, to be out of breath; p. 103, l. 1.

S. हाट *hāṭ* (s. हट्ट ; हट् to shine) f. A market, a moveable market or fair, a shop; p. 3, l. 9.

S. हाड़ *hāṛ* (s. हड्ड) m. A bone; p. 18, l. 14.

S. हाथ *hāth* (s. हस्त) m. The hand; p. 2, l. 9. Possession, as हाथ में आना *hāth meṅ ānā*, (*lit.*, to come into the hand) To be acquired.

S. हाथी *hāthī* (s. हस्तिन ; हस्त a trunk ; हाथ a hand) m. An elephant; Preface.

S. हान *hān* / हानि *hāni* (s. हान : हा to leave) f. Loss, detriment, repulse, overthrow; p. 57, l. 13. Slaughter.

A. हांमी भर्ना *haṅmī bharnā* (A. حامي a protector, भर्ना to fill) v.a. To believe, acknowledge, confess, allow, own, assure; p. 115, l. 5.

S. हाय *hae* / हाय हाय *hāe hāe* (s. हाहा ; हा alas!) interj. Alas! f. A sigh. हाय मार्ना *hāe mārnā*, To sigh. हाय हाय कर्ना *hāe hāe karnā*, To lament; p. 4, l. 21.

S. हार *har* (s. हार ; हृ to seize) m. A necklace of pearls, a wreath, a chaplet. 2. A flock of cattle, pasturage; p. 26, l. 8. 3. (s. हारि ; हृ to take) Loss, forfeiture, discomfiture. हार मान लेना *hār mān lenā*, To acknowledge defeat, to give up all for lost; p. 7, l. 5.

S. हारा *hārā* (s. हार ; हृ to seize (the mind) m. A necklace; p. 49, l. 27.

S. हार्ना *hārnā* (; s. हृ to take) v.n. To be overcome, to be unsuccessful, to lose at play; p. 34, l. 1. 2. To be tired out; p. 111, l. 24.

H. हाल्ना *hālnā* = हिल्ना (*q.v.*); p. 29, l. 27.

S. हाव *hāw* (s. हाव ; हृञ to incite passion) m. Coquetry, dalliance, blandishment. हाव भाव *hāw bhāw*, m. Dalliance, amorous gestures; p. 56, l. 20.

S. हाहा *hāhā* (s. हाहा ; हा to abandon) interj. Alas! हाहा खाना *hāhā khānā*, To supplicate, to wheedle; p. 23, l. 14.

S. हि *hi* (s. हि) affix. particle, Very, inded. तब हि *tab hi*, Just then; p. 30, l. 2.

H. हि *hi* (a Braj word) postp. To; p. 76, l. 14.

S. हित *hit* (s. हित ; धा to have *or* hold) m. Love, friendship, affection; p. 11, l. 13.

S. हितू *hitū* (; s. हित affection) m. A friend; p. 90, l. 18.

S. हित्कार *hitkār* / हित्कारी *hitkārī* (s. हित्कर : हित love, कर that makes) m. A friend, a benefactor; p. 53, l. 2.

S. हिमालय *Himālaya* (: हिम cold, आलय abode) The Himāla or Himālaya range of mountains, which bounds India on the north, and separates it from Tartary. It is the Imaus and Emodus of the ancients, giving rise to the Ganges and Indus, and containing the highest elevations in the world. In mythology the mountain is personified as the husband of Menakā, and the father of Gangā or the Ganges; and Durgā or Umā, in her descent as Pārvatī, the mountain-nymph, to captivate Shiva, and withdraw him from a course of ascetic austerity practised in those regions; p. 2, l. 7.

हियौ *hiyau*
s. हिरद *hirad* (s. हृद ; हृ to take) m. The heart, breast, mind ; p. 6, l. 28.
हिर्दा *hirdā*

s. हिरण्यकशिपु *Hiranyakashipu* (s. हिरण्यकशिपु : हिरण gold, कशिपु clothing) m. A Daitya—father of Prahlād—slain by Vishnu in his fourth *or* Narasinha Avatār ; p. 160, l. 4.
हिरन्कस्यप *Hirankasyap*

s. हिरनाकुस *Hiranākus*, m. Name of a brother of Hiranakasyap, who—in the next birth—became Kumbhakaran, and in the next Bakrdant ; p. 214, l. 16.

H. हिलक्ना *hilaknā*, v.n. To writhe *or* suffer contortions (from affliction *or* pain,—chiefly applied to children) ; p. 19, l. 5.

H. हिला *hilā*, adj. Domesticated, tame. हिले मिले *hile mile*, Attached, friendly ; p. 51, l. 8.

H. हिलना *hilnā*, v.n. To shake ; p. 19, l. 8. To be moved.

H. ही *hī*, postp. On, upon. With the present part. inflected it signifies "immediately upon"—*e.g.*, सुन्ते ही *sunte hī*, Immediately on hearing ; p. 3, l. 25. ही *hī* is also an emphatic affix, as—न्यारी ही *nyārī hī*, Quite apart ; p. 6, l. 9. सहज ही *sahaj hī*, Very easily ; p. 30, l. 4.

H. हींस्ना *hīnsnā*, v.n. To neigh ; p. 63, l. 19.

H. हीना *hīnā*, v.a. To wear. बन माल हिये *ban māl hiye*, Wearing a garland of forest-flowers ; p. 37, l. 16. This word is not given in the dictionaries, but its existence is clearly proved from this passage.

s. हीरा *hīrā* (s. हीर ; हृ to take (the mind) m. A diamond ; p. 50, l. 14.

s. हीरावल *hīrāwal* (s. हीरावलि : हरि a diamond, आवलि row) m. A kind of chequered blanket worn by fakīrs ; p. 166, l. 19.

हुंकार *huṅkār*
s. हूंकार *hūṅkār* (s. हुङ्कार : हुम् a magical *or* mystical monosyllable, कार making) m. Cry, outcry. Uttering the sound "huṅ" in anger, or from fear, or as a mystic monosyllable in an incantation ; p. 14, l. 10.
हूंकर्ना *hūṅkarnā*

हुती *hutī*
s. हुतो *huto* Braj form of होता *hotā*, होती *hotī*, imper. of होनौ *honau*, to be, and thus conjugated :—Sin. मैं, तू, वह होतु, होतौ *or* हुतौ, हुती. Pl. हम, तुम, वे होत *or* हुत ; p. 72, l. 8.
हुतौ *hutau*

H. हू *hū* (Braj form of ही *hī*) Very, exactly, indeed ; p. 44, l. 26.

H. हूं *hūṅ*, 1 p. sin. pres. irr. of होना *honā*, to be, I am ; p. 2, l. 18.

H. हूं कै *hūṅ kai* (Braj for मुझे) To me ; p. 153, l. 12.

H. हूंक्ना *hūṅknā* = हांक्ना (*q.v.*) ; p. 30, l. 26.

H. हूल *hūl*, f. A thrust, an attack. हूल देना *hūl denā*, v.a. To goad, to thrust, to push, to drive, impel *or* urge ; p. 77, l. 7.

H. हूहू *hūhū*, Imitative sound of the noise of fire : p. 142, l. 11.

s. हृदा *hridā* = हिरद (*q.v.*) ; p. 18, l. 4.

s. हे *he* (s. हे ; हि to go) interj. or vocative particle. Oh ! ; p. 17, l. 12. हे पिता *he pitā*, O Father ! ; p. 4, l. 1.

s. हेत *het* / हेतु *hetu* (s. हेतु ; हि to go) m. Meaning, object, sake ; p. 15, l. 14.

s. हेमंत *hemant* (s. हेमन्त ; हन् to hurt) m. The cold season, the winter, the two months Aghan

and Pus (November-December): p. 36, l. 21.

H. हेर्ना *hernā*, v.a. To look after, to observe, to see; p. 53, l. 13. 2. To search for, to hunt, to chase, to pursue, to catch, to stop.

H. है *hai*, 2 and 3 p. sing. of the irreg. pres. हूं (*q.v.*) Art *or* is; p. 2, l. 17.

H. हौं *haun* (Braj form of मैं I) pron. 1 p. I; p. 44, l. 7.

H. हो *ho*, past. conj. part. of होना to be *or* to become: Having become, being; p. 2, l. 7.

S. हो *ho* (s. हो; ह्वेञ to call) a vocative particle. Ho! 2. H. (3 p. sin. aorist of होनौं to be) May be; p. 6, l. 27.

H. हौंक्ना *hoṅknā* / हौंकार्ना *hoṅkārnā* v.n. To puff, to pant, to snort; p. 29, l. 11.

S. हौंठ *hoṅṭh* / होठ *hoṭh* (s. ओष्ठ; उष् to burn) m. The lip; p. 61, l. 21.

S. होत *hot*, 2 p. pl. pres. of होना *honā*, to be, for होते. Are you: p. 31, l. 10.

S. होतव्यता *hotavyatā* (s. भवितव्यता: भू to be) f. Fate, destiny; p. 6, l. 27.

S. हो नहो *ho naho* (: हो 3 p. sing. aorist of होना to be, नहो: न not. हो 3 p. sing. aorist of होना) It may be or not, whether or no; p. 127, l. 29.

H. होना *honā*, v.n. To be, to exist, to become, to belong; p. 2, l. 7. This is one of the six irregular verbs making हूआ *hūā* in the past tense. which in Hindi is often written हुआ *huā*: p. 5, l. 27.

S. होन्हार *honhār* / हौन्हार *haunhār* (; होना to be, *q.v.*) adj. What is to happen; p. 6, l. 28. 2. Possible.

S. होम (s. होम; हु to sacrifice) m. A kind of burnt-offering, the casting of clarified butter, etc., into the sacred fire as an offering to the gods, accompanied with prayer or invocations, according to the object of the sacrifice; p. 39, l. 5.

S. होम्ना *homnā* (; s. होम *q.v.*) v.a. To offer the sacrifice of होम *hom* (*q.v.*); p. 205, l. 20.

S. होली *holī* (s. होला ?) f. The great festival of the Hindūs, held at the approach of the vernal equinox; p. 175, l. 3.

H. हौंस *hauṅs* (perhaps; A. هوس) f. Desire, wish. हौंस कर्ना *hauṅs karnā*, To desire; p. 36, l. 12.

H. हौले *haule*, adv. Gently, slowly; p. 233, l. 21.

S. ह्वैके *hweke* / ह्वै *hwai* (part. past of होनौं to be) Having been, having become; p. 17, l. 16. 2. adv. Through, perhaps; p. 52, l. 6.

S. ह्वै है *hwai hai* (Braj form of होये *hoye*) 3 p. sin. fut. *or* aor. of होनौं *honau*, to be, Will take place, will be *or* become; p. 76, l. 16.

STEPHEN AUSTIN, PRINTER, HERTFORD.

LSansk.
C4957p

Author Chaturbhuj Misr

Title The Prem Ságar, or The Ocean of love.

UNIVERSITY OF TORONTO
LIBRARY

Do not
remove
the card
from this
Pocket.

Acme Library Card Pocket
Under Pat. "Ref. Index File."
Made by LIBRARY BUREAU